RNI/MPHIN/2013/61414

ज्ञान-विज्ञान विमुक्तये
UGC Care Listed

ISSN 2278-0327
Peer Reviewed
Refereed Journal

ज्योतिर्वेद-प्रस्थानम्

संस्कृत वाङ्मय की शोधपत्रिका - संस्कृत छात्रों की मार्गदर्शिका

एकादश वर्ष, तृतीय अंक

जुलाई-अगस्त 2022

Bharatiya Jyotisham
पर्येति भावयन् लोकान्
भारतीय ज्योतिषम्

75
आज़ादी का
अमृत महोत्सव

₹ 30

ISSN 2278 - 0327

RNI/MPHIN/2013/61414
UGC Care Listed

Bi - Monthly
Peer Reviewed
Refereed Journal

Bharatiya Jyotisham
पर्यैति भावयन् लोकान्

ज्योतिर्वेद-प्रस्थानम्

संस्कृत वाङ्मय की शोधपत्रिका-संस्कृत छात्रों की मार्गदर्शिका

प्रधान सम्पादक

प्रो. पी.वी.बी. सुब्रह्मण्यम्

कार्यकारी सम्पादक

अविनाश उपाध्याय

सम्पादक

डॉ. रोहित पचौरी

डॉ. रविन्द्र प्रसाद उनियाल

ज्ञान सहयोग

पिडपर्ति पूर्णय्या विज्ञान ट्रष्ट चैन्नै

Jyotirveda-Prasthanam is printed & published by

Smt P V N B Srilakshmi

on behalf of

Bharatiya jyotisham

L-108, Sant Asharam Nagar Phase - 3, Laharpur, Bhopal - 462043

Editor - DR. ROHIT PACHORI*

ISSN 2278 - 0327

पुनरीक्षण समिति

प्रो. विद्यानन्द झा
पूर्वप्राचार्य-केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
भोपाल परिसर, भोपाल

प्रो. क्षेत्रवासी पण्डा
अध्यक्ष-तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति विभाग
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. भारतभूषण मिश्र
निदेशक- केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
क.जे.सौमेया विद्यापीठ, मुम्बई

प्रो. हंसधर झा
अध्यक्ष - ज्योतिषविभाग
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर

प्रो. सनन्दन कुमार त्रिपाठी
अध्यक्ष - साहित्यविभाग
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर

प्रो. श्रीगोविन्द पाण्डेय
आचार्य- शिक्षाशास्त्रविभाग
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर

डॉ. अशोक थपलियाल
अध्यक्ष - वास्तुविभाग
श्रीलालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रकाशक

भारतीय ज्योतिषम्
एल - 108, **संत आशाराम नगर,**
फेज - 3, **लहारपुर,**
भोपाल - 462043, **मध्यप्रदेश**
Web : www.bharatiyajyotisham.com
E.mail : bharatiyajyotisham@gmail.com
Mob : 9752529724, 9039804102

सम्पादकीय

सरल संस्कृत की होड़ में महाकाव्य लुप्त हो सकते हैं और शास्त्रज्ञों की व शास्त्र की परम्परा बीती हुई बात हो सकती है। श्लोक के उच्चारण तक न करते हुए नीचे की व्याख्या से काम चलाने वाले चारों ओर बहुत दिखते हैं। संस्कृताध्ययन परीक्षा की दृष्टि से और रोजगार की दृष्टि से चलने लगा। विद्यालय महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालयों की बढ़ती संख्या के साथ-साथ संस्कृताध्ययन प्रक्रिया में प्रवेश करने वालों की तादात्म्य अवश्य बढ़ा है वहीं शास्त्राध्ययन लुप्त होने की कगार पर आ चुका है।

विदेशी संस्कृत जानना व पढ़ना चाह रहे हैं और उनके अध्यापक भी विदेशी ही निकल रहे हैं। इसका प्रथम कारण है संस्कृतज्ञों में आंग्लादि अभ्यास करने की रुचि नहीं होना। पढ़ने के इच्छुक येन केन प्रकारेण पढ़ना चाहता है, किन्तु पढ़ाने वाले किसी न किसी कार्यान्तर में व्यस्त दिखता है। इन परिस्थितियों में कौन किसको दोष दे सकता है? पढ़ाई का एक मात्र उद्देश्य जब किसी न किसी रोजगारी प्राप्त करने तक सीमित हो गया हो तो कोई शास्त्र की गहराइयों में जाना भी क्यों चाहेगा?

कभी - कभी लगता है कि शास्त्र परम्परा में वापस जाना सम्भव नहीं है। किसी किसी न मोड़ पर कोई बदलाव अचानक आ सकता है, ऐसे सोचना बुद्धिमानी नहीं लगता है। परम्पराओं का पुनरुज्जीवन एक सपना ही रहने की सम्भावना है। इन परिस्थितियों में अपना योगदान क्या हो सकता है। किसी न किसी माध्यम से शास्त्र सुरक्षित हो सकता है। किन्तु उस माध्यम का प्रयोग करने वाला कोई नहीं मिलेगा तो उस स्थिति में उस प्रयोग की सार्थकता क्या होगी।

पत्रिका से सम्बन्धित सभी पद अवैतनिक है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों से प्रकाशक को सहमत होना अनिवार्य नहीं है। किसी भी प्रकार के विवाद का समाधान भोपाल न्यायालय से ही स्वीकार्य है। शोधलेख आमन्त्रित है। पूर्वप्रकाशित लेख अनुमत नहीं है। लेख से सम्बन्धित विवादों का दायित्व लेखक का ही होगा। लेख को स्वीकार व अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार प्रकाशक को है।

विषय-सूची

क्र.	लेख विषय	लेखक	पृ.सं.
1.	श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित कर्मयोग, भक्तियोग एवं ज्ञानयोग की मानव जीवन में उपयोगिता	चेतना सरकार	05
2.	सांख्य-योग दर्शन में पुरुष का स्वरूप	अनीता	09
3.	वास्तुशास्त्र में दिक्पाल	डॉ. आशीष कुमार चौधरी	14
4.	मीमांसा दर्शन में कर्म-सिद्धान्त : एक विश्लेषण	प्रो. डॉ. राजेश सिंह, डॉ. आशुतोष सिंह	20
5.	भक्ति कालीन साहित्य में राम	पार्वती	23
6.	योगवाशिष्ठ में अज्ञान एवं उसकी भूमिकाएं	अनुराधा शर्मा	26
7.	मनुस्मृति में प्रतिपादित विद्यार्थिचर्या	संदीप कुमार यादव	30
8.	आचार्य महाप्रज्ञ साहित्य में स्वास्थ्य के सूत्र	डॉ. हेमलता जोशी	34
9.	भारतीय समाज, युवक और उनकी समस्यायें	डॉ. हरेश नारायण पाण्डेय	41
10.	ई-प्रशासन – ग्रामीण व्यवस्था में नवाचार	प्रो. स्वतन्त्र सिंह चौहान, ओमेन्द्र सिंह	45
11.	भवभूति की कृतियों पर वेदों का प्रभाव एवं वैशिष्ट्य	दीपिका सिंह	48
12.	भारत-अमेरिका राजनीतिक, आर्थिक और व्यापार संबंध	अजीत	51
13.	गुप्त काल में वस्त्रों का वर्गीय विन्यास	अमित कुमार	55
14.	मराठा साम्राज्य का इतिहास	अंकित	59
15.	मुद्रा की तात्विक विवेचना	डॉ. अंकित शर्मा	62
16.	भारतीय राजनीति पर जाति व्यवस्था का प्रभाव	बृजेश सिंह	64
17.	बौद्ध तन्त्र-परम्परा का महायान उद्गम	रुचि शर्मा	69
18.	इतिहास का ऐतिहासिक विश्लेषण	राजकिशोर	72
19.	भारत में रोजगार संबंधों में उभरते रुझान	मनदीप	75
20.	समाज सुधारक के रूप में कबीर	दर्शना	79
21.	भारतेन्दु के निबंधों की भाषिक संरचना(शब्दगत और वाक्यगत)	डॉ. वीणा गांधी	83
22.	'प्रतिज्ञा' उपन्यास में नारी जीवन का मर्मस्पर्शी चित्रण व सुधारवादी दृष्टिकोण	मोनिका	86
23.	क्या ऑनलाइन शिक्षा कक्षीय शिक्षा का समुचित विकल्प है	डॉ. विवेक कुमार सिंह	89
24.	साहित्य सृजन प्रक्रिया में संवेदनशीलता का योगदान	राज बाला, प्रोफेसर डॉ. सुनीता सिंह	94
25.	किन्नर विमर्श	डॉ. विशाल भारद्वाज	97
26.	ओमीश परुथी के साहित्य में नारी की दशा व दिशा	डॉ. कविता चौधरी, राजेश्री	99
27.	चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'गिलिगडु' में वृद्ध दशा	कान्ता देवी	102
28.	पंचतन्त्र की प्राचीनता : प्रश्न एवं विमर्श	वर्तिका मिश्रा	105
29.	शैवाष्टक स्तोत्र काव्यों में छन्द-अलंकार योजना	हेमन्त शर्मा, डॉ. सुनीता सैनी	108
30.	सुषम बेदी के कथा-साहित्य में नस्लवाद	निशा	112
31.	श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित योग का स्वरूप : एक अध्ययन	वीना, डॉ. लीना झा	116

32. योगग्रन्थों में वर्णित प्राण की अवधारणा : एक अध्ययन	सेतवान, नवीन	119
33. कबीर और यथार्थवाद	सोमिका	125
34. गुप्त काल में सौंदर्य प्रसाधन	अमित कुमार, डॉ. आशा यादव	128
35. हठरत्नावली में वर्णित अष्टकर्मों का स्वरूप	ज्योति शर्मा, सचिन भारद्वाज	132
36. स्त्री विमर्श की दशा–दिशा : अतीत से अद्यतन	जितेंद्र शर्मा, कविता	135
37. भासकालीन समाज में राष्ट्रीय भावना (नारी चेतना के संदर्भ में)	डॉ. नीमा जोशी	138
38. बुजुर्गों के मौन संघर्ष की गाथा : एक बड़ी घटना	डॉ. पूनम शर्मा	141
39. श्रीमद्भगवत् गीता में 'कर्म' की अवधारणा	डॉ. सुमन रानी	144
40. भारत में महिला सशक्तिकरण : एक संक्षिप्त चर्चा	मनदीप	146
41. नयी कविता का भाषिक सौन्दर्य	डॉ. संदीप यादव, डॉ. वीणा गाँधी	148
42. जनपद बागेश्वर में मनरेगा का क्रियान्वयन : एक अध्ययन	डॉ. रवि जोशी	151
43. 'आपका बंटी' उपन्यास में विवाह–विच्छेद के कारण बाल–त्रासदी	बिन्दु छिम्पा	157
44. व्यक्तित्व विकास : योग मार्ग द्वारा मानव जीवन में श्रेष्ठतम गुणों की प्राप्ति	कोमल, रुद्रेश कुमार सिंह	160
45 हाईस्कूल स्तर के विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर पारिवारिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन	चंदन कुमार सिंह, डॉ. प्रीति शर्मा	165
46. स्त्री विमर्श : आदिवासी समुदाय के परिप्रेक्ष्य में	सरिता पारीक	169
47. माध्यमिक स्तर के छात्रों की व्यावसायिक रूचि पर उनके बौद्धिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन	श्वेता कुमारी, डॉ. प्रीति शर्मा	175
48. जैविक घड़ी के पालन में आधुनिक रोगों के निवारण की सम्भावनाओं का समीक्षात्मक अध्ययन	रवि दूबे	179
49. माध्यमिक स्तर के छात्र व छात्राओं की कैरियर प्राथमिकता का तुलनात्मक अध्ययन	कुमार सौरभ, डॉ. प्रीति शर्मा	181
50. ज्योतिष शास्त्र में प्रश्न का स्थान, उद्भव एवं विकास	मेघा जोशी	184
51. माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन	धर्मेन्द्र कुमार, डॉ. प्रीति शर्मा	187
52. किशोरियों में असुरक्षा की भावना पर महामृत्युंञजय मंत्र के प्रभाव का अध्ययन	प्रेरणा, प्रो० (डॉ०) सरस्वती काला	191
53. सामाजिक बहिष्कार एवं धर्म : भारत में पिछड़े मुसलमानों का एक अध्ययन	डॉ. ज्याउद्दीन, हयात अहमद	194
54. वेष्टनव्यायोग (A Playlet on Gherao) की भाषाशैली	टुम्पा जाना	200
55. कोविड–19 महामारी के समय ऑनलाइन शिक्षा एवं सोशल नेटवर्किंग साट्स की उपयोगिता	अखिलेश कुमार गुप्ता, डॉ. सुधीर सुदाम कावरे	202
56. प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा : संज्ञानात्मक विकास में पूछताछ आधारित अधिगम की भूमिका	प्रीती साहू, डॉ. मुकेश कुमार चंद्राकर	208
57. धर्मविजयनाटक में भारतीयदर्शनप्रस्थानों की भूमिका : एक अनुशीलन	डॉ.कृपाशङ्कर शर्मा	213
58. प्राचीनकाल से ज्योतिषशास्त्र की व्यापकता श्रीमद्भागवतमहापुराणानुसार चारों युगों का वर्षमान निर्धारण	डॉ.सोमेश्वर नाथ झा 'दधीचि'	215
59. ब्रह्म का दार्शनिक स्वरूप (ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य के आलोक में)	डॉ. मेघराज मीणा	217
60. ऐतरेय उपनिषद् की उपादेयता	डॉ. सौरभ जी	221
61. वैदिक देवता सूर्य	डॉ. प्रवीण बाला	224
62. मंजुल भगत की कहानियों में नारी जीवन की विसंगतियाँ	डॉ. सुनिता यादव	227

ISSN 2278 - 0327

श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित कर्मयोग, भक्तियोग एवं ज्ञानयोग की मानव जीवन में उपयोगिता

चेतना सरकार
शोधार्थी, योग शिक्षा विभाग
डॉ. हरीसिंहगौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

संक्षेपिका–

संसार में उपस्थित प्रत्येक प्राणी अपने जीवन में आने वाली दुर्लभ परिस्थितियों से भाग जाना चाहता है या उन्हें खत्म कर देना चाहता है। हम आज आधुनिक जीवन में देखते हैं कि समाज में उपस्थित प्रत्येक विद्यार्थी, युवा व प्रत्येक गृहस्थ अपने सामने उपस्थित परिस्थितियों में अर्जुन के समान ही दिखाई पड़ता है। सामने उपस्थित परिस्थितियों में चाहे वह विद्यार्थी जीवन की हो,चाहे युवा जीवन की हो या फिर गृहस्थ जीवन की हो, वह उसी महाभारत के युद्ध के समान है जिस प्रकार अर्जुन को अपने सामने विषम परिस्थितियां व अपने सगे-संबंधी दिखाई पड़ रहे थे। किस प्रकार हम अपने विचार, व्यवहार व भाव में सामंजस्य स्थापित कर जीवन की दुर्लभ परिस्थितियों से लड़े और उन पर विजय प्राप्त कर अपनी उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करें। इसकी प्रेरणा हमें अर्जुन व भगवान श्री कृष्ण के द्वारा बताया गया संवाद है और श्रीमद्भगवद्गीता में उपस्थित ज्ञान से मिलती है। हम किस प्रकार का कर्म करें, हम किस प्रकार से अपनी भावनाओं के बीच समन्वय स्थापित करें और किस प्रकार से हमारा ज्ञान उस विषय पर होना चाहिए। उस परिस्थिति का ज्ञान, उसके प्रति हमारी प्रतिक्रिया और हमारी भावना ही हमें उस परिस्थिति के प्रति लड़ना, झूझना और उससे पार होना सिखाती है। क्षण-क्षण हमारे आत्मविश्वास, साहस और भावनाओं को चुनौती देने वाली अनेक समस्याएं प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आती हैं, किस प्रकार हम इन समस्याओं का सामना करें, क्या हम उन समस्याओं के ऊपर प्रतिक्रिया करें ? प्रतिक्रिया करें तो हमारी प्रतिक्रिया किस प्रकार की भावनाओं और किस प्रकार के ज्ञान से युक्त हो, इसी का संदेश श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग के माध्यम से बताया गया है।

मुख्य शब्द –कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग।

प्रस्तावना –

वर्तमान परिस्थितियों को देखें तो पता चलता है कि प्रत्येक मनुष्य दु:खी हैं एवं सांसारिक भोगों में उलझा हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि वह सुखी हो परंतु मनुष्य अपने पूरे जीवन काल में उस सुख को खोजता रहता है और अंत में अपने जीवन को त्याग देता है। यदि मनुष्य जीवन को आनंद के साथ जीना चाहता है तो उसे अध्यात्म की ओर अग्रसर होना पड़ेगा। हमारे भारतीय दर्शनों में दु:खों से मुक्ति के लिए कई साधन बताए गए हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में बताया गया योग व्यवहारिक व आध्यात्मिक दोनों ही है। ऐसा नहीं है कि केवल अध्यात्म को पाने वाले साधकों के लिए ही गीता का उपदेश है,गीता प्रत्येक सामान्य मनुष्य के लिए उपयोगी ज्ञान है। श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत के भीष्म पर्व का एक भाग है। इसमें 18 अध्याय है- प्रथम छ: अध्यायों में कर्मयोग की चर्चा की गई है, द्वितीय छ: अध्यायों में भक्तियोग व अंतिम छ: अध्यायों में ज्ञानयोग की चर्चा करते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग तीनों का समावेश बताया है। इसमें श्री कृष्ण और अर्जुन के बीच का संवाद है।

कर्मयोग–

कर्म का अर्थ- कर्म शब्द 'कृ' धातु में 'अन्' प्रत्यय लगाकर बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है- काम, भाग्य, आचरण व स्वधर्म। 'गीता में कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य बिना कर्म किये क्षण मात्र भी नहीं रह सकता क्योंकि संपूर्ण मानव समुदाय प्रकृति जनिक गुणों के द्वारा कर्म करने को बाध्य होता है।'[1] मनुष्य जो भी कर्म करता है, उसे उसका फल मिलता है। दार्शनिक दृष्टि से देखें तो कर्म का अर्थ वह फल है जिनका कारण हमारे पूर्व कर्म होते हैं। कर्मयोग में जो भी कर्म करें धर्म अनुकूल होना चाहिए, स्वयं की इच्छाएं व कामनाएं त्याग कर ऐसा कर्म करें जो उचित है, उसके परिणाम की चिंता ना करें। मनुष्य जो भी कर्म करें उसे ईश्वर को समर्पित कर देना चाहिए। हमारा संपूर्ण जीवन कर्म पर ही निर्भर करता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण- अर्जुन को कर्मयोग का उपदेश देते हैं कि मानव को कर्म करते रहना चाहिए, फल की इच्छा नहीं करना चाहिए। और इसी कर्म को ध्यान में रखकर अर्जुन ने युद्ध में विजय प्राप्त कर ली।

वैसे ही यदि हर मनुष्य स्वधर्म का पालन करें, तो उसके सामने चाहे कैसी भी विषम से विषम परिस्थिति हो, उसका समाधान कर सकता है।

'गीता में कर्म, अकर्म और विकर्म'[2] तीन प्रकार के कर्म बताए

गए हैं। कर्म, शास्त्रों के अनुसार बताएं कर्मों को करना ही कर्म है। अकर्म, ऐसा कर्म जिसमें हमारा मन व इंद्रियाँ जुड़ी न रहे, अनासक्त भाव से कर्म करना अकर्म है। विक्रम, वह कर्म जो किसी का अनिष्ट करने के भाव से करते हैं, यह कर्म पाप कर्म कहलाते है।

वर्तमान समय में देखें तो प्रत्येक व्यक्ति कर्मयोग की बात करता है, जिस किसी से पूछो तो कर्मयोग के लिए कहता है– 'योग: कर्मसु कौशलम्'[3] लेकिन हम वास्तव में जानते हैं कि कर्म की कुशलता क्या है? इस पर विचार करना बहुत ही आवश्यक है। वास्तविकता तो यही है कि मनुष्य का केवल कर्म करने में करने में अधिकार है, उसके कर्मफल में नहीं।

गीता में कर्मों के अनुसार चार वर्णों का विभाजन किया गया है– 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।'[4]

जैसे– ब्राह्मण का कर्त्तव्य कर्म है कि शास्त्रोक्त ज्ञान का उपदेश करना और यदि वह अपने कर्त्तव्य से भटक जाए, तो वह पाप कर्म कहे जाएंगें। वैसे ही क्षत्रिय का धर्म है कि वह प्रजा की रक्षा करें। अर्जुन भी क्षत्रिय कुल के थे उनका कर्त्तव्य धर्म की रक्षा करना था, इसी पर श्री कृष्ण–अर्जुन को कर्मयोग का ज्ञान प्रदान करते हैं और वह युद्ध लिए तैयार हो जाते हैं क्योंकि वह युद्ध धर्म की रक्षा के लिए लड़ा गया था। वैश्य वर्ण में व्यापारी, किसान व पशुपालक आते हैं। किसान का कर्त्तव्य कर्म है, अनाज उत्पन्न करना। यदि उसने खेतों में बीज डाल दिया किंतु उसमें अनाज उत्पन्न होना न होना उसके हाथों में नहीं है, केवल उसका कर्म था बीज को डालना, अब चाहे फसल पके या न पकें। उसका जो कर्त्तव्य था, उसने किया। शूद्र का कर्त्तव्य सेवा भाव है। प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्त्तव्य का बोध होना जरूरी है, तभी वह अपने कार्य को निष्काम भाव से कर सकेगा। 'यदि मनुष्य को स्वधर्म का पालन करते हुए मृत्यु भी आ जाए, तो कहीं ठीक है लेकिन यदि वह दूसरों के बताए रास्ते पर चलता है या पर धर्म का पालन करता है तो वह भय को देने वाला होता है।'[5]

वर्तमान में मनुष्य सांसारिक वस्तुओं के पीछे भागता जा रहा है, परिवार के प्रति आसक्ति, अपने कार्य के प्रति आसक्ति। यह आसक्ति ही दु:खों की जड़ है। हमारे भारतीय दर्शनकारों का मत है कि– अज्ञान जनित अज्ञान के कारण ही मनुष्य कर्मबंधनों में है और समस्त दु:खों का कारण भी अज्ञान या अविद्या ही है। विपरीत ज्ञान के कारण ही मनुष्य इस संसार को सत्य मानता है, इसी अज्ञान को मिटाने के लिए गीता में ज्ञानयोग, कर्मयोग एवं भक्तियोग पर चर्चा की गई है।

जो मनुष्य निष्काम भाव से कर्म करता है उसमें अपार शक्ति होती है। इस प्रकार के कर्म से व्यक्ति स्वयं का, परिवार, समाज व राष्ट्र का कल्याण करता है। आज का मानव अपने कर्तव्य कर्मों में सजग नहीं रहता और जो भी मन में भावनाएं उठती है, उसी के साथ एकरूप हो जाता है। जिसके कारण उसके अंदर काम, क्रोध, लोभ, मोह व ईर्ष्या आदि जन्म ले लेते हैं और परिणाम में क्लेश उसके अंदर उत्पन्न हो जाते हैं। यदि मानव अपने आप को जोड़ना ही चाहता है तो ईश्वर से जुड़े, उनके बताए अनुसार कर्म करें। तभी वह कर्म निष्काम कर्म माने जाएंगे।

यदि हम किसी की सहायता करते हैं और उसके बदले में सामने वाले से भी अपेक्षा करते हैं कि वह हमारी सहायता करें, तो वह कर्म सकाम कर्म है।

मनुष्य को अपने जीवन को उत्कृष्ट व श्रेष्ठ बनाने के लिए कर्मयोगी बनना चाहिए, कर्मयोगी व्यक्ति अपने आसपास के वातावरण को भी सुंदर व पवित्र कर देता है। उसके चरित्र व चिंतन से आसपास के व्यक्तियों में भी जागरूकता उत्पन्न होती हैं।

अंत में कर्मयोगी जीवन यापन करते हुए भी कर्मफलों में आसक्त नहीं होता और उसे परमानंद की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य के लिए कर्मयोग उपयोगी साधन है। यदि वह कर्मयोगी की तरह जीवन–यापन करता है, तो वह सफलता और असफलता मिलने पर भी विचलित नहीं होता है, निष्काम भाव से अपने कर्त्तव्य कर्मों को करता रहता है

भक्तियोग–

'भक्ति' शब्द का अर्थ– भक्ति, 'भज्' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय लगाकर बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ है– समर्पण, सेवाभाव।

भक्तियोग बहुत ही सरल व सहज मार्ग है। प्रत्येक मनुष्य को जन्म से ही ईश्वर ने प्रेम करने की शक्ति प्रदान की है। प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी से प्रेम करता ही है, चाहे वह माता–पिता हो, भाई–बहन, चाचा–चाची आदि लेकिन यह केवल स्वार्थवश किया गया प्रेम है।

भक्ति में हमारे इष्ट या ईश्वर के प्रति हमारा विश्वास है जब ऊपर उठता है, तो वह श्रद्धा तक पहुँच जाता है और जब श्रद्धा परिपक्व होने लगती है, तो वह भक्ति का रूप ले लेती है, यही भक्तियोग है।

'ईश्वर के प्रति परमप्रेम'[6] ही भक्ति योग है। ईश्वर के प्रति ऐसा प्रेम जो किसी ओर से न हो। अपने पूरे जीवन को ईश्वर को समर्पित कर देना ही भक्तियोग है। 'सा परानुरक्तिरीश्वरे'[7]–उस ईश्वर के प्रति परम अनुराग की भावना ही भक्ति है। जो ईश्वर का सच्चा भक्त–प्रेमी होता है, वह केवल ईश्वर की मूर्ति से ही प्रेम नहीं करता अपितु वह ब्रह्मांड में उपस्थित हर उस प्राणी मात्र से प्रेम करता है, जिसे ईश्वर द्वारा बनाया गया है क्योंकि यह सारा ब्रह्मांड ईश्वर द्वारा ही आच्छादित है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते है– 'ऐसा योगी जो श्रद्धावान् है और मुझे वह अपनी अंतरात्मा में सदैव भजता रहता है, वह योगी मुझे अन्य योगियों में से भी श्रेष्ठ है।'[8]

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशय:।।[9]

अर्थात् यहाँ श्रीकृष्ण–अर्जुन से कहते हैं कि जब तू अपनी मन

व बुद्धि को केवल मुझमें लगाएगा तभी तू मुझमें निवास करेगा, इसमें कोई संशय नहीं है।

गीता में भक्तों की चार श्रेणियां बताई गई है– 'आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी।'[10] आर्त– संसार में अधिकांश लोग ऐसे होते हैं जो भगवान् की भक्ति तभी करते हैं जब उनके जीवन में कोई विपत्ति या दु:ख आता है। जब व्यक्ति को लगता है कि अब इस पर ही है जो मेरी सहायता कर सकता है और वह ईश्वर की आराधना करने लगता है, इस प्रकार के भक्तों को आर्त कहा जाता है। जिज्ञासु– यह ऐसे भक्त होते हैं जिनके अंदर वास्तविक सत्य को जानने के लिए इच्छा जाग्रत होती है, उसके अंदर ईश्वर को जानने की तीव्र इच्छा होती है। अर्थार्थी– इस श्रेणी के भक्त ईश्वर की भक्ति अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करता है। ज्ञानी– इस श्रेणी के भक्त को ज्ञात होता है कि इस संसार का स्वामी एकमात्र ईश्वर ही है, वही श्रेष्ठ है। वही कण-कण में व्याप्त है। इस प्रकार के भक्त को संपूर्ण ब्रह्माण्ड भगवत्स्वरूप दिखाई पड़ता है।

भक्ति योग हर एक प्राणी के लिए आवश्यक है। 'साधारण मनुष्य अपने जीवन में प्रिय व अप्रिय वस्तुओं के पिछे भागते रहता है। जो वस्तु उसे प्रिय लगती है उसकी इच्छा करता है। और जो अप्रिय होती है उसके लिए है द्वेष भावना रखता है। मनुष्य ईश्वर द्वारा रचित सृष्टि में जो जैसा है उसे वैसा नहीं देखता।'[11] अज्ञान के कारण वह अंधा होकर उनमें राग-द्वेषादि की भावना रखता है।

यदि हर प्राणी अपने कार्य को ईश्वर को समर्पित कर दे तो उसके सामने कोई विपत्ति नहीं आएगी। भक्तियोग आज के मानव के विचारों व चिंतन को बदलकर उसे हर प्राणी से प्रेम करना सिखा सकता है। भक्ति हर व्यक्ति के अंदर होना चाहिए तभी वह स्वयं में दूसरों को और दूसरों में स्वयं को देखेगा। यदि मनुष्य के अंदर प्रेम की भावना जाग्रत हो जाए, तो वह अपने द्वारा किसी दूसरे प्राणी को कष्ट नहीं देगा। वह अपने चारों ओर के वातावरण को प्रेममयी बना देता है। भक्तियोग में अनन्य शक्ति है, जिसे जो व्यक्ति सही समय पर समझ ले तो उसका उद्धार हो जाता है। उसके जीवन में किसी भी दु:ख के लिए कोई जगह शेष नहीं रहती। वह सांसारिक मोह-माया से हटकर केवल ईश्वर को ही भजता है, उसे ही अपने जीवन का लक्ष्य मानकर सारा जीवन ईश्वर को समर्पण भाव से सौंप देता है।

ज्ञानयोग–

ज्ञानयोग का प्रारंभ आत्म जिज्ञासा से होता है कि सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई ? ईश्वर कौन है ? मैं कौन हूं ? आत्मा क्या है ? आत्मा और परमात्मा का क्या संबंध है ? दु:ख का कारण क्या है ? आदि मन में जिज्ञासा उत्पन्न होती हैं और उसी जिज्ञासा को दूर करने के लिए साधक ज्ञानयोग के मार्ग को चुनता है।

ज्ञान योग का अर्थ– जानना या समझना है। यहां जानने से मतलब है कि आत्मा/ ब्रह्म को जानना, आत्मसाक्षात्कार, आत्मबोध करना। हमारा पूरा जीवन चक्र कर्म पर आश्रित है। मानव इच्छाओं की पूर्ति व कामनाओं को पाने के लिए कर्म करता है। जिन भी वस्तुओं की कामना या इच्छा हमारे अंदर आती हैं वह अज्ञानवश आती है। हमारी इच्छाएं चाहे बुरी हो या अच्छी वह बंधन का कारण ही है और यदि उस बंधन से छुटकारा पाना है तो अज्ञान रहित ज्ञान से हटना पड़ेगा। अज्ञान से मुक्ति के लिए ज्ञानयोग का आश्रय ले।

श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानयोग के बारे में कहते हैं–

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ।।[12]

अर्थात् इस संसार में जो भी जीवधारी या शरीरधारी जीवात्मा है वह सब मेरे ही अंश मात्र है। उन सभी में तू मुझे ही जान। 'क्षेत्र' और 'क्षेत्रज्ञ' दोनों के भेद को जानना ही वास्तविक ज्ञान है।

भारतीय चिंतन धारा में यह माना गया है कि जो इस पिंड में है वही इस 'ब्रह्माण्ड' में है। वैदिक चिंतन में जो इस व्यष्टि में है वह 'समष्टि' में है। इसी के आधार पर गीता में कहा गया है– यदि शरीर 'क्षेत्र' है तो आत्मा 'क्षेत्रज्ञ' है, उसी प्रकार यदि ब्रह्मांड क्षेत्र है तो इस क्षेत्र का क्षेत्रज्ञ ब्रह्म है।

''ज्ञानयोगी 'सत्य का निष्पक्ष पुजारी' होता है, वह अंधविश्वास को छोड़कर विवेक को अपना प्रधान साधन बनाता है। विवेक की कसौटी पर कसे जाने के उपरांत जो बातें उचित जंचती हैं, उन्हें ही वह ग्रहण करता है। सत्य का प्राप्त होना विवेक द्वारा ही संभव है, इसलिए ज्ञानी विवेक को जगाने की साधना में प्रवृत्त होता है।''[13]

'मनुष्य अज्ञानवश केवल इस शरीर को ही जानता है कि यह शरीर मेरा है, इंद्रियां मेरी है, बुद्धि मेरी है, मन मेरा है, प्राण मेरे हैं। जीवात्मा इस शरीर को 'मैं' मानता है और वह अपने आप को 'मैं शरीर हूँ' और 'यह शरीर मेरा है' ऐसा मान बैठता है।'[14] लेकिन सत्य तो यह है कि हम केवल शरीर नहीं है, हम ब्रह्म का ही एक अंश है। यदि हम ब्रह्म का अंश है तो शरीर कैसे हुए? इसी पर बृहदारण्यकोपनिषद में ब्रह्म रूपी चेतना के बारे में कहा है– 'अहम् ब्रह्मास्मि'[15] मैं ही ब्रह्म हूं।

कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग तीनों एक-दूसरे के संपूरक है, किसी भी एक की श्रेष्ठता को बताना दूसरे को अनदेखा करना है। कर्म क्या है ? किसी प्रकार से कर्म करना चाहिए और कौन-सा कर्म हमारी आध्यात्मिक उन्नति में सहायक है इस चीज के लिए हमें कर्म का एक मूलभूत ज्ञान होना बहुत ही जरूरी है।

इसी प्रकार भक्ति किस प्रकार की जाए? किस प्रकार की भक्ति हमारे इष्ट देवता के गुणों को हमारे अंदर आत्मसात् करवाने में सहायक हो सकती है ? भक्ति कितने प्रकार की होती है ? किस प्रकार हम हमारी साधना में आने वाली कठिनाइयों से बचें ? प्रत्येक साधक के लिए कौन-सा रास्ता उचित है और कौन-सा अनुचित है ? इन सभी के लिए मूलभूत ज्ञान का होनाजरुरी है। गीता में ज्ञानयोग की

चर्चा ज्ञान-विज्ञान अध्याय में बताया गया है जिसके अंतर्गत बताते हैं कि आत्मा का स्वरूप कैसा है ? वह जीवात्मा ब्रह्म से भिन्न नहीं है। अर्जुन के सामने अज्ञान को दूर करने के लिए भगवान श्री कृष्ण आत्मा का जो चक्र है उसे अपने विराट रूप के माध्यम से दिखाते हैं कि जो तू है वही मैं हूं और आत्मा की नित्यता को बताने के लिए वह कहते हैं- कि 'जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्र को त्यागकर नवीन वस्त्र धारण करता है वैसे ही जीवात्मा अपने पुराने शरीर को त्याग कर नवीन शरीर धारण करता है।'[16] आत्मा को न तो जलाया, गलाया, घटाया, बढ़ाया व भेदा जा सकता है वह तो अजन्मा, नित्य व शास्वत है।

भगवान श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि प्रत्येक इस जगत् में जो भी आत्मतत्त्व है वह 'मैं' ही हूं। जब भगवान स्वयं को इंगित करते हैं तो स्वयं को वह ब्रह्मस्वरूप ही व्यक्त करने का प्रयास करते हैं और अर्जुन के भीतर उपस्थित उस आत्मतत्त्व के भेद को अभेद के रूप में वर्णित करते हैं, जो गीता में ज्ञानयोग की भावना को बतलाता है कि किस प्रकार हम सभी के भीतर वही आत्मतत्त्व है, वही ब्रह्म है। वह न तो मरता है, न ही मारता है वह तो केवल शरीर ही है जो नष्ट व परिवर्तित होता रहता है। यदि मनुष्य अपने जीवन से अंधकार रूपी अज्ञान को हटाना चाहता है एवं ज्ञान रूपी प्रकाश में रमण करना चाहता है तो उसे ज्ञानयोग का आश्रय लेना चाहिए, क्योंकि यदि व्यक्ति को विवेकज्ञान हो जाए तो अज्ञान वैसे ही हट जाता है फिर व्यक्ति के सामने कोई भी परिस्थिति आए वह उसका समाधान अपने विवेक बुद्धि से कर ही लेता है।

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थित:।।[17]

अर्थात् जो पुरुष प्रिय के मिलने पर आनंदित व अप्रिय के मिलने पर आकुल न हो, वह स्थिरबुद्धि वाला व संशयरहित पुरुष सच्चिदानंदघन परब्रह्म परमात्मा में ही स्थित हो जाता है।

गीता में तीन प्रकार के ज्ञान की चर्चा की गई है-

'सात्विक ज्ञान, राजसिक ज्ञानऔर तामसिक ज्ञान।'[18]

इनमें से सात्विक ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ ज्ञान माना गया है जो प्रत्येक प्राणी मात्र के लिए आवश्यक ज्ञान है। सात्विक ज्ञान- ऐसा ज्ञान जिसके माध्यम से मनुष्य सभी प्राणियों, जड़-चेतन में उसी परमसत्ता के स्वरूप देखता है। राजसिक ज्ञान- ऐसा ज्ञान जिसके द्वारा मनुष्य सब भूतों में, जड़-चेतन में, उस परमसत्ता को न देखकर, सभी को अलग-अलग रूपों में देखता है, वह राजसिक ज्ञान है। तामसिक ज्ञान- ऐसा ज्ञान जिसमें मनुष्य इस शरीर में ही आसक्त रहकर, यथार्थ को नहीं देखता और उसकी बुद्धि विस्तृत नहीं हो पाती। ऐसा प्राणी तुच्छ बुद्धि वाला होता है, ऐसा ज्ञान तामसिक ज्ञान है।

इस प्रकार मनुष्य गीता में बताए गए ज्ञानयोग के साधनों के द्वारा अपने मन की चंचलता को वश में करके मन को स्थिर कर लेता है। यह साधना है-'अभ्यास और वैराग्य।'[19] अभ्यास और वैराग्य ऐसे साधन है जिनके द्वारा वायु से गतिशील मन को भी निग्रह किया जा सकता है।

उपसंहार-

इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य ज्ञानयोग, कर्मयोग व भक्ति योग किसी भी मार्ग को अपनाकर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता आध्यात्मिक व व्यावहारिक ग्रंथ है जिसकी साधनाओं का उपयोग साधारण मनुष्य भी अपने जीवन में करके ज्ञान के उत्कृष्ट अवस्था तक पहुंच सकता है। गीता में बताए गए तीनों योग मनुष्य का मार्गदर्शन करते हैं। मनुष्य के अंदर जब विचार आते हैं उससे भी पहले भावनाएं जन्म लेती है और यदि भावनाएं हमारी सही होगी, तो उसी प्रकार का विचार पैदा होगा और जिस प्रकार का विचार होगा वैसा ही कर्म करने के लिए व्यक्ति प्रेरित होगा। तीनों ही योग एक दूसरे के संपूरक हैं,इसी प्रकार कर्मयोग, भक्तियोग व ज्ञानयोग में तीनों ही योग प्रत्येक मनुष्य के लिए उपयोगी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. श्रीमद्भगवद्गीता- 3/5
2. वही, 4/17
3. वही, 2/50
4. श्रीमद्भगवद्गीता- 4/13
5. वही, 3/35
6. नारद भक्ति सूत्र-2
7. शांडिल्य भक्ति सूत्र- 1/1/2
8. श्रीमद्भगवद्गीता- 6/47
9. श्रीमद्भगवद्गीता- 12/2
10. वही, 7/16
11. तातेड़, डॉ.सोहन राज.,तिवारी, डॉ. विनोद कुमार,(2016), गीता एवं योग की प्रासंगिकता, आशा पब्लिकेशन्स,जयपुर, पृ.सं.67
12. श्रीमद्भगवद्गीता- 13/2
13. आचार्य, पंडित श्रीराम शर्मा,(2014), ज्ञानयोगकर्मयोगभक्तियोग, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि, मथुरा, पृ.सं.8
14. रामसुखदास,स्वामी, (2014),श्रीमद्भगवद्गीता (साधक संजीवनी), गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ.सं.860
15. बृहदारण्यकोपनिषद्- 1/4/10
16. श्रीमद्भगवद्गीता- 2/22
17. वही, 5/20
18. श्रीमद्भगवद्गीता- 18/20-22
19. वही, 6/35

सांख्य-योग दर्शन में पुरुष का स्वरूप

अनीता
शोधार्थी, संस्कृत पालि एवं प्राकृतविभाग
कुरूक्षेत्र विश्विद्यालय, कुरूक्षेत्र

सांख्य दर्शन में पुरुष के स्वरूप पर गहन चिन्तन किया गया है। इस दर्शन में पुरुष को चेतन आत्मतत्व के रूप में स्वीकार किया गया है। सांख्य दर्शन में एक तत्व प्रकृति है और दूसरा तत्व पुरुष है। पुरुष के सम्बन्ध में सांख्य दर्शन का विचार इस प्रकार–

पुरुष बन्धन रहित–

सांख्य दर्शन में पुरुष को बन्धन रहित माना गया है। बन्धन तो प्रकृति का होता है। परन्तु अज्ञान के कारण पुरुष अपने को बन्धन ग्रस्त मान लेता है। इसीलिए वह बन्धन काल में दु:खों से पीड़ित होता है। तीन प्रकार के दुखों से पुरुष सदा व्याकुल और अशान्त रहता है। सांख्य प्रवचन भाष्य में– *'दु:खात्यन्तानिवृत्तेर्मोक्षत्वस्योक्तया बन्धोऽत्र दु:खयोग एव*।'[1] पुरुष का दु:ख योग रूप बंधन स्वाभाविक नहीं है। सांख्य सूत्र में–*' न स्वभावतो: बद्धस्य मोक्षसाधनोपदेशविधि:*।'[2] इस दर्शन में यह कहा गया है कि पुरुष का काल निमित्तक बन्धन नहीं हो सकता। काल नित्य और सर्वव्यापी है। इसलिए पुरुष का काल के साथ सदैव सम्बन्ध रहता है। काल का सम्बन्ध बढ़ और मुक्त दोनों पुरुषों के साथ सदैव रहता है– सांख्य सूत्र में– *' न कालयोगत: व्यापिनो नित्यस्य सर्वसम्बन्धात्*।'[3] सांख्य प्रवचन भाष्य में भी यही निवेचन प्राप्त होता है– *' नापि कालसम्बन्धनिमित्तक: पुरुषस्य बन्ध: कुत:? व्यापिनो नित्यस्य सर्वावच्छेदेन सर्वदा मुक्तामुक्तसकलपुरुष सम्बन्धात् सर्वावच्छेदेन सर्वदा सकल पुरुषाणां बन्धापत्ते:*।' [4]

सांख्य दर्शन में पुरुष का देश गत बन्धन भी नहीं होता है।[5] मुक्त और बन्धनग्रस्त पुरुषों का यदि देशगत बन्धन स्वीकार कर लिया जाय तो मुक्त होने के बाद भी पुरुष सदा बन्धन में पड़ा रहेगा। ऐसी आपत्ति उपस्थित होती है।[6] बन्धन तो शरीर का धर्म है पुरुष का नहीं। अचेतन का चेतन के साथ सम्बन्ध नहीं हो सकता। सांख्य सूत्र में– *' नावस्थात:, देहधर्मत्वात् तस्या:*।'[7] सांख्य दर्शन में पुरुष को असंग माना गया है। सांख्य सूत्र में – *' असङ्गोऽयं पुरुष इति*।'[8] सांख्य प्रवचन भाष्य में भी यह माना गया है कि पुरुष का सांसारिक विकारों के साथ कोई संग नहीं होता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में भीपुरुष को असंग बताया गया है– *' असङ्गोऽह्ययं पुरुष:*॥'[9] जिस प्रकार कमल की कीचड़ से असंगता होती है, उसी प्रकार पुरुष की भी सांसारिक विषयो से असंगता होती है। सांख्य प्रवचन भाष्य में यह वर्णन मिलता है कि विषय वासनाओं का सम्बन्ध प्रकृति से होता है, पुरुष से नहीं । विषय वासना निमित्तक बन्धन भी पुरुष का नहीं होता–

' अस्यात्मन: प्रवाहरूपेणादिया विषयवासना,
तन्निमित्तिकोऽपि बन्धो न सम्भवतीत्यर्थ:।' [10]

पुरुष अकारण है–

सांख्य दर्शन में पुरुष को अकारण माना गया है क्योंकि पुरुष कि उत्पत्ति किसी भी कारण से नहीं होती है। सांख्य कारिका जय मंगलाटीका में–*'पुरुषोऽप्यहेतुमान्, तस्य कुतश्चितदनुत्पादादिति*।' [11]श्रुति और स्मृति मे भी यही मत प्राप्त होता है। कठोपनिषद्[12] और श्रीमद्भगवद्गीता[13] में यह मत व्यक्त किया गया है कि पुरुष या आत्मा अकारण है। इसका जन्म और मरण नहीं होता है।

पुरुष नित्य है–

सांख्य दर्शन में पुरुष को नित्य माना गया है। नित्य तत्व वह तत्व है जो कभी नष्ट नहीं होता है। उसकी सत्ता तीनों कालों में बनी रहती है। सांख्य दर्शन के अनुसार पुरुष अकारण होने से नित्य कहलाता है– सांख्य कारिका जयमंगला टीका में–*' पुरुषो नित्य: कुतश्चिदनुत्पन्नत्वात् इति*।'[14] श्रीमद्भगवद्गीता में भी पुरुष या आत्मा को अविनाशी माना गया है – *' अविनाशि तु तद्विद्धि*।' [15]

पुरुष का व्यापकत्व–

सांख्य दर्शन में पुरुष को सर्वप्यापी माना गया है। पदार्थों में तीन प्रकार का परिणाम होता है। 1. विभुपरिमाण, 2– मध्यम परिमाण, 3. अणु परिमाण जयमङ्गलाटीका में पुरुष का व्यापित्व प्रकृति से मुक्त अवस्था में ही है– *' पुरुषोऽपि व्यापी यदा प्रकृत्या मुक्त:*।'[16] तत्व प्रभा टीका में17में भी पुरुष का व्यापकत्व स्वीकृत किया गया है।

पुरुष का निष्क्रियत्व–

सांख्य दर्शन पुरुष को निष्क्रिय मानता है। पुरुष में संसरणरूप क्रिया नहीं है– सांख्य सूत्र में – *' निष्क्रियस्य तदसम्भवात्*'[18] जयमंगला टीका में कहा गया है कि पुरुष में अकर्तृत्व होने से निष्क्रियत्व सिद्ध है– *' पुरुषोऽपि निष्क्रिय: कर्तृत्वाभावात्*।'[19] सांख्य सूत्र में प्रतिपादित है कि– *गतिश्रुतिरपि उपाधियोगात् आकाशवत्*।[20] जिस प्रकार घट में विद्यमान अचल आकाश घर के स्थान परिवर्तन या संसरण से गतिमान दिखाई देता है उसी प्रकार लिङ्ग शरीर के सान्निध्य से पुरुष गतिमान दिखाई देता है परन्तु वास्तविक रूप से पुरुष निष्क्रिय ही है। सांख्य तत्त्व प्रभा में *घट संवृतमाकाशं नीयमाने घटे यथा– घटो नीयेत नाकाशं*

तद्वज्जीवोनभोपमः।[21]

पुरुष का अनाश्रितत्व–

सांख्य दर्शन में पुरुष को अनाश्रित माना गया है। पुरुष की उत्पत्ति किसी कारण से नहीं होती है। इसलिए पुरुष अनाश्रित है। जो पदार्थ जिससे उत्पन्न होता है वह उस पर आश्रित होता है। पुरुष अकारण है। इसलिए वह अनाश्रित है।

पुरुष का निर्गुणत्व–

इस दर्शन में पुरुष को निर्गुण माना गया है। सत्त्व, रज और तम ये तीनों गुण प्रकृति में पाये जाते हैं। ये तीनों गुण पुरुष में न होने के कारण पुरुष को *निर्गुणः पुरुषः गुणानां तत्राभावात् इति*।[22] मन, बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियों के संयोग से चेतन पुरुष में इच्छा जागृत होती है परन्तु यह इच्छा पुरुष का वास्तविक व्यापार नहीं है। इसीलिए सांख्य प्रवचन भाष्य में पुरुष को निर्गुण माना गया है– '*इच्छादिकमन्वय–व्यतिरेकाभ्यां मनस्येव लाघवात् सिध्यति मनः संयोगस्यात्मनश्चो–भयोस्तद्धेतुत्वे गौरवात् गुणशब्दश्च विशेषगुणवाचीत्युक्तमेव अत आत्मा निर्गुण*'[23]

पुरुष का विवेकत्व–

सांख्य दर्शन में पुरुष को विवेक युक्त माना गया है। पुरुष चेतन होने के कारण विवेक करने में समर्थ होता है। इसीलिए पुरुष अपने विवेक के अनुसार विषम परिस्थितियों में निर्णय लेकर कार्य करता है। पुरुष के विवेकत्व के सम्बन्ध में जयमंगला में यह कहा गया है कि चैतन्य के कारण पुरुष विवेकी माना जाता है– *विवेकता पुरुषः चैतनत्वात्। विविक्तां वा निर्गुणत्वात् इति*।[24]

पुरुष का अलिंगत्व–

सांख्य दर्शन में पुरुष के अलिंगत्व को स्वीकार किया गया है। पुरुष न तो कहीं लीन होता है और न कहीं से उत्पन्न होता है। इसलिए पुरुष को अलिंग माना गया है। जयमंगला में –'*न किञ्चिदनेन लिङ्गत्यते, न चायं कदाचिल्लीयतेऽनुत्पन्नत्वात्*।'[25]

पुरुष का निरवयवत्व और स्वतंत्रत्व–

सांख्य दर्शन में पुरुष को निरवयव और स्वतन्त्र माना गया है। पुरुष सावयव नहीं है क्योंकि वह एक चेतन तत्व है। प्रकृति जड़तत्व है और सावयव है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस आदि से संयुक्त न होने के कारण पुरुष निरवयव है। पुरुष को स्वतंत्र माना गया है क्योंकि पुरुष किसी कारण के अधीन नहीं रहता है। जब कोई वस्तु किसी कारण के अधीन रहती है तब वह परतन्त्र हो जाती है। पुरुष अज होने के कारण किसी के आश्रित नहीं रहता इसलिए पुरुष की स्वतंत्र सत्ता होती है।

पुरुष का अविषयत्व और असामान्यत्व–

सांख्य दर्शन में पुरुष के अविषयत्व और असामान्यत्व का प्रतिपादन किया गया है। पुरुष विषयों का भोक्ता है। इसलिए भोक्तृत्वादि के कारण पुरुष का असामान्यत्व भी प्रमाणित हो जाता है। जयमंगला टीका में.–

पुरुषो निर्विषयः भोक्तृत्वात् न भोग्यः।
पुरुषोऽसामान्यः, अविषयत्वात् ॥[26]

पुरुष का चेतनत्व–

सांख्यदर्शन में पुरुष को चेतन स्वरूप माना गया है। चैतन्य से भिन्न पुरुष का कोई स्वरूप नहीं है। इस प्रकार जो चैतन्य है, वही पुरुष है। पुरुष से भिन्न चैतन्य को मानने पर पुरुष का निर्गुणत्व सिद्ध नहीं हो पाता।

ज्ञान आत्मा का धर्म या गुण नहीं है। आत्मा ज्ञान स्वरूप और नित्यत्त्व है। सांख्य तत्त्व प्रभा में यह वर्णित है–

ज्ञानं नैवात्मो धर्मो न गुणो वा कथञ्चन।
ज्ञान स्वरूप एवात्मा नित्यः पूर्णः सदाशिवः॥[27]

पुरुष स्वप्रकाशित होता है। यह बुद्धि का भी प्रकाशक होता है। सांख्य तत्त्वालोक में यह मत मिलता है–

'स्वप्रकाशस्तु स्वतः सिद्ध प्रकाशः सदाज्ञात विषयः बुद्धेरपि प्रकाश–कत्वात्॥'[28] सांख्य प्रवचन भाष्य के अनुसार आत्मा या पुरुष अकर्ता और चेतन तत्त्व है। वह सत् और चित् तत्त्व है। पुरुष एक रस है– '*अकर्ता चैतन्यं चिन्मात्रम्, सच्चित्, एक रसो ह्ययमात्मा*।'[29]

पुरुष का अप्रसवधर्मित्व–

पुरुष को अप्रसवधर्मी माना गया है। सांख्य दर्शन प्रकृति में प्रसवधर्मिता को स्वीकार करता है। प्रसव का अर्थ तत्त्वोत्पादन। पुरुष निष्क्रिय होने के कारण अप्रसवधर्मी है परन्तु प्रकृति सक्रिय होने के कारण प्रसवधर्मी है। सांख्य तत्त्व विवेचन में स्पष्ट है–*निर्बीजत्वात् प्रसूते च नैत्यप्रसवधर्म कः*[30] दो प्रकार की कारणता शास्त्रों में प्रसिद्ध है।

1. स्वतंत्र कारणता
2. निमित्तरूप कारणता

पुरुष में जगत् उत्पत्ति विषयक स्वतंत्र कारणता नहीं है परन्तु पुरुष का प्रकृति के सन्निधान से निमित्तरूपसृष्टिकारणता सिद्ध हो जाती है। सांख्य सूत्र में स्पष्ट है '*तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत्*।'[31] पुरुष का प्रकृति के साथ संयोग या संयोगाभास होने पर प्रकृति में विद्यमान तीनों गुणें में विक्षोभ होने लगता है। इसके फलस्वरूप प्रकृति से सृष्टि की रचना होने लगती है। प्रकृति ही जगत् का मूलकारण है। पुरुष अकर्ता होने से जगत् का निर्माता नहीं हो सकता।

पुरुष का अकर्तृत्व–

सांख्य दर्शन में पुरुष अकर्ता है। पुरुष में कृतिशून्यता पाई जाती है। पुरुष में परिणामित्व नहीं है। पुरुष अपरिणामी है। प्रकृति परिणामिनी है। बुद्धि के कारण पुरुष में कर्तृत्व की प्रतीति होती है। पुरुष स्वयं उदासीन है। बुद्धि के धर्मों को पुरुष अपने में आरोपित करके कर्तारूप में प्रतीत होता है। सांख्य सूत्र में –'औदासीन्यं चेति।'[32] सांख्य प्रवचन भाष्य में यही मत प्रतिपादित है–'*औदासीन्यमकर्तृत्वं*

तेन चान्येऽपि निष्कामत्वादयः उपलक्षणीयाः।'[33] पुरुष में कर्तृत्व बुद्धि के उपराग से ही प्रतीत होता है परन्तु यह भ्रमरूप है–'उपरागात् कर्तृत्वम्, चित्सान्निध्यात्, चित्सान्निध्यात्' [34]

पुरुष का साक्षित्व–

सांख्य दर्शन में पुरुष के साक्षित्व को स्वीकार किया गया है। पुरुष विषयों का द्रष्टा होने के कारण साक्षीस्वरूप है। तत्त्वकौमुदी में स्पष्ट रूप से पुरुष को साक्षी माना गया है– *' यस्मै विषयः कश्चित् प्रदर्श्यते स साक्षी भवति'*[35] सांख्य प्रवचन भाष्य में भी पुरुष को साक्षी कहा गया है– *साक्षाद् द्रष्टृत्व मव्यवधानेन वा द्रष्टृत्वं साक्षित्वम्।* [36] चेतन पुरुष दृष्टा होने के कारण साक्षी है। प्रकृति अपने विषयों को पुरुष को दिखलाती है। बुद्धिस्थ विषयों से साक्षात् सम्बन्ध के कारण पुरुष में साक्षित्वमाना गया है। सांख्य प्रवचन भाष्य का यही मत है–*' पुरुषस्य यत्साक्षित्वमुक्तम् तत् साक्षात् सम्बन्धमात्रात्, न तु परिणामत इत्यर्थः। साक्षात्सम्बन्धेन बुद्धिमात्र साक्षितावगम्येत, 'साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम्' इति साक्षिशब्द व्युत्पादनात्।'*[37] जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं का साक्षी चेतन पुरुष ही है।

पुरुष का सदैव एकरूपत्व–

सांख्य दर्शन में पुरुष को सदैव एक रूप माना गया है। पुरुष को जो चित्रुपता है। वह कभी विलुप्त नहीं होती। सांख्य सूत्र में – *व्यावृत्तोभयरूपः।'*[38] सांख्य प्रवचन भाष्य में यह कहा गया है कि पुरुष अपने चित्स्वरूप का त्याग कभी नहीं करता है–

जागृदारव्य महास्वप्ने स्वप्नात् स्वप्नान्तरं व्रजत्।
रूपं त्यजति नो शान्तं ब्रह्म शान्तत्व बृंहितम्॥ [39]

पुरुष का नित्य शुद्धत्व और नित्यबुद्धत्व–

इस दर्शन में पुरुष को नित्य शुद्ध और नित्यबुद्ध माना गया है। मलरहित या दोषरहित माना जाता है। दोषरहित होने से पुरुष को नित्य शुद्ध कहा गया है। पुरुष में शुद्धादिस्वभावत्व और पापपुण्यशून्यत्व विद्यमान है। सांख्य प्रवचन भाष्य में–*' शुद्धादि स्वभावत्वं च नित्यशुद्धत्वादिकम्, तत्र नित्यशुद्धत्वं सदा पापपुण्यशून्यत्वम्।'*[40] सांख्य प्रवचन भाष्य में यह आत्मा या पुरुष निर्वाणमय है। यह ज्ञानमय और अमल है। दुःख और अज्ञानमय धर्म प्रकृति के हैं, पुरुष के नहीं–

निर्वाणमय एवात्मा ज्ञानमयोऽमलः।
दुःखाज्ञानमया धर्माः प्रकृतेस्तु नात्मनः॥ [41]

सांख्य दर्शन में पुरुष को चितरूप होने के कारण नित्यबुद्ध माना गया है–

नित्यबुद्धत्वमलुप्तचिद्रूपत्वमिति। [42]

पुरुष में आनन्दाभाव–

सांख्य दर्शन में पुरुष को आनन्दयुक्त नहीं माना गया है। पुरुष में चेतनत्व और निर्गुणत्व आदि धर्म विद्यमान हैं। 'सच्चिदानन्दं ब्रह्म'[43] इस वाक्य में ब्रह्म को आनन्दमय माना गया है। सांख्य मत में पुरुष को निर्गुण मान लेने से उसका आनन्दमयत्वाभाव स्वयं सिद्ध हो जाता है। सांख्य सूत्र में यह कहा गया है कि पुरुष में आनन्दाभाव है क्योंकि उसमें चिद्रूयता विद्यमान है– *प्रकाशस्वरूप आत्मेति स्वयं सिद्धान्तितम्, तत्र सत्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इति श्रुतेरानन्दो, द्रप्यात्मनः स्वरूपमिति पूर्वपक्षं निराकरोति– 'नैकस्यानन्दचिद्रूपत्वे द्वयोर्मेदात्।'*[44] एक ही धर्मी पुरुष में आनन्द और चैतन्य दोनों रूप एक साथ नहीं रह सकते। पुरुष के त्रिगुणहीन होने से आनन्द उसका गुण नहीं हो सकता।

पुरुष का भोक्तृत्व–

सांख्य दर्शन में पुरुष को भोक्ता के रूप में माना गया है। प्रकृति भोग्या और पुरुष भोक्ता है। सुख, दुःख आदि का भोग करने वाला चेतन पुरुष ही है। सत्व, रज और तम में तीनों गुण प्रकृति में पाये जाते हैं। बुद्धि के सान्निध्य से बुद्धि गत, सुख, दुःख मोह आदि भावों का प्रतिविम्ब पुरुष पर पड़ता है तब पुरुष अपने को सुखी और दुःखी मानने लगता है।[45] बुद्धिगत कर्म के फल को पुरुष ही भोगता है। सांख्य सूत्र में वर्णित है कि पुरुष अकर्ता होर भी फल का भोग करता है– अकर्तुरपि फलोपभोगः अन्नाद्यवत्।'[46] जिस प्रकार राजा अन्य द्वारा उत्पादित अन्नादि का उपभोग करता है उसी प्रकार पुरुष भी बुद्धिगत विषयों के फलों का भोग करता है*' पुरुषोऽपि विषयफलानां स्वयमकृतानां तथाऽपि भोक्ता।'*[47]

पुरुष का नित्यमुक्तत्व–

सांख्य दर्शन में पुरुष को नित्यमुक्त माना गया है। पुरुष के साथ दुःख का पारमार्थिक संयोग नहीं माना गया है। पुरुष सदैव मुक्त है। प्रतिबिम्बरूप दुःख का योग अपारमार्थिक है, बन्धन है। सांख्य सूत्र में पुरुष को नित्यमुक्त माना गया है –*' नित्यमुक्तत्वम्'* 4[8] 'मैं सुखी हूँ' 'मै दुःखी हूँ' ऐसा अनुभव सांसारिक विकारों के प्रभाव से उत्पन्न होता है। सांख्य प्रवचन भाष्य में*' सदैव पुरुषस्य दुःखारव्य बन्ध शून्यत्वम्, दुःखादेर्बुद्धि परिणामत्वादित्यर्थ।'*[48]

पुरुष अपरिणामी है–

सांख्य दर्शन में पुरुष को अपरिणामी माना गया है। कृति परिणामिनी है। प्रकृति से जगत् परिणमित होता है। इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान, धर्म, अधर्म, संस्कार आदि को बुद्धि का परिणाम माना गया है। पुरुष परिणाम, परिवर्तन, क्रिया आदि से रहित होने के कारण अपरिणामी माना गया है। सांख्य कारिका में ईश्वर कृष्ण ने कहा है कि प्रकृति से विपरीत होने के कारण पुरुष निर्गुण, विवेकी, अविषय, असामान्य, चेतन अपरिणामी या अप्रसवधर्मी कहा गया है। *त्रिगुणमाविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि। व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्द्यद्य* [49] इस दर्शन में पुरुष को साक्षी, केवल, मध्यस्थ, द्रष्टा तथा अकर्ता माना गया है। पुरुष के अकर्तृत्व के कारण ही उसे अपरिणामी माना गया है

तस्माच्च विपर्यासात् सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य
कैवल्यं माध्यस्थं द्रष्टृत्वमकर्तृभावश्च॥[50]

संस्कारों का आश्रय बुद्धि है, पुरुष नहीं क्योंकि वह आपरिणामी

है।

पुरुष स्वयंसिद्ध और स्वयं प्रकाशित है-

सांख्य दर्शन में पुरुष को स्वयंसिद्ध कहने का तात्पर्य यह है कि सबको अपने अस्तित्व का अनुभव स्वयं होता है। प्रकृति स्वयं प्रकाशित नहीं है। पुरुष स्वयं प्रकाशित होकर संसार की वस्तुओं को भी प्रकाशित करता है। पुरुष यदि जड़ द्रव्य होता तो उसे स्वयं प्रकाशित नहीं माना जाता। यदि पुरुष जड़ होता तो सुषुप्ति में वह साक्षी न होता। मैं प्रगाढ़ निद्रा में सोया' ऐसा अनुभव स्वप्राशित चेतन आत्मा को ही हो सकता है।

योग दर्शन में पुरुष का स्वरूप-

योग दर्शन भारतीय दर्शन की महत्त्वपूर्ण शाखा है। योग दर्शन के प्रवर्तकमहर्षि पतञ्जलि थे। योग दर्शन के समस्त सिद्धान्तों की व्याख्या पतञ्जलि ने योग सूत्रों में की है। योगदर्शन में पुरुष में चित् शक्ति और दृक् शक्ति पाई जाती है-' *चितिशक्तिरपरिणामिनी*' [51] *दृक् दर्शन शक्त्योरेकात्मतेवास्मिता*[52] चितिशक्ति अपरिणामिनी है अर्थात् इसका परिणाम उत्पन्न नहीं होता। यह शुद्ध है और अनन्त है। *चितिशक्तिर् परिणामिन्यप्रसङ्क्रमा दर्शितविषयाशुद्धाचानन्ता च*।[53] चितिशक्ति का धर्मान्तर रूप परिणाम सम्भव नहीं है।' *न चितेः धर्मलक्षणावस्थालक्षणः परिणामोऽस्ति येन क्रियारूपेण परिणता सती बुद्धिसंयोगेन परिणमेनचितिशक्तिः*।'[54] संचाररूप क्रिया विशेष का अभाव पुरुष में पाया जाता है-यथा *बुद्धिविषयं गच्छति तद्ग्रहणार्थं नैवं चितिशक्तिरक्रियत्वात्* [55] बुद्धि ही विषयाकाररूप में परिणत होकर चितिशक्ति से युक्त पुरुष को विषयों की प्रतीति कराती है - *बुद्धिरेवविषयाकारेण परिणता सत्यतदाकारायै चितिशक्तौ विषयमादर्शयति*।[56] पुरुष को दर्शितविषय माना गया है। योग दर्शन में पुरुष सुख, दु:ख और मोह के सम्पर्क से अपनी शुद्धता से रहित नहीं होता। उसमें इन विकारों से कोई अशुद्धि नहीं आती है-' *शुद्धानन्ता च सुखदुःख मोहाद्यत्मका शुद्धिरहिता पूर्णा च उक्ताशुद्धेः परिणामरूपत्वात् सक्रियस्यैव परिच्छिन्नत्वाच्चेति*।'[57] पुरुष का बुद्धि के साथ अर्थहेतुक अनादि सम्बन्ध होता है। पुरुषसूक्ष्म लिङ्ग का निमित्त कारण होता है- *लिङ्गस्यान्वयिकारणं पुरुषो न भवति, हेतुस्तुभवतीति*।[58] पुरुष का स्वरूप बुद्धि से भिन्न होता है। पुरुष द्रष्टा है और बुद्धि दृश्य है। पुरुष में भोक्तृत्व की योग्यता है और बुद्धि में भोग्यत्व विद्यमान है। पुरुष उदासीन और विशुद्ध चेतन युक्त है। बुद्धि विशुद्ध, उदासीन और चेतन नहीं है।[59] पुरुष बुद्धि के साथ संयुक्त होकर सुखदु:खादि का अनुभव करता है। वास्तव में पुरुष असङ्ग है। पुरुष का तापानुभव अपारमार्थिक और भ्रम रूप है- *सत्त्वे तु तप्यमाने तदाकारानुरोधी पुरुषोऽप्यनुतप्यत इति*। [60] बन्धन और मोक्ष बुद्धि में विद्यमान भाव हैं परन्तु उस फल का भोक्ता पुरुष है। जैसे जय और पराजय योद्धा का होता है परन्तु उस योद्धा के संसर्ग के कारण स्वामी को जय और पराजय की अनुभूति होती है। ग्रहण- धारण से उपहत तत्त्वज्ञानाभिनिवेश बुद्धि में विद्यमान भाव पुरुषमें अध्यारोपित होते हैं। यथा- *विजयः पराजयो वा योद्धषु वर्तमानः स्वामिनि व्यपदिश्यते स हि तत्फलस्य भोक्तेति। एवं बन्धमोक्षौ बुद्धाविव वर्तमानौ पुरुषे व्यपदिश्यते स हितत्फलस्य भोक्तेतिय। बुद्धैरेव पुरुषार्थापरिसमाप्तिर्बन्धस्तदर्थावसायो मोक्ष इति। एतेन ग्रहण धारणोपहततत्त्वज्ञानाभिनिवेशा बुद्धौ वर्तमानाः पुरुषेऽध्यारोपि तसदभावाः*।[61]

योग दर्शन में यह मत प्रतिपादित किया गया है कि शुद्ध स्फटिकमणि जपाकुसुम के संसर्ग से लाल रंग की प्रतीत होती है परन्तु स्फटिकमणि स्वच्छ एवं रंगहीन है। इसी प्रकार पुरुष भी अनौपाधिक स्वरूप में प्रतिष्ठित होता है-' *शान्तादिरूप औपाधि को हि स स्फटिकस्यैव स्वभावस्वच्छधवलस्य जपाकुसुमसन्निधानोपाधिररुणिमा*।[62] योग दर्शन में चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहा गया है-' *योगश्चित्तवृत्ति निरोधः*'[63] अशान्त चित्तवृत्तियों से जीव प्रभावित होता रहता है। अशान्त चित्तवृत्तियों से जीव संसार में भटकता रहता है और बन्धन में पड़ा रहता है। चित्तवृत्तियों का जब आत्यन्तिक निरोध हो जाता है और चित्त अपनी प्रकृति में विलीन हो जाता है तब पुरुष अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है- *तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्*[64] पुरुष का स्वरूपावस्थान ही मोक्ष है। पुरुष चैतन्य के प्रकाश से चित्तवृत्तियाँ प्रकाशित होती है और उसी से विषय का ज्ञान प्राप्त होता है। चेतन पुरुष के संसर्ग से अचेतन चित्त चैतन्य प्रतीत होता है। अचेतन चित्त पुरुष के प्रतिबिम्ब को ग्रहण करता है। पुरुष चित्त में प्रकाशित अपने प्रतिबिम्ब को ही अपना वास्तविक स्वरूप समझ लेता है। पुरुष जब बुद्धि में प्रकाशित अपने प्रतिबिम्ब से तादात्मय स्थापित कर लेता है तब वह जीव बन्धन ग्रस्त जीव के रूप में प्रतीत होता है। बद्ध जीव जन्म-मृत्यु के चक्कर में पड़ा रहता है और अनेक प्रकार के दु:खों को भोगता है। अविद्या निवृत्ति तथा चित्तवृत्तियों के निरोध से दु:खों और कर्मों से मुक्ति मिल जाती है। योग दर्शन में ईश्वर को पुरुष विशेष माना गया है- कलेश, कर्म विपाक और आशय से सर्वथा अस्पृष्ट पुरुष विशेष ईश्वर है।- *क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः*।[65] ईश्वर नित्यमुक्त है। मुक्त पुरुष पूर्वकाल में बन्धन ग्रस्त था। प्रकृतिलीन पुरुष की भविष्य में बन्धन ग्रस्त होने की सम्भावना रहती है। पुरुष विशेष के रूप में ईश्वर बद्ध और मुक्त पुरुषों से भिन्न होता है।

संदर्भ - विवरण

1. सांख्य प्रवचन भाष्य- 1/7
2. सांख्य सूत्र- 1/7
3. सांख्य सूत्र- 1/12
4. सांख्य प्रवचन भाष्य- 1/12
5. सांख्य सूत्र- 1/13
6. वहीं-
7. सांख्य सूत्र 1/14

8. वहीं– 1/15
9. बृहदारण्यक उपनिषद्– 4/3/5
10. सांख्य प्रवचन भाष्य– 1/23
11. श्रीमद्भगवद्गीता– 2/107
12. सांख्य कारिका जय मंगला टीका– 11
13. कठोपनिषद्– 11/10
14. श्रीमद्भगवद्गीता– 2/20
15. सांख्य कारिका जयमंगला टीका– 11
16. सांख्य कारिका जयमंगला टीका– 11
17. सांख्य कारिका तत्त्वप्रभा
18. सांख्य सूत्र– 1/49
19. वहीं– 111
20. सांख्य सूत्र– 1/105
21. सांख्य कारिका जयमंगला– 19
22. सांख्य सूत्र– 1/162
23. सांख्य प्रवचन भाष्य– 1/162
24. सांख्य कारिका जयमंगला– 11
25. सांख्य प्रवचन भाष्य 1/146
26. सांख्य कारिका जयमंगला– 11
27. सांख्य तत्त्व प्रभा– 1/146
28. सांख्य तत्त्वालोक– 2
29. सांख्य प्रवचन भाष्य– 1/147
30. सांख्य तत्त्वविवेचन सूत्र–
31. सांख्य सूत्र– 1/96
32. सांख्य सूत्र– 1/163
33. सांख्य प्रवचन भाष्य– 1/163
34. सांख्य सूत्र– 1/164
35. सांख्य तत्त्व कौमुदी– 19.
36. सांख्य प्रवचन भाष्य– 1/161
37. वहीं– 1/161
38. सांख्य सूत्र– 1/160
39. सांख्य प्रवचन भाष्य– 1/160
40. सांख्य प्रवचन भाष्य– 1/19
41. सांख्य प्रवचन भाष्य से उद्धृत–
42. तैत्तिरीय उपनिषद्
43. वहीं– 111
44. सांख्य सूत्र– 1/105
45. सांख्य कारिका जयमंगला– 19
46. सांख्य सूत्र– 1/162
47. सांख्य प्रवचन भाष्य– 1/162
48. सांख्य कारिका– 11
49. वहीं– 19
50. योग सूत्र व्यास भाष्य– 1/2
51. योग सूत्र– 2/6
52. योग सूत्र व्यास भाष्य– 1/2
53. योग सूत्र तत्त्व वैशारदी– 1/2
54. योग सूत्र योगवार्तिक– 1/2
55. योग सूत्र तत्त्व वैशारदी– 1/2
56. योग सूत्र योग वार्तिक– 1/2
57. योग सूत्र व्यास भाष्य– 1/45
58. वहीं– 2/6
59. वहीं– 2/17
60. वहीं– 2/18
61. योग सूत्र तत्त्व वैशारदी– 1/3
62. योग सूत्र–
63. योग सूत्र– 1/3
64. योग सूत्र– 1/45
65. योग सूत्र व्यास भाष्य–1/45

वास्तुशास्त्र में दिक्पाल

डॉ. आशीष कुमार चौधरी
स.आ. ज्योतिष विभाग,
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर

भारतीय देव सृष्टि में चार दिशाओं के चार एवं चार कोने के चार, इस प्रकार अष्टदिशाओं के आठ देवता माने जाते हैं। इन्द्र पूर्व दिशा के, अग्नि अग्निकोण के, यम दक्षिण दिशा के, निर्ऋति, नैर्ऋत्य कोण के, वरुण पश्चिम दिशा के, वायु वायव्य कोण के, कुबेर उत्तर दिशा के और ईशान, ईशान कोण के अधिपति दिक्पाल माने जाते हैं। कहीं पर ऊर्ध्व एवं अधो दिशाओं को जोड़कर दस दिक्पालों का भी वर्णन प्राप्त होता है।

अष्टदिक्पाल में से चार मुख्य दिशाओं के विषय में भारतीय विभावना कुछ इस प्रकार रही है – पूर्व में सूर्योदय होता है जो ऊर्जा का स्रोत है–इसी कारण सभी देवता पूर्व में रहते हैं। अत: देवताओं के राजा इन्द्र पूर्व दिशा के दिक्पाल माने जाते हैं।

आर्य लोग, आर्येतर लोगों से अधिकतर उपेक्षित रहते थे और आर्येतर लोग दक्षिणभारत में रहते थे। ये लोग आर्यों की पूजापद्धति का अनुसरण नहीं करते थे इसीलिए वहाँ के निवासियों को वह अपूज्य मानते थे और इसी कारण दक्षिणदिशा को अपवित्र अथवा अशुभ मानते थे – मृत्यु को सबसे बड़ा अशुभ माना जाता है इसीलिए मृत्यु के देवता 'यम' को दक्षिणदिशा के देवता माना गया है। भारत की पश्चिमी सीमा पर अरबसागर लहराता है और वरुण जहाँ जल के देवता माने जाते हैं इसीलिए वरुण को पश्चिमदिशा के दिक्पाल के रूप में माना गया है।

अनुश्रुति है कि यक्ष उत्तर में रहते हैं, इसीलिये यक्षों के अधिपति कुबेर को उत्तर दिशा के दिक्पाल के रूप में नियुक्त किया है।

दिक्पालों की विभावना सर्व प्रथम अथर्ववेद में प्राप्त होती है। वहाँ अग्नि, वरुण, सोम, इन्द्र, विष्णु तथा बृहस्पति को दिक्पाल कहते हैं। गृह्यसूत्रों में दसों दिशाओं के स्वामी होना बताया गया है तथा उनको 'बली' प्रदान करने की सूचना मिलती है।

अग्निपुराण में दस दिक्पालों का वर्णन मिलता है, जिन के अन्तर्गत प्रचलित आठ के उपरांत ब्रह्मा और शेषनाग की भी गणना की है।

बौद्ध ग्रंथों में केवल चार दिक्पालों को मान्यता दी गई है, परन्तु उनके रूप भिन्न हैं। पूर्व दिशा के दिक्पाल गंधर्वों के राजा धृतराष्ट्र, दक्षिण दिशा के स्वामी कुष्माण्डों के राजा विरूढ्क, पश्चिम दिशा के रक्षक विरूपाक्ष नाम के निरंकुश नाग द्वारा की जाती है तथा उत्तर दिशा में यक्षों के स्वामी वैश्रवण का आधिपत्य होना माना जाता है। इन चारो दिक्पालों को 'चतुर्महाराजा' कहा जाता है। जैन धर्म में दिक्पालों का स्वरूप ब्राह्मण धर्म के दिक्पालों के स्वरूप से ही मिलता–जुलता।

'अपराजितपृच्छा' कार ने सूत्र 213 में श्लोक 9–16 के अन्तर्गत आठों दिशाओं के दिक्पालों का वर्णन किया है। यथा –

इन्द्र (आकृति 88)– पूर्व दिशा का दिक्पाल इन्द्र हजार आंखों वाला है। इसका वाहन ऐरावत गज है। चतुर्भुज इन्द्र के हाथों के आयुधों का क्रम इस प्रकार है – वरद, वज्र, अंकुश और कुण्डी।

हुताशन (अग्नि) (आकृति 89)–अग्निकोण का दिक्पाल हुताशन ज्वालापुञ्ज जैसा तेजस्वी है। इसका वाहन मेष है। उसके आयुधों का क्रम वरद, शक्ति, मृणाल तथा कमण्डल है।

यम (आकृति 90)–यम दक्षिण दिशा के दिक्पाल हैं। इनका वर्ण कृष्णाङ्ग है। वाहन 'महामहिष' है। आयुधों का क्रम इस प्रकार है – लेखनी, पुस्तक, कुक्कुट तथा दण्ड।

निकात्ति (आकृति 91)–निति दंष्ट्रालम्बमुखी, हाथों में खड्ग, खेटक, कतिका (करवत), अरिमस्तक धारण किए और श्वान पर विराजमान यह देव नैर्ऋत्य कोण के दिक्पाल हैं।

वरुण (आकृति 92)– पश्चिमदिशा के दिक्पाल वरुण का वाहन मगर है। इनके हाथों में क्रमश: वरद, पाश, कमल और कमण्डल हैं।

वायु (आकृति 93)– पवन देवता का वर्ण हरा है, इनका वाहन हिरण है। चारों हाथों में क्रमश: वरद मुद्रा, ध्वजा, पताका और कमण्डलु धारण किए है। यह वायुकोण के दिक्पाल हैं।

कुबेर (आकृति 94)–उत्तर दिशा के दिक्पाल कुबेर हैं। इनका वाहन गज है। इनके आयुधों का क्रम इस प्रकार हैं – गदा, निधि (खजाना), बीजपूरक तथा कमण्डल।।

ईशान (आकृति 95)– धवलद्युति, वाहन वृषभ, वरद, त्रिशूल, नागेन्द्र तथा बीजपूरक धारण किए ईशान, ईशानकोण के दिक्पाल हैं।

क्रम देव का नाम वाहन आयुध एवं उपकरण विशेषताएँ दिशा

1. ऐरावत गज वरद, वज्र, अंकुश, कुण्डी

सहस्राक्ष पूर्व पूर्व हुताशन। मेष वरद, शक्ति, मृणाल, कमण्डल

ज्वालापुञ्जधारी महामहिष लेखनी, पुस्तक, कुक्कुट, दण्ड

कृष्णाङ्ग। दक्षिण निर्ऋति श्वान् खड्ग, खेटक, करवत, अरि मस्तक

दंष्ट्रालम्बंमुखी दक्षिणपश्चिम वरुण ।
वरद, पाश, कमल, कमण्डल
पश्चिम 6. वायु मृग वरद, ध्वजा, पताका, कमण्डल
उत्तरपश्चिम गदा, निधि (खजाना), बीजपूरक, कमण्डल -
उत्तर 8. ईशान बृष वरद, त्रिशूल, नागेन्द्र (नाग), बीजपूरक धवलद्युति
उत्तरपूर्व यम
5. मगर कुबेर गज

अष्टदिक्पालों का दिशा सूचक रेखांकन

पश्चिम

दक्षिण	निर्ऋति	वरुण	वायु	उत्तर
	यम		कुबेर	
	अग्नि	इन्द्र	ईशान	

पूर्ण

इन्द्र

ऋग्वेद में इन्द्र को स्तुति सम्बन्धी स्तोत्रों का अवलोकन करने से हमें ज्ञात होता है कि इन्द्र उस समय मुख्य देवता थे। वह नभमण्डल के देवता माने गये हैं, जिन्होंने हाथ में वज्र धारण किया है तथा जिनके वश में वर्षा है। जिसके प्रताप से पृथ्वी धनधान्य पूर्ण होती है। ऋग्वेद में इन्द्र के विषय में वर्णित है कि उनके पास ऐसा वज्र है जिससे उन्होंने अनावृष्टि के राक्षस (दानव) 'वृत्र' का वध किया जो कि जल को बादलों में छिपा लेता है और हर वर्ष उसे वहाँ से बाहर निकालना होता है। इन्द्र की प्रमुख उपाधि 'वृत्रहन' या वृत्रशत्रु है। अत: इसीलिए वह आँधी एवं मेघध्वनि (गर्जना) के देवता भी माने गए हैं जो कि मेघों पर अपने वज्र से प्रहार करके जल को वर्षा के रूप में मुक्त करते हैं।

भारतवर्ष जैसे कृषिप्रधान देश में यदि वर्षा के देवता इन्द्र की प्रसंशा में अनगिनत स्त्रोत्र लिखे जाएँ तो यह कोई आश्चर्य का विषय नहीं है। वह मेघ जिनको वायु समुद्र से अपने साथ लाती थी वे दुश्मन समझे जाते थे क्योंकि वह अपने बाहुपाश में अति मूल्यवान खजाना बांध कर रखते थे और इन्द्र उनको विवश करते थे ताकि वे वर्षा को सूखी धरती पर उड़ेल दें, जिससे वह सूखी धरती हरीभरी हो जाए।[10] इन्द्र एक प्रमुख देव माने जाते हैं ऐसा महाकाव्यों पर दृष्टिपात करने से जाना जा सकता है। उनकी प्रतिष्ठा देवताओं में वरिष्ठ राजा के रूप में की गई, परन्तु जैसा वैभव उन्हें ऋग्वेद के समय में प्राप्त था वह अन्तराल में लुप्त हो गया उत्तर। वह एक सामान्य या साधारण देव-मात्र दिक्पाल (पूर्वदिशा) के रूप में माने गए।

महाकाव्यों के अनुसार वो एक अत्यन्त कामातुर प्रवृत्ति के थे तथा राक्षसों से पराजित होने पर असहाय हो जाते थे। अपना मनोरंजन इन्द्र स्वर्ग की अप्सराओं के नृत्य आदि से करते थे, तथा ऋषिमुनियों के प्रति शंका से भरे रहते थे तथा उनकी तपस्या भंग करने का प्रयास करते थे।

इन्द्र के द्वारा एक महान पाप हुआ। उन्होंने दुराचार के लिए अपनी गुरू पत्नी को मोहित किया और गुरू गौतम का छद्म वेश धारण किया। इस दुराचार के लिए ऋषि गौतमने उन्हें तथा अपनी पत्नी को शापित किया, जिस से इन्द्र का पुरुषातन जाता रहा और दण्ड स्वरूप में उन्हें इन्द्रजीत से पराजित होना पड़ा। गौतम ऋषि के अभिशाप स्वरूप इन्द्र के मुख पर हजारों अशोभनीय धब्बे अंकित हो गए। पुन: इन्द्र की क्षमा याचना पर ऋषि ने उन्हें आँखों के रूप में बदल दिया। यह ध्यान देनेवाली बात है कि इन्द्र को नभमण्डल का देवता माना गया है तथा उनकी हजार आंखे आकाश में चमकनेवाले सितारे हैं। इन्द्र का सबसे बड़ा बल पर्वतों के पंख अपने वज्र से काट लेना कहा जा सकता है पर्वत बहुत बडे सहायक स्वरूप हैं, भारतवर्ष के मैदानों में वर्षा के लिए।

इन्द्र का मूतिविधान अन्य शास्त्रों में क्या दिया गया है उसका अवलोकन प्रस्तुत है

मत्स्यपुराण[6] - मत्स्यपुराण ने इन्द्र को द्विभुजी देव बताया है तथा उनका वाहन गज कहा है। वह अपने एक हाथ में वज्र धारण करते हैं, दूसरे हाथ में पद्म धारण किए हैं।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण[7] - विष्णुधर्मोत्तर पुराण उनका विवरण सूक्ष्मता से देता है। इसके मतानुसार इन्द्र की चार भुजाएँ एवं तीन नेत्र हैं। उनका वाहन गज है, जिसकी विलक्षण चार हूंढ हैं। उनकी पत्नी शचि है जिनकी द्विभुजाएँ हैं और इनकी गोद में बैठती हैं। इन्द्र के चार हाथों में वज्र अंकुश एवं पद्म हैं। तथा एक हस्त से अपनी पत्नी को आलिंगन करते हुए दिखाए जाते है। शचि के बाएं हाथ में सन्तानमंजरी और उनका दाहिना हाथ इन्द्रके स्कन्ध पर रखना चाहिए।

अग्निपुराण - अग्निपुराण के अनुसार इन्द्र वज्र धारण करते हैं तथा उनका वाहन गज है।

देवतामूर्ति प्रकरण -देवतामूर्ति प्रकरण में इन्द्र पूर्व दिशा के अधिपति और सहस्रनेत्र वाले बताए गए हैं। उनके चारों हाथों में वरद मुद्रा, वज्र, अंकुश और कमण्डलु अथवा कमल धारण होता है।

रूपमण्डन-रूपमण्डन के अनुसार पूर्व दिशा के अधिपति इन्द्र हैं। इनके सहस्रनेत्र हैं तथा चार हाथों में अनुक्रम से वरद मुद्रा, वज्र, अंकुश और कमण्डलु अथवा कलश होता है।

''इन्द्र की प्राचीन प्रतिमाएँ''

इन्द्र की एक प्रतिमा, मथुरा में लाल पत्थर पर अंकित है, जो कि एक अवशेष रूप में है, उसमें देखी जा सकती है। इसमें इन्द्र ऐरावत पर चढ़कर बुद्ध से मिलने आते हैं। उस समय बुद्ध इन्द्रशाल गुहा में निवास करते थे।

पंचाल श्रेणी की मुद्राओं के पृष्ठभाग बहुत रोचक हैं। भारतीय शिल्पशास्त्र के लिए विशेष रूप से इन्द्र के अध्ययन के हेतु पंचालके सिक्कों के पृष्ठभाग में एक देव का अथवा उनके प्रतिरूप (लक्षण) का

अंकन है। राजा 'इन्द्रमित्र' के सिक्कों के पृष्ठभाग पर इन्द्र दो रूपों में दर्शाए गए हैं। [22] आधार चौकी पर देव खड़े है, मुख सम्मुख है तथा दायें हाथ में अस्पष्ट आयुध है एवं बायी ओर से एक गदा लटकी हुई है।[23]

दूसरे रूप में वह किसी अर्धवृत्ताकार के नीचे खड़े हैं।[24] यह सिक्का ईसा पूर्वकी प्रथम शताब्दी का माना जाता है।

अग्नि –

दिक्पाल अग्नि कोण के अधिपति हैं। वेदकाल में अग्नि का महत्त्व इन्द्र के समान ही था, अग्नि के तीन स्वरूप माने गए हैं – धरती पर अग्निरूप में, बादलों में बिजली के रूप में तथा नभ में सूर्य के स्वरूप में [25] अग्नि को यज्ञ के देव के रूप में माना जाता है। यज्ञ से सम्बन्धित इनके विभिन्न नाम मिलते हैं। आध्यात्मिक रूप से वह शिव के अपर स्वरूप हैं, वाग्दण्ड, श्वादंड, धनदंड और वज्रदण्ड ये इसकी दाढे हैं – लम्बी दाढी दर्भ और इन के रथ में जुते चार तोतों (पोपट)की उनके चार वेद मानते हैं।[26]

अग्नि के जन्म और उत्पत्ति के विषय में अनेक आख्यायिकाएँ मिलती हैं। उनमें दो अरणियों के घर्षण से नित्य उत्पन्न होते हैं, इनका वास घर–घर में होता है, इसलिए 'गृहपति' भी कहा जाता है। पुराणों एवं भागवत (स्कंद 8/अ1) में अग्नि की उत्पत्ति की आख्यायिकाएँ दी गई हैं। दक्ष प्रजापति की कन्याओं में से 'स्वाहा' इनकी पत्नी हैं। ब्रह्मदेव ने इन्हें पूर्व एवं दक्षिण दिशा का आधिपत्य सौंपा था।

शास्त्रीय मूर्तिविधान

मत्स्यपुराण[27] –अग्नि को अर्ध चन्द्राकार आसन पर विराजमान, सुवर्ण जैसी कांतिवाला माना है। अग्नि के मुख पर लम्बी दाढी और शरीर पर यज्ञोपवीत तथा दाहिने हाथ में अक्षसूत्र और बायें में कमण्डलु धारण किये हुए हैं। इनका वाहन बकरा है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण[27अ] –विष्णु धर्मोत्तर पुराण में अग्नि को धूम्रवर्ण के, दाढ़ी, एवं मूंछ युक्त कहा गया है। चार हाथों में से दाहिने हाथ में अक्षमाला और पत्नी के कन्धे पर तथा वाम हस्त में ज्वाला और त्रिशूल होता है। अग्नि के रथ को चार तोते (पोपट) खींचते हैं। वायु को इनके रथ का सारथी कहा गया है।

अग्निपुराण [28] – अग्निपुराण के मतानुसार अग्नि को बकरे की पीठ पर विराजमान सात ज्वाला से युक्त, सात जीभ वाला और उनके चार हाथों में अनुक्रम से अक्षमाला, कमंडलु और शक्ति धारण किए तथा ज्वालाओं से घिरा हुआ बताया गया है।

देवतामूर्ति प्रकरण –देवतामूर्ति प्रकरण के अनुसार अग्नि मेष पर आरूढ रहते हैं। उनके चार हाथों में अनुक्रम से वरद, शक्ति, पद्म या मृणाल एवं कमण्डलु रहता है।

रूपमण्डन [30]– रूपमण्डन के अनुसार देव के हाथों में शक्ति, मृणाल, कमल और कमण्डलु धारण होते हैं।ज्वालापुञ्ज सहित मेष पर आरूढ़ देवता अग्नि है।

यम –

पौराणिक परम्परा के अनुसार मृत्युलोक, न्यायाधीश एवं शासक यम को प्रथम अनित्य माना गया है। वह हिन्दुओं का प्लूटो (ग्रीक के मृत्यु के देवता) हैं, जो प्रथम पैदा हुए तथा प्रथम मृत्यु को प्राप्त हुए, ऐसा माना जाता है। वे सूर्य पुत्र थे। मैक्समूलर के अनुसार सूर्य को ऐसा माना गया है कि प्रत्येक दिवस उनकी मृत्यु होती है यानि यह प्रतिदिन ढल जाते हैं। वे प्रथम विनाशी थे। वह प्रथम थे जिन्होंने हमें दर्शाया कि हमारी जिन्दगी में सूर्य के उदय से अस्त होने तक अर्थात् जन्म और मृत्यु तक हमारा पथ क्या होगा। सूर्य के उदय होने तथा पश्चिम में अस्त होने के जैसा ही हमारा जीवन है और हमारा अन्त भी होगा। वे मृत्युलोक के शासक हैं। एक न्यायधीश की तरह वे अपने न्यायलय के अधीक्षक हैं। उनके लिपीक चित्रगुप्त हैं, जो कि अपनी पुस्तिका 'अग्र–संधानी' से मनुष्य के जीवन का लेखा–जोखा पढ़ते जाते हैं और लेखा–जोखा पढ़ने के पश्चात् अच्छाइयों और बुराइयों को नापते तौलते हैं। उसी के अनुसार मनुष्य स्वर्ग या नरक में प्रवेश पाते हैं। यम दक्षिण दिशा के दिक्पाल हैं।

शास्त्रीय मूर्तिविजान

मत्स्यपुराण [31] – इस ग्रन्थ में यम देव को महिष के सिंहासन पर विराजमान, विकराल आंखो वाले, हाथ में दण्ड और पाश धारण किए वर्णिक किया गयी है।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण [32] – विष्णुधर्मोत्तर में यम देवको सर्व आभूषणों से विभूषित देह, चार हाथों में अनुक्रम से दक्षिणहस्त में दण्ड ओर खड्ग तथा वाम हस्त में ढाल तथा पत्नी को हाथों के घेरे में लेते हुए, आलिंगन करते हुए निर्देशित किया गया है। इनका वाहन महिष है।

अग्निपुराण – इस ग्रन्थ में यम का वर्ण हरित तथा दो हाथों में दण्ड और पाश धारण किए हुए बताया गया है। अग्नि के सदृश नेत्र हों महिष पर आरूढ़ हों दोनों ओर मृत्यु एवं चित्रगुप्त खड़े हों तथा धार्मिक एवं पापी लोगों के विषयों में उनसे विवरण (लेखा जोखा) ले रहें हों। ऐसी कल्पना की गयी है।

देवतामूर्ति प्रकरण [34] – इस ग्रन्थ में यम को कृष्णवर्णी बताया गया है। उनका वाहन महिष है और आयुधों को अनुक्रम से लेखनी, पुस्तक, कुक्कुट तथा दण्ड बताया गया है।

रूपमण्डन[35] –रूपमण्डन के मतानुसार यम का वर्ण कृष्ण कहा गया है। महिष उनके वाहन की तरह और उनको चतुर्भुज बताया गया है चारों हाथों में अनुक्रम से लेखनी पुस्तक कुक्कुट तथा दण्ड होना चाहिए।

प्राप्त प्रतिमाएँ – खजुराहों के मंदिरो में यमकी प्रतिमाएं मिलती है और यम की दिक्पाल स्वरूप की प्रतिमा दक्षिणभारत में चिम्बरम के शिव मंदिर में है। यम के द्विभुज में पाश एवं गदा है, वाहन इनका महिष है।[36]

निर्ऋति –

यह देव भी वैदिक देव है परन्तु वेदों में इनका बहुत अधिक उल्लेख नहीं प्राप्त होता। संस्कृत कोश ग्रन्थों में निर्ऋति को अलक्ष्मी, जेष्ठा देवी, राक्षस इत्यादि कहा गया है। पुराणों में इन्हें एकादश रूद्र में से एक कहा गया है। निर्ऋति, नैर्ऋत्य दिशा के दिक्पाल हैं तथा इन्हें भूतपिशाचादि के अधिपति माना जाता है। ऋग्वेद के अतिरिक्त इस दिक्पाल के विषय में साहित्य में बहुत ही कम उल्लेख मिलता है।

शास्त्रीय मूर्तिविधान

मत्स्यपुराण[37] –मत्स्यपुराण में निर्ऋति, लोकपति राक्षसेन्द्र को मनुष्य पर बैठे महान आकार वाले बताया गया है। चारों ओर से राक्षसों से घिरे हुए एवं हाथ में खड्ग धारण किए हों, एसा विधान निर्देशित है।

विष्णुर्मोत्तर पुराण [38]– विष्णुधर्मोत्तर में निर्ऋति का नाम विरूपाक्ष कहा गया है। इनका वर्ण श्याम है। मुख में से ज्वालाऐं निकल रही हों तथा ऊंची केश राशि हो। भीषण मुखाकृति होनी चाहिए। द्विभुज में दण्ड एवं एक हस्त में ऊँट की लगाम धारण की हो वाहनरूप में उष्ट्र (ऊँट) होगा। विरूपाक्ष के वाम ओर पत्नी निर्ऋति होनी चाहिए।

अग्निपुराण[31]– अग्निपुराण में निर्ऋति को लोकपति के स्वरूप में माना है तथा इनका वाहन मनुष्य बताया है। उनका आकार बृहद होना चाहिए तथा वे चारों और राक्षसों से घिरे खडे दिखाए जाने चाहिए।

देवतामूर्ति प्रकरण [40]– देवतामूर्तिप्रकरण के मतानुसार निर्ऋति की विकराल मुखाकृति होनी चाहिए। दृष्टि भी भयावह हो। बड़ी दाढ़ी वाले हों। चार हाथों में अनुक्रम से खड्ग, खेटक, करवत और शत्रु का मस्तक धारण करें। इनका वाहन श्वान हो। नैर्ऋत्य कोण के अधिपति राक्षस निर्ऋति हैं।

रूपमण्डन[51] – रूयमण्डन में निर्ऋति को विकराल मुखाकृति वाला, भयंकर दृष्टि वाला बताया गया है। लम्बी दाढ़ी हो, चार हाथों में अनुक्रम से खड्ग, खेटक, करवत तथा और मस्तक युक्त बनाने का विधान है। वाहन श्वान हो, नैर्ऋत्य कोण के अधिपति राक्षस निर्ऋति हैं।

प्राप्त प्रतिमाएँ – भारत में दिक्पाल निर्ऋति की गुप्तकाल तक की कोई प्रतिमा ज्ञात नहीं होती।[42]

वरुण –

वरुण पश्चिम दिशा के दिक्पाल हैं। इन्द्र एवं अग्नि ही की भाँति वैदिक साहित्य में इनका अनेक बार उल्लेख हुआ है। वरुण को एक प्रतापी देवता माना जाता है, जिनमें नैसर्गिक बल तथा नीति के नियमों को धारण करने की क्षमता है। ऋग्वेद में इन्हें जल और ऋतु के देवता कहा गया है।[43]

रामायण में वरुण को पश्चिम दिशा के स्वामी कहा गया है।[44] महाभारत में सभापर्व 45 में इनके लिए राजा वरुण और धर्मपाराधा (9/10) जैसे विशेषणों का प्रयोग हुआ है। ये दिव्य वस्त्र और आभूषण धारण किए हुए अपनी पत्नी वारुणी के साथ आसन पर विराजते है (सभापर्व 9-6) । वह अपने हाथमें पाश और अशनि धारण करते है। (आदि पर्व 227-32)

शास्त्रीय मूर्तिविधान

मत्स्य पुराण[46] –मत्स्यपुराण के मतानुसार वरुण मत्स्य के आसन पर विराजमान हों। शांतमुखमुद्रा हो और उनका स्वरूप युवकों जैसा हो।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण[47]– विष्णुधर्मोत्तर में वरुण को सात हंसों द्वारा खींचने वाले रथ में विराजमान, श्वेत वस्त्र धारण किए-कंठ में मुक्ता की माला धारण किए, चार हाथों में से दाहिने हाथ में पद्म, और पाश तथा वामहस्त में शंख और रत्नपात्र धारण किए बताया गया है। वरुण की बाईं ओर उनकी भार्या गौरी तथा मकर के चिन्ह से अंकित ध्वज हो। मस्तक पर श्वेत छत्र बनाना चाहिए। दाहिनी और वाहन मकर हो। हाथ में चामर तथा श्वेतकमल धारण किए गंगा और बाईं ओर कूर्म पर खड़ी हाथ में चामर एवं नीलोत्पल धारण किए यमुना की मूर्ति बनाने का विधान है।

अग्निपुराण–[48] इसमें सागर देवता वरुण को मकर पर हाथ में पाश लिये खड़ा होने का विधान है।

देवता मूर्तिप्रकरण [49] – देवतामूर्तिप्रकरण में वरुण को पश्चिम दिशा के अधिपति कहा गया है। वह मकर पर विराजमान हों। उनके चार हाथों में अनुक्रम से वरद, पाश, पद्म और कमण्डलु धारण किए हों।

रूपमण्डन [50]– रूपमण्डन के अनुसार वरुण पश्चिमदिशा के अधिपति हैं। मकर पर विराजमान हों तथा हाथों में आयुध अनुक्रम से वरद, पाश, पद्म और कमण्डलु हों।

प्राचीन प्रतिमाएँ –

वरुण की एक प्राचीन प्रतिमा भुवनेश्वर के राजरानी मंदिर में है। उनके दाहिने हाथ में पाश और बायें हाथ में वरद मुद्रा हैं इसके अतिरिक्त खजुराहो और एलोरा की कैलाश गुफा में वरुण की प्रतिमाएं हैं। [51]

वायु –

वायु से सम्बन्धित ऋग्वेद में तीन सूत्र (सूक्त) प्राप्त होते हैं।[52] ऋग्वेद में उन्हें श्याम अश्वों से जुड़े तेजोमय रथ के स्वणिम आसन पर बैठ कर अंतरिक्ष तक गति करते हैं ऐसा कहा गया है। इनके सारथी इन्द्र हैं, वायु 'पवन' के भगवान् हैं, तथा ब्रह्माण्ड के उत्तर पश्चिम के रखवाले हैं। यह जीवन के पाँच तत्त्वों में से एक तत्त्व हैं। यह मौलिक, वैदिक देव इन्द्र से सम्बन्धित माने जाते हैं।[53]

महाभारत के आदि पर्व [54] में वायु को अग्नि का मित्र और भीमसेन का पिता कहा गया है। इस लिए यह मेघ की उत्पत्ति करके वर्षा करते हैं। कुंती के आवाहन करने पर यह मृग पर आरूढ होकर आगए थे।

शास्त्रीय मूर्तिविधान

मत्स्यपुराण–[54] इस ग्रन्थ के अनुसार वायु का वर्ण धूम्र है। रत्नालंकरणों से विभूषित रहते हैं। द्विभुज देव के हाथ में वरदमुद्रा तथा पताका रहती हैं। उसका वाहन हिरण है।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण [56]–विष्णुधर्मोत्तर पुराण में वायु की देह का वर्ण तथा उनेक वस्त्र आसमानी नीले वर्ण के बताए गये हैं। आयुध अनुक्रम से चक्र एवं ध्वज हैं।

अग्निपुराण[57]– अग्निपुराण में मृग पर आरूढ देव वायु हाथ में वज्र धारण किये हुए बनाये जाएँ और उनके चारों ओर हवामें लहराते हुए पिच्छ बनाने का विधान है।

देवतामूर्तिप्रकरण[58]- देवतामूर्तिप्रकरण में वायु को मृग पर आरूढ और उनके चार हाथों में वरद, ध्वज, पताका और कमण्डलु धारण करने का विधान दिया है। इन्हें वायुकोण का अधिपति कहा है।

रूपमण्डन[57] – चतुर्भुज पवन के हाथ में वरद मुद्रा, ध्वजा, पताका एवं कमण्डलु हैं। वे मृगारूढ हैं तथा उनका वर्ण हरित है। पवन वायुकोण के दिशापति हैं।

कुबेर –

कुबेर यक्षों के राजा एवं सम्पति के देव माने जाते हैं। वह उत्तरदिशा के दिक्पाल कहे जाते हैं। यह देवताओं में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। बौद्धधर्म के ग्रन्थों में भी कुबेर का उल्लेख मिलता है जैसे ललितविस्तर। इसके अतिरिक्त जैन धर्म में भी उन्हें सम्मिलित किया गया है। बौद्ध धर्म में कुबेर को धनपति और उत्तरदिशा के अधिपति दिक्पाल कहा है। उनकी पत्नी का नाम हारिति ही रखा है। हिन्दु मूर्तिविधान की ही भाँति बौद्ध धर्म में भी कुबेर का मूर्तिविधान लिया गया है। कुबेर श्रीलंका के वैश्रवण के रूप में पूजे जाते हैं। बौद्ध धर्म में उन्हें जंभल नाम से जाना जाता है। जैन ग्रन्थों में कुबेर का वाहन मनुष्य, उनके हाथों में रत्नका पात्र, वज्र अथवा द्रव्य की थैली होती है।[60]

शास्त्रीय मूर्तिविधान

मत्स्यपुराण[61]– मत्स्यपुराण के अनुसार कुबेर को मृग पर विराजमान, हाथ में वरद पताका, ध्वज धारण किए हुए होना चाहिए। मूर्ति शंख अथवा स्फटिक जैसे श्वेतवर्ण की बनाना चाहिए ऐसा निर्देश है। श्वेत पुष्पों के हार से तथा श्वेत वस्त्रों से सुशोभित हों। कानों में कुण्डल, बृहद् उदर, आठ निधियों से युक्त हों, और हाथ में धन हो। कुबेर की गदाधारी मूर्ति भी बनायी जाती है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण[62]– विष्णुधर्मोत्तर ने विस्तार से कुबेर का वर्णन किया है। इसके अनुसार देव के मुख पर दाढी–मूंछ है। नेत्र का वर्ण पीला है। मुख से बाहर निकलती हुई दो बड़ी दाढे हैं तथा शरीर पर कवच के साथ–साथ पाश्चात्य ढंग के वस्त्र धारण किये हैं। उनके चार हाथों में से दो में गदा तथा शक्ति तथा बाकी के दूसरे दो हाथों में विभव और वृद्धि को आलिंगन करते दिखाया जाय। वाहनरूप में मानव आकृति बताई गई है।

अग्निपुराण[63]– मेष पर आरूढ और गदा धारण किये हुए कुबेर का मूर्तिविधान दर्शाया है।

देवता मूर्तिप्रकरण[64] – देवतामूर्तिप्रकरण के मतानुसार कुबेर के हाथ के आयुधों का क्रम इस प्रकार होगा गदा, निधिकुम्भ, बीजपूरक, और कमण्डलु। उनका वाहन गज है।

रूपमण्डन [65]– कुबेर के आयुध रूपमण्डन के अनुसार गदा, थैली, बीजपूरक और कमण्डलु हैं। इन्हें गजारूढ़ दिखाना चाहिए। यह सौम्य हैं तथा इनका वाहन नर है।

ईशान–

ईशान यह शिव का ही एक स्वरूप है। इनका ईशान स्वरूप दिक्पाल का कार्य करने के कारण मंदिरों में ईशानकोण में इनको स्थापित किया जाता है। शास्त्रीय मूर्तिविधान

मत्स्यपुराण[66]– मत्स्यपुराण के अनुसार इनका वर्ण श्वेत हों। मस्तक पर बालेन्दु हों। तीन नेत्र हों। दो हाथों में त्रिशूल एवं वरद मुद्रा हों तथा वह वृषभारूढ हों।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण[67]– विष्णुधर्मोत्तर पुराण में शिव के गौरीश्वर स्वरूप को ही ईशान के रूप से पहचाना जाता है। इसमें ईशान का एक मुख दो नेत्र है तथा वह चतुर्भुजी हो। इनका वाम अंग स्त्री–स्वरूप का होता है तथा दाहिना पुरुष रूप का, दाहिनी ओर के भाग में जामण्डल में चन्द्रकला धारण की हो, सर्पकुण्डल धारण किए हों और यज्ञोपवीत धारण किए हों। दक्षिण हस्त में अक्षमाला, त्रिशूल तथा वामहस्त में दर्पण और वरद मुद्रा होगी।

अग्निपुराण[68]– अग्निपुराण के अनुसार ईशान का वर्ण श्वेत होगा। मस्तक पर अर्धचन्द्र धारण किए होंगे। तीन नेत्र होंगे। दो हाथों में त्रिशूल एवं वरद मुद्रा होगी तथा व्याघ्रचर्म धारण करेंगे।

देवता मूर्ति प्रकरण[61] – देवतामूर्तिप्रकरण के अनुसार ईशान को वरद, त्रिशूल, नागेन्द्र और बीजपूरक धारण किए हुए एवं नंदिवाहन पर आरूढ बताया जाता है।

रूपमण्डन[70] –रूपमण्डन के अनुसार धवलद्युति वाले ईशान वृष पर आरूढ होकर घूमते हैं, उनका एक हाथ वरद मुद्रा में तथा शेष हाथों में त्रिशूल नागेन्द्र और बीजपूरक रहता है।

मूर्तिविधान की तुलनात्मक समीक्षा –

अपराजितपृच्छा में वर्णित अष्ट दिक्पालों का मूर्तिविधान मत्स्यपुराण, अग्निपुराण और विष्णुधर्मोत्तर के मूर्तिविधान से भिन्न है। अपराजितपृच्छा में प्रत्येक का निरूपण स्पष्ट रूपसे चतुर्भुज स्वरूप में किया है और देवतामूर्तिप्रकरण एवं रूपमण्डन ने इस से यथावत् स्वीकार किया है। उपलब्ध मूर्तियाँ विशेषत: इस मूर्तिविधान के अनुरूप बनी हुई दृष्टिगोचर होती हैं।

सन्दर्भ सूची –

1. Gupte R. S. Iconography of the Hindus Buddhists and Jains, p. 49
2. अथर्ववेद, अध्याय 3/27/1–6
3. गोभिल गृह्यसूत्र, 14/4/7/37–41। 4. अग्निपुराण, अध्याय

56/17-30
5. मिश्र इन्दुमति, प्रतिमाविज्ञान, पृ. 311 पर उद्धृत
6. करीब 250 श्लोक इन्द्र की प्रसंशा में ऋग्वेद में हैं, जो कि सम्पूर्ण श्लोकों के चौथाई भाग हैं।
7. ऋग्वेद 4 22.2
8. Majumdar R.C., Vedic Age, p. 37
9. Bloomfield, Religion of the Veda, p. 174
10. W. J. Wilkins- Hindu Mythology, pp. 45
11. Murthy, Shri Ram, Amravati Sculptures in the Madras Museum, p. 86
12. महाभारत 5, 12, 6, 5, 13, 9
13. रामायण 1, 48, 16, 149, 1
14. रामायण 7, 30, 33 ।7
15. महाभारत 13, 41, 21
16. मत्स्यपुराण - अध्याय 260 श्लोक 55- 66
17. विष्णुधर्मोत्तरपुराण - खण्ड 3, अध्याय 50; 1-13
18. अग्निपुराण - अध्याय 51-14
19. देवतामूर्ति प्रकरण - अध्याय 14, 4/59
20. रूपमण्डन - अध्याय 2, श्लो. 31.
21. Benerji J. N, 'Development of Hindu Iconography', p. 524.
22. Allan, C.C.AI, p. 81
23. वहीं, Plt. No. XXIX, 2, p. 203.
24. वहीं, Plt. No. xx1x3, 5, p. 204
25. ऋग्वेद, 2, 12/3; 10/7/2; 10/70/11
26. गु. मू. वि., पृ. 417
27. मत्स्यपुराण - अध्याय 261, श्लो. 10-11.
27अ. विष्णुधर्मोत्तर पुराण - अध्याय 56-1-4; 53 2.
28. अग्निपुराण अध्याय 61-14.
29. देवतामूर्तिप्रकरण अध्याय 4, श्लोक 60.
30. रूपमण्डन -अध्याय 2. श्लोक 32.
31. मत्स्यपुराण -अ 261 12-14
32. विष्णुर्मोतरपुराण =-अ 51-1-10
33. अग्निपुराण - अध्याय 52-17
34. देवतामूर्तिप्रकरण - अध्याय 4-61। 35. रूपमण्डन - अध्याय 2-33
36. E.H.I., Vol. II, Part II p. 525 Fig. 1
37. मत्स्यपुराण, अध्याय 261-15
38. विष्णुधर्मोत्तर पुराण - अध्याय 57- 1-3
39. अग्निपुराण - अध्याय 51-14
40. देवतामूर्तिप्रकरण - अध्याय 4-62
41. रूपमण्डन, अध्याय 3, एलो. 34
42. जोशी न. पु., प्राचीन भारतीय मूर्तिविधान, पृ. 177
43. ऋग्वेद - 5-17-8
44. रामायण - 4-4-56 45. महाभारत, 14-4
46. मत्स्यपुराण, अध्याय 261 16-17
47. विष्णुधर्मोत्तरपुराण, अध्याय 52 1-7
48. अग्निपुराण - अध्याय 51, श्लो.15
49. देवतामूर्ति प्रकरण, अध्याय 4-63
50. रूपमण्डन - अध्याय 2-34 48.
51. Banerji, J.N.Development of Hindu Iconography, p.4 plo
52. ऋग्वेद - 8-26-29.22
53. Macdonell A "Vedic Mythology" p. 81-82
54. महाभारत 223. 78; 228-40
55. मत्स्यपुराण - 261-18-19
56. विष्णुधर्मोत्तरपुराण = अध्याय 58-1-4
57. अग्निपुराण - अध्याय 51-15
58. देवतामूर्तिप्रकरण = अध्याय 4-64
59. रूपमण्डन - अध्याय 2-36 रूपमण्डन के संपादक ने इस श्लोक के हिन्दी अनुवाद में ध्वजा और पताका को छोड़ दिया है जो सरतचूक के कारण हो सकता है।
60. बु. प्र. पु 106,
61. मत्स्यपुराण 261-20-22
62. विष्णुधर्मोत्तरपुराण - अध्याय 53 1-6
63. अग्निपुराण - अध्याय 51-15
64. देवतामूर्ति प्रकरण - अध्याय 4-65
65. रूपमण्डन - अध्याय 2-37
66. मत्स्यपुराण - अध्याय 261-23
67. विष्णुधर्मोत्तरपुराण - अध्याय 55/2-4
68. अग्निपुराण - अध्याय 51-16
69. देवतामूर्ति प्रकरण - अध्याय 4-66
70. रूपमण्डन -अध्याय 2, श्लो. 38; अनुवादक ने नागेन्द्र का अर्थ सिंह लिया है जो दूरान्वित है। मूर्तियों में तो स्पष्टत: सर्प ही देखने को मिलता है।

ISSN 2278 - 0327

मीमांसा दर्शन में कर्म-सिद्धान्त: एक विश्लेषण

डॉ. राजेश सिंह
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग
शिवहर्ष किसान पी०जी० कालेज
बस्ती, (उ०प्र०) 272001

डॉ० आशुतोष सिंह
असि० प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र (बी०एड०) विभाग
डी०एस० कालेज, कटिहार, (बिहार)
(सम्बद्ध-पूर्णिया वि०वि०, पूर्णिया, बिहार)

शोधपत्र-सारांश-

भारतीय दर्शन दो भागों में विभक्त है- आस्तिक व नास्तिक दर्शन। आस्तिक दर्शन वेदों को मानता है जबकि नास्तिक दर्शन वेदों पर विश्वास नहीं करता। इस प्रकार मीमांसा दर्शन आस्तिक है जो वेदों में पूर्ण आस्था रखता है। इसके अतिरिक्त कर्म का विस्तृत वर्णन करने के कारण इसे कर्मकाण्ड भी कहा जाता है। इस दर्शन के प्रणेता आचार्य जैमिनी हैं। आगे चलकर इसके दो सम्प्रदाय हो गये- एक के प्रणेता कुमारिल-भट्ट तथा दूसरे सम्प्रदाय के प्रणेता प्रभाकर मिश्र हुए। वैदिक यज्ञादि कर्म का फल स्वर्ग में मिलता है, इसी विश्वास का प्रतिपादन मीमांसा दर्शन का मुख्य विषय है। इस प्रकार मीमांसा दर्शन कर्म तद्रूप फल पर सर्वाधिक विश्वास रखता है। मीमांसा के अनुसार कर्म प्रवर्तक वचन ही धर्म है- *'चोदनालक्षणोऽर्थोधर्म:'*। मीमांसा का 'अपूर्व' सिद्धान्त कर्म सिद्धान्त की पुष्टि करता है। अपूर्व ही वह अदृश्य शक्ति है जिसके कारण हमें कर्मों का फल बाद में मृत्योपरान्त प्राप्त होता है, तदनुरूप हमारी आत्मा को सुख-दुख उठाना पड़ता है।

प्रस्तावना-

सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय में कर्म शब्द की व्यापकता, व्यञ्जकता विचारणीय है। कहीं अपौरूषेय वेद वाक्य का कर्मकांण्ड, धर्म, कहीं पुरुषार्थ चतुष्ट्य के अन्तर्गत मोक्ष का साधन, कहीं कर्त्तव्याकर्त्तव्य की विचारशीलता तथा कहीं क्रिया का स्वरूप आदि रूपों में ग्राह्य है। मीमांसा शास्त्र एक विशाल ज्ञान-सागर है। प्रवर्तक आचार्य जैमिनी के मीमांसा सूत्र में 12 अध्याय, 56 पाद, 2700 सूत्र तथा 1000 से अधिक अधिकरण[1] पाये जाते हैं। यह 12 अध्यायों में विभक्त होने के कारण द्वादशलक्षणी भी कहा जाता है। यह विशाल ज्ञान सागर सांसारिक एवं शास्त्रीय विभिन्न अनुभवों से परिपक्व होने पर न्यायों का भण्डार, युक्तियों एवं तर्कों का संग्रह है। जिसका उद्गम किसी मानवीय मस्तिष्क से सम्भव नहीं है। इस दार्शनिक विचारधारा की प्राचीनता असंन्दिग्ध है। मीमांसाशास्त्र[2] विचारशास्त्र का प्रयोजक शास्त्र है। इसके प्रवर्तक महर्षि जैमिनी ने इसे विचार शास्त्र की संज्ञा दी है।

स्वाध्यायोऽधयेय इत्यस्य विधानस्य प्रयुक्तित:।
विचारशास्त्रं नारभ्यमारभ्यं वेति संशय:।।[3]

याज्ञवल्क्य स्मृति में मीमांसा शास्त्र की गणना विद्या एवं धर्म के मूल रूप में स्वीकृत चतुर्दश विद्याओं के अन्तर्गत की गयी है। व्याकरण के मान्यता प्राप्त आचार्य पाणिनि ने मान् धातु से सन् प्रत्यय करके (मान् मह-देव-पूजा, संगतिकरण, दानेषु) मीमांसा शब्द को निष्पन्न मानते हैं। यहाँ मान् धातु पूजा एवं विचार दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त हैं। महर्षि कात्यायन ने मान् धातु में 'मानेंर्जिज्ञासायाम्'-1-3-6 सूत्र से सन् प्रत्यय करके जिज्ञासा अर्थ माना है। अत: व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ से जिज्ञासा ही मीमांसा शब्द का वाचक होगा। इस दर्शन के सूत्रकार महर्षि जैमिनी ने प्रतिज्ञा सूत्र '*अथातो धर्म जिज्ञासा*' में जिज्ञासा पद का प्रयोग किया है। अनुसंधान, परीक्षण, विचार, जिज्ञासा, तर्क, विवेचन आदि अनेक अभिप्राय इस एक मीमांसा शब्द में निर्विरोधपूर्वक एक साथ सन्निहित है। इस प्रकार मीमांसाशास्त्र को विचारशास्त्र मानना अधिक युक्तिसंगत होगा।

मीमांसाशास्त्र का मुख्य प्रतिपाद्य विषय कर्मकाण्ड के स्वरूप का विवेचन करना है। कर्मकाण्ड सम्बंधी विशद प्रतिपादन ब्राह्मण वाङ्मय में मिलता है। अनुमानत: वैदिक कर्म-काण्ड के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ प्रक्रिया सम्बंधी मतभेद प्रारम्भ होने पर उनसे सम्बन्धित समाधानों के संग्रह करने की आवश्यकता का अनुभव किया गया होगा। इस प्रकार मीमांसा-शास्त्र का आदि स्वरूप कर्मकाण्ड के अनुष्ठानों तथा विधि-निषेध और मन्त्रों के विनियोगों से सम्बन्धित विषयों को प्रामाणिक रूप से उपस्थित करने वाला रहा होगा। इस शास्त्र को पूर्वमीमांसा भी कहा जाता है, क्योंकि ज्ञान का विचार करने के पूर्व कर्मकाण्ड तथा धर्म का विचार करना आवश्यक है। इसके अनन्तर ही साधक वेदान्त या उत्तरमीमांसा में प्रतिपादित आत्मा के स्वरूप में सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर सकेगा।

मीमांसक वेद के अतिनिकट है। वैदिक कर्मकाण्ड के जो मूलभूत सिद्धान्त स्वीकृत किये गये हैं उनमें कई बातें अन्तर्निहित है। संक्षेपत: मीमांसा दर्शन में यह अभिव्यक्त होता है कि-

1- आत्मा मृत्यु के उपरान्त भी विद्यमान रहता है और स्वर्ग में कर्मों का फल भोग करता है।
2- कोई ऐसी शक्ति है जो कर्मों के फल को सुरक्षित रखती है। मीमांसक इसे अपूर्व की संज्ञा देते हैं। अपूर्व ही वह अदृष्ट शक्ति है जिसके कारण हमें कर्मों का फल बाद में मृत्योपरान्त प्राप्त

होता है, तथा हमारी आत्मा को तदनुरूप सुख-दु:ख उठाना पड़ता है।

3- वेद, जो कि वैदिक कर्मकाण्ड के मूलाधार हैं अपौरूषेय एवं नित्य हैं।

4- प्रत्यक्ष ज्ञान की यथार्थता के आधार पर दृश्यमान जगत् की सत्ता वास्तविक है। साथ ही साथ हमारा जीवन तथा कर्म स्वप्न मात्र नही है।

मीमांसक जगत्कर्त्ता या ईश्वर के विषय में तटस्थ है। वेद की नित्यता और अपौरूषेयता को स्थापित करने की निष्ठा में इन्हें ईश्वर की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है। ईश्वर को प्रधानता देने से वेद का महत्व गौण अर्थात् कम या बराबर हो जायेगा। सम्भवत: इसीलिए पूर्वमीमांसा में ईश्वरवाद का मण्डन नहीं पाया जाता है। उनका यह प्रारम्भिक विचार था कि ईश्वर के बिना केवल यथाविहित कर्म के अनुष्ठान से ही लोग इहलौकिक तथा पारलौकिक फल प्राप्त कर सकते हैं। उत्तरवर्ती आचार्य शंकर ने मीमांसा पद्धति में थोड़ा परिवर्तन करके श्रौत और स्मार्त यागादि कर्म में ईश्वर सम्बन्ध स्थापित किया। शबर स्वामी, कुमारिल भट्ट प्रभृति आचार्यों ने धर्म के तत्व के अवधारण के लिए वेदार्थों का निरूपण किया। मीमांसक की दृष्टि में वेद नित्य ज्ञान के भण्डार के साथ-साथ शाश्वत् (नित्य), विधि वाक्यों या नियमों के सागर हैं। इनके अनुसार आचरण (यज्ञादिक्रिया) करने से हम धर्म प्राप्त कर सकते हैं- *'स्वर्गकामों यजेत।' 'यागादिरेव धर्म:'* इस कर्त्तव्यावबोधन के रूप में धर्म की परम प्रामाणिकता देखी जाती है। क्या करणीय है?, क्या अकरणीय है?, इस विषय में धर्म ही आदर्श रूप में प्रस्तुत किया जाता है। मनुस्मृति में धर्म का लक्षण किया गया है-

श्रुति: स्मृति: सदाचार: स्वस्य च प्रियमात्मन:।
एतच्चतुर्विधं प्राहु: साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।[5]

धर्म, अभ्युद्य (उन्नति), नि:श्रेयस् (कल्याण) का साधन है- *''अभ्युदयं-नि:श्रेयस साधनं धर्म:।''* मीमांसकों की दृष्टि में जो प्रयोजनवान हो, वेदविहित या प्रतिपाद्य हो और अनर्थ से सम्बन्ध नही रखता, वहीं धर्म है।[6] यह वेदविहित कर्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है- *'कर्मेति मीमांसका:।'*

कर्त्तव्यता और अकर्त्तव्यता का मानदण्ड वेदवाक्य ही है। वैदिक व्यवस्था के अनुसार जीवन शैली ही उत्तम जीवन है। *'अथातो धर्मजिज्ञासाधिकरणम्'* से भी यह ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण मीमांसा शास्त्र का प्रयोजन धर्म का प्रतिपादन करना है। इस प्रकार सर्वतोदृष्ट कर्म का प्रतिपादन ही मीमांसा का प्रयोजन है क्योंकि कर्म ही धर्म है और धर्म ही कर्म है। मीमांसा-शास्त्र का प्रमुख विषय कर्म है, जिसका तात्पर्य वैदिक यज्ञ सम्बन्धी कर्मकाण्ड का अनुष्ठान है। इस शास्त्र के अनुसार वेद प्रतिपाद्य कर्म तीन प्रकार के हैं-

(1) **काम्य कर्म**- जो कर्म, स्वर्गादि अभिलषित सुख को देने वाले पदार्थों के साधक हों, जैसे- ज्योतिष्टोम यागादि। *''ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामों यजेत', ''अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकाम:'', ''उद्भिदा यजेत पशुकाम:''* आदि श्रुति वाक्यों में कामना विशेष की सिद्धि के लिए यागादि कर्म का विधान है। अत: इन्हें काम्य कर्म कहा गया है।

(2) **निषिद्ध कर्म**- जो कर्म नरकादि अनिष्ट के साधक हो, उन्हें निषिद्ध कर्म कहा गया है। यथा- *न कलञ्जं भक्षयेत्, ब्राह्मणों न हन्तव्य:* आदि।

(3) **नित्य-नैमित्तिक कर्म**- कुछ ऐसे आवश्यक कर्म है जिनका नियमित पालन करना इसलिए अपरिहार्य है कि ऐसी वेद की आज्ञा है।

उदाहरणार्थ- (1) ऐसे कर्म जिसके अनुष्ठान से फल विशेष उत्पन्न नहीं होता अपितु अनुष्ठान से प्रत्यवाय[7] होता है। यथा- *'अहरह: सन्ध्यामुपासीत'*। इस विधि- वाक्य से सन्ध्योपासना विहित है। इसके अनुष्ठान से फल विशेष नहीं होगा, परन्तु न करने से *'व्रात्यपतित'* होने का दोष लगेगा। (2)- प्रसंग विशेष के उपस्थित होने पर जो आवश्यक कर्म परम्परा अनुपालन हेतु किये जाते हैं उन्हें नैमित्तिक कर्म माना गया है, यथा- श्राद्धादि।

विचारणीय विषय यह है कि *'स्वर्गकामों यजेत'* आदि वाक्यों के द्वारा स्वर्ग रूप फलप्राप्ति हेतु यज्ञ का अनुष्ठान विहित है। परन्तु यह निर्विवाद तथ्य है कि फल की निष्पत्ति सद्य: (शीघ्र) न होकर बाद में होती है। अत: प्रश्न यह उठता है कि यज्ञ (कारण) फल या उद्देश्य (कार्य) के मध्य साक्षात् सम्बन्ध नहीं रहता है, अर्थात् फलकाल में कर्म की सत्ता के अभाव में फलोत्पादक किस प्रकार होता है? अत: मीमांसकों ने कालान्तर में फल प्राप्ति हेतु शक्ति और अपूर्व का माध्यम स्वीकार किया है। डॉ० राधाकृष्णन के मतानुसार- याज्ञिक कर्म एवं उसके फल के मध्य में 'अपूर्व' एक पारलौकिक कड़ी है।[8] कार्यकरण सम्बंध के विषय में मीमांसा शक्तिवाद का सिद्धान्त मानती है। जैसे बीज में एक अदृश्य शक्ति होती है जिससे वह अंकुर उत्पन्न कर सकता है। परन्तु जब यह शक्ति बाधित या नष्ट हो जाती है तो अंकुर रूपी कार्य उत्पन्न नहीं कर सकती है। इस अदृश्य शक्ति के सिद्धान्त द्वारा मीमांसा एक बड़ी समस्या का समाधान करती है। जैसे जब कर्म का अस्तित्व नहीं रहेगा तो आज का किया हुआ कर्म (यज्ञादि) इस जीवन के बाद परलोक में कैसे फलोत्पादक होगा? मीमांसको के अनुसार इस लोक में किया हुआ कर्म एक अदृष्ट शक्ति का प्रादुर्भाव करता है जिसे अपूर्व कहते हैं।[9] यही अदृष्ट शक्ति जो कर्म से उत्पन्न होता है और यजमान की आत्मा में रहता है। कर्म-फल का व्यापक नियम यह है कि वैदिक या लौकिक सभी कर्मों के फल संचित होते हैं। अपूर्व का सिद्धान्त उसी का एक अंश है। आशय यह है कि प्रत्येक कर्म या धर्म (यज्ञादि) में अपूर्व (पुण्यापुण्य) उत्पन्न करने की शक्ति रहती है।[10]

कुमारिल भट्ट के मतानुसार 'अपूर्व' प्रधानकर्म अथवा कर्त्ता में

एक योग्यता है जो कर्म करने से पूर्व नहीं थी और जिसका अस्तित्व शास्त्र के आधार पर सिद्ध होता है। कर्म के द्वारा उत्पन्न निश्चित शक्ति जो परिणाम तक पहुँचाती है, अपूर्व है। अपूर्व का अस्तित्व अर्थापत्ति से सिद्ध होता है। कर्त्ता द्वारा किया गया कर्म (यज्ञ) कर्त्ता में साक्षात् शक्ति उत्पन्न करता है जो इसके अन्दर अन्यान्य शक्तियों की भाँति जीवन-पर्यन्त विद्यमान रहती है और जीवन के अन्त में प्रतिज्ञात पुरस्कार प्रदान करती है।[11] प्रभाकर मतानुयायी इस मत को स्वीकार नहीं करते हैं। उनके अनुसार क्षमता की कल्पना कर्म में करनी चाहिए न कि कर्त्ता में। इस प्रकार मीमांसकों के लिए कर्म का मूल स्रोत एक-मात्र अपौरूषेय वेद वाक्य है, जो निष्काम कर्म करने के लिए आदेशित करता है। निष्काम धर्माचरण और आत्मज्ञान के प्रभाव से पूर्वकर्मों के संचित संस्कार भी क्रमशः लुप्त हो जाते हैं। परिणामस्वरूप पुनर्जन्म नहीं होता तथा भवबन्धन, कर्म बन्धन आदि से छुटकारा मिल जाता है। इसी को मुक्ति या मोक्ष कहते हैं। इस परमपुरुषार्थ- मोक्षावस्था प्रयोजन की प्राप्ति हेतु वेदों में लोक प्रवृत्ति अवश्यम्भावी है[12] *प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवतते।*

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि मीमांसा दर्शन गीता के निष्काम कर्मयोग का समर्थन करता है। इस प्रकार मीमांसा दर्शन ने निःसन्देह यथार्थ कर्म में प्रयोजन एवं आदर्श ज्ञान का समन्वय करके अन्य दर्शनों के सापेक्ष्य भारतीय दर्शन में एक अपूर्व और महनीय प्रतिष्ठा प्राप्त की है। अतः हम सभी को धर्म, कर्म की व्यापकता, प्रामाणिकता तथा आस्था-पुंज के रूप में मीमांसा शास्त्र का अनुशीलन करना चाहिए। परिणामतः *'योगः कर्मसु कौशलम्'* की सूक्ति सार्थक होकर कर्मशीलता, कर्मठता की महत्ता सर्वदा, सर्वथा प्रासंगिक रहेगी।

संदर्भ-संकेत

1- विचारणीय विषयों के निष्कर्ष या न्याय को अधिकरण कहा जाता है। अधिकरण में छः (6) अवयव होते हैं। 1- विषय 2- विशय (सन्देह) 3- प्रयोजन 4- संगति 5- पूर्वपक्ष 6- सिद्धान्त (अन्तिम निर्णय)।
विषयो विशयश्चैव पूर्वपक्षस्तथोत्तरम्
निर्णयश्चेति पंचांग शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतम्।।

2- प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा
शासनाद्दंसनाच्चैव शास्त्रमित्यभिधीयते-श्लोक वार्तिक शब्द परिच्छेद- श्लोक 4

3- जैमिनीय न्याय - 1.1

4- जैमिनीय सूत्र - 1.1.1

5- मनुस्मृति - 2.12

6- वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थोधर्मः इति। लौगाक्षिभास्कर कृत अर्थ संग्रह- धर्मलक्षणप्रकरण।

7- अकरणे प्रायाश्चितस्वरूप प्रत्यवायः

8- Apurva is the metaphysical link between work and its result:- S. Radhakrishnan, Indian Philosophy Vo.-II Page- 421

9- शास्त्रदीपिका- पृष्ठ 80, (प्रकरण पंचिका पृष्ठ- 184-195) (शावर भाष्य-2-1-5)

10- यागादेव फलं तद्धि शक्ति द्वारेण सिध्यति।
सूक्ष्म शक्त्यात्मकं वा तत् फलमेवोपजायते।। - तन्त्रवार्तिक- पृष्ठ- 365

11- कर्मभ्यः प्रागयोग्यस्य कर्मणः पुरुषस्य वा।
योग्यता शास्त्रगम्या या परा साऽपूर्वमिष्यते।- तन्त्र वार्तिका, पृष्ठ- 364

भक्ति कालीन साहित्य में राम

पार्वती
शोधार्थी

शोध सार – भक्ति परम्परा का विकास प्राचीनकाल से ही आरम्भ हो गया था। राम भक्त कवियों ने अपनी मधुर वाणी के द्वारा जनसाधारण के हृदय में राम भक्ति का संचार किया। वेदों में कुछ स्थलों पर 'राम' शब्द का उल्लेख किया गया है, परन्तु राम के जीवन से संबंधित प्रथम महाकाव्य 'वाल्मीकि रामायण' को माना जाता है। 'वाल्मीकि रामायण' ने केवल देश में ही नहीं अपितु विदेशों में भी ख्याति प्राप्त की। फलस्वरूप देश के साथ–साथ विदेशों में भी रामकाव्य रचा जाने लगा। वाल्मीकि रामायण में राम को अवतार नहीं बल्कि मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में स्वीकार किया गया है। जबकि उपनिषद् मे राम को अवतार के रूप में स्वीकार किया गया है। पुराणों में भी रामकाव्य के प्रंसग दिखाई देते हैं। इन धार्मिक ग्रन्थों के अतिरिक्त संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में भी रामकाव्य की सुदीर्ध परंपरा परिलक्षित होती है। वास्तव में राम भक्ति काव्य का आधार संस्कृत साहित्य में रचित राम काव्य और नाटक रहे हैं, परन्तु हिन्दी में रामभक्ति काव्य का सूत्रपात भक्तिकाल में ही हुआ था। यद्यपि वीरगाथा काल में भी रामकाव्य का कतिपय वर्णन मिलता है तथापि इसका विस्तृत और वास्तविक वर्णन रामानुजाचार्य और रामानन्द से माना जाता है। इस परम्परा के सर्वश्रेष्ठ कवि गोस्वामी तुलसीदास जी हुए हैं जिन्होंने वाल्मीकि के पश्चात् भक्तिकालीन सर्वश्रेष्ठ प्रबन्धकाव्य 'रामचरितमानस' की रचना करके हिन्दी साहित्य में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया और इनके परवर्ती कवियों ने हिन्दी साहित्य में रामभक्ति काव्य परम्परा को आगे बढ़ाया। रामकाव्य धारा में समन्वय की भावना के दर्शन होते हैं। इस काव्यधारा के कवियों ने अपने समय में प्रचलित विभिन्न मतों एवं विचारों का समन्वय स्थापित करके लोक कल्याण के मार्ग को आगे बढ़ाया। भक्तिकालीन कवियों ने रामभक्ति काव्यधारा के द्वारा मर्यादावादिता, आदर्शवादिता, समन्वय की भावना और जनसाधारण में भक्ति भावना का संचार किया तथा इन कवियों ने लोकमंगल की भावना मानवतावाद, परमार्थ और जनकल्याण के द्वारा मानव समाज को उपकृत किया।

शोधालेख – हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल का महत्वूपर्ण स्थान है। आदिकाल के पश्चात् आए हुए इस काल को 'पूर्व मध्यकाल' भी कहा जाता है। सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य के भक्ति से संबंधित श्रेष्ठ कवि और उत्तम रचनाएँ इसी काल में पाई जाती है। भक्ति की प्रधानता के कारण ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस काल को 'भक्तिकाल' नाम दिया है। दक्षिणी भारत में आलवार बन्धु नाम से कई कवि विख्यात थे जो नीची जाति से संबंधित थे और ज्यादा पढ़े–लिखे भी नहीं थे परन्तु वे अनुभवी थे। इनकी संख्या बारह थी और इन्होंने कहा कि भगवान की भक्ति करने का सबको समान अधिकार प्राप्त है। ये तमिल प्रदेश से संबंधित थे। इनके लगभग चार हज़ार पदों का संकलन 'दिव्य प्रबंधम' नाम से संकलित किया गया था और यह ग्रन्थ भक्ति व ज्ञान का अनमोल भण्डार है। आलवारों के पश्चात् दक्षिण में आचार्यों की एक परंपरा चली जिसमें रामानुजाचार्य प्रमुख थे। इन्हीं रामानुजाचार्य की परंपरा में रामानन्द हुए जिन्होंने रामभक्ति काव्य की परंपरा को आगे बढ़ाया।

रामकाव्य धारा के कवियों में समन्वय का विशद रूप देखा जा सकता है, विशेष रूप से तुलसीदास में। इन्होंने दो विरोधी प्रतीत होने वाली बातों या विचारों का परस्पर समन्वय कर दिया है जो कि 'रामचरितमानस' में स्पष्टत: देखा जा सकता है। इन्होंने द्वैत और अद्वैत के बीच सगुण और निर्गुण के बीच समन्वय किया जिसे निम्न उदाहरण द्वारा देखा जा सकता है –

(1) *''सगुनहिं अगुनहिं नहिं कुछ भेदा।*
गवहिं मुनि पुराण बुध वेदा।।''

(2) *''अगुन सगुन दुई ब्रह्म स्वरूपा।*
अकथ अगाध अनादि अनुपा।।''

इसी तरह इन रामभक्त कवियों ने सत्यता और असत्यता के बीच भी सुन्दर समन्वय स्थाापित किया। भक्तिकालीन साहित्य में रामभक्ति शाखा के अनेक कवि हुए है जिनमें से प्रमुख है– शठकोप, रामानन्द, गोस्वामी तुलसीदास, अग्रदास, नाभादास, ईश्वरदास, हृदयराम इत्यादि। इन कवियों ने अपने काव्य में राम का वर्णन बड़े ही भक्ति–भावमय रूप में किया है।

1. शठकोप – आलवार भक्तों में शठकोप को राम भक्ति का प्रथम आचार्य माना जाता है व इन्हें राम की चरणपादुका का अवतार माना जाता है। इनका रामभक्ति से संबंधित ग्रन्थ 'सहस्त्रगीत' है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनके बारे में कहा है, ''उन्होंने अपनी 'सहस्त्रगीत' में कहा है– ''दशरथस्य सुतं तं बिना अन्यशरणवान्नास्मि।''[1]

2. रामानन्द – रामानन्दी संप्रदाय (वैरागी संप्रदाय) के प्रवर्तक श्री रामानन्द वैष्णव संप्रदाय के प्रधान आचार्य राघवानन्द जी के शिष्य थे। ये रामानुजाचार्य के मतावलम्बी थे। ''तत्वत: रामानुजाचार्य के मतावंवबी होने पर भी अपनी उपासना पद्धति का उन्होंने विशेष रूप रखा। उन्होंने उपासना के लिए बैकुण्ठ निवासी विष्णु का स्वरूप न लेकर लोक में

लीला विस्तार करने वाले उनके अवतार राम का आश्रय लिया।''[2] इनका मूल मंत्र 'राम नाम' था परन्तु इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि रामानन्द से पहले रामभक्त होते ही न थे। रामानन्द से पहले भी राम भक्ति परंपरा चली आ रही थी परन्तु इसका समयक प्रवर्तन रामानन्द से ही माना जाता है। इन्होंने विष्णु के अन्य रूपों में से 'रामरूप' को ही लोगों के लिए कल्याणकारी मानकर इन्हें भक्ति का आधार बनाया और एक सबल संप्रदाय का प्रवर्तन करके जनता को रामभक्ति की ओर अग्रसर किया। इनके विषय में यह प्रचलित कहावत है- ''भक्ति द्रविड़ उपजी, लाए रामानन्द।'' रामानन्द ने रामभक्ति का द्वार सभी जातियों के लिए खोल दिया था और एक उत्साही विरक्त दल का प्रवर्तन किया जो 'वैरागी दल' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इनके दो प्रसिद्ध ग्रन्थ थे (1) वैष्णवमताब्ज भास्कर और (2) श्री रामार्चन पद्धति। इसके अतिरिक्त इनके अन्य ग्रन्थ हैं- रामरक्षा स्त्रोत, योगचिंतामणि, ब्रह्मसूत्रों का आनन्द भाष्य और भगवद्गीता भाष्य।

3. गोस्वामी तुलसीदास - स्वामी रामानन्द जी के पश्चात् इनके अनेक शिष्यों ने देश के अनेक भागों में रामभक्ति परम्परा को आगे बढ़ाया और ये भक्त फुटकल पदों में रामभक्ति का परमोज्वल प्रकाश गोस्वामी तुलसीदास जी की वाणी द्वारा ही स्फुरित हुआ। तुलसीदास जी का जन्म 1532 ई. में हुआ था। इनके जन्म स्थान के विषय में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। किसी विद्वान् ने रामपुर तो किसी ने राजापुर, किसी ने कौशल देश तो किसी ने सोरों (एटा) को इनका जन्म-स्थान माना है। परन्तु अधिकतर विद्वानों ने इनका जन्म बाँदा जिले के राजापुर ग्राम को ही माना है। बचपन से ही ये माता-पिता के सुख से वंचित हो गए थे। डॉ० माता प्रसाद गुप्त के अनुसार, ''तुलसीदास के माता-पिता का देहान्त उनके जन्म के कुछ ही समय बाद हो गया।''[3] बाबा नरहरिदास ने इन्हें अपने पास रख लिया और कुछ शिक्षा-दीक्षा दी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है, ''इन्हीं गुरु से गोस्वामी जी रामकथा सुना करते थे।''[4] पंद्रह वर्ष तक विद्याध्ययन करके गोस्वामी जी अपने गाँव राजापुर लौटे। तुलसीदास जी का विवाह रत्नावली से हुआ। तुलसीदास जी अपनी पत्नी पर इतना अनुरक्त थे कि एक बार रत्नावली अपने मायके गई तो तुलसीदास उनके पीछे-पीछे बढ़ी नदी को पार करके उनसे जाकर मिले। इस पर रत्नावली ने एक दोहा कहा-

''लाज न लागत आपको, दौरे आयहु साथ।
धिक-धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौ मैं नाथ।।
अस्थि चर्ममय देह मम, तामे जैसी प्रीत।
तैसो जौ श्रीराम महँ, होति न तौ भयभीत।।

''यह बात तुलसीदास जी को ऐसी लगी कि वे तुरंत काशी आकर विरक्त हो गए।''[5] इन्होंने रामभक्ति को ही अपने जीवन का मूल आधार बना लिया। तुलसीदास के आराध्य मर्यादा पुरुषोत्तम राम हैं। इनके द्वारा रचित 'रामचरितमानस' तुलसीदास की अमर-कीर्ति'' का आधार स्तम्भ है। इस महाकाव्य में रामकथा सात काण्डों में विभक्त है। तुलसीदास की भक्ति भावना में राम के शील, शक्ति और सौन्दर्य तीनों रूपों का समावेश मिलता है। कबीरदास ने भी राम की ही उपासना की थी। परन्तु कबीर के राम तुलसी के राम से भिन्न हैं। कबीर के राम निर्गुण निराकार ब्रह्म हैं जिसे न कोई देख सकता है और न ही उसका कोई रूप, रंग या आकार है, जबकि तुलसीदास के राम सगुन साकार ईश्वर के समान हैं जिन्होंने अयोध्या के राजा दशरथ के घर अवतार धारण किया है। तुलसीदास ने अपने महाकाव्य 'रामचरितमानस' में राम के आदर्श मानव, आदर्श राजा, आदर्श पति, आदर्श पुत्र, आदर्श पिता इत्यादि रूपों को चित्रित किया है। तुलसीदास के राम विष्णु के अवतार और परमब्रह्म हैं। तुलसीदास ने राम के स्वरूप को इस तरह से वर्णित किया है कि वह जीवन और साहित्य का अनिवार्य अंग बन गए हैं। तुलसीदास 'मानस' में कहते है-

''एक अनीह अरूप अनामा।
जब सच्चिदानंद परधामां।।
व्यापक बिस्वरूप भगवाना।
ते हिं धरि देह चरित कृत नाना।।''[6]

'रामचरितमानस' के राम, सीता और लक्ष्मण हास्य-विनोद नहीं करते। 'रामचरितमानस' के पात्रों के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है, ''रामचरितमानस' के भीतर राम, भरत, लक्ष्मण, दशरथ और रावण, ये कई पात्र ऐसे हैं जिनके स्वभाव और मानसिक प्रवृति की विशेषता गोस्वामी जी ने कई अवसरों पर प्रदर्शित भावों और आचरणों की एकरूपता दिखाकर प्रत्यक्ष की है।''[7] तुलसी के राम ने बाल्यावस्था में जितनी प्रसन्नता से समय व्यतीत किया वनवास के दौरान उनको उतने ही कष्टों का सामना करना पड़ा परन्तु फिर भी वे कभी धैर्य को नहीं खोते। उनका स्वभाव धीर, गंभीर और संयमी है और उनमें खिन्नता व उदासीनता लेशमात्र भी नहीं है। इस प्रकार तुलसीदास ने अपने आराध्य श्रीराम का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली, महान और विशद बताया है कि कोई साधारण लेखक भी उनके साथ जुड़कर किसी महाकाव्य या मुक्तक काव्य की रचना कर सकता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसीदास की बारह प्रामाणिक रचनाएँ मानी हैं। (1) वैराग्य संदीपनी (2) दोहावली (3) रामाज्ञाप्रश्न (4) रामलला नहछू (5) जानकी मंगल (6) गीतावली (7) बरवै रामायण (8) रामचरितमानस (9) विनय पत्रिका (10) कवितावली (11) पार्वती मंगल (12) कृष्ण गीतावली।

4. नाभादास - भक्ति काल के रामभक्त कवियों में नाभादास का स्थान विशिष्ट है। ये अग्रदास के शिष्य थे। ये बड़े भक्त और साधु स्वभाव के थे। ब्रजभाषा पर इनका अच्छा अधिकार था और पद रचना में अच्छी निपुणता थी। इनकी दो प्रसिद्ध रचनाएँ हैं- (1) भक्तमाल (2) अष्टयाम। 'भक्तमाल' में 200 कवियों का जीवन-वृत और उनकी भक्ति-विषयक बातों का वर्णन किया गया है। 'अष्टयाम' में राम और सीता के मिलन के आठों पहरों का वर्णन किया गया है। यह श्रृंगार

भक्ति और रसिक भावना को लेकर लिखा गया है। यह गद्य और पद्य शैली में लिखा गया है। नाभादास सगुणोपासक रामभक्त कवि थे। इनकी भक्ति उस समय की प्रचलित रामभक्ति से कुछ भिन्न थी। उसमें मर्यादा के स्थान पर माधुर्य का आधिक्य था।

5. अग्रदास – रामभक्ति शाखा के कवियों में अग्रदास का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। ये स्वयं को जानकी की सखी मानते थे और इन्होंने रामभक्ति परंपरा मे सर्वप्रथम माधुर्य भावना या रसिक भावना का समावेश किया। ये कृष्णदास पयहारी के शिष्य थे और इन्होंने रसिक संप्रदाय की स्थापना की। इनकी प्रमुख रचनाओं में (1) हितोपदेश (2) उपासना बावनी (3) ध्यान मंजरी (4) रामध्यान मंजरी (5) रामाष्याम (अष्टयाम) (6) पदावली और (7) कुण्डलियां प्रमुख हैं। इनमें से रामाष्टयाम (अष्टयाम) में राम के ऐश्वर्य रूप की भव्य झांकी मिलती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है– ''इनका एक पद भी देखिए–

पहरे राम तुम्हारे सोवत। मैं मति मंद अंध नहिं जोवत।
अपमारग मारग महि जान्यो। इंद्री पोषि पुरुषारथ मान्यो
औरनि के बल अनत प्रकार। अगरदास के सम आधार।''[8]

6. प्राणचन्द चौहान – प्राणचन्द चौहान भक्तिकालीन रामकाव्य परंपरा के प्रसिद्ध कवि माने जाते हैं। इन्होंने राम के सगुण साकार रूप की आराधना की थी। संस्कृत साहित्य में रामचरित संबंधित कई नाटक मिलते हैं। जिनमें से कुछ तो नाटक के साहित्यिक निमयों का अनुसरण करते हुए प्रतीत होते हैं परन्तु कुछ केवल संवाद प्रधान होने के कारण ही नाटक की श्रेणी में आ गए हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, ''इसी पिछली पद्धति पर संवत् 1667 में इन्होंने रामायण महानाटक लिखा। रचना का ढंग नीचे उद्धृत अंश से ज्ञात हो सकता है –

कार्तिक मास पच्छ उजियारा। तीरथ पुन्य सोम कर वारा।।
ता दिन कथा कीन्ह अनुमाना। शाह सलेम दिलीपति थाना।।''[9]

7. हृदयराम – हृदयराम पंजाब के रहने वाले थे और कृष्ण दास के पुत्र थे। ये अनन्य रामभक्त कवि थे। इनके अधिकतर कविता और सवैये में बड़े अच्छे संवाद है। तुलसीदास के समय से ही इनकी ख्याति और इनकी रामभक्ति की विचारधारा देश के विभिन्न भागों में फैल गई थी। इन्होंने 'हनुमन्ननाटक' लिखा जो कि लगभग डेढ़ हज़ार छंदों को अपने भीतर समाए हुए है। इसमें केवल हनुमान का चरित ही नहीं अपितु राम के चरित का भी बखूबी वर्णन किया है जो कि जानकी स्वयंवर से आरम्भ होकर राम के राज्याभिषेक तक प्रस्तुत है।

8. ईश्वरदास – राम भक्ति काव्यधारा में ईश्वरदास का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। इनकी सुप्रसिद्ध कृति 'सत्यवती कथा' मानी जाती है। रामकथा से संबंधित इनकी दो रचनाएँ 'भरत–मिलाप' और 'अंगद पैज' हैं। 'भरत मिलाप' में राम वनगमन के पश्चात् राम और भरत की भेंट को कोमल व करूण प्रसंग में पद्यबद्ध किया गया है। इनकी एक अन्य रचना 'अंगद पैज' में रावण की सभा में अंगद द्वारा अपने पैर जमा कर डटने का वीरतापूर्वक वर्णन किया गया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भक्तिकालीन साहित्य में रामभक्त कवियों ने अपनी लेखनी के द्वारा राम भक्ति परंपरा की जो अविरल धारा बहाई है वह हिन्दी साहित्य के लिए अविस्मरणीय रहेगी। राम भक्ति काव्यधारा के कवियों ने सगुण भक्ति की मूल संवेदना को लोक–भावभूमि पर दृढ़ता से प्रतिष्ठित किया है। दक्षिण भारत से आरम्भ होकर यह भक्तिधारा उतर भारत में फैली और जनसाधारण में भक्ति चेतना का संचार किया। जहाँ शठकोप को रामभक्ति काव्यधारा का प्रथम कवि माना जाता है, वहीं रामानन्द को इस भक्तिधारा का मेरूदण्ड माना जाता है। रामानन्द का रूढ़िवाद–पुरोहितवाद विरोधी चिन्तन ही कबीर और तुलसीदास में रचनात्मक निष्पत्ति पाता हैं। रामानन्द ने संस्कृतगर्भित व शास्त्रसम्मत भाषा का प्रयोग न करके तत्कालीन समय में प्रचलित भाषा में ही काव्य सृजन किया। इसी का अनुसरण ही परवर्ती रामभक्त कवियों ने किया। भक्तिकालीन साहित्यकारों ने राम कथा को ऐतिहासिक, पौराणिक या काल्पनिक रूप में प्रस्तुत किया है इस प्रश्न का सप्रमाण उत्तर देना कठिन जान पड़ता है। रामकाव्य परंपरा का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि राम भारतीय साहित्य के भाव नायक हैं। इन भाव नायक की कथा का आधार तो वाल्मीकि रामायण है परन्तु हर युग का कवि/लेखक ने इसमें कुछ–न–कुछ जोड़ता ही आया है। देशकाल के परिवर्तन चक्रों में पड़े राम को लोकनायक बनने में हज़ारों वर्ष लग गए। रामकाव्य परंपरा में आदिकवि वाल्मीकि की रामायण से पहले रामकथा आख्यानों के रूप में ही मिलती थी। लिपिबद्ध रूप में सर्वप्रथम वाल्मीकि ने रामायण की रचना की। तत्पश्चात् हिन्दी साहित्य के कवियों ने राम का वर्णन करना आरम्भ किया और राम के मर्यादापुरुषोतम रूप का ही वर्णन सहजता से किया है। परन्तु धीरे–धीरे समय के साथ मर्यादा का स्थान श्रृंगार और सौन्दर्य वर्णन ने ले लिया और विधि काव्य शैलियों के माध्यम से जनता में रामभक्ति काव्य धारा को प्रवाहित करने में इस युग के कवियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है और राम के चरित वर्णन द्वारा समाज का उद्धार भी हुआ है।

संदर्भ –

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पृ०113.
2. वही, पृ० 112
3. डॉ० माता प्रसाद गुप्त, तुलसीदास, पृ० 172.
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पृ० 119.
5. वही, पृ० 120
6. तुलसीदास, रामचरितमानस, पृ० 13
7. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ० 93
8. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पृ० 133.
9. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पृ० 135.

योगवाशिष्ठ में अज्ञान एवं उसकी भूमिकाएं

अनुराधा शर्मा
शोध छात्रा, प्राकृत एवं संस्कृत विभाग,
जैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय)
लाडनूं-341306 (नागौर-राजस्थान)

सारांशिका:

योगवासिष्ठ स्वयं में एक रहस्यमयी कृति है। दूसरे शब्दों में, योगवासिष्ठ अपने आप में एक ऐसे द्वार को खोलने में समर्थ है जो लौकिक रूप से अदृश्य प्रतीत होता है, किन्तु है एक ऐसा द्वार जो चेतना को अन्तरात्मा में प्रवेश दिला सकने में समर्थ है। यह द्वार वे देख सकेगे जो समाधि में उतरकर अनन्त की चेतना में प्रवेश करना जानते हैं। हर जीव ब्रह्म का एक अतिजीवंत प्रतिनिधि उसी क्षण बन जाता है, जब हम उसमें परम दिव्यता को देखने में समर्थ हो जाते हैं और उसके सहारे स्वयं के अंतस का रूपान्तरण करने के लिए सहमत हो जाते हैं। योगवासिष्ठ का उद्देश्य ही है अंतस् का सात्त्विक रूपान्तरण। योगवाशिष्ठ अज्ञान से निवृत्ति का मार्ग बतलाता है। सप्त भूमिका पर आरूढ़ साधक सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमात्मतत्त्व को ग्रहण करने की योग्यता अनायास ही प्राप्त कर लेता है। इन सप्तभूमिकाओं पर आरूढ़ होने से पूर्व यह शर्त होती है कि साधक के मन में कामना, आसक्ति और ममता का अभाव हो, सत्पुरुषों का संग हो और सत्-शस्त्रों का अभ्यास हो तथा विवेक-वैराग्यपूर्वक ध्यान-निदिध्यासन के साधन से साधक स्वयं की प्रज्ञा को तीक्ष्ण करे जिससे उसका चित्त शुद्ध, निर्मल, सूक्ष्म और एकाग्र हो।

प्रस्तुत आलेख में योगवाशिष्ठ की दृष्टि से अज्ञान एवं उसकी भूमिका का वर्णन करने से पूर्व, अज्ञान का स्वरूप, उपनिषदों में सप्त भूमिका (अक्ष्युपनिषद् एवं महोपनिषद्) पर प्रकाश डालते हुए योगवाशिष्ठ में अज्ञान की सप्त भूमिका का विवेचन किया गया है।

मुख्य शब्द - अज्ञान, ब्रह्म, सप्तभूमिका, साधक, परमात्मतत्त्व, विवेक, वैराग्य।

भारतीय दर्शन यह स्वीकार करता है कि इस भौतिक एवं नश्वर जगत् में दु:खों का मूल कारण इच्छा है। इस इच्छा को मदमत्त हाथी की उपमा दी गई है। धैर्य और संयम से ही इस पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

इच्छा 'मन की कल्पनाएं है'। 'यह मुझे प्राप्त हो जाए' यही विचार इच्छा है। इन इच्छाओं एवं कल्पनाओं से मुक्ति प्राप्त करने के लिए मनुष्य को अपनी सांसारिक स्मृति का त्याग करना पड़ेगा। इस संसार में काठ और दीवार के समान इस जड़ देह का कोई अस्तित्व नहीं। इस चित्त ने ही स्वप्न के संसार की भांति इसकी कल्पना कर ली है। अनन्त शारीरिक सुख-दु:ख केवल अज्ञानी जीवात्मा को ही होते हैं ज्ञानी महात्मा को नहीं, क्योंकि वे परमात्मा का यथार्थ रूप जानते हैं। देह तो जड़ है, अतएव सुख-दु:ख का अनुभव उसे नहीं होता। अतिशय अज्ञान के वशीभूत होकर देहाभिमानी जीवात्मा ही सुख-दु:ख का अनुभव करता है।

जिस प्रकार रेशम का कीट अज्ञानवश रेशम के कोश में बंध जाता है, उसी प्रकार अज्ञानी जीवात्मा अविवेकरूपी दोष के कारण शुभाशुभ कर्मों के बंधन में बंधता है एवं जिस प्रकार एक जड़ गृह स्वयं क्रियाकलाप नहीं करता, अपितु गृहस्वामी ही चेष्टाएं करता है, उसी प्रकार शरीर में जीवात्मा ही क्रियाएं करता है, शरीर नहीं।

सत्पुरुषों के संग, सेवा एवं आज्ञा-पालन से, सत्-शास्त्रों के अध्ययन-मनन से तथा सद्गुण-सदाचार के सेवन से पुरुष में विवेक जागृत होता है, जिससे वह सत्-असत् और नित्य-अनित्य में भेद करने में सक्षम होता है। प्रत्येक वस्तु में सत्-असत् का विश्लेषण करते-करते वह यह समझने लगता है कि ''जिसका कभी नाश न हो, वह 'सत्' है और जिसका कभी सत्त्व नहीं होता वह 'असत्' है।''
''*नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत:*'' (गीता, 2/16)

योगवाशिष्ठ के निर्वाण प्रकरण (पूर्वार्द्ध) में सर्ग 48-49 में वाल्मीकि जी ने श्रीराम के इस प्रश्न का कि अद्वितीय तथा अत्यन्त शुद्ध नित्य ब्रह्म में जीवात्मा के भ्रम रूप अविद्या का आगमन कैसे होता है? निवारण करते हुए उत्तर में कहा है कि संसार की समस्त वस्तुएं ब्रह्म ही हैं। अविद्या तो वास्तव में है नहीं, क्योंकि ज्ञानी मुनि लोग अविद्या को भ्रम मात्र और असत् कहते हैं। वास्तव में जो वस्तु है ही नहीं, वह सत्य कैसे समझी जा सकती है। विद्वानों के द्वारा यह अविद्या है और यह जीव है, इत्यादि कल्पना अज्ञानी जनों के उपदेश स्वरूप ही की गई है।

अज्ञान या अविद्या का स्वरूप जाने बिना चित्त का तात्त्विक रूप समझ में नहीं आ सकता। आत्मा में मल, मोहादि नहीं होते। परब्रह्म तो रागहीन है और वही जगत् रूप में स्थित है। अविद्या का स्वरूप विलक्षण है। वह अपने विनाश से प्रसन्न होती है। उसका अस्तित्व तभी तक है, जब तक कि उसका स्वरूप लक्षित नहीं हो

जाता। स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर वह तुरन्त नष्ट हो जाती है। यह अविद्या अथवा अज्ञान तभी नष्ट होता है, जब मनुष्य को आत्मज्ञान होता है और यह अल्पज्ञान शास्त्रार्थ विचारणा से होता है। आत्मज्ञान से अविद्या रूपी नदी को पार किया जा सकता है और अक्षय परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है।

त्रैलोक्य में ऐसे भाग्यवान विरले हैं जो अज्ञान के वशवर्ती न हों। इस अज्ञान के निवारणार्थ जीवात्मा को प्रयत्न करना चाहिए जिससे सांसारिक जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो सके। यह समस्त संसार अज्ञान का कार्यक्षेत्र है। यह अज्ञान अथवा अविद्या तीन प्रकार की होती है। सूक्ष्मा, मध्यमा एवं स्थूला। सत्त्व, रज और तम कृत तीन गुणों के कारण अविद्या नौ प्रकार की हो जाती है, क्योंकि ये तीन गुण भी तीन-तीन प्रकार के होते हैं। हिरण्यगर्भ आदि से लेकर तृण पर्यन्त सब इसके कार्यक्षेत्र में आते हैं।

उपनिषदों में सप्त भूमिका

ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिए उपनिषदों में ज्ञान की विविध भूमिकाएं प्राप्त होती हैं। ज्ञान की कुल सात भूमिकाएं है, जिनकी साधना से साधक योगविद्या के क्षेत्र में क्रमिक उन्नति करता हुआ अग्रसर होता है। अक्ष्युपनिषद् में सप्त भूमिकाओं का वर्णन इस रूप से प्राप्त होता है-

1. अवेदन-

जब मनुष्य योग की ओर अग्रगामी होता है, तब उसका चित्त निरन्तर वासनात्मक चिन्तन से दूर होता जाता है। साधक परमार्थ कर्मों को करता हुआ प्रसन्नता का अनुभव करता है। (अक्ष्युपनिषद्, 2/4) वह पाप से भयभीत होता है एवं भोगों की इच्छा नहीं रखता-

पापाद् बिभेति सततं न च भोगमपेक्षते।। (अक्ष्यु. 2/6 उत्तरार्द्ध)

साधक मन, वचन एवं कर्म से श्रेष्ठ पुरुषों का संग करते हुए सद्ग्रन्थों का अध्ययन करता है।

मनसा कर्मणा वाचा सज्जनानुपसेवते।
यतः कुतश्चिदानीय नित्यं शास्त्राण्यवेक्षते।। (वही, 2/8)

यह साधक की प्रथम भूमिका है। अर्थात् ज्ञान की इस प्रथम भूमिका में साधक वासनात्मक चिन्तन से दूर, पापों से भयभीत, मन-कर्म-वचन से श्रेष्ठ ग्रन्थों का अध्ययन करते हुए स्थित रहता है।

2. विचार -

इस स्थिति में साधक पदार्थों के विभाग और पद को भली-भांति जानता है एवं कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय करने में सक्षम होता है (अक्ष्यु. 2/2); मद, अहंकार, ईर्ष्या, असूया, लोभ, मोहादि उस मनुष्य के चित्त को विकृत नहीं करते- सद्ग्रन्थों के अभ्यास और शुभ कर्मों के किये जाने से प्राणी की वास्तविक पर्यवेक्षण-दृष्टि पवित्र हो जाती है। इस भूमिका में साधक स्वयं ज्ञानवान् हो जाता है (अक्ष्यु. 2/18)।

इस भूमिका को प्राप्त मनुष्य शास्त्र, गुरू और सत्पुरुषों के सहयोग द्वारा रहस्य से परिपूर्ण शुद्धात्मक ज्ञान को भी स्वाभाविक रूप से सीख लेता है।

3. असंसर्ग -

योग की इस तीसरी भूमिका में साधक अपनी सम्पूर्ण आयु, शास्त्राभिमत वाक्यों में स्थिर मति रखकर, तपस्वियों के साथ उनके आश्रय में वास करते हुए एवं अध्यात्म शास्त्र पर चर्चा करते हुए बिता देता है। (अक्ष्यु, 2/15 पूर्वार्द्ध)।

4. स्वप्न -

योग या ज्ञान की चौथी भूमिका 'स्वप्न' इस नाम से जानी जाती है। इस भूमिका में साधक इस सम्पूर्ण नश्वर जगत् को स्वप्न की भांति देखता है एवं स्वीकार करता है। (2/32 उत्तरार्द्ध)

5. सुषुप्तपद -

यह भूमिका अद्वैत अवस्था की मानी जाती है। इस भूमिका के नाम में आए पद 'सुषुप्त' का तात्पर्य है 'शांत हो जाना'। अर्थात् इस पंचम भूमिका में सम्पूर्ण विभेदों के शांत हो जाने पर साधक अद्वैत अवस्था में अवस्थित हो जाता है-

पंचमीं भूमिकामेत्य सुषुप्तपदनामिकाम्।
शांताशेषविशेषांशस्तिष्ठत्यद्वैतमात्रकः।। (वही, 2/34)

इस स्थिति में साधक बहिर्मुखी व्यवहार करते हुए भी हमेशा अन्तर्मुखी ही रहता है।

6. तुर्या -

इस भूमिका तक पहुंचते-पहुंचते साधक वासनाविहीन हो जाता है। यहां सत्-असत्, अहंकार-अनहंकार का सर्वथा अभाव रहता है। अर्थात् साधक का मन बिल्कुल निश्चल स्थिति को प्राप्त हो जाता है। वह निरपेक्ष, भावशून्य हो जाता है। इस अवस्था में वह अत्यन्त निर्भयता को प्राप्त करता है।

यत्र नासन्नसद्रूपो नाहं नाप्यनहंकृतिः।
केवलं क्षीणमननमास्तेऽद्वैतेऽतिनिर्भयः।। (अक्ष्यु. 2/38)

7. विदेहमुक्तता -

तुर्या भूमिका के पश्चात् साधक सातवीं भूमिका में प्रवेश करता है। विदेहमुक्तता की स्थिति ही सातवीं भूमिका कही गई है। यह भूमिका योगीजनों को होती है, क्योंकि यह वाणी की सामर्थ्य से दूर है, अवर्णनीय है, परमशांत है। यह समस्त भूमिकाओं की समाप्ति की अवस्था है। इस भूमिका में साधक शान्त मन में केवल परमात्मा का अनुभव कर सकता है, उसका वर्णन नहीं-

अगम्या वचसा शान्ता सा सीमा सर्वभूमिषु। (वही, 2/41 पूर्वार्द्ध)

इस प्रकार, अक्ष्युपनिषद् में ज्ञान (योग) की ये सात भूमिकाएं बतलाई गयी हैं। अन्तःकरण में संतोष व आह्लाद से प्रथम भूमिका का उदय होता है-संतोषा मोदमधुरा प्रथमोदेति भूमिका (अक्ष्यु, 2/27 पूर्वार्द्ध)। प्रथम भूमिका के उदय होने से शेष भूमिकाओं के लिए भूमि तैयार हो जाती है। तीसरी भूमिका सर्वोत्कृष्ट कही गई है, क्योंकि इसमें मनुष्य अपनी समस्त संकल्पजन्य वृत्तियों का त्यग कर देता है।

प्रथम से तृतीय भूमिका तक जाग्रत स्वरूपा है एवं चौथी भूमिका स्वप्नरूपा है-भूमिकात्रितयं जाग्रच्चतुर्थी स्वप्न उच्यते। (अक्ष्यु, 2/32 पूर्वार्द्ध)

महोपनिषद् में ज्ञान और अज्ञान इन दोनों की सात-सात भूमिकाएं कही गई हैं-

बीजजाग्रत्तथा जाग्रन्महाजाग्रत्तथैव च।
जाग्रत्स्वप्नस्तथा स्वप्नः स्वप्न जाग्रत्सुषुप्तिकम्।।

(वही, 5/8)

ये सात भूमिकाएं हैं-(1) बीजजाग्रत् अवस्था, (2) जाग्रत् अवस्था, (3) महाजाग्रत् अवस्था, (4) जाग्रत् स्वप्नावस्था, (5) स्वप्नावस्था, (6) स्वप्नजाग्रत् अवस्था, (7) सुषुप्तावस्था।

1. **बीजजाग्रत् अवस्था :** चूंकि ये अवस्था बीज रूप में जाग्रत् होती हैं, इसलिए इसे बीजजाग्रत् कहते हैं। यह साधक की प्रथम एवं नवीन (नूतन) अवस्था है।
2. **जाग्रत् अवस्था :** जाग्रत् अवस्था वह अवस्था है, जिसमें 'मैं और मेरा' की भावना नहीं रहती। इसलिए वह जाग्रतावस्था कहलाती है, क्योंकि इससे पूर्व अवस्था में यह भावना नहीं होती।

   नवप्रसूतस्य परादयं चाहमिदं मम।
   इति यः प्रत्ययः स्वस्थ तज्जाग्रत्प्रागभावनात्।।(वही 5/12)
3. **महाजाग्रत् अवस्था :** योग अथवा ज्ञान की वह अवस्था है, जिसमें साधक को स्व की एवं पर की भावनाएं पूर्वजन्म के संस्कारों से विदित होती हैं अर्थात् इस अवस्था में 'यह वह व्यक्ति है', यह मैं हूं', यह मेरा है' इस प्रकार अन्तर का ज्ञान होता है।

   अयं सोऽहमिदं तन्म इति जन्मान्तरोदितः।
   पीवरः प्रत्ययः प्रोक्तो महाजाग्रदिति स्फुटम्।।

   (महोपनिषद्, 5/12)
4. **जाग्रत् स्वप्नावस्थाः** यह अवस्था जाग्रत् में होती है एवं मन की काल्पनिक रचना है, अतः यह जाग्रत्स्वप्न कहलाती है। इस अवस्था में मन रूढ़ अथवा अरूढ़ एवं तन्मय रहता है।
5. **स्वप्नावस्थाः** जिस प्रकार मनुष्य स्वप्नावस्था में जो कुछ देखता है, वे दृश्य उसे पुनः नहीं दिखाई देते एवं जाग जाने पर उस दृश्य की केवल स्मृति शेष रहती है, उसी प्रकार इस पांचवी अवस्था में भी साधक पूर्व के देखे हुए दृश्यों को भूल जाता है या केवल स्मृति ही बची रहती है, इसलिए स्वप्न की भांति होने के कारण इसे स्वप्नावस्था कहते हैं। (वही, 5/16)
6. **स्वप्नजाग्रत् अवस्थाः** इस अवस्था में स्वप्न पूरे विकास को प्राप्त नहीं होता एवं अपने अनेक क्रियाओं द्वारा देर तक ठहरता है। यह जाग्रत् की भांति उत्पन्न होता है अथवा जागते हुए भी स्वप्न की भांति दिखाई देता है। इसे स्वप्नजाग्रत् अवस्था कहते हैं।
7. **सुषुप्तावस्थाः** जब साधक अथवा जीव उपर्युक्त छः अवस्थाओं को पार करता जाता है तब उस जीव की जड़ात्मक स्थिति में प्रतिष्ठापना होती है। उस साधक को बीते हुए दुःखों का ज्ञान रहता है तब उसे सुषुप्ति अवस्था कहते हैं।

ये अज्ञानजनित मोह की सात भूमिकाएं बतलाई गई हैं। ज्ञान की सात भूमिकाओं के बारे में बतलाया गया है इन सात भूमिकाओं से उत्पन्न होने वाला अवबोध ही ज्ञान कहलाता है। इन सातों के अन्तर्गत होने वाली मुक्ति ज्ञेय कही जाती है। संक्षेप में इनका वर्णन किया जा रहा है।

1. **शुभेच्छा :** वैराग्य धारण करने से पूर्व जो साधक के मन में अभिलाषा उत्पन्न होती है, इसे शुभेच्छा कहा गया है। (वही, 5/27 उत्तरार्द्ध)
2. **विचारणा :** शुभेच्छा के बाद शास्त्रों के अध्ययन-मनन-चिंतन एवं श्रेष्ठजनों के सान्निध्य से साधक में सदाचार की वृत्तियों का उदय होता है, इसे विचारणा कहते हैं।

   शास्त्रसज्जनसंपर्कवैराग्याभ्यासपूर्वकम्।
   सदाचारप्रवृत्तिर्या प्रोच्यते सा विचारणा। (वही, 5/28)
3. **तनुमानसीः** शुभेच्छा एवं विचारणा द्वारा साधक के हृदय में इन्द्रिय-विषयों के प्रति आसक्ति जब क्षीण हो जाती है, ऐसी स्थिति को 'तनुमानसी' कहते हैं।
4. **सत्त्वापत्तिः** उपर्युक्त तीन भूमिकाओं के अभ्यास द्वारा जब मनुष्य में वैराग्यभाव प्रबल हो जाता है एवं चित्त निर्मल होकर सत्त्वरूप में स्थित हो जाता है, उस अवस्था को सत्त्वापत्ति कहते हैं। (वही, 5/30)
5. असंसक्तिः इन सभी भूमिका का अभ्यास हो जाने पर संसर्गहीन कला सत्त्वारूढ होती है, वही 'असंसक्ति' कहलाती है।
6. पदार्थभावनाः उपर्युक्त पांचों भूमिकाओं के अभ्यास से बाह्य एवं आभ्यन्तर पदार्थों की भावना नष्ट हो जाती है। इसे ही 'पदार्थभावना' नामक छठी भूमिका का उदय माना जाता है।
7. तुर्यगाः इन छः भूमिकाओं के अनुभव के पश्चात् साधक की भेद-बुद्धि का क्षय हो जाता है और आत्मभाव में उसकी दृढ़निष्ठा हो जाती है। यही 'तुर्यगा' अवस्था है।

   भूभिषट्कचिराभ्यासाद् भेदस्यानुपलम्भसात्।
   यत्स्वभावैकनिष्ठत्वं सा ज्ञेया तुर्यगा मतिः।। (वही, 5/34)

इन सात भूमिकाओं को यदि पशु और म्लेच्छ आदि भी जान लें तो वे भी देह रहते या देहत्याग के पश्चात् मुक्ति के अधिकारी हो जाते हैं।

योगवाशिष्ठ में सप्त भूमिका

योवाशिष्ठ में ज्ञान, अज्ञान एवं योग इन तीनों की सप्तभूमिकाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। चूंकि इस लेख का शीर्षक अज्ञान की

सप्तभूमिकाएं है, अतः उन्हीं की चर्चा करना समीचीन होगा।

योगवाशिष्ठ में अज्ञान की सप्तभूमिकाओं का नामोल्लेख इस प्रकार है-(1) बीजजाग्रत् (2) जाग्रत् (3) महाजाग्रत् (4) जाग्रत् स्वप्न (5) स्वप्न (6) स्वप्नजाग्रत् (7) सुषुप्ति।

(1) **बीजजाग्रत्ः** जाग्रत् अवस्था के और सुषुप्ति के अन्त में जो अज्ञानोपहित चेतन की अवस्था है, वही 'बीज जाग्रत्' है। यह साधक की प्रथम एवं नूतन अवस्था है। इसलिए इसे बीज कहा गया है। (योगवाशिष्ठ, 3/1117/13,14,15 पूर्वार्द्ध)

(2) **जाग्रतः** इस अवस्था में साधक को स्व का ज्ञान होता है। ''यह स्थूल शरीर मेरा है'' ''यह पराया है'', यह भोग्य समूह मेरा है, यह किसी और का'' इस प्रकार की प्रतीति साधक को रहती है, उसको जाग्रत् कहते हैं, क्योंकि इसमें पूर्वकाल के ज्ञान का अभाव रहता है।

(3) **महाजाग्रत्ः** यह अवस्था जाग्रत् अवस्था के पश्चात् आती है। पूर्वजन्म के संजात संस्कार से दृढ़रूप से उदित ऐहिक वा पूर्वजन्म के दृढ़ अभ्यास से स्थूल जो जाग्रत् प्रत्यय स्फुरित होता है, उसे महाजाग्रत् कहते हैं।

(4) **जाग्रत् स्वप्नः** अनभ्यासपूर्वक अथवा अदृढ़ अभ्यास से सर्वथा तन्मय हो जाना ही 'जाग्रत् स्वप्न' है। दो चन्द्र का दर्शन, शुक्तिकारप्य और मृगतृष्णा आदि इस जाग्रत् स्वप्न अवस्था के भेद है। स्वप्न अनेक प्रकार के होते हैं। इस अवस्था में जीव अभ्यास से जाग्रत् अवस्था को प्राप्त होता है और स्वप्न अनेक प्रकार का होता है, इसलिए यह 'जाग्रत् स्वप्न' कहा गया है। (वही, 3/117/19 पूर्वार्द्ध)

(5) **स्वप्नः** अल्पकालपर्यन्त जो मैंने देखा, वह सत्य भी नहीं है कृ ऐसा जो ज्ञान निद्रा के मध्य में, निद्रा के अन्त में अथवा निद्राकाल में अनुभव किया जाता है, उसे स्वप्न कहा जाता है। यह अज्ञानी पुरुष के महाजाग्रत् अवस्था के अन्तर्गत स्थूल शरीर के कंठ से लेकर हृदय पर्यन्त नाड़ी प्रदेश में होता है। (वही, 3/117/19 पूर्वार्द्ध, 20)

(6) **स्वप्नजाग्रत्ः** चिरकाल दर्शन जाग्रत् के अभाव से अविकसित महान् शरीर वाले दृढ़ अभिमान से अथवा चिरकाल तक स्थायित्व की कल्पना से जाग्रत् के रूप में वृद्धि को प्राप्त, महाजाग्रत् के पद को प्राप्त जो स्वप्न है, उसको स्वप्नजाग्रत् कहते हैं। वह शरीर के नष्ट और अनष्ट होने पर भी होता है। (यो., 3/117/21,22 पूर्वार्द्ध)

(7) **सुषुप्तिः** यह जीव की सातवीं एवं अन्तिम अवस्था है। पूर्वोक्त छः अवस्थाओं को प्राप्त होकर जीव की जड़रूप से जो स्थिति है, वह भविष्य दुःख की वासनाओं का बोध कराने वाली वासना से पूर्व सुषुप्ति कहलाती है।

ये अज्ञान की सात अवस्थाएं हैं। नाना प्रकार के रूपवाली यह एक-एक भूमिका अनन्त शाखामय होती है। (वही, 3/117/25 पूर्वार्द्ध)। जिस प्रकार समुद्र में स्थित नौका लहरों के कारण एक स्थिति से दूसरी स्थिति को प्राप्त करती है, उसी प्रकार इन महाजाग्रत् दशा आदि से युक्त जीव एक मोह से दूसरे मोह को प्राप्त होता है। नाना प्रकार के अवान्तर भेदों से निंदनीय अर्थात् सर्वथा त्याज्य यह अज्ञान की सात प्रकार की भूमिका है।

इस अज्ञान-भूमिका से मुक्त होने के लिए जीव को उत्तम विचारों से युक्त, ज्ञान से निर्मल एवं आत्मस्वरूप का द्रष्टा होना आवश्यक हैकृ

अज्ञानभूमिरिति सप्तपदा मयोक्ता नानाविकारजगदंतरभेदहीना।
अध्यासमूलवृतिचारूविचारणाभिः दृष्टं प्रबोधविमलस्वयमात्मनीतिः।।
(यो., 3/117/29 पूर्वार्द्ध)

इस प्रकार, अज्ञान की भूमिकाओं का उपर्युक्त परिचय उपनिषद् व योगवाशिष्ठ में प्राप्त होता है, जो अध्यात्म-पथिकों के लिए पठनीय-मननीय है।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

1. श्रीमद्भगवद्गीता रहस्यः बालगंगाधर तिलक, अनु. माधवराव सप्रे, पूना, 1973 ई.
2. भारतीय दर्शन के मूल तत्त्वः डॉ. रामनाथ शर्मा, केदारनाथ रामनाथ, मेरठ, 1994-95 ई.
3. भारतीय दर्शनः आलोचन और अनुशासनः चन्द्रधर शर्मा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2004 ई.
4. श्रीमद्भगवद्गीताः गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2050
5. 108 उपनिषद्, भाग-1, ज्ञान खण्डः संपादक-वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशक-ब्रह्मवर्चस, शांतिकुंज, हरिद्वार, सप्तम-आवृत्ति, संवत् 2061
6. 108 उपनिषद्, भाग-2, ब्रह्मविद्या खण्डः संपादक- पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशक-ब्रह्मवर्चस, शांतिकुंज, हरिद्वार, सप्तम-आवृत्ति, संवत् 2061
7. योगवाशिष्ठ और उनके सिद्धान्तः डॉ. भीखनलाल आत्रेय, तारा प्रिंटिंग वर्क्स, बनारस, 1957 ई.

ISSN 2278 - 0327

मनुस्मृति में प्रतिपादित विद्यार्थिचर्या

संदीप कुमार यादव
शोधछात्र, संस्कृतविभाग, कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

जीवन जीना भी एक कला है। मनुष्य का दुर्लभतम् जीवन प्राप्त करके व्यक्ति किस प्रकार श्रेयस् की प्राप्ति कर सकता है, इस हेतु भारतीय मनीषियों ने अनेक नियमों का प्रतिपादन किया है। सनातन परम्परा के अनुसार समस्त धर्मों का मूल-अधिष्ठान अखिलगुणराशि वेद ही हैं, तथापि लोकव्यवस्थापन हेतु वेदों के गूढ़ अर्थ सर्वजनग्राह्य न होने से वेदानुसारी अन्य ग्रंथों का भी प्रणयन हमारे ऋषियों, मनीषियों ने किया, जिन्हें धर्मशास्त्र कहा जाता है। मनुष्य के किसी कर्म में प्रवर्तन का अथवा किसी कर्म से निवर्तन का उपदेश करने वाले नित्य अपौरुषेय ग्रंथ वेदों और वेदमूलक पौरुषेय ग्रन्थ स्मृतियों को शास्त्र कहा जाता है।

प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा।
पुंसां येनोपदिश्येत तच्छास्त्रभिधीयते।। [1]

शास्त्र लोक में अत्यन्त बलवान् राजा-महाराजाओं को भी तथा अति धनवान् लोगों को भी सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देने वाला और उनमें नैतिकोन्मुख करने वाला शाश्वत तत्त्व है। अतएव शास्त्रों का अत्यन्त महत्त्व है। इस प्रकार किस व्यक्ति का नैतिक रूप से पालन करने योग्य क्या धर्म है, इसका दिग्दर्शन जिन ग्रन्थों में किया गया है उन्हें धर्मशास्त्र या स्मृति शब्द से अभिहित किया जाता है-

'' धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः'' [2]

धर्मशास्त्रों के व्याख्येय विषयों में मुख्य रूप से राष्ट्रनियामक धर्म, समाजनियामक धर्म, कुटुम्बनियामक धर्म, मनोनियामक धर्म, शरीरनियामक धर्म, इन्द्रियनियामक धर्म तथा आत्मदर्शन प्रयोजक धर्मों का समावेश किया गया है। मानव जीवन में आचार शिक्षा व्यक्ति के जीवन की महत्त्वपूर्ण स्थिति है। आचार से सम्पन्न व्यक्ति ही श्रेयस का भागी होता है। आचारहीन को तो वेद भी पवित्र नहीं कर पाते- *आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।* धर्मशास्त्रों या स्मृतियों में अग्रगण्य मनुस्मृति में आचार्य मनु ने आचार-शिक्षा का बहुत ही विस्तार से विवेचन किया है। विद्यार्थि-जीवन में आचरण का बीजारोपण किस प्रकार किया जाये, जिससे वे सततशिक्षा प्राप्त कर एक आदर्शपूर्ण एवं समृद्ध समाज की संरचना कर सकें। इस हेतु उन्होंने मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय में विद्यार्थियों की दिनचर्या का सविस्तार उपस्थापन किया है। यहाँ संक्षिप्त रूप से उसे उपन्यस्त किया जा रहा है-

विद्यार्थी को सदैव सूर्योदय से पूर्व ही निद्रा और शय्या का परित्याग कर देना चाहिये, क्योंकि ब्रह्ममुहूर्त में ही निद्रा परित्याग का शास्त्रीय विधान निश्चित किया गया है। कल्याणकामी को प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व ही उठकर नित्य-क्रियाओं से निवृत्त होकर दैनिक कार्यों का सम्पादन करना चाहिये। यदि कभी त्रुटिवशात् सूर्योदय अथवा सूर्यास्त के समय निद्रामग्न रह जायें तो उसे उचित-प्रायश्चित्त करना चाहिये ऐसा मनु का कथन है-

सूर्येण ह्यभिनिर्मुक्तः शयानोऽभ्युदितश्च यः।
प्रायश्चित्तमकुर्वाणो युक्तः स्यान्महतैनसा।। [3]

गुरुकुल में निवास कर रहे विद्यार्थी को नित्य स्नान देव, ऋषि तथा पितृगणों का तर्पण ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादि देवताओं का नित्य अभ्यर्चन तथा समिधा आधान ये अनिवार्य कर्म कहे गये हैं। अतः विद्यार्थी को गुरुकुल में रहते हुये इन नियमों का प्रतिदिन निष्ठापूर्वक अनुपालन करना चाहिये-

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम्।
देवताऽभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च।। [4]

नित्य-दिनचर्या के क्रम में एक बटुक ब्रह्मचारी को गुरुशुश्रुषा तथा भिक्षाटन नित्यकर्म के रूप में अभिहित किये गये हैं। गुरुशुश्रुषा के अन्तर्गत गुरु की आवश्यकता के अनुसार जल, पुष्प, गोमय (गोबर), मित्तिका तथा कुशादि का प्रबन्धन भी शिष्य का अनिवार्य कर्तव्य है-

उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकाकुशान्।
आहरेद्यावदर्थानि भैक्षं चाहरहश्चरेत्।। [5]

भिक्षाटन हेतु आचार्य मनु ने ब्रह्मचारी के लिये सविस्तार नियमों का उल्लेख किया है। शिष्य को चाहिये कि वह वेद से और यज्ञों से हीन तथा शास्त्र कर्मों से विमुख व्यक्ति के घर से कभी भी भिक्षा याचन न करे। गुरु के कुल में अपने पितृपक्ष के बन्धुओं के घर में और अपने मातृपक्ष के बन्धुओं के घर में भिक्षा याचन न करे, परन्तु यदि असम्बद्ध जनों के घर न मिले तो सर्वप्रथम मातृपक्ष के बन्धुओं के घर में, उनके घर न मिलने पर पितृपक्ष के बन्धुओं के घर में और उनके भी घर न मिलने पर गुरु के कुल में भी भिक्षा याचन कर सकता है। शिष्य को चाहिये कि पूर्वोक्त घरों में भिक्षा-याचन सम्भव न होने पर वाणी को नियन्त्रित करते हुये सम्पूर्ण ग्राम में भिक्षा याचन के लिये विचरण करे, परन्तु महापातकादि दोषों से आरोपित जनों को भिक्षा-

याचन में वर्जित करे–

वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु।
ब्रह्मचार्याहरेद्भैक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम्।।
गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु।
अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत्।।
सर्वं वाऽपि चरेद् ग्रामं पूर्वोक्तानामसम्भवे।
नियम्य प्रयतो वाचमभिशस्तांस्तु वर्जयेत्।।[6]

भिक्षा–याचन करते हुये ब्रह्मचारी को चाहे वह मुण्डित ब्रह्मचारी हो, किंवा जटाधारी हो या केवल शिष्य को ही जटारूप में धारण करने वाला हो, परन्तु ग्राम में कभी भी न तो सूर्यास्त हो और न ही सूर्योदय हो अर्थात् सदैव सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त से पूर्व ही ग्राम अथवा नगर सम्बन्धी कार्यों का सम्पादन कर लेना चाहिये–

मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवा स्याच्छिखाजटः।
नैनं ग्रामेऽभिनिम्लोचेत्सूर्यो नाभ्युदियात्क्वचित्।।[7]

अनेक प्रकार से भिन्न–भिन्न वस्तुओं का उचित प्रबन्ध करते हुये गुरु– शुश्रुषा करने वाले शिष्य को वेदादि विद्या गुरु के हृदय में छिपी हुयी होती है। उसी प्रकार सहजरूप से प्राप्त हो जाती है जैसे– कुदालादि द्वारा भूमि खोदने से मनुष्य को भूगर्भ में छिपा हुआ जल प्राप्त हो जाता है। अतः शिष्य को चाहिये कि वह कपटरहित होकर पूर्ण मनोयोग से गुरु की सेवा शुश्रुषा करे–

यथा खनखनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रुषुरधिगच्छति।।[8]

शिष्य को गुरु का उपपद रहित नाम कदापि उच्चारित नहीं करना चाहिये और न ही गुरु के चलने की रीति का, बोलने की रीति का और अन्यान्य चेष्टाओं का उपहासपूर्वक अनुकरण करना चाहिये। यदि किसी स्थान पर गुरु में वर्तमान दोषों का अथवा अवर्तमान दोषों का आरोप प्रसङ्ग चल रहा हो तो शिष्य को या तो अपने कान को बन्द कर लेना चाहिये अथवा उस स्थान का परित्याग कर अन्यत्र चले जाना चाहिये, क्योंकि गुरु निन्दा श्रवण महापातक है–

नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम्।
न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम्।।
गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वाऽपि प्रवर्तते।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः।।[9]

यदि कोई शिष्य गुरु में वर्तमान दोषों को प्रकट करता है तो वह जन्मान्तर में गर्दभयोनि को प्राप्त होता है, गुरु में अवर्तमान दोषों का आरोप करने से जन्मान्तर में स्थान होता है, उपभोग योग्य वस्तुओं का गुरु से पूर्व भोग करने वाला शिष्य जन्मान्तर में कृमि होता है तथा गुरु के उत्कर्ष में ईर्ष्या करने वाला शिष्य जन्मान्तर में कीटयोनि को प्राप्त होता है–

परीषादात् खरो भवति, श्वा वै भवति निन्दकः।
परिभोक्ता कृमिर्भवति, कीटो भवति मत्सरी।।[10]

विद्यार्थि–जीवन में व्यक्ति को वैलासिक सामग्रियों के सेवन का निषेध करना चाहिये। सुगन्धित पदार्थों के लेपन, मधु, मांसादि का उपभोग, रत्नधारण, उत्कट मधुर, अम्ल, लवणादि रसों का सेवन तथा सभी प्रसङ्गों के सम्पर्क से विरत रहना चाहिये। सन्धान से अम्लीकृत किये गये द्रव्यों को भी विरत करना चाहिये। प्राणियों के प्रति हिंसा सर्वथा वर्जित है। शरीर पर तैल मर्दन, नेत्रों में अञ्जन, उपानह और छत्र धारण करना, नैष्ठिक ब्रह्मचारी के लिये शास्त्र वर्जित है। काम, क्रोध, लोभ, नृत्य, गायन, वादन इत्यादि से भी ब्रह्मचारी को वर्जित रहना चाहिये–

वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धं माल्यं रसान्स्त्रियः।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्।।
अभ्यङ्गञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम्।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम्।।[11]

ब्रह्मचारी शिष्य को व्यसनों का सर्वथा वर्जन करना चाहिये। उसे द्यूतक्रीडा, जनापवाद, दूसरों के दोषों का कथन अर्थात् निन्दा, असत्य, भाषण स्त्री जनों को निहारना और स्पर्श करना तथा अन्य को हानि पहुँचाना भी आचार्य मनु ने वर्जित किया है–

द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथानृतम्।
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च।।[12]

श्रेयस्कर कार्यों का अनुकरण करने वाले ब्रह्मचारी विद्यार्थी को कामादि दोषों से बचने का प्रयास करना चाहिये। इसीलिये ब्रह्मचारी को सदैव एकान्त शयन ही करना चाहिये, और कहीं भी स्वेच्छा से वीर्यपात नहीं करना चाहिये क्योंकि स्वेच्छा से ऐसा करने वाला स्वयमेव को व्रत भङ्ग कर देता है। यदि अनिच्छा से स्वप्नावस्था में कदाचित् ऐसा हो जाय तो स्नान करके सूर्यार्चनपूर्वक तीन बार 'पुनर्मामित्विन्द्रियम्' मन्त्र का जाप करना चाहिये–

एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्।
कामाद्धि स्कन्दयन्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः।।
स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः।
स्नात्वाऽर्कमर्चयित्वा त्रिः 'पुनर्मामि' त्यृचं जयेत्।।[13]

कामादि दोषों के प्राबल्य को दृष्टिगत करते हुये आचार्य मनु ने विद्वान् पुरुष को माता, बहन और पुत्री के साथ भी एकान्तवास का निषेध किया है क्योंकि बलवान् इन्द्रियाँ विद्वान् को भी अपने विषयों की ओर खींच ले जाती हैं। पुरुषों को दूषित कर देना स्त्रियों का प्रकृति प्रदत्त स्वभाव है। इसी अर्थ से विचारशील पुरुष स्त्रियों के विषयों में असावधानी नहीं करते–

मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।।[14]
स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम्।
अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः।।[15]

यदि गुरु–पत्नी भी तरुणी हो और शिष्य की अवस्था बीस वर्ष

से अधिक हो तथा वह गुण-दोषों को जानने वाला हो तो उसे गुरुपत्नी का पादस्पर्शपूर्वक प्रणाम नहीं करना चाहिये अपितु दूर से ही बद्धाञ्जलि होकर अभिवादन करना चाहिये। तैलादि स्निग्ध पदार्थों को मलना, स्नान कराना, अङ्गों पर उबटन लगाना, केशों का अलङ्करण करना जैसे कार्यों में शिष्य को गुरुपत्नी का सहयोग नहीं करना चाहिये-

अभ्यञ्जनं स्थापनं च गात्रोत्सादनमेव च।
गुरुपत्न्या न कार्याणि केशानां च प्रसाधनम्।।
गुरुपत्नी तु युवतिर्नाभिवाद्येह पादयोः।
पूर्णविंशतिवर्षेण गुणदोषौ विजानता।। [16]

आचार्य मनु ने विद्यार्थियों के लिये यह स्पष्ट रूप से उद्घोषित किया है कि उन्हें श्रेयस् कार्यों का प्रत्येक स्थान से अनुकरण करना चाहिये यदि कोई स्त्री और अपने से कनिष्ठ व्यक्ति भी कोई श्रेयस्कर कार्य करता है तो व्यक्ति को चाहिये कि वह उन सब श्रेयस्कर कार्यों का अनुकरण करे अथवा शास्त्रों द्वारा अनिषिद्ध जिस कार्य में शास्त्र संस्कृत मन को प्रसन्नता प्राप्त हो उस कार्य करे करें-

यदि स्त्रीयद्यवरजः श्रेयः किंचित्समाचरेत्।
तत्सर्वमाचरेद्युक्तो यत्र वाऽस्य रमेन्मनः।। [17]

अध्ययनशील विद्यार्थी को गुर्वाश्रम में रहते हुये सदा अध्ययन और आचार्य के हित के कार्य में गुरु से प्रेरित होने पर भी और प्रेरित न होने पर भी सर्वथा प्रयत्न करना चाहिये। अध्ययन करते समय गुरु के समीप में रहते हुये शिष्य को शरीर, वाणी, बुद्धि, इन्द्रियों और मन को नियन्त्रित करके बद्धाञ्जलि होकर गुरुमुख की ओर देखते हुये अध्ययन करना चाहिये। शिष्य का आसन और उसकी शय्या सदैव गुरु से निम्नतर होनी चाहिये-

चोदितो गुरुणा नित्यमप्रचोदित एव वा।
कुर्यादध्ययने यत्नमाचार्यस्य हितेषु च।।
शरीरं चैव वाचं च बुद्धिन्द्रियमनांसि च।
नियम्य प्राञ्जलिम्तिष्ठेद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम्।।
नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ।
गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत्।। [18]

गुरु के समीप रहते हुये शिष्य को सदैव भोज्य पदार्थ, वस्त्र और वेश में गुरु से निम्नतर रहना चाहिये। गुरु के सोकर उठने से पहले शिष्य को जग जाना चाहिये और गुरु के सोने के बाद ही सोना चाहिये-

हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात्सर्वदा गुरुसन्निधौ।
उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य चरमं चैव सविशेषत्।। [19]

भगवान् श्रीराम और लक्ष्मण जिस समय गुरु विश्वामित्र के साथ में थे। उस समय की श्रीराम की दिनचर्या का जो वर्णन गोस्वामी तुलसीदास जी ने किया है। उसमें इस नियम की स्पष्ट छवि परिलक्षित होती है-

उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनिकान।
गुर तें पहिलेंहि जयतपति जागे रामु सुजान।। [20]

समस्त विद्यार्थी नियमों के अभिष्ठान के रूप में आचार्य मनु ने माता, पिता और आचार्य की सेवा को ही उपस्थापित किया है। अत्यन्त कष्ट में होने पर भी व्यक्ति को आचार्य, माता-पिता और अग्रज का अपमान कदापि नहीं करना चाहिये, क्योंकि आचार्य साक्षात् परमात्मा की मूर्ति है, पिता ब्रह्मा की मूर्ति है, माता पृथ्वी की साक्षात् मूर्ति है और अग्रज स्वयं की ही प्रतिमूर्ति है-

आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः।
नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः।।
आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः, पिता मूर्तिः प्रजापतेः।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु, भ्राता स्वो मूर्तिरात्मनः।। [21]

माता-पिता मनुष्य को जन्म देने में जिन कष्टों का अनुभव करते हैं, व्यक्ति शताधिक वर्षों तक प्रयत्न करके भी उस ऋण से मुक्त नहीं हो सकता। जो व्यक्ति सर्वदा माता-पिता और गुरु की सेवा करते हुये उनका प्रिय करता है तथा उन्हें सन्तुष्ट करता है उसके सभी तप पूर्ण रूप से सम्पन्न होते हैं। इन तीनों की सेवा ही उत्कृष्टतम तपस्या कही गयी है। उनकी अनुमति के बिना अन्य धर्म का आचरण करणीय नहीं है। इसीलिये आचार्य शङ्कर ने संन्यास की दीक्षा लेने से पूर्व अपनी माता आर्याम्बा से अनुमति ली थी। उपर्युक्त कथनों से पुष्टि अधोलिखित मनुवचनों से होती है-

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि।।
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते।।
तेषां त्रयाणां शुश्रुषां परमं तप उच्यते।
न तैरभ्यननुज्ञातौ धर्ममन्यं समाचरेत्।। [22]

माता-पिता और आचार्य को ही क्रमशः भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक कहा गया है। उन्हें ही आश्रमत्रय ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थाश्रम कहा गया है। उन्हें ही वेदत्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद) कहा गया है और उन्हें ही गार्हपत्याग्नि, दक्षिणाग्नि और आह्वनीयाग्नि भी कहा गया है। पित्रादि रूप यह अग्नित्रय का समुदाय अन्य अग्नित्रयों के समुदाय से श्रेष्ठतर होता है-

त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः।
त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः।।
पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताऽग्निर्दक्षिणः स्मृतः।
गुरुराहवनीयस्तु साऽग्नित्रेता गरीयसी।। [23]

आचार्य मनु कहते हैं कि जो गृहस्थ इन तीनों की सेवा में किसी भी प्रकार की अवधानता नहीं करता वह देदीप्यमान् शरीर से स्वर्ग में जाकर देवताओं की तरह सुख प्राप्त करता है। माता की भक्ति से भूर्लोक, पिता की भक्ति से भुवर्लोक और गुरु की भक्ति से ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। जिससे ये तीनों (आचार्य, माता और पिता) समादृत

किये जाते हैं। उसके सभी धार्मिक अनुष्ठान पूर्ण सफल होते हैं और जिससे ये तीनों अनादृत होते हैं उसकी सभी धार्मिक क्रियायें सर्वथा निष्फल होती हैं। अत: कल्याण चाहने वाले मनुष्य को चाहिये कि जब तक माता-पिता और आचार्य जीवित रहें तब तक किसी अन्य धर्म का अनुष्ठान करने के स्थान पर प्रिय और हितकारी कार्यों में रमता हुआ सदाकाल ही सेवा करे-

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम्।
गुरुशुश्रुषया त्वेदं ब्रह्मलोकं समश्नुते।।
सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृता:।।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफला: क्रिया:।।
यावत्त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत्।
तेष्वेवं नित्यं शुश्रुषां कुर्यात्प्रियहिते रत:।।[24]

विद्याध्ययन के पश्चात् जब विद्यार्थी समावर्तन संस्कार प्राप्त कर ले तो यह उसका नैतिक कर्तव्य है कि वह गुर्वाज्ञा से अपनी सामर्थ्य के अनुसार गुरु को गुरु दक्षिणा दे और भूमि, स्वर्ण, गो, अश्व, छत्र, उपानह, आसन, अन्न, भूमि, शाक और वस्त्रादि यथाशक्ति गुरु को समर्पित करे और गुरु को प्रसन्न करे-

न पूर्वं गुरवे किञ्चिदुपकुर्वीत धर्मवित्।
स्नास्यंस्तु गुरुणाऽऽज्ञप्त: शक्त्या गुर्वर्थमाहरेत्।।
क्षेत्रं हिरण्यं यामश्व छत्रोपानहमासनम्।
धान्यं शाकं च वसांसि गुरवे प्रीतिमावहेत्।।[25]

इस प्रकार धर्मशास्त्रों में विद्यार्थि-जीवन को आचरण समृद्ध बनाने के लिये सविस्तार नियमों का प्रतिपादन किया गया है। एक श्रद्धा-सम्पन्न और गुरुभक्त शिष्य श्रेयस्कर कार्यों को करता हुआ न केवल स्वयं का अभ्युत्थान करता है अपितु नवीन चारित्रिक मानदण्डों को स्थापित करता हुआ गुरु की भी प्रतिष्ठावृद्धि करता है। स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती, भगवत्पाद आचार्य शङ्कर जैसे महापुरुषों का चरित्र ऐसे ही उत्तम कोटि के अनुकरणीय शिष्यों की गौरवगाथा है। हितकामी पुरुष को चाहिये कि भारतीय सनातन धर्मशास्त्रों की परम्परा का पोषण करे और अपने वंशधरों में चारित्रिक सम्पुष्टि के लिये स्मृतियों में विहित आचरण का अनुपालन करें। वर्तमान सन्दर्भों में विद्यार्थियों में प्रतिदिन घटते चारित्रिक संस्कारों को देखते हुये इन ग्रन्थों में वर्णित नैतिक सूत्रों की महत्ता और उपादेयता बढ़ती ही जा रही है। हम संस्कारों के क्रियान्वयन के लिये राजव्यवस्था पर थोपने का प्रयास न करें, अपितु अपने बालकों में संस्कारों का आधान करे।

संदर्भ सूची -

1. भामती, ब्रह्ममीमांसासूत्र, शांकरभाष्य, व्याख्या- 1/1/4
2. मनुस्मृति- 2/10
3. मनुस्मृति- 2/221
4. मनुस्मृति- 2/176
5. मनुस्मृति- 2/182
6. मनुस्मृति- 2/183-185
7. मनुस्मृति- 2/219
8. मनुस्मृति- 2/218
9. मनुस्मृति- 2/199-200
10. मनुस्मृति- 2/201
11. मनुस्मृति- 2/177-178
12. मनुस्मृति- 2/179
13. मनुस्मृति- 2/180-181
14. मनुस्मृति- 2/215
15. मनुस्मृति- 2/213
16. मनुस्मृति- 2/210-211
17. मनुस्मृति- 2/223
18. मनुस्मृति- 2/131-132, 138
19. मनुस्मृति- 2/194
20. रामचरितमानस, बालकाण्ड- 226
21. मनुस्मृति- 2/225-226
22. मनुस्मृति- 2/227-229
23. मनुस्मृति- 2/230-231
24. मनुस्मृति- 2/233-235
25. मनुस्मृति- 2/245-246

ISSN 2278 - 0327

आचार्य महाप्रज्ञ साहित्य में स्वास्थ्य के सूत्र

डॉ. हेमलता जोशी
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं (राजस्थान)

स्वाथ्य जीवन की अमूल्य निधि है। इसी में प्रसन्नता, सफलता, विकास और सुख-शांति छिपी है। यह सत्य भी है कि स्वास्थ्य के रहते ही अन्य मूल्य हैं। इसलिए स्वास्थ्य आवश्यक ही नहीं अपितु अपरिहार्य भी है। अत: इसे स्वस्थ रखना, इसका संवर्धन करना परम आवश्यक है। स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले अनेक घटक हैं। इसमें सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों घटक सम्मिलित हैं। यदि इन पक्षों के प्रति जागरूक रहकर सकारात्मक पक्ष को जीवन शैली में अपनाने का अभ्यास किया जाए तो नकारात्मक पक्ष को दूर कर स्वास्थ्य को सर्वर्धित किया जा सकता है। स्वास्थ्य संवर्धन हेतु अनेक सूत्र, नियम, उपनियम है, अनेक चिकित्सा पद्धतियां हैं। सबका अपना-अपना विशेष महत्त्व भी है। योग भी इन्हीं में एक है जो स्वयं में एक जीवन शैली है। यदि इस जीवन शैली को जीवन में स्थान दिया, इसे प्रामाणिकता से अपनाया जाए तो स्वास्थ्य में सकारात्मक परिवर्तन आते है। यौगिक जीवन शैली कोरी आध्यात्मिक पद्धति ही नहीं अपितु वैज्ञानिक पद्धति भी है। अनेक शोध इसकी सार्थकता को सिद्ध करते हैं। आचार्य महाप्रज्ञ ने स्वास्थ्य के संवर्धन हेतु अनेक प्रयोग, अनेक सुझाव दिए हैं या यों कहें कि उन्होंने स्वास्थ्य संवर्धन में यौगिक जीवन शैली के अनेक सूत्र दिए हैं। यदि इनका अभ्यास दैनिक जीवन में किया जाए तो अच्छे स्वास्थ्य को प्राप्त किया जा सकता है। प्रस्तुत लेख में उन्हीं सूत्रों को देने का प्रयास किया गया है जो सुधी पाठकों के लिए उपयोगी हो सकेंगे, ऐसा विश्वास है।

कुंजी शब्द: स्वास्थ्य, संतुलित भोजन, आसन, प्राणायाम, ध्यान-योग।

स्वास्थ्य का सामान्य अर्थ है स्व में स्थित रहना। स्व में स्थित तभी रहा जा सकता है जब जीवन के सभी तत्त्व संतुलित होकर कार्य करें। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार मात्र रोगों का अभाव ही स्वास्थ्य नहीं है वरन शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक और सामाजिक रूप से स्वस्थ होना ही स्वास्थ्य है। इससे स्पष्ट है कि स्वास्थ्य के एक नहीं वरन अनेक पक्ष हैं जो व्यक्ति को संपूर्ण रूप से स्वस्थ बनाने में सहायक हैं। मनोवैज्ञानिक एरिक्सन के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति उसे कहते हैं जिसमें दृढ़ अभिज्ञान की भावना विकसित हो जाती है। ऐसा व्यक्ति अपने को अहम स्थान-समय में स्थापित कर लेता है। व्यक्ति यह पहचान लेता कि वह विशेष व्यक्ति है जिसका एक विशेष समाज है, अपना निजी पूर्व, वर्तमान और भविष्य है। इस परिभाषा के आधार पर स्वस्थ वही है जो स्वयं और समाज के प्रति जागरूक है। अत: रोग केवल शारीरिक, मानसिक स्तर पर ही नहीं वरन् सामाजिक स्तर पर भी होते हैं। उदाहरणार्थ अपराध को रोग की श्रेणी में माना गया है। यह एक ऐसा रोग है जो व्यक्ति को ही नहीं वरन सामाजिक रूप से सभी को प्रभावित करता है। इस रोग के परिणामों के शिकार निर्दोष व्यक्ति होते हैं। अत: स्वास्थ्य को सीमित अर्थों में परिभाषित करना स्वास्थ्य के अनेक आयामों को उपेक्षित करना होगा। इसके समाधान के लिए आवश्यक है कि स्वास्थ्य को समग्र दृष्टि से महत्त्व देना और तदनुरूप ही स्वस्थता पर विचार करना।

स्वास्थ्य के सूत्र

आचार्य महाप्रज्ञ के साहित्य में स्वास्थ्य के अनेक सूत्र भरे हैं जिनमें कुछ प्रमुख निम्न हैं-

1. संतुलित भोजन

जीवन जीने के लिए भोजन का अपना विशेष महत्त्व है। भोजन से स्वस्थता प्राप्त की जा सकती है तो भोजन की उपयोगिता भी तभी हो सकती है जब शरीर स्वस्थ हो। शरीर का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है मस्तिष्क। वह सबसे अधिक मूल्यवान है। जिसका मस्तिष्क सुंदर होता है वास्तव में वही सुंदर होता है। मस्तिष्क को निर्मल और शक्तिशाली बनाने के लिए भोजन पर ध्यान देना जरूरी है। हमारी ऊर्जा या शक्ति सीमित होती है उसका उपयोग चाहे भोजन पचाने में करें या शक्ति मस्तिष्क-शक्ति सवर्धन में करें। भोजन के विषय तीन निर्णय लेने चाहिए-हमें कैसा भोजन करना है, भोजन कितनी मात्रा में करना है, भोजन कितनी बार करना है। बार-बार भोजन करना अध्यशन दोष कहलाता है। स्वस्थ वह नहीं होता है जो केवल हट्टा-कट्टा होता है, चर्बीयुक्त होता है। स्वस्थ होता है जिसकी इंद्रिया निर्मल होती है, मन और चित्त निर्मल होते हैं।[1] आहार के साथ अनाहार का भी संबंध है। आहार कैसे करना, कितना करना और कब करना। यदि आहार नहीं करना है तो कब नहीं करना आदि सबका आपसी संबंध है।[2] आहार यदि संतुलित होगा तो शारीरिक स्वास्थ्य तो सही रहेगा ही साथ मन भी संतुलित रहेगा। शरीर, मन का यह संतुलन प्राण के संतुलन में भी सहायक होता है। अत: आहार और प्राण का भी आपसी संबंध है। तीन बातें हैं-अपोषण, कुपोषण और पोषण।

अपोषण और कुपोषण दोनों समस्या पैदा करने वाले हैं। अत: भोजन संतुलित होना चाहिए। ऐसा भोजन नहीं कि जो हमारी प्राणशक्ति को क्षीण करे। हमारी दो प्राण ऊर्जाएं हैं-जीवन का मूलाधार प्राण ऊर्जा और भोजन से निष्पन्न प्राण ऊर्जा। प्राण के अनेक प्रकारों में एक है समान प्राण जो पाचन के उत्तरदाई है। उसे अग्नि कहते हैं। प्राण का उत्पादक स्थल है नाभि। अत: भोजन ऐसा न हो कि जिससे समान प्राण को समस्या हो। अधिक खाने से पाचन तंत्र शिथिल होता है और प्राणशक्ति क्षीण होती है।[3] अत: संतुलित भोजन के साथ परिमित भोजन भी आवश्यक है जो प्राण शक्ति के विकास में सहायक है।

कहा गया है कि जैसा अन्न खाते हैं, वैसा ही मन भी बनता है। अर्थात् भोजन का मानसिक स्वास्थ्य से बहुत निकट का संबंध है। नई खोजों से ज्ञात हुआ कि अपोषण और कुपोषण मानसिक बीमारियां के लिए जिम्मेदार है। पूरा भोजन न मिलने से स्नायविक दुर्बलता होती है एवं मानसिक रोग होते हैं। कुपोषण से भी मानसिक रोग पैदा होते हैं। संतुलित एवं आवश्यक तत्त्वों से शरीर एवं मन को पोषण मिलता है। यदि इनका अभाव हो तो तत्संबंधी अंग पर उसका प्रभाव पड़ता है। मानसिक श्रम करने वाले के लिए केवल अन्न ही नहीं अपितु अन्य खनिज लवणों की आवश्यकता होती है। इनके अभाव में मानसिक अवस्था गड़बड़ा जाती है।[4] अत: भोजन में वे सभी आवश्यक तत्व अपेक्षित ही नहीं वरन् आवश्यक भी हैं जो शरीर को स्वस्थ्य बनाने के साथ-साथ मन को भी स्वस्थ्य बना सकें। भोजन में दो प्रकार के द्रव्य होते हैं-अम्लांत और क्षारांत। अम्लांत भोजन से विष द्रव्य बढ़ते हैं, उन्हें रोका नहीं जा सकता किन्तु वे संचित न हो, यह सावधानी रखी जाए तो हिंसा की वृत्ति पर रोक लग जाती है और अहिंसा का रास्ता साफ हो जाता है। अत: भोजन में अधिक रसों सेवन नहीं करना चाहिए। भावात्मक स्थितियों में गड़बड़ियों के दो मुख्य तत्त्व हैं-मांसाहार और मादक द्रव्यों का सेवन। व्यक्ति के भोजन में वे तत्त्व अधिक हैं जो भावात्मक असंतुलन पैदा करने वाले हों। भावात्मक स्वास्थ्य का सीधा संबंध अहिंसा से है। जिसका भावात्मक स्वास्थ्य जितना अच्छा होगा, वह उतनी अच्छा अहिंसक होगा।[5] इसलिए भोजन संतुलित होगा है तो उसी के अनुरूप रसायनों का निर्माण होगा और भावधारा भी वैसी के निर्मित होगी। आहार का शरीर और मन दोनों पर प्रभाव पड़ता है। जब तब नाड़ी संस्थान और मन स्वस्थ नहीं रहते तब तक ज्ञान और क्रिया दोनों की अभिव्यक्ति भी सही ढंग से नहीं हो सकती है। भीतर में संचित मल अथवा विकार इसमें अवरोध उत्पन्न करते हैं। अत: अवरोध पैदा न हो, इसके लिए आहार शुद्धि आवश्यक है। इस हेतु उपवास, मित भोजन और रस परित्याग का सुझाव दिया गया है।[6] स्पष्ट है कि जब तक शरीर में मलों का संचय रहेगा तब तक मन तथा भावों पर उसका दूषित प्रभाव पड़ेगा। जब शरीर, मन, भाव आदि दूषित होंगे तब तक कर्म निर्जरा या कर्म शुद्धि की बात भी नहीं हो सकती है। अत: आहार शुद्धि जितनी अधिक होगी, मलों का संचय भी उतना कम होगा जो निर्जरा में सहायक बनेगा।

2. आसन

शरीर को साधने का, शरीर को स्वस्थ रखने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है आसन। आसन वह प्रक्रिया है जिससे शरीर लचीला, सुदृढ़ बनता है साथ ही शुद्ध बनता है। जब तक शरीर शुद्धि नहीं होगी, शरीर में जमे हुए मैल को दूर नहीं किया जायेगा, तब तक प्रकाश नहीं होगा। यदि प्रकाश को करना है तो मलों को साफ करना होगा। इसलिए मलों की शुद्धि के लिए शरीर को शुद्ध रखना आवश्यक है। काया को साधने में कष्ट हो सकता है पर हमारा उद्देश्य शरीर को कष्ट देना नहीं है। आसन इसलिए किए जाते हैं कि शरीर में जमे हुए मैल निकल जाएं, शरीर शुद्ध हो जाये, शरीर साध लिया जाय।[7] हमारे स्वास्थ्य का मूलाधार है सुषुम्ना। यदि रीढ़ स्वस्थ्य है तो सारे शरीर में कोई गड़बड़ी नहीं होती और यदि अस्वस्थ्य है तो उसका सारा असर समूचे शरीर पर आएगा। है। स्वास्थ्य का मूल है रीढ़ की हड्डी का लचीला होना। शक्ति का मूल है रीढ़ की हड्डी का लचीला होना। इसे लचीला रखने का साधन है आसन। शरीर का प्रत्येक अवयव श्रम चाहता है। वह निरंतर विश्रान नहीं चाहता है। शरीर को साधने के लिए आसनों को साधना आवश्यक है। आसनों को साधने का अर्थ है सोऐ हुए केन्द्रों को जगाना, सक्रिय बनाना, गतिशील बनाना।8, आसन का उपयोग यह है कि शरीर के जो मर्म स्थल हैं, चक्र और ग्रंथियां हैं, उन बिन्दुओं को प्रभावित करना, सक्रिय करना, उनमें हलचल पैदा करना है, उन्हें जागृत करना। जब हम आसन करते हैं, तब विशेष स्थल जागृत होते हैं। वे विशेष स्थान प्राण शरीर में हैं। उससे आगे हैं कर्म शरीर। जो चक्र स्थान हैं या मर्म स्थान हैं, उनका मूल है कर्म शरीर। वहां से वे प्रतिबिम्बित होते हैं प्राण शरीर में और वहां से स्थूल शरीर में। जब हम स्थूल शरीर में सक्रियता पैदा करते हैं तो उसका प्रभाव होता है, प्राण शरीर पर और फिर कर्म शरीर पर।[9] अत: स्थूल शरीर के स्तर पर किए गए प्रयोग कर्म शरीर को हल्का करते हैं, कर्म संस्कारों को क्षीण करते हैं। अत:: आसन मात्र शारीरिक प्रक्रिया नहीं है वरन् यह कर्म संस्कारों को प्रभावित करने की भी प्रक्रिया है। आसन के साथ दो सिद्धांत जुड़े हुए हैं-निर्जरा अथवा आत्मशुद्धि का सिद्धांत और स्वस्थ रहने का सिद्धांत, शरीर को शक्तिशाली बनाए रखने का सिद्धांत।[10] इससे स्पष्ट है कि आसन शरीर के अंग-प्रत्यंगों को आवश्यक रूप से क्रियाशील रखते हैं जिससे उन्हें स्वस्थ रहने का अवसर मिल जाता है। आसन कई दृष्टियों से शरीर को स्वस्थ रखने में अपनी अहम भूमिका अदा करते हैं।

3. प्राणायाम

प्राणायाम का शब्दिक अर्थ है प्राण का विस्तार। इस विस्तार से तात्पर्य है प्राणशक्ति को बढ़ाना, उसे सुदृढ़ करना। प्राणायाम का संबंध प्राण से ही है। अत: प्राणायाम प्राण को सुरक्षित रखने का महत्त्वपूर्ण

प्रयोग है। प्राणायाम के कई प्रकार हैं जिनमें तीव्र गति, मंद गति, कुंभक आदि का विशेष प्रावधान है। मुख्यतया प्राणायाम से शरीर से मलों का निष्कासन होता है जिससे शरीर स्वस्थ होता है। साथ ही प्राणायाम से मानसिक अस्त-व्यस्तता समाप्त होने से मानसिक संतुलन की अवस्था प्राप्त होती है। प्राणायाम के द्वारा ही प्राणमय कोश को स्वस्थ एवं संतुलित रखा जा सकता है। प्राणायाम श्वास की आंच में हमारे शक्ति केन्द्रों को ढालने की प्रक्रिया है जिसमें हम उन शक्ति केन्द्रों को इच्छित रूप से ढाल सकते हैं, उनकी शक्ति को विकसित कर सकते हैं। हम उनको इतना विकसित कर लेते हैं कि बड़ी से बड़ी शक्ति का उनमें अवतरण हो सकता है। हमारा समूचा स्नायु संस्थान जो कि शक्ति को झेलने का काम करता है, वह इस प्रक्रिया से विकसित हो जाता है, शक्तिशाली हो जाता है।[11]

प्राण हमारे शरीर को संचालित करता है। प्राण को जीवन और जीवन को प्राण कहा जा सकता है। दोनों का एक ही अर्थ है। जितना प्राण होगा, जितनी प्राण शक्ति और प्राण विद्युत होगी, उतना ही आकर्षण बढ़ेगा। आंखों का, वाणी का और व्यक्तित्व का आकर्षण प्राणशक्ति का आकर्षण है। सारा आकर्षण, सारी रमणीयता प्राण के सहारे चलती है। प्राण के स्वस्थ रहने पर शरीर स्वस्थ रहता है अन्यथा वह लड़खड़ाने लगता है। हमारे शरीर में मूल शक्ति का स्रोत है प्राण ऊर्जा।[12] अत: स्पष्ट है कि प्राण को स्वस्थ रखने के लिए प्राणायाम का विशेष महत्त्व है। प्राणवायु रक्त शुद्धि का साधन है और शुद्ध रक्त हमारे शरीर को गति देता है। प्राण के साथ उसका संबंध गहरा है। प्राणवायु रक्त के माध्यम से प्राणवायु को भी उत्तेजित करता है, सक्रिय करता है। यदि पौंधे को पानी का पर्याप्त सिंचन मिलेगा तो लहलहा उठेगा। इसी प्रकार प्राणवायु का पर्याप्त सिंचन मिलने पर प्राण का पौंधा भी लहलहा उठता है। पूरा सिंचन न मिलने पर यह पौंधा कुम्हला जाता है। व्यक्ति निष्प्राण और निष्क्रिय हो जाता है। प्राणवायु को सही से लेने का साधन है प्राणायाम। जो प्राणायाम को नहीं जानता, वह प्राणवायु को पूरी मात्रा में ग्रहण नहीं कर सकता। प्राणशक्ति की अनेक क्रियाएं हैं। प्राण का संबंध तैजस से है। यह तब होता है जब प्राणायाम से ली गई प्राणवायु की अग्नि के द्वारा प्राण को इतना उद्दीप्त कर दिया जाता है, प्राण इतना ज्वलित हो जाता है कि उसमें अद्भुत क्षमताएं प्रकट हो जाती हैं। इस दृष्टि से प्राणायाम का बहुत महत्त्व है।[13] इससे स्पष्ट है कि प्राणायाम प्राण को उत्तेजित और सक्रिय करने का सशक्त माध्यम है।

4. कायोत्सर्ग

कायोत्सर्ग का अर्थ है काया का उत्सर्ग करना। यहां काया के उत्सर्ग अथवा छोड़ने से तात्पर्य है शरीर की चंचलता को छोड़ना। इससे एक ओर तो शक्ति व्यय पर रोक लग जाती है और दूसरी ओर शक्ति का संचय भी होता है क्योंकि इस दौरान मन, वचन और काया की सक्रियता बहुत ही मंद पड़ जाती है। इससे शक्ति का अपव्यय स्वत: ही रुक जाता है। कायोत्सर्ग, कायगुप्ति का प्रयोग रामबाण औषधि है।[14] कहा गया है कि कायोत्सर्ग सब दु:खों से छुटकारा दे सकता है। यदि वैज्ञानिक दृष्टि से इसे समझने का प्रयास किया जाए तो बात स्पष्ट हो सकती है। मस्तिष्क की कई तरंगें हैं जिनमें अल्फा, बीटा, थींटा, गामा आदि हैं। जब-जब अल्फा तरंगें निकलती है तब मानसिक तनाव से मुक्ति मिलती है, शांति प्राप्त होती है।

एक दिन अहोरात्रि का कायोत्सर्ग, दूसरे दिन उससे कम, फिर अहोरात्रि का कायोत्सर्ग, अगले दिन उससे कम के क्रम में नौ दिन तक करने से गंभीर मानसिक बीमारी शांत हो जाती।[15] इससे भी कायोत्सर्ग की उपयोगिता सिद्ध होती है। कायोत्सर्ग दीर्घकाल तक भी किया जा सकता है जो हृदय, मस्तिष्क और मेरुदंड के बहुत उपयोगी है। इन तीनों के स्वस्थ रहने पर अनेक बीमारियों का शमन स्वत: हो जाता है। प्राण का संतुलन भी कायोत्सर्ग के दौरान सहज प्राप्त हो जाता है। अनिद्रा की बीमारी के लिए यह शामक औषधि है। शरीर की थकान को मिटाने में यह कारगर सिद्ध होता है। यह शरीर को विश्राम ही नहीं देता वरन् अनेक समस्याओं को समाहित करता है। हमारे शरीर में आश्रव बहुत हैं। यदि शरीर के सारे दरवाजे बंद हों तो मन कुछ नहीं कर सकता है। मन, वाणी आदि का ग्रहण शरीर ही करता है। कायोत्सर्ग के दौरान मन के दरवाजे भी बंद हो जाते हैं जिससे बीमारियों के द्वार भी बंद हो जाते हैं। आत्मा की साधना का पहला और अंतिम बिन्दु है कायोत्सर्ग। इसीलिए इसे आत्मिक स्वास्थ्य का अमोघ सूत्र कहा जा सकता है।[16]

5. सूर्य द्वारा प्राणशक्ति लेना

सूर्य तेजस्वी है, शक्ति संपन्न है। इसमें शक्ति का अक्षय भंडार है। इसी के द्वारा सारा जगत प्रकाशमान है। इससे सूर्य की विशिष्टता का आभास लगाया जा सकता है। विज्ञान के प्रयोगों द्वारा भी सूर्य के प्रयोगों द्वारा अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य संपादित किए जाते हैं। आचार्य महाप्रज्ञ जी कहते हैं कि सूर्य प्राणशक्ति का, जीवनी शक्ति का सबसे बड़ा केन्द्र हैं, खजाना है, भंडार है। वह अक्षय कोश है। हम सूर्य के द्वारा भी प्राण शक्ति को खींच सकते हैं। प्रात:काल के समय सूर्योदय के सामने खड़े होकर यदि संकल्प करें कि प्राणशक्ति का संग्रह हो रहा है, संचय हो रहा है, मस्तिष्क के मार्ग से प्राणशक्ति का अवतरण हो रहा है। दस-बीस मिनट तक ध्यानस्थ मुद्रा में इस प्रयोग को दोहराया जाए तो अनुभव होगा कि नई शक्ति का संचार हो रहा है, स्फूर्ति का संचार हो रहा है।[17] सूर्य के विकिरण जब भी बाहर से भीतर प्रवेश करते हैं तब प्राणशक्ति बढ़ जाती है। अत: प्राणशक्ति बढ़ाने का स्रोत है सूर्य।[18] साथ जिनकी स्मृति दुर्बल है, ज्ञान आवृत्त है, मन विक्षिप्त या चंचल है, पढ़ने या ध्यान में मन नहीं लगता, उन लोगों के आवश्यक है कि एक घंटे तक सूर्य का आतप लें, आतापना लें। खड़े-खड़े सूर्य के आतप का सेवन साथ में प्रकाश की भावना को भी निर्दिष्ट किया गया है। इस प्रक्रिया से स्मृति बढ़ती है और अंतर्दृष्टि का

विकास होता है।[19] यह स्पष्ट है कि जब प्राण शक्ति का विकास होता है तो व्यक्ति में निहित अनेक समस्याओं का समाधान स्वत: ही होने लगता है। अर्थात् प्राणशक्ति के अभाव में जहां एक ओर व्यक्ति शरीर, मन, भावों आदि में नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, वहीं दूसरी ओर प्राणशक्ति के विकास से अनेक सकारात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। हो भी क्यों नहीं! प्राणशक्ति जीवन की आधार भूत शक्ति है। जब यह शक्ति प्रचुर मात्रा में है तो समस्या नहीं समाधान प्राप्त होता है।

सूर्यचंद्र स्वर की साधना

स्वर विज्ञान के अनुसार हमारी नासिका में दो स्वर चलते हैं जिसमें एक सूर्य स्वर कहलाता है तो दूसरा चंद्र स्वर। सूर्य स्वर का स्वभाव गर्म प्रकृति का है तो चंद्र स्वर का स्वभाव शीत प्रकृति का। स्वास्थ्य प्राप्ति तभी हो सकती है जब दोनों स्वरों में संतुलन स्थापित हो। महाप्रज्ञ जी कहना है कि मनोदशा को बदलने के लिए मस्तिष्क के दोनों गोलार्धों का संतुलन आवश्यक है। इस संतुलन को साधने के लिए चंद्र और सूर्य दोनों स्वरों की साधना करनी होती है। जहां मन को अमन या विकल्पशून्य करने की बात है वहां चंद्र स्वर का प्रयोग किया जाता है। जहां प्राणशक्ति को तीव्र करने की बात है वहां सूर्य स्वर का प्रयोग किया जाता है। इनके संतुलन के बिना जीवन में संतुलन नही आ सकता, समता नहीं आ सकती। अत: परिवर्तन के लिए आवश्यक है श्वास का अनुभव। मन को जागृत करने का एक उपाय है जीवन की दिशा का बदलना, जीवन की गति को बदलना। श्वास को बदले किना जीवन नहीं नहीं बदला जा सकता। हमारे शक्तियों का प्रतिनिधि है श्वासप्राण। जब तक प्राण का दीप जलता है तभी तक सब कुछ है।[20] अत: प्राणायाम के द्वारा स्वरों को साधा जा सकता है और मन चाहा परिणाम प्राप्त किया जा सकता है।

6. सकारात्मक दृष्टिकोण

जीवन में सकारात्मक दृष्टिकोण का अपना विशेष महत्त्व है। इसके अभाव में शक्ति का विकास संभव नहीं हो सकता है। अर्थात् जब व्यक्ति का दृष्टिकोण निषेधात्मक होता है तो प्राणशक्ति का अत्यधिक व्यय होता है। नकरात्क दृष्टिकोण के उपजीवी है निराशा और हीन भावना। ऐसे में व्यक्ति सदा निषेध की भाषा में सोचता है विधायक भाव आते ही नहीं, यदि आते भी हैं तो बहुत अल्प आते हैं।[21] स्पष्ट है कि व्यक्ति ऐसे में अपनी शक्ति का उपयोग सही दिशा में न कर गलत दिशा में करता है। क्रोध, लोभ, ईर्ष्या आदि व्यक्ति को प्रसन्न नहीं रख सकते। ऐसी स्थिति में व्यक्ति सुखी एवं शांत जीवन भी नहीं जी सकता है। जिसका दृष्टिकोण निषेधात्मक होता है, उसकी शक्ति का संचय नहीं हो सकता है। अत: निषेधात्मक दृष्टिकोण का परिष्कार कर सकारात्मक दृष्टिकोण को अपनाना शक्ति के अपव्यय को रोकता है। निषेधात्मक भाव से बचना यानि शत्रुता के भाव से बचकर मित्रता के भाव को अपना ना। मैत्री का विकास होने पर दृष्टिकोण रचनात्मक हो जाता है।[22] मैत्री का जीवन व्यक्ति को प्रसन्न रखता है। जहां मैत्री नहीं है, वहां कटुता होती है, द्वेष होता है और भी न जाने कितनी बुराइयां उसमें निहित होती हैं। स्वयं के साथ, दूसरों के साथ, प्राणीमात्र के साथ मैत्री रखने से व्यक्ति एक प्रकार के बोझ से हल्का हो जाता है क्योंकि बुरी वृत्तियां उसे दिग्भ्रमित नहीं कर पाती हैं। अत: उन वृत्तियों पर नियंत्रण आवश्यक है। उन पर नियंत्रण तभी हो सकता है जब चित्त प्रसन्न हो, मैत्रीपूर्ण हो। इससे स्वत: ही व्यक्ति अनेक उलझनों, अनेक समस्याओं से बच जाता है। मैत्री का प्रयोग सकारात्मक दृष्टिकोण का परिचायक है। अत: व्यक्ति का सकारात्मक दृष्टिकोण प्राणशक्ति के विकास में सहायक होता है।

7. सत्य के प्रति समर्पण

सत्य का अर्थ है सार्वभौम नियम। जो भी सार्वभौम नियम हैं, व्यापक सत्य हैं उनके प्रति जो समर्पित रहता है वह मानसिक दृष्टि से स्वस्थ्य रह सकता है। कर्म एक सचाई है, काल एक सचाई, वस्तु स्वभाव एक सचाई है। सार्वभौम नियमों के प्रति जो समर्पित रहता है, वह मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रह सकता है।[23] सत्य के प्रति समर्पण न होने पर मानसिक बिखराव की स्थिति बनी रहती है। मन का भटकाव शक्तियों को भी क्षीण करता है। शक्ति के अभाव में जीवन में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती है। अत: सत्य के प्रति समर्पण का भाव व्यक्ति की दिशा और दशा दोनों को ही बदल देता है।

8. सहिष्णुता

सहिष्णुता अर्थात् सहन करना। सहिष्णुता को विकसित किए बिना कोई व्यक्ति संतुलित जीवन नहीं जी सकता। अत: जीवन में सहिष्णुता का विकास अत्यंत आवश्यक है। तितिक्षा अर्थात् सहिष्णुता का इतना विकास होना चाहिए कि व्यक्ति आने वाली प्रत्येक परिस्थिति को झेल सके और उसके साथ सामंजस्य स्थापित कर सके। ऐसे में विश्व की कोई शक्ति मन को विचलित नहीं कर सकती। जिसने सहिष्णुता को साध लिया उसके लिए सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास सुविधा-असुविधा कोई अर्थवान नहीं होते। ऐसा व्यक्ति अपने मन और शरीर ऐसा निर्माण कर लेता है, जिससे वह हर स्थिति को झेलने में समर्थ और सक्षम हो जाता है।[24] स्पष्ट है कि जो व्यक्ति सहिष्णुता को अपने व्यवहार का अंग बना लेता है वह वह अनेक समस्याओं से, अनेक कठिनाइयों से बच सकता है। अन्यथा छोटी-छोटी समस्याओं उसे विचलित कर सकती हैं। विचलित व्यक्ति अपनी शक्तियों का सदुपयोग करने में अक्षम हो जाता है। अत: मानसिक स्वास्थ्य के सहिष्णुता भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

9. मंत्र साधना

मंत्र मन के संक्लेशों को दूर करने का बहुत बड़ा माध्यम है। इसलिए यह मानसिक स्वास्थ्य के लिए चिकित्सा बन जाता है। मंत्र साधना में प्राण का बहुत महत्त्व है। मन का सबंध प्राणधारा से जुड़ा हुआ है। मानसिक जप की भूमिका उपलब्ध हुए बिना मन की स्वस्थता की भी पूरी परिकल्पना नहीं की जा सकती।[25] अत: मंत्र

साधना के द्वारा भी मन को स्वस्थ रखा जा सकता है। मंत्र साधना के भी कई प्रकार है जिनके द्वारा मन को संतुलित किया जा सकता है। चाहे वह वैखरी (बोलकर) हो अथवा उपांशु (धीरे-धीरे बोलकर हो या मानसिक रूप से हो। प्रारंभिक स्तर बोलकर मंत्र साधना की जा सकती है। तदुपरांत धीरे-धीरे मंत्र को मानसिक जप में परिवर्तित किया जा सकता है। मंत्र साधना का अपना विशेष महत्त्व है जो मानसिक स्वस्थता के साथ-साथ अनेक दृष्टि से व्यक्ति के लिए लाभदायक होता है।

10. ब्रह्मचर्य की साधना

ब्रह्मचर्य का अर्थ है ब्रह्म में रमण करना, कामवासना पर अंकुश लगाना। अब्रह्मचर्य की साधना करने वाला इंद्रियों के वशीभूत होता है, इच्छाओं के वशीभूत होता है। इसके विपरीत ब्रह्मचर्य संयम का जीवन है। त्याग और तपस्या का जीवन है। सात्विक जीवन है। जीवन में इसका पालन ऊर्जा के ऊर्ध्वारोहण में उपयोगी बनता है। जिस व्यक्ति की विद्युत शक्ति ऊर्ध्वगामी बन जाती है, वह बहुत शक्ति संपन्न हो जाता है। ब्रह्मचर्य की साधना से व्यक्ति अपनी ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी बनाकर मस्तिष्क तक ले जाता है। उसकी शक्ति बढ़ जाती है, उसका प्राण शक्तिशाली बन जाता है। उसका मनोबल इतना मजबूत हो जाता है और उसमें इतना पराक्रम फूट पड़ता है कि वह जो संकल्प करता है, वह पूरा हो जाता है। जिसकी प्राण धारा काम वासना के कारण नीचे की ओर प्रवाहित होने लगती है, उसका मनोबल क्षीण हो जाता है, चेतना क्षीण हो जाती है, संकल्प टूट जाता है, मन निराशा से भर जाता है, पग-पग पर विचलन होता है, व्यक्ति किसी भी कार्य में आगे नहीं बढ़ पाता।[26] अतः कहा जा सकता है अब्रह्मचर्य जहां अनेक समस्याओं को उत्पन्न करता है वहीं ब्रह्मचर्य की साधना वास्तव में अनेक समस्याओं का समाधान है।

11. ध्यान

ध्यान स्वार्थ के लिए बहुत उपयोगी है। मानसिक समस्याओं के समाधान में इसका महत्त्वपूर्ण भूमिका है। जो व्यक्ति मानसिक समस्याओं को सुलझाना चाहता है, मानसिक शांति को घटित करना चाहता है तो उसे गहराई में जाना ही पड़ेगा। उसे अनेक तथ्यों को ज्ञात करना होगा। स्वयं को खपाए बिना मानसिक शांति उपलब्ध नहीं होती, जो बिना प्रयत्न या श्रम के मानसिक शांति को घटित करना चाहता है वह मानसिक उलझनों में और अधिक फंस जाता है। मानसिक उलझनों को सुलझाने के लिए और मानसिक शांति को घटित करने के लिए उनके प्रक्रिया से गुर आवश्यक होता है। जब तक हम पड़ने वाले प्रभावों के घटक तत्त्वों को नहीं समझ पाएंगे, तब तक मानसिक शांति का प्रश्न समाहित नहीं होगा। इस संक्रमण और प्रदूषण के वातावरण में जीने वाला व्यक्ति जब तक शोधन नहीं करेगा, तब तक समाधान की बात पर्याप्त नहीं होगी।[27] इसके अतिरिक्त ध्यान के कई लाभ है। प्राणशक्ति को बढ़ाने का महत्त्वपूर्ण प्रयोग है ध्यान।

जिस व्यक्ति की प्राण ऊर्जा नीचे की ओर काम केन्द्र की ओर प्रवाहित होती हैं उसमें निम्नतम वृत्तियां जागती हैं और जिसकी प्राणऊर्जा ऊपर ज्ञानकेन्द्र की ओर प्रवाहित होती है, उसमें श्रेष्ठ वृत्तियां जागती हैं। प्राणऊर्जा के ऊर्ध्वगमन का पथ है सुषुम्ना का पथ-सुषुम्ना मार्ग। प्राणऊर्जा के ऊर्ध्वगमन होने पर उदात्त वृत्तियां जागती हैं। वह व्यक्ति ज्ञान, आचार और व्यवहार के क्षेत्र में बहुत आश्चर्यकारी विकास कर लेता है।[28] प्राणधारा के सुषुम्ना में प्रवेश होने पर सुख ही सुख, मन शांत, आध्यात्मिक स्पंदन प्रारंभ होते हैं। यही आत्म रमण या आत्मरति है।[29] प्राण संतुलन का एक साधन है दर्शन, अपने पीढ़ित अवयव को देखना। जब हम देखना प्रारंभ करते हैं तो प्राण का संतुलन होता है, अच्छे रसायन पैदा होते हैं, एकाग्रता बढ़ती है। ये सब स्वास्थ्य को पल्लवित कर देते हैं।[30] अतः शरीर दर्शन या शरीर प्रेक्षा प्राण के संतुलन की प्रक्रिया है। ध्यान के द्वारा इस प्राणऊर्जा का ऊर्ध्वगमन किया जा सकता है।

ध्यान भाव शुद्धि का प्रयोग है। इसमें भावना का साक्षात्कार होता है। अनुभव होता है। प्रयोग के साथ भाव जुड़ने से उनका मूल्य बढ़ जाता है। ध्यान प्रक्रिया का प्रयोजन है भाव शुद्धि। ध्यान का अर्थ ही है भावों का परिवर्तन, भावों का बदल जाना, ऊर्जाशक्ति का सम्यक दिशा में उपयोग। भावों का परिवर्तन होता है तो चक्रव्यूह अपने आप टूट जाता है। भय, क्रोध, ईर्ष्या, अहंकार, कामवासना आदि ये सारे नकारात्मक भाव हैं। इन भावों को बदलकर समस्या का समाधान पाया जा सकता है।[31] हमारे भाव संस्थान के चार घटक हैं-क्रोध, मान, माया और लोभ। इस भाव संस्थान में सारी बीमारियां जन्मती हैं। शारीरिक और मानसिक बीमारी से आगे भावात्मक स्वास्थ्य में जाने पर ही वास्तविकता का सूत्र हस्तगत होगा। यह है स्थूल से सूक्ष्म की ओर प्रस्थान। यही है सच्चाई को जानने का रास्ता। ध्यान की प्रक्रिया खोज की प्रक्रिया है। व्यक्ति अपने आप को खोजता है, अपने भीतर में जाता है, गहराइयों में जाता है, परीक्षण करता है, निरीक्षण करता है और इस प्रक्रिया में वह सचाई तक पहुंच जाता है तब विवेक जागृत हो जाता है।[32] ध्यान का अभ्यास इसलिए आवश्यक है कि जो धारा हमारे भावों को उत्तेजना देती है, उन्हें मलिन बनाती है, मन में अशांति पैदा करती है, युद्ध और आतंक पैदा करती है, उस धारा को कमजोर बनाना है। उस धारा को प्रबल बनाना है जिसमें शांति और अहिंसा है, सामंजस्य और समन्वय है, मैत्री और सह अस्तित्व है।[33] मस्तिष्क का अग्र भाग, ज्योतिकेन्द्र और दर्शन केन्द्र पर ध्यान करने से भावधारा निर्मल बनती है। इन ग्रंथियों का संबंध पीनियल और पिट्यूटरी से भी है। इन ग्रंथियों का शारीरिक स्वास्थ्य से तो महत्त्व है ही पर आध्यात्मिक दृष्टि से भी महत्त्व है। शांतिकेन्द्र पर सफेद रंग का ध्यान मानसिक प्रतिमा की स्थापना, पवित्र शुक्ल लेश्या की स्थापना और पवित्र भावधारा के परिष्कार में बहुत सहायक है।[34] आचार्य महाप्रज्ञ जी कहते हैं कि विधायक भावों को प्रबल बनाने का एकमात्र उपाय है

प्रेक्षा, देखना। वस्तुत: हम देखना नहीं जाते, साथ में मिल जाना जानते हैं। हम घटना को द्रष्टा बनकर नहीं जानते उसे भोगना जानते हैं।[35] यह सत्य है कि द्रष्टा बनकर देखने से भाव शुद्ध होते हैं, शांत होते हैं, एक दिशागामी होते हैं, संतुलित होते हैं, समता लिए हुए होते हैं। यदि भावों को द्रष्टा भाव से देखने का प्रयास करना है तो प्रेक्षा उसका महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। प्राण संतुलन का एक साधन है दर्शन, अपने पीढ़ित अवयव को देखना। जब हम देखना प्रारंभ करते हैं तो प्राण का संतुलन होता है, अच्छे रसायन पैदा होते हैं, एकाग्रता बढ़ती है। ये सब स्वास्थ्य को पल्लवित कर देते हैं।[36] अत: शरीर दर्शन या शरीर प्रेक्षा प्राण के संतुलन की प्रक्रिया है। चैतन्य केन्द्रों की सक्रियता से शक्ति का स्रोत फूटता है। मन को शक्तिशाली बनाने के लए चैतन्य केन्द्रों पर ध्यान और चैतन्यों पर मंत्र की आराधना-दोनों महत्त्वपूर्ण तथ्य हैं।[37]

12. भावना

भावना का अर्थ है चित्त में एक ही भाव का रहना, चित्त को एक ही भाव से भावित करना। भाव शुद्धि में भावना का भी विशेष महत्त्व है। भाव का संबंध कर्मों के साथ है। हमारी आतंरिक चेतना के साथ वे सब जुड़े हुए हैं। वे भाव विकृतियां और बीमारियां पैदा करते हैं। बीमारियां शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की होती हैं। भावों में परिवर्तन आने पर ये मिट जाती हैं। भाव को भाव के द्वारा ही बदला जा सकता है। हीरे को हीरे के द्वारा ही काटा जा सकता है। सजातीय को सजातीय ही काट सकता है। इसी प्रकार भाव के द्वारा ही भावात्मक परिवर्तन घटित हो सकता है। विधायक भावों का प्रयोग कर निषेधात्मक भावों को समाप्त कर सकते हैं। इससे कर्म का वलय टूटता है, छिन्न-भिन्न होता है।[38] भाव से कर्म को बदला जा सकता है। जीन को भी बदला जा सकता है। इस बदलने की प्रक्रिया के माध्यम से समूची चेतना का रूपांतरण किया जा सकता है और चेतना को नए रूप में प्रस्थापित किया जा सकता है।[39] अत: भाव का, भावना का प्रयोग भी कर्मज बीमारियों के उपचार में सहायक बनता है। औषध प्रयोग के साथ इसका प्रयोग भी कार्यकारी होता है। यदि औषध के साथ मैत्री भावना, अनुकंपा की भावना का प्रयोग किया जाए तो औषध की शक्ति वृद्धिंगत होती है। यदि बीमारी क्रूरता के कारण उत्पन्न हुई है तो क्रूरता की वृत्ति का परिष्कार कर सबके साथ मैत्री की भावना को पुष्ट किया जाता है, बीमारी नष्ट हो जाती है यदि रोगी में मैत्री, प्रमोद और करुणा की भावना की भावना पैदा की जा सके, उसके मन की प्रसन्नता और निर्मलता को बढ़ाया जा सके, क्रोध, मान, माया, घृणा, ईर्ष्या आदि भावनाओं का परिष्कार किया जा सके तो एक आध्यात्मिक चिकित्सा पद्धति का उन्नयन हो पाएगा और उस पद्धति का आधार होगा कर्मवाद।[40] व्यक्ति जैसी भावना करता है, उससे भावित होता है। बार-बार एक ही भावना व्यक्ति के भीतर रासायनिक परिवर्तन लाने में सक्षम है। अत: कर्म संस्कारों से मुक्ति के लिए भावना का प्रयोग भी प्रभावकारी है।

13. अनुप्रेक्षा

भाव परिवर्तन का महत्त्वपूपर्ण सूत्र है अनुप्रेक्षा। इसके लिए कायोत्सर्ग का अभ्यास करना होता है। इसमें गहन सघनता, एकाग्रता, निष्ठा और आस्था के साथ निश्चित शब्दावली में पांच-दस मिनट तक सुझाव का प्रयोग किया जाता है। पहले कुछ क्षणों तक सुझाव का प्रयोग उच्चारण पूर्वक किया जाता है फिर मन ही मन आतंरिक परिणमन प्रारंभ हो जता है। भाव में वह शक्ति है कि वह पदार्थ को भी बदल सकता है, पदार्थ में परिणमन कर सकता है। हमारा प्रत्येक भाव परमाणु से जुड़ा होता है। फिर चाहें वह किसी सीमा में रसायन बन जाए, किसी सीमा में विद्युत का प्रवाह बन जाए। वे सारे कार्य परमाणुओं में घटित होते हैं। वे परमाणु अनुप्रेक्षा से रूपांतरित होने लग जाते हैं। अत: कायोत्सर्ग की मुद्रा में अनुप्रेक्षा का प्रयोग न केवल शारीरिक बीमारियों को मिटाने में सक्षम है बल्कि मानसिक बीमारियों को मिटाने में भी बहुत बड़ा प्रयोग है। भाव परिवर्तन की प्रक्रिया के द्वारा, अनुप्रेक्षा के द्वारा नकारात्मक भावों को सकारात्मक भावों में बदला जा सकता है।[41] (कर्मवाद, पृष्ठ 196) कायोत्सर्ग की अवस्था में कायगुप्ति, वचन गुप्ति और मनोगुप्ति स्वत: सध जाती है। इस स्थिति में भावों को परिवर्तित करने की बात भी सरल हो जाती है। जब तक शरीर, मन और वाणी को विश्रांति नहीं मिलेगी तब तक अंतर्जगत में प्रवेश कर पाना आसान कार्य नहीं हो सकेगा। इस तनाव रहित अवस्था में अवचेतन मन से संपर्क साधा जा सकता है और अपनी बात को भीतर में पहुंचाया जा सकता है।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि स्वास्थ्य के सूत्रों का यदि प्रामाणिकता से पालन किया जाए तो परिणामत: व्यक्ति तन, मन और भावों से स्वस्थ रह सकेगा, सुख शांति का जीवन जी सकेगा, दूसरों के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सके।

सन्दर्भ सूची -

1 अर्हम, पृष्ठ 22-25
2 सोया मन जग जाए, पृष्ठ 109-110
3 अध्यात्म विद्या, पृष्ठ 121-122
4 चित्त और मन, पृष्ठ 103
5 अहिंसा के अछूते पहलू, पृष्ठ 35-36
6 जैनयोग, पृष्ठ 123
7 मैं कुछ होना चाहता हूं, पृष्ठ 52-53
8 मन के जीते जीत, पृष्ठ 17-20
9 महावीर की साधना का रहस्य, पृष्ठ 234-235
10 महावीर का स्वास्थ्य शास्त्र, पृष्ठ 91
11 मन के जीते जीत पृष्ठ 21
12 अर्हम, पृष्ठ 93-94
13 मन के जीते जीत, पृष्ठ, 203-204
14 मन के जीते जीत, पृष्ठ 46

15 महवीर का स्वास्थ्य शास्त्र, पृष्ठ 109
16 महावीर का स्वास्थ्य शास्त्र, पृष्ठ 110–114
17 मन के जीते जीत, पृष्ठ 24
18 अर्हम्, पृष्ठ 37
19 अर्हम, पृष्ठ 44
20 चित्त और मन, पृष्ठ 122
21 सोया मन जग जाए, पृष्ठ 112
22 सोया मन जब जाए, पृष्ठ 112
23 चित्त और मन, पृष्ठ 101
24 चित्त और मन, पृष्ठ 102
25 चित्त और मन, पृष्ठ 106–107
26 मन के जीते जीत, पृष्ठ 258
27 अवचेतन मन से संपर्क, पृष्ठ 68–69
28 मुक्तभोगभोग की समस्या, पृष्ठ, 50
29 किसने कहा मन चंचल है, पृष्ठ 82
30 महावीर का स्वास्थ्यशास्त्र, पृष्ठ, 99
31 कर्मवाद, पृष्ठ 195
32 कर्मवाद, कर्मवाद 147
33 नया मानव नया विश्व, पृष्ठ 123
34 नया मानव नया विश्व, पृष्ठ 131
35 कैसे सोचें, पृष्ठ 181
36 महावीर का स्वास्थ्यशास्त्र, पृष्ठ, 99
37 चित्त और मन, पृष्ठ 107–108
38 कर्मवाद, पृष्ठ 199
39 चित्त और मन, पृष्ठ 161
40 महावीर का स्वास्थ्यशास्त्र, पृष्ठ 61

संदर्भ ग्रंथ

1. शिक्षा मनोविज्ञान, एस. एस माथुर, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
2. महावीर का स्वास्थ्य शास्त्र, आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन, चुरु (राज) 1995।
3. चेतना का ऊर्ध्वारोहण, आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रस्तुति 1997।
4. अर्हम्, आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन, 1992।
5. मन के जीते जीत, आचार्य महाप्रज्ञ, तुलसी अध्यात्म नीड़म् 1990।
6. सोया मन जग जाए, आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती प्रकाशन, 1998।
7. किसने कहा मन चंचल है: आचार्य महाप्रज्ञ, नवम संस्करण, जैन विश्व भारती लाडनूं, 1997
8. अवचेतन मन से संपर्क आचार्य महाप्रज्ञ, तृतीय संस्करण, जैन विश्व भारती लाडनूं, 1997
9. मैं हूं अपने भाग्य का निर्माता:, आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन, 1999
10. चित्त और मन, आचार्य महाप्रज्ञ, तृतीय संस्करण, जैन विश्व भारती लाडनूं, 1994
11. मैं कुछ होना चाहता हूं: आचार्य महाप्रज्ञ, तुलसी अध्यात्म नीडम् 1983
12. महावीर की साधना का रहस्य: आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ, नई दिल्ली 2000
13. अध्यात्म क 13. प्रथम सोपान: सामायिक, आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ चुरु, 1996
14. नया मानव, नया विश्व: आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्व भातर प्रकाशन, 1995
15. कैसे सोचें: आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्व भारती, 2000
16. अभ्युदय: आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्व भारती प्रकाशन, 1990
17. कर्मवाद: आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन, 1995
18. जैन दर्शन: मनन और मीमांसा: आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन, 2010

ISSN 2278 - 0327

भारतीय समाज, युवक और उनकी समस्यायें

डॉ. हरेश नारायण पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्रीय अध्ययन विभाग
दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय
गया, बिहार

शोध सार

प्रस्तुत शोध प्रपत्र में भारतीय समाज में युवाओं और उनकी समस्याओं जैसे उनकी शिक्षा-दीक्षा; उनके रोजगार; मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति; उनके तनाव, असंतोष, संघर्ष व आन्दोलनों में उनकी भागीदारी के कारणों व परिणामों की चर्चा पहले भाग में की गयी है। प्रपत्र के दूसरे भाग में युवाओं की समस्याओं को समझने के सैद्धांतिक आधार तथा भारतीय सरकारों के समय-समय पर विभिन्न प्रयासों का वर्णन किया गया है। अंत में निष्कर्ष के साथ-साथ युवाओं की समस्याओं के निदान हेतु इसमें सुझाव भी दिया गया है।

प्रमुख शब्द- युवा, संघर्ष, आन्दोलन, समाज

भारतीय समाज का युवक एक महत्वपूर्ण इकाई है। आज का युवक बड़ा ही असंतुष्ट और आक्रोशित दिखाई देता है। यह तनाव व आक्रोश आंदोलनों व व्यवस्था के विरुद्ध उनके संघर्ष में दिखाई देता है। यह संघर्ष व आंदोलन कभी जाति के नाम पर, तो कभी धर्म, कभी प्रांतीय, कभी शिक्षा, कभी व्यापार, कभी भ्रष्टाचार और कभी नौकरी या एंप्लॉयमेंट/रोजगार के नाम पर देखा जाता है। समाचार पत्रों में, मीडिया में, टीवी चैनलों पर आंदोलनरत युवा, हड़ताल, पथराव, जुलूस, प्रदर्शन, घेराव तोड़फोड़, मार-पीट आदि में आये-दिन लिप्त दिखाई देते रहते हैं। युवाओं के ऐसे असंतोष व अनुशासनहीनता की वजह से उन्हें व उनके उपस्थिति को भारतीय समाज में असभ्यता, असंतोष, घेराव, तोड़-फोड़, मारपीट, जुलूस आदि का पर्यायवाची भी माना जाता है। पर यहां यह प्रश्न उठता है कि इन सभी के लिए उत्तरदायी कौन है। भारत के पूर्व शिक्षा मंत्री डॉ.राव का कहना है कि विद्यार्थियों में यह अनुशासनहीनता एक सांस्कृतिक, आर्थिक, समाजशास्त्रीय और शैक्षणिक समस्या है। वैसे तो हर देशों या समाजों में युवाओं ने संरचनात्मक भूमिकाएं निभाई है पर समय-समय पर आगे बढ़कर के सरकार व समाज की दमनकारी नीतियों का विरोध करते हुए सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक परिवर्तन के वे वाहक भी रहे हैं। युवाओं का जब भी जिक्र होता है तो इन्हें छात्रों के रूप में देखा जाता है तथा युवाओं में असंतोष को छात्र असंतोष के रूप में भी देखा जाता है। युवा यहां अपने को असहाय, असुरक्षित, दीन-हीन व असमर्थ महसूस कर रहा है। विद्यार्थियों या युवाओं से प्राय: यह आशा की जाती है कि वह पढ़ाई-लिखाई करके उपयोगी व उत्तरदायी नागरिक बने। इसके लिए समाज चाहता है कि युवा समाज द्वारा बनाए गए मान्यता प्राप्त साधनों का उपयोग करें। ये साधन है- शिक्षा प्राप्त करना, परीक्षा पास करना, योग्यता व अनुशासन का पालन करना, योग्य नागरिक बनना आदि। आज का युवक अपने चारों ओर ऐसी परिस्थितियों को देख रहा जो उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करते हुए दिखाई देती है। वह अभाव की स्थिति में है चारों ओर भाई भतीजावाद, भ्रष्टाचार, जातिवाद, असुरक्षा, अंधकार व दिशाहीनता को देख रहा है। वह ऐसी स्थिति में समाज के मूल्यों व आदर्श नियमों को आत्मसात नहीं कर पाता है। युवा वर्ग अपने परिवार, मित्र-समूह, शिक्षण संस्थाओं आदि से संबंधित रहा है पर आज ये सभी युवाओं को नियंत्रित करने में असमर्थ है वह हर वस्तु व्यवहार को अपने तर्क व दृष्टिकोण से देखना व समझना चाहता है न कि उसके वास्तविक रूप में। आज का युवा अधिक हिंसक होता जा रहा है। उनमें संख्या शक्ति है उनको नेताओं व राजनैतिक दलों का समर्थन इसी वजह से आसानी से प्राप्त हो जाता है। युवाओं के खिलाफ कार्यवाही भी प्रशासन की असमर्थता उनकी सक्रियता को और बढ़ाने में योगदान देता है। युवाओं में असंतोष काफी व्यापक है। यह असंतोष मुख्यत: चार क्षेत्रों में-आर्थिक, राजनैतिक, शिक्षा व सार्वजनिक क्षेत्रों में दिखाई देता है (गुप्ता और शर्मा, 81-83)। युवाओं के जीवन में आर्थिक असुरक्षा व्याप्त है। शिक्षा प्राप्ति के बाद वे नौकरी हेतु आवेदन करते हैं पर साक्षात्कार में असफलता मिलती है। वे निराश होते हैं उनमें व्याप्त असंतोष और बढ़ जाता है। रोजी रोटी कमाने की सुविधाओं का अभाव होता है। युवा सरकार,मंत्री व उद्योगपतियों के खिलाफ आंदोलन चलाते हैं। कभी-कभी ये हिंसात्मक तरीके अपना करके लूटपाट, मारपीट, हत्या आदि करके अपने आर्थिक हितों की पूर्ति करते हैं। युवा छात्र अक्सर पब्लिक स्थानों पर यह नारा लगाते हैं कि हमें डिग्री नहीं नौकरी चाहिए। एक तो नौकरियों में आरक्षण है तो दूसरे नौकरियां बहुत कम है। यह स्थिति समस्याओं को और बढ़ा रही है। वोटों की राजनीति युवाओं के हितों की अनदेखी कर रही है। सभी राजनेता व राजनीतिक दल अपने हितों की पूर्ति हेतु युवा शक्ति को काम में लगा करके अपने हितों की पूर्ति करने में लगे हैं। युवा वर्ग में भी राजनीति

करने, चुनाव लड़ने व नेता बनने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। सभी राजनीतिक दल अपने युवा संगठन बनाए हैं। ये दल युवा शक्ति का दलीय स्वार्थ की पूर्ति के लिए प्रयोग करते हैं। बंगाल, केरल, आंध्रप्रदेश, नई दिल्ली आदि प्रदेशों व उनके विश्वविद्यालयों में नक्सलवादी आंदोलन प्रकट हुआ है। ये हिंसा, तोड़फोड़, लूटपाट, आगजनी व हत्याओं से परिवर्तन लाना चाहते हैं। भारत में सभी शिक्षण संस्थाओं जैसे-कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में हड़ताल, आंदोलन, घेराव, तोड़-फोड़, आगजनी की घटनाएं आम है। कुलपतियों, प्राचार्यों, प्राध्यापकों, कुलसचिवो आदि के विरुद्ध घेराव, भूख हड़ताल, मारपीट का युवा छात्र व छात्र संगठन अक्सर सहारा लेते हैं। सरकारी व प्राइवेट संपत्तियों को नष्ट करते हैं। ये सब युवाओं के असंतोष व सुरक्षा की तरह-तरह की अभिवृत्तिया है। वे पढ़ाई-लिखाई में न केवल अपना नुकसान करते हैं पर दूसरे युवाओं को भी गुमराह करते हैं। युवाओं व छात्रों की सक्रियता सार्वजनिक जीवन में समाजों, सम्मेलनों, सिनेमाघरों, खेल मैदानों आदि में हिंसा व तोड़-फोड़ में दिखाई देती है। नैतिकता व नैतिक मूल्यों को छोड़कर युवा अशोभनीय बहुत से कार्यों में संलग्न है। आज युवा महिलाओं को छेड़ने, रेप करने, छीनैती करने, टिकट बेचने से ले करके मादक दवाओं के सेवन, माघपान व उसकी बिक्री आदि में संलग्न है। यह सब युवाओं में नैतिक मूल्यों में गिरावट का परिणाम है जो अक्सर माता-पिता, भाई-बंधु और वृद्धजनों प्रति अश्रद्धा व मनमुटाव में दिखाई देता है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग समिति ने युवा विद्यार्थियों के आंदोलनो के कारणों में आर्थिक कारण, प्रवेश, परीक्षा व अध्यापक के चालू प्रतिमानों में परिवर्तन की खोज करना, विश्वविद्यालय या महाविद्यालय में ठीक से कार्य न होना, विद्यार्थियों व प्राध्यापकों में टकराव; प्रांगण में अपर्याप्त सुविधाएं जैसे-खराब छात्रावास, भोजन, कैंटीन, पेयजल का अभाव तथा नेताओं द्वारा राजनीतियों का भड़काया जाना है (आहूजा 189; तथा गुप्ता और शर्मा 185-190)। जोसेफ डिबोना ने भी उत्तर प्रदेश के विश्वविद्यालयों में युवा विद्यार्थियों के आंदोलनों हेतु तीन कारण-आर्थिक, सामाजिक-मनोवैज्ञनिक और राजनैतिक कारण बताए हैं। सामाजिक-मनोवैज्ञानिक कारण में दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली, प्राध्यापक-शिक्षार्थियों में बढ़ती दूरी, भ्रष्टाचार, अयोग्यता आदि की चर्चा की है। आर्थिक कारण में शिक्षा का रोजगार परक न होना और राजनैतिक कारण में राजनैतिक हस्तक्षेप व नेताओं द्वारा युवा छात्रों को प्रश्रय देना आदि है।

युवा आंदोलन व असंतोष के कई लक्षण होते हैं। ये लक्षण मुख्यतः सामूहिक असंतोष दुष्कार्यात्मक स्थितियां; सार्वजनिक चिंता और विद्यमान सामाजिक प्रतिमानो की आवश्यकता है। इसके साथ युवाओं के साथ अन्याय-भावना से कार्य; युवाओं का असंतोष, कुंठा, वंचना के सामाजिक स्रोत; नेतृत्व का उभरना व कार्य और युवाओं के लिए संगठन व उत्तेजना के प्रति सामूहिक प्रतिक्रियाएँ भी है। युवा विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता का विकास उसकी व्याख्या करने में असंगत नहीं प्रतीत लगता है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की नियुक्त समिति ने 1960 में विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता में तीन प्रमुख व्यवहारों प्राध्यापकों के प्रति निरादर, लड़कियों के साथ दुर्व्यवहार और राष्ट्र की संपत्ति को नष्ट करने की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण रही है। युवा आंदोलन में विद्यार्थियों का आंदोलन प्रमुख रूप से देखा जाता है जो पूरे भारत जैसे-गुजरात, आसाम, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, पंजाब, बिहार, नागालैंड आदि में पाया जाता है। गुजरात में मार्च 1995 में आरक्षण विरोधी आंदोलन हुए जो मार्च में ही हिंदू मुस्लिम दंगे में तब्दील हो गया। राने आयोग की 1981 में नियुक्ति हुई तथा अक्टूबर 1983 में उसकी सिफारिश आयी जिसे स्वीकार करते हुए गुजरात सरकार ने पिछड़े वर्गों के विद्यार्थियों का कोटा 10% से बढ़ाकर 28% कर दिया। राने कमीशन ने जाति को नहीं वरन् आय व व्यवसाय को पिछड़े वर्ग का आधार माना था। विद्यार्थियों के इस आंदोलन में गुजरात के अभिभावक भी उनके साथ आ गए। इस आन्दोलन में पुलिस बल भी हिंसक हो गयी थी। शीघ्र ही गुजरात सरकार विद्यार्थियों की बात मान करके वार्ता आरम्भ कर दिया था। सरकार ने अपने आरक्षण नीति पर पुनर्विचार करने की सहमति देते हुए आन्दोलन समाप्त कराया। आसाम में युवा आन्दोलन मुख्य रूप से आसू (AASU) और उल्फा (ULFA) संगठन की भूमिका से देखा गया। आसाम में युवा आन्दोलन बंग्लादेश के शरणार्थियों कों लेकर असमियों और गैरअसमियों, और आदिवासियों व गैरआदिवासियों के बीच प्रतिस्पर्धा को ले करके हुई। उनका कहना था कि आंतरिक उपनिवेशवाद ने स्थानीय प्रमुख संसाधनों जैसे चाय, लकड़ी और तेल पर कब्जा कर लिया है जिससे आसाम का विकास आर्थिक तंगी की वजह से नहीं हो पा रहा है। केंद्र सरकार की अनुमति से पड़ोसी राज्यों से सहकर्मियों की बाढ़ सी आसाम में आ गई थी। प्रदेश के युवाओं ने आसू आंदोलन का श्रीगणेश किया तथा इसकी समाप्ति 1985 में विधानसभा चुनाव जीतकर सरकार बनाने से हुई। उल्फा ने राज्य सरकार का विरोध करके राज्य में समानांतर सरकार स्थापित किया। उल्फा युवाओं में विद्रोह को केंद्र सरकार ने कुचलते हुए राज्य सरकार को सत्ता से हटाकर के राष्ट्रपति शासन लगाया। सन 1990 में पूरे भारत में मंडल विरोधी युवा आंदोलन हुआ जिसमें हिंसक रूप से छात्रों के आत्मदाह का प्रकरण पूरे भारत को झकझोर दिया। यह आंदोलन जनता सरकार के समय अगस्त 1990 में अन्य पिछड़ी जातियों (ओबीसी) को 27 प्रतिशत आरक्षण देने के विरोध में किया गया था। धीरे-धीरे बाद में सर्वोच्च न्यायालय ने ओबीसी आरक्षण को लागू करने का रास्ता अपने फैसले से साफ कर दिया।

युवा आंदोलनों को तीन श्रेणियों- प्रत्ययकारी उत्तेजनापूर्ण आंदोलन, विरोधात्मक उत्तेजनापूर्ण आंदोलन और क्रांतिकारी पूर्ण आंदोलन में बांट के देखा जाता है। प्रथम प्रत्ययकारी आंदोलन में युवा

सत्तारूढ़ व्यक्तियों के साथ मिलकर, उनसे चर्चा करके उनको समझाने व उनके विचार बदलने तथा उनकी सहमति के लिए दबाव बनाते हैं। यह कार्य युवा दोनों- अधिक व कम महत्वपूर्ण विषयों पर करते हैं। इसमें प्रदर्शन, नारेबाजी, सत्तारूढ़ व्यक्तियों से मिलना, उन्हें एक साथ समझाना, अपने मुद्दे हेतु राजी कराना आदि में युवा व्यस्त दिखते हैं। इस आंदोलन में युवा निष्क्रिय युवाओं को सक्रिय व उत्तेजित करके जनसंपर्क प्राप्त करता है। इसमें असंतोष व रोष को हानिकारक अभिव्यक्ति देने का काम करता है। दूसरे प्रकार के आंदोलन में युवा अपने उद्देश्यों की प्राप्ति सत्तारूढ़ लोगो का विरोध करके अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते है। प्रशासन को युवाओं के पक्ष में निर्णय लेना पड़ता है और जैसे- विश्वविद्यालय परीक्षा उसके दिनांक, मूल्यांकन प्रणाली, पुनर्मूल्यांकन व्यवस्था, प्रदेश सरकार के नौकरियों हेतु सक्रियता दिखाने तक,आवागमन हेतु सुविधाओं देना आदि इसके उदाहरण हो सकते हैं। तीसरा प्रकार क्रांतिकारी उत्तेजनापूर्ण आंदोलन जिसका प्रमुख उद्देश्य शैक्षणिक व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन लाना है। जैसे युवा आंदोलन विद्यार्थियों को अगली कक्षा में प्रमोटकर उन्हें पिछली कक्षा की परीक्षा उत्तीर्ण कराने हेतु विश्वविद्यालय प्रशासन से पुन: अवसर देने के लिये, क्रांतिकारी आंदोलन देश में 1984 में असम में क्र्आसूक्र का उत्तेजनापूर्ण आंदोलन, असम का वोडो आंदोलन, भारत में मंडल कमीशन का छात्रों द्वारा विरोध तथा इसमें हिंसक रूप का प्रदर्शन आदि है। इन सभी युवा आंदोलनों की सीमाएं, उसमें भाग लेने वालों की संख्या, उनकी भावनाएं, उनके नेतृत्व और बाहरी नियंत्रण पर निर्भर होती है।

युवा आंदोलनों की व्याख्या हेतु दो प्रकार के- मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय आधार जो व्यक्ति व समाज तत्वों पर क्रमश: बल देता है। मनोवैज्ञानिक सिद्धांत-असंतोष व व्यक्तिगत असमायोजन तथा समाजशास्त्रीय सिद्धांत सापेक्षिक वंचना तथा संसाधन समूहन का सिद्धांत है। असंतोष युवाओं के आंदोलनों का प्रमुख कारण है। वे युवा जिनकी ऊंची स्थिति नहीं है, इनके पास जो भी है उसी से वे सुखी हैं, संतुष्ट है वे युवा आंदोलन में कोई रुचि नहीं लेते। ऐसे युवा जो अन्याय से उत्पीड़ित है, जो विद्यमान व्यवस्था से नाराज हैं और असंतुष्ट हैं, वे सत्ता में परिवर्तन चाहते हैं। स्वतंत्रता के बाद युवाओं में भ्रष्टाचार, असमानता, शोषण, राजनैतिक, सामाजिक-सांस्कृतिक, पुलिस प्रशासन की निर्दयता, कट्टरता और सामाजिक विरोध को सहन किया है। ऐसे व्यक्ति जो समाज के व्यवस्था से अप्रसन्न है, कुंठित है, अन्याय ग्रस्त हैं तथा व्यवस्था से दबे हुए व्यक्ति है, इन्हें हम असमायोजित व्यक्ति कहते हैं। ये व्यक्ति उन लोगों की अपेक्षा जो संतुष्ट व आनंदित है आंदोलन की ओर अधिक आकर्षित होते हैं। उत्तेजनापूर्ण आयोजन के समर्थक प्रमुख्यत: समाज के कुंठित व असमायोजित कार्य होते हैं। वैसे यहां यह भी कहा जा सकता है कि किसी कार्य की अपूर्णता का मापन करना आसान नहीं है। किसी भी आंदोलन का कारण केवल व्यक्तिगत असफलता व कुंठा नहीं हो सकती है। सापेक्षिक वंचना का सिद्धांत एक अनुभूति है, यह तब होती है जब व्यक्ति अपनी तुलना अपने समूह के दूसरे सदस्य से करते हुए अपने को वंचित समझता है या दूसरों से कम भाग्यशाली समझता है। सापेक्षिक वंचना का सिद्धांत अल्पविकसित समाजों में या अल्पविकसित देशों में काफी बढ़ रहा है। भारत में भी युवा इस सिद्धांत के वंचना को महसूस करते हुए अपनी तुलना अपने समूह के अन्य सदस्यों से विभिन्न क्षेत्रों जैसे- शिक्षा, रोजगार, व्यवसाय, पद और प्रतिष्ठा, आर्थिक सुरक्षा, पदोन्नति आदि में करते हुए दिखाई देते हैं। ऐसा माना जाता है कि सामाजिक व्यवस्था और समाज के अभिजन युवाओं की आशाओं की या प्रत्याशाओं की पूर्ति करेंगे। पर जब युवाओ की प्रत्याशाये पूरी नहीं होती है तो वे आंदोलन का सहारा लेते हैं या लेने को मजबूर होते हैं। युवाओं की इस प्रकार की सापेक्षिक वंचना का अनुमान लगाया सकता है। अंतिम संसाधन समूहन या संग्रहण के सिद्धांत का मानना है कि आंदोलन की सफलता या असफलता नेतृत्व, संगठन और रणनीति पर निर्भर होती है। संसाधन जुटाने के प्रयास में जनता का समर्थन, संगठन व अधिकारीगण, नियत कारण की शक्ति, लक्ष्य समूह आदि महत्वपूर्ण है। इन संसाधनों को जुटाने का प्रयास व सफलता आंदोलनों की सफलता निश्चित करती है (आहूजा : 190-93)।

युवा असंतोष कों दूर करने के लिए सरकार के प्रयास के रूप में तीन प्रमुख कमेटिया- नरेन्द्र देव कमेटी, कोठारी कमीशन और मुदलियार आयोग प्रमुख है। नरेन्द्र देव कमेटी (1939) ने निम्नवत् सुझाव दिये है- नरेंद्र देव कमेटी (1939) ने कहा है कि अनुशासनबद्ध जीवन जीने वाले छात्रों की प्रशंसा की जाए, अध्यापकों एवं अभिभावकों की संयुक्त गठित कमेटी करके तनाव कम करने का प्रयास और उनके सुझाव; देश से 15 छात्रों को प्रत्येक छात्र की देख-रेख में रखा जाए; शिक्षा संहिता मैं निर्धारित आयुष से 2 वर्ष कम आयु के छात्र को भी कक्षा में प्रवेश की आज्ञा दी जाए; प्राध्यापकों को ही छात्रों को दंड व उनके निष्कासन का अधिकार दिया जाए; प्रत्येक विद्यार्थी को 40 घंटे तक श्रम और समाज सेवा कार्य में लगाया जाए; आज्ञाकारी युवकों के लिए विशेष उपयोगी कार्यक्रम चलाएं; छात्रों के केवल उपयोगी चल-चित्र दिखाया जाए और विद्यार्थियों के कार्य के लेखा जोखा का रजिस्टर बनाया जाए। मुदलियार आयोग (1948) ने युवा छात्रों के असंतोष को कम करने के लिए सुझाव देते हुए बताया है कि कक्षा में छात्रों की संख्या कम करके अध्यापकों और छात्रों में निकट संपर्क स्थापित करें; विद्यालयों में छात्र समितियां बनाकर उन्हें अनुशासन बनाए रखने का कार्य दिया जाए; छात्रों में अनुशासन का भाव जागृत करें; छात्रों को राजनीति में भाग लेने को प्रमोट न किया जाए; छात्रों को धार्मिक व चरित्र निर्माण की शिक्षा दिया जाए और छात्रों से समाज निर्माता तथा श्रेष्ठ मानव होने का कार्य कराया जाए (गुप्ता और शर्मा :197-98)। शिक्षा से विद्यार्थियों में

संस्कार का निर्माण करने के लिए राष्ट्रीय जीवन में उन्हें भूमिका निभाने योग्य बनाये। यह सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम है। शिक्षा से समाज का अभाव, बीमारी व अज्ञानता पर नियंत्रण प्राप्त होता है। शिक्षा से ही छात्र समाज व मानवता के प्रति अपने कर्तव्यों को जानता है। छात्र शिक्षा से ही प्रजातांत्रिक मूल्यों- न्याय, स्वतंत्रता, बंधुत्व और समानता का आंतरिकीकरण करता है। देश की शिक्षा व्यवस्था व शिक्षण संस्थाओं का कार्य शिक्षा का प्रसार करके छात्रों के चरित्र निर्माण, आर्थिक विकास, अमीरी गरीबी का भेदभाव तथा बेकारी को कम करना, आशावान व्यक्तित्व, कर्तव्यपरायणता, कठिन परिश्रम तथा समानता आचरण के अवसर प्रदान करते हुए छात्रों के असंतोष को कम करने का उपाय किया जा सकता है। छात्रों में असंतोष को रोकने हेतु शिक्षा व्यवस्था में उत्पन्न कमियों को रोकना, अध्यापक-शिक्षार्थी संबंधों में निकटता ले आना, उचित छात्र नेतृत्व का विकास करना, शिक्षा भारतीय आदर्शों के अनुरूप सामाजीकरण में सहायक, छात्र व अध्यापक अनुपात घटा करके और राजनीतिक दलों का शिक्षा व्यवस्था में हस्तक्षेप रोकने का सुझाव दिया (गुप्ता और शर्मा; 194-96) है।

राधाकृष्णनन विश्वविद्यालय आयोग (1948-49) ने विद्यार्थियों मे आत्मसम्मान तथा आत्मविश्वास जैसे सुगुणों को विकसित करने की प्रवृत्ति उत्पन्न करने पर जोर दिया। आयोग ने अनुशासनपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए तीन सुझाव दिए हैं। यह सुझाव-विद्यार्थियों में दलगत नहीं वरन् अच्छी सरकार में रुचि लेने के लिए उत्साहित करना; एक परिवर्तित अनुशासकीय व्यवस्था को प्रोत्साहित करना जिसमें विद्यार्थी सरकार विकसित किया जाए और समाज में समाज के सभी वर्ग जैसे- अध्यापक, माता-पिता, राजनेता, जनता और समाचार पत्रों से विद्यार्थियों में अच्छा जीवन विकसित करने के लिए सहयोग देने हेतु प्रोत्साहित किया जाए। इस आयोग ने बताया कि विद्यार्थियों को अन्य सुविधाओं को देने हेतु एक संगठन विकसित किया जाए।

कोठारी कमीशन (1964-66) ने बताया कि शैक्षणिक व्यवस्था के साथ-साथ वह कारक भी छात्र असंतोष हेतु जिम्मेदार है। इस कमीशन ने सुझाव दिया है कि विद्यार्थियों में असंतोष पैदा करने वाली शैक्षणिक कमियों को दूर करना तथा असंतोष की घटनाओं के घटित होने से पहले उचित सलाहकार एवं प्रशासकीय संगठन की स्थापना करना। इसके साथ ही साथ शैक्षणिक स्तर को ऊंचा उठाने, विद्यार्थियों एवं अध्यापकों के स्तर को ऊंचा करने तथा सभी कॉलेजों व विश्वविद्यालयों में माध्यमिक शिक्षा अध्यापकों एवं विद्यार्थियों की संयुक्त केंद्रीय कमेटियों की स्थापना की जाए।

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि भारतीय समाज व सरकारों को युवाओं की समस्याओं का निदान अति शीघ्रता व प्राथमिकता के साथ मिलजुलकर करना चाहिये। सम्भवत: इस समस्या के निदान में और सभी बाधाओं के साथ-साथ भारतीय समाज में इसका राजनीतिकरण करना सबसे प्रमुख समस्या है। इसके सम्पूर्ण निदान हेतु समाज और सरकारों की सामाजिक-आर्थिक शक्ति व सामर्थ्य के साथ-साथ विकल्परहित इच्छाशक्ति की आवश्यकता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची-

- गुप्ता, एम0 एल0 एवं शर्मा, डी0 डी0, समकालीन भारत में सामाजिक समस्याएँ , (आगरा : साहित्य भवन, 1981).
- आहूजा, राम, सामाजिक समस्याएँ, (जयपुर : रावत पब्लिकेशन्स, 1994).
- गुप्ता, एम0 एल0 एवं शर्मा, डी0 डी0, भारतीय सामाजिक समस्याएँ, (आगरा : साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, 2000).
- आहूजा, राम, भारतीय समाज, (जयपुर :रावत पब्लिकेशन्स, 2007).

ISSN 2278 - 0327

ई-प्रशासन - ग्रामीण व्यवस्था में नवाचार

प्रो. स्वतन्त्र सिंह चौहान
विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग
स्कूल ऑफ बिजनेस स्टडीज,
शोभित इंस्टीटयूट ऑफ इंजीनियरिंग एण्ड टेक्नोलॉजी
एनएच-58, मोदीपुरम, मेरठ (उ.प्र.)

ओमेन्द्र सिंह
शोधार्थी, अर्थशास्त्र विभाग
स्कूल ऑफबिजनेस स्टडीज,
शोभित इंस्टीटयूट ऑफ इंजीनियरिंग एण्ड टेक्नोलॉजी
एनएच-58, मोदीपुरम, मेरठ (उ.प्र.)

सारांशिका:-

नवाचार कुछ नया एवं उपयोगी तरीका है जिसे अर्थतन्त्र का सारथी माना जाता है। नई स्थिति के प्रति जागरूकता और विशेष कौशल में प्रवीणता प्राप्त करना आत्मविश्वास का संबल माना जाता है। प्रस्तुत शोध लेख के माध्यम से लेखक का उद्देश्य ई-प्रशासन एक प्रवीणता से आच्छादित कौशल है वही ग्रामीण व्यवस्था में नई स्थिति से सामजंस्य स्थापित करते हुए नवाचारों को ग्रहण करने के प्रति जागरूक करना है। जिससे कि व्यक्ति अभिविन्यास कार्यक्रमों का ज्ञान रख सके और उसमे अपनी सशक्त भूमिका का निर्वहन कर सके। ई-प्रशासन ग्रामीण परिवेश में नवाचार के माध्यम से नित नई सफलता के डगर पर अग्रसर हो रहा है। जिससे व्यक्ति में उत्पन्न नई ऊर्जा, नया ज्ञान, नई सोच, नए विचार या किसी उत्पाद प्रक्रिया, स्टार्टअप के प्रति रूझान या अन्य सेवा में थोड़ा कुछ बड़ा परिवर्तन लाने से है। इन सभी से नवचेतना और उत्साह का संचार भी होता है। जिससे ग्रामीण व्यवस्था विकासवादी और नव गत्यात्मक होती है। क्योंकि परिवर्तन और नवाचार एक दूसरे के पर्यायया पूरक हैं। नवाचार कोई नया कार्य नहीं है। वरन् किसी भी कार्य को नए तरीके से करना ही नवाचार है। प्रश्न है कि ई-प्रशासन हेतु ग्रामीण व्यवस्था नवाचार की आवश्यकता क्यों है ? दृष्टव्य है कि विश्व में बहुत तेजी से परिवर्तन हो रहें हैं, छोटे-बड़े का अन्तर नहीं है, कोई तेज या सुस्त नहीं है। अविकसित संसाधनों के स्थान पर आज स्मार्ट क्लास, शैक्षिक तकनीकी, डिजिटलाइजेशन, स्मार्ट फोन, गूगल ड्राइव तथा वेब पेज एवं इन्टरनेट आदि माध्यमों से नवाचारों की क्रांति आई है। ऐसी स्थिति में ई-प्रशासन की सशक्तता भी इन्हीं नवाचारों पर ही आश्रित है।

मुख्य शब्द:-

ई-प्रशासन, नवाचार, व्यवस्था, स्मार्टफोन, डिजिटलाइजेशन, इन्टरनेट।

प्रस्तावना:-

नवाचार आर्थिक और सामाजिक सन्दर्भ में दक्षता उत्पादकता गुणवत्ता, शिक्षा, स्वास्थ्य, ग्राम-पंचायतों की व्यवस्था की प्रक्रिया भी है और परिणाम भी।

भारत जैसे कृषि प्रधान देश की ग्रामीण व्यवस्था का भविष्य आज तकनीकी की मुट्ठी में कैद होता जा रहा है। भारतीय संस्कृति की सुंदर सोच को मूल्य एवं नैतिकता पंख देती है और पल्लवित होने हेतु जड़ों के जुड़ाव का कारण भी बनती है। वर्तमान भारतीय धरा युवाशक्ति और तकनीकी नवाचारों से अलकृंत है। आवश्यकता है-युवा ऊर्जा के बीजारोपण करने की। जिससे भारतीय ग्रामीण व्यवस्था ई-प्रशासन के फल फूलों से सुसज्जित, पुष्पित-पल्लवित एक हरियाली आँगनवाड़ी का निर्माण हो सके। ऐसी स्थिति में ई-प्रशासन जीवन का नेतृत्व करने की ऐसी पगडंडी है जिस पर चलकर आर्थिक सम्बद्धता के अवसरों की उपलब्धि में परिवर्तित करना है। यही परिवर्तन हमें नवाचारों के प्रति उत्साही एवं ग्राह्य भी बनाता है। नई शिक्षा नीति (2020), भारतीय जीवन मूल्यों पर आधारित होने के साथ-साथ, भारतीय परम्पराओं, संस्कृति एवं भाषाओं को प्रोत्साहन पुर्नस्थापन एवं प्रसार पर बल देती है। जिससे यह भारत को वैश्वीकरण की ओर अग्रसरित करते हुए एक समर्थ, सशक्त, गौरवशाली, आत्मनिर्भर बनाने में एक स्तम्भ की भूमिका निभायेगी। पूर्व दूसरों प्रमुख के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में विशेषज्ञों की एक समिति द्वारा तैयार की गई नई शिक्षा नीति (2020) द्वारा भारतीय शिक्षा प्रणाली में अब शिक्षा को ज्ञानार्जन के सन्दर्भ में देखा जायेगा न कि बाजार के सन्दर्भ में -

''विधा वितर्को विज्ञानं स्मृतिः तत्परता क्रिया।
यस्यैते षड्गुणास्तस्य नासाध्यमतिवर्तते।।''

जिसका उद्देश्य विधा भाषा दक्षता, वैज्ञानिक स्वभाव, सौन्दर्य बोध, नैतिक, तर्क एवं स्मृति शान्ति, डिजिटल साक्षरता, भारत बोध और चेतना एवं कार्यशीलता का विकास करना है। सम्पूर्ण व्यवस्था यह परिवर्तन के आवरण से अंलकृत आत्मनिर्भरता की दिशा में अग्रसर हो रही है। नव वैचारिक क्रांति एवं निरन्तरता द्वारा परिवर्तन हमें नवीनता स्वीकार करना सीखाता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण व्यवस्था के नवाचार:- वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं के अनुरूप

अत्यन्त कुशल योग्य, क्षमतावादी नागरिकों की आवश्यकता महसूस की जा रही है जो हमारे राष्ट्र के ग्रामीण समाज की भावी आशाओं, आकांक्षाओं तथा सपनों को साकार रूप दे सकें। जो नवयुवकों को आत्मनिर्भर, उपयोगी एवं समाज के नवनिर्माण में तत्पर योगदान देने हेतु आदर्श नागरिक का निर्माण कर सकें, जो सर्वोत्कृष्ट, सर्वाङ्गीण विकास में सहायक हो सकें तथा उचित परिवेश का निर्माण भी कर सकें। ई-प्रशासन द्वारा तकनीकी, अभियान्त्री की, शिक्षा, चिकित्सा, प्रबन्धन अभिवृत्ति, अभिरूचि, व्यक्तित्व विकास, कुशल नेतृत्व क्षमता आदि में नवाचारों द्वारा जागरूक करता है और कुशल आर्थिक नियोजन एवं व्यवस्था के आधार पर कार्य का अग्रसरण भी करता है। भारतीयता की महान विरासत से अलंकृत, महात्मा गाँधी जी के विजन से अनुप्राणित, डॉ. अम्बडेकर जी के दिए संविधान के प्रति प्रतिबद्ध नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के आत्मनिर्भर श्रेष्ठ भारत के स्वप्न को साकार करने की दिशा में एक पहल सराहनीय है क्योंकि इसमें 21वीं शताब्दी के बदलते परिदृश्य के अनुरूप भारत की आन्तरिक और वैश्विक चुनौतियों का सामना ई-प्रशासन के द्वारा करने की तैयारी भी है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 की एक बड़ी विशेषता है कि यह वास्तविक एवं धरातलीय नीति है। विश्व के इतिहास में शायद पहली बार ऐसा हुआ है कि शिक्षा नीति बनाने के लिए देश की चारों दिशाओं से लगभग 2.5 लाख ग्राम पंचायतों और 676 जिलों के सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक जनप्रतिनिधियों, उद्योगपतियों, अभिभावकों एवं युवाओं के सुझावों का मंथन कर जन आकांक्षाओं के अनुरूप नई शिक्षा नीति साकार हुई है। यह सत्य है कि परिवर्तन प्रक्रिया को अपना लेने से भविष्य में सुखद परिणाम भी मिलते है। यथार्थ रूप में ग्राम ही लोकतान्त्रिक व्यवस्था की प्रथम सीढ़ी होती है। ग्रामीण विकास के इस आधार स्तंम्भ पर लोगों को स्वच्छ, पारदर्शी, दक्षतायुक्त, ईमानदारी, सरल, न्यायपूर्ण व्यवहार मिले इस हेतु तकनीकी का उपयोग आवश्यक एवं उपयोगी हो गया है। ग्रामीण जनता को भूमि, सड़कें, निर्माण कार्यों, कल्याणकारी योजनाओं, पहलूओं नीति-निर्माण एवं क्रियान्वयन की जानकारी का होना भी अति आवश्यक है। ई-प्रशासन के माध्यम से इन सभी नवाचारों सम्बन्धी परिवर्तनों से सामजंस्य स्थापित किया जा सकता है।

राष्ट्रीय ई-प्रशासन योजना एवं सेवाओं के प्रसार तंत्र में परिवर्तन लाए जाने पर आधारित है। इस योजना के तत्वाधान में स्वच्छता, कृषि, शिक्षा जैसे क्षेत्रों के विकासात्मक चिकित्सा कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से जुड़ी चुनौतियों पर विचार किया जा रहा है। अब यह भी अनुभव किया जा रहा है कि तकनीकी के अभाव में हम प्रगति नहीं कर सकते हैं। ''राष्ट्रीय ई-प्रशासन योजना में वर्तमान में 27 मिशन मोड़ परियोजनाएं तथा 8 सहायता संघटक केन्द्रीय, राज्य तथा स्थानीय प्रशासन स्तर पर कार्यान्वित की जा रही है।

जैसे कि -

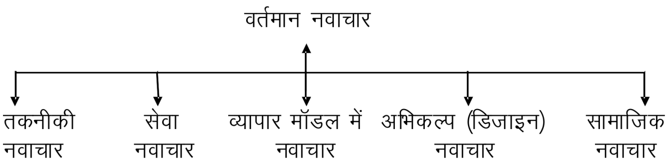

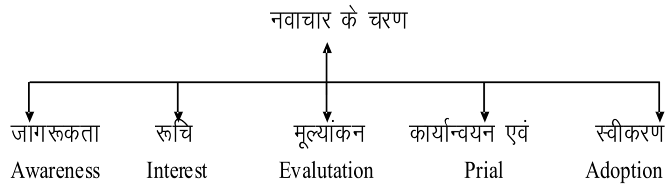

इस आधार पर राष्ट्रीय नीति भी प्रशासन के भागीदारी मॉडल की परिकल्पना करती है, जिसमें नागरिक लोक प्रशासकों से गैर-रणनीतिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं और विभिन्न सुधारात्मक प्रक्रियाओं में प्रशासन के साझीदार बन सकते है और अर्थव्यवस्था की गति को अनवरत्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए कोविड महामारी जैसी संकट की घड़ी में भी आरोग्य सेतु, ई-ऑफिस, ई-शिक्षा, वीडियो कॉन्फ्रेसिंग जैसी सेवाओं के जरिये देश ने चुनौतियों को अवसर में परिवर्तित कर दिया। ऐसे में ई-सेवाओं के माध्यम से तकनीकी और समर्थित नवाचार-समाधानों का उपयोग किया जाना चाहिए। कृषि एवं ग्रामीण विकास के क्षेत्र में बढ़ते शोध, एवं नवाचार की स्थिति के आधार पर सरकारें भी ग्लोबल-इनोवेशन इंडेक्स को ध्यान में रखकर अपने वैश्विक उद्योग-कारोबार के रिश्तों के लिए नीति बनाने की डगर पर बढ़ती है। भारत में इंटरनेट ऑफ थिंग्स कृत्रिम बुद्धिमता और डेटा एनालिटिक्स जैसे क्षेत्रों में शोध और विकास और जबरदस्त स्टार्टअप वातावरण के अन्तर्गत पश्चिमी सभ्यता के देश भी ग्लोबल इन हाउस सेंटर (जी आई सी) तेजी से स्टार्ट करते हुए दिखाई दे रहे हैं। ई-प्रशासन के चार स्तम्भ होते हैं-

पहला - नागरिक, व्यापार व अन्य प्रतिष्ठान

दूसरा - तकनीकी

तीसरा - संसाधनों का समुचित उपयोग और

चौथा - प्रक्रिया।

यह गाँवों को सशक्त करने की दिशा में सुदृढ़ कदम है जिसकी जागरूकता हेतु ई-चौपाल के जरिए प्रसारित की जा सकती है।

ई-प्रशासन का प्रभावी नवाचार डिजिटलीकरणः-

देश के बहुआयामी विकास में शोध एवं नवाचार की भूमिका उभरकर आई है। वर्तमान में विश्व बौद्धिक संपदा संगठन (डब्ल्यूआईपीओ) द्वारा जारी वैश्विक नवाचार सूचकांक ग्लोबल इनोवेशन सूचकांक (GII) 2021 में भारत दो पायदान ऊपर उठकर 64वें स्थान पर पहुँच गया है। नवाचार की ये वैश्विक रिर्पोट जिन मापदंडों पर तैयार की गई है उनमें देश में कार्यरत शोध संस्थाओं की

गुणवत्ता, आई टी इंफ्रास्ट्रक्चर, ज्ञान पूंजी, डिजिटल सुविधाएं, स्टार्टअप के लिए अनुकूलताएं, मानव संसाधन विकास, व्यापार विशेषज्ञता, सरकार की प्रभावशीलता, घरेलू उद्योग धन्धों में सरलता आदि को ध्यान में रखा गया है। आज हम 21वीं सदी में आगे बढ़ रहे हैं, ऐसे में हमें विकास को आधारभूत स्तर से उठाना होगा। जैसे सर्वप्रथम ग्रामीण जनता तक उनकी बुनियादी सुविधाएं की पहुँच होनी चाहिए क्योंकि इनके आभाव में ई-प्रशासन की कल्पना करना भी व्यर्थ है। कम्प्यूटर, इंटरनेट से सम्बन्धित ज्ञान जनता में कराया जाना चाहिए। ग्राम स्तर पर सभी सूचनाओं को कम्प्यूटर में संग्रहीत करने हेतु एक ग्राम सेवक की सूचना अधिकारी के रूप में नियुक्ति होनी चाहिए। जो सभी ग्रामीण विकास कार्यक्रमों एवं योजनाओं की जानकारी कम्प्यूटर के माध्यम से उपलब्ध करा सके। ऐसी स्थिति मे समयाभाव किसी भी नवाचार को व्यावहारिक जीवन में प्रयोग करने के लिए पर्याप्त समय की आवश्यकता होती है।

किसी भी नये परिवर्तन को स्वीकार करने एवं उसके क्रियान्वयन में अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है जैसे - अपर्याप्त धन, समाज का भय, असफलता का भय, आत्मविश्वास का अभाव, संगठन नियोजन एवं व्यवस्था का अभाव, समय का अभाव, व्यक्तिगत एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी समस्यायें एवं पूर्व भ्रान्तियों से सम्बन्धी चुनौतियों नवाचार के मार्ग की बाधाएं हैं। जिनका निवारण ई-प्रशासन एवं तकनीकी द्वारा संभव है।

दूसरी ओर डिजिटल डिवाइड ने समाज को दो स्तरों पर विभाजित करने का कार्य कर रहा है। जिसमें पहला वर्ग यह है जिसके पास इंटरनेट तक पहुँच है दूसरा वर्ग वह है जो डिजिटल साक्षरता या अन्य तकनीकी उपकरणों का प्रयोग करने में असमर्थ है। जिसके कारण ग्रामीण भारत आवश्यक सूचनाओं की कमी का सामना कर रहा है जोकि गरीबी, अभाव, और पिछड़ेपन के कारणों को सबल बना रहा है। जिससे कि नवयुवकों में स्वतन्त्र चिंतन की शान्ति का विकास हो रहा है।

निष्कर्ष-

वर्तमान परिस्थितियों में नवाचार द्वारा सुधार लाने का प्रयास होता है जिससे अपेक्षित परिवर्तनों द्वारा ग्रामीण व्यवस्था में आवश्यकता आधारित नवीन चेतना आती है। यही चेतना स्फूर्ति से नवीनता के साथ प्रगति पथ पर अग्रसर होती है। जिससे कल्याणकारी राज्य की स्थापना, अर्थव्यवस्था का विकास, सामाजिक परिवर्तनकारी, विज्ञान का ज्ञान, मानव संसाधनों का विकास किया जाता है। ग्रामीण विकास की अवधारणा को ई-प्रशासन के माध्यम से साकार करने में जिस दिन आम नागरिक, प्रशासक एवं प्रतिनिधि वर्ग में जन सहयोग, जन सहभागिता एवं दृढ़ इच्छा शक्ति का अवतरण हो जाएगा, सपने साकार होने लगेंगें। आज सूचना तकनीकी का प्रयोग कर प्रशासन में पारदर्शिता, संवेदनशीलता, जवाबदेयता, शीघ्रता एवं सरलता का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकेगा।

ग्रामीण क्षेत्र में डिजिटल साक्षरता हेतु दूरसंचार नियमों को और अधिक मजबूती प्रदान करें ताकि बाजार में प्रतिस्पर्दा सुनिश्चित हो सके। साथ ही ई-प्रशासन के समक्ष गोपनीयता, साइबर हमलों से सुरक्षा आदि भी करनी है। लेकिन केन्द्र सरकार ने भूमि प्रोजेक्ट, ज्ञानइल प्रोजेक्ट, स्मार्ट प्रोजेक्ट, सारी प्रोजेक्ट तथा सम्पर्क प्रोजेक्ट डिजिटल इण्डिया की शुरूआत की इस प्रकार ई-प्रशासन प्रोजेक्ट नागरिक केन्द्रित है लेकिन ई-प्रशासन हेतु ई-विनिर्माण को मजबूत करने की आवश्यकता है। जिससे भारत को डिजिटल रूप से सशक्त समाज और ज्ञान अर्थव्यवस्था में बदलने की दृष्टि है।

सन्दर्भ सूची:-

- डॉ. जयंतीलाल भंडारी (2019), शोध एवं नवाचारों का महत्व सम्पादकीय - जनता से रिश्ता, jankeserishta.com
- निरंजन कुमार (2020), नई शिक्षा नीति 2020
- प्रियरंजन राव (2014) ई-प्रशासन से गाँवों का बदलता स्वरूप
- योगेश के. द्विवेदी, नृपेन्द्र पी. राणा - (2017) ई-प्रशासन की चुनौतियाँ
- सोशल मीडिया
- इंटरनेट
- जर्नल्स
- विभिन्न पत्र-पत्रिकाएं
- www.nois.ac.in.>media
- www.pankhvuijournal.in (2020), Vol – 2 Issue – 2 नई शिक्षानीति 2020
- www.digitalindia.gov.in
- www.vivacepanorama.com
- www.drishtias.com>e
- http://higadget-info.com
- pib.gov.in-Govt.ofIndia

ISSN 2278 - 0327

भवभूति की कृतियों पर वेदों का प्रभाव एवं वैशिष्ट्य

दीपिका सिंह
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

महाकवि भवभूति वैदिक परम्परा के अनुयायी एवं विविध शास्त्रों के निपुण कवि माने गये हैं। *'वश्यवाक्'* एवं *'परिणतप्रज्ञ'* आदि उपाधियों से विभूषित महाकवि भवभूति न केवल संस्कृत साहित्य अपितु सम्पूर्ण भारतीय साहित्य के श्रेष्ठ विभूतियों में एक हैं। भवभूति ने तीन कृतियों की रचना रचनाएं की है, जो इस प्रकार हैं-

(1) मालतीमाधवम् (2) महावीरचरितम् (3) उत्तररामचरितम्

भवभूति ने तीनों कृतियों में अपना परिचय दिया है। उनका सर्वाधिक परिचय महावीरचरितम् में प्राप्त होता है। जिससे ज्ञात होता है कि उनके पूर्वज पञ्चाग्नियों का आधान करने वाले, चान्द्रायण आदि नियमों का विधिपूर्वक पालन करने वाले, सोमपायी उदुम्बर नामधारी, काश्यपगोत्र में उत्पन्न कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के ब्रह्मविद् ब्राह्मण थे। इसी वंश में भट्टगोपाल कवि के पौत्र नीलकण्ठ के पुत्र जिनको व्याकरण-मीमांसा-न्याय शास्त्र का ज्ञान था भवभूति नाम वाले जतुकर्णी नामक माता के गर्भ से उत्पन्न हुए-

तदामुष्यायणस्य तत्रभवतो वाजपेययाजिनो महाकवेः पञ्चमः सुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्तेर्नीलकण्ठतस्यात्मसंभवः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्रः कविमित्रधेयमस्कमाकमिति भवन्तो विद्वांकुर्वन्तु।[1]

भवभूति का वंश एवं परिवार वैदिक आचार-विचार, यज्ञ, तथा ब्रह्मविद्या के अध्ययन का प्रमुख केन्द्र था क्योंकि उनके पूर्वजों ने 'वाजपेय यज्ञ' किया था।

भवभूति की कृतियां प्रौढ प्रतिभा प्रसूत हैं। तीनों कृतियों की अपनी नाटकीय विशेषताएं हैं। उनके कृतियों पर वेदों का स्वरूप परिलक्षित होता है क्योंकि उन्होंने पदावली में वेद की शैली का प्रयोग किया है।

प्रायः वेद का प्रभाव संस्कृत साहित्य की सभी विधाओं पर दिखायी देता है। श्रव्य-दृश्य काव्य अर्थात् नाट्य के उद्भव एवं विकास का प्रमुख आधार वेदों को माना गया है। नाटकों की उत्पत्ति ऋग्वेद के संवाद-सूक्तों, यजुर्वेद के यज्ञ-विधान (कर्मकाण्ड), सामवेद के गान, अथर्ववेद के रस विधान से स्वीकार की गयी है।

भवभूति ने तीनों रचनाओं में स्वयं को 'पदवाक्यप्रमाणज्ञः' कहा है। यहाँ वाक्य का तात्पर्य मीमांसा दर्शन है। वह विख्यात मीमांसक कुमारिलभट्ट के शिष्य थे। भवभूति की कृतियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनका वैदिक साहित्य का ज्ञान उच्च कोटि का था। उन्होंने अनके पदों का प्रयोग वैदिक परम्परा के अनुसार किया है जैसे गृह पद के लिए संस्त्याय वैदिक पद, आरती के लिए आवरण वैदिक पद, जाने के अर्थ में सम्पात वैदिक पद का प्रयोग किया है। महावीरचरितम् में अपने वंश परिचय में उन्होंने वेदों का प्रतिदिन अध्ययन करने वाले को 'पंक्तिपावन' कहा है। पंक्तिपावन यह वैदिक शब्द है, जिसका वर्णन किया गया है-

तत्र कैचित्तैत्तिरीयाः काश्यपाश्चरणगुरवः पङ्क्तिपावनाः पञ्चाग्नयो धृतव्रताः सोमपीथिन उदुम्बरनामानो ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति।[2]

भवभूति ने उत्तररामचरितम् नाटक में वचन के लिए वैदिक पद वाकः का प्रयोग किया है। (वच् + घञ् = वाकः)-

इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यो नामोवाकं प्रशास्महे।
विन्देम देवतां वाचममृतामात्मनः कलाम्।।[3]

वच् धातु से णमुल् (अम्) प्रत्यय करने पर वाचम् रूप बनेगा अपितु यहाँ नमोवाकम् यह वैदिक प्रयोग है जो कि लौकिक संस्कृत में यह रूप नहीं बनता है।

'वाक्' के विषय में अथर्ववेद में प्राप्त होता है-

पश्च च या पश्चाशच्च संयति मन्या अभि।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव।।[4]

उत्तररामचरितम् में अश्वमेधीय अश्व का वर्णन किया गया है-

लवः- दृष्टमवगतं च, नूनमाश्वमेधिकोऽयमश्वः।[5]

शतपथ ब्राह्मण में अश्वमेध करने वाले चक्रवर्ती सम्राटों का उल्लेख प्राप्त होता है। जिसमें बताया गया है कि अश्वमेध यज्ञ राष्ट्र की उन्नति एवं प्रगति के लिए किया जाता है।

भवभूति ने नाटक में यज्ञ में पति और पत्नी को साथ बैठकर यज्ञ सम्पादित करने का विधान बताया है।

उत्तररामचरितम् में राम द्वारा सीता का परित्याग करने के पश्चात् अश्वमेधयज्ञ के अनुष्ठान में वह सहधर्मचारिणी पत्नी के स्थान पर सीता की स्वर्णमयी मूर्ति को स्थापित करते हैं।

आत्रेयी- हिरण्मयी सीताप्रतिकृतिर्गृहिणीकृता।[6]

तैत्तिरीय ब्राह्मण में नारी के गौरव का मार्मिक वर्णन किया गया है। उसमें पत्नी को पति की अर्धांगिनी बताया गया है। पत्नी को यज्ञ में पति के साथ बैठने का विधान किया गया है क्योंकि पत्नी के विना यज्ञ

अपूर्ण माना गया है।

श्रिया वा यतद् रूपं यत् पत्नय:।[7]

अर्धो वा एष आत्मन:, यत् पत्नी।[8]

पत्न्यै व्रतोपनयनम्।[9]

अयतो वा एष:। योऽपत्नीक: [10]

भवभूति ने नाटकों में शिव, गणेश, सूर्य, गङ्गा, पृथिवी, अग्नि आदि देवताओं का चित्रण किया है। उन्होंने नाटक में समस्त तीर्थों के जलों और अग्नि को शुद्ध तथा पवित्र बताया है।

उत्पत्तिपरिपूताया: किमस्या: पावनान्तरै:।

तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यत: शुद्धिमर्हत:।।[11]

वेदों में बहुदेवतावाद प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है। जिसमें पवित्रता एवं श्रेष्ठता की दृष्टि से अग्नि को ऋग्वेद में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है, इसलिए लगभग दो सौ सूक्तों में अग्नि की स्तुति की गयी है–

अग्निमी पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।

होतारं रत्नधातमम्।।[12]

मालतीमाधवम् जो कि प्रकरण ग्रन्थ है, उसे भवभूति की प्रथम रचना माना गया है क्योंकि जिस समाज में इस ग्रन्थ की रचना की गयी उस समाज में बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार था। वैदिक विद्वान् बौद्ध धर्म को निर्मूल करने का प्रयास कर रहे थे। भवभूति ने बौद्ध धर्म की निन्दा नहीं की परन्तु बौद्ध धर्म के अनुयायियों ने वैदिक धर्म के विद्वानों की आलोचना की।

इसलिए भवभूति ने अपने दु:ख को मालतीमाधवम् में अभिव्यक्त किया है–

ये नाम केचिदिह न: प्रथयन्त्यवज्ञां

जानन्ति के किमपि तान्प्रति नैष यत्न:।

उत्पस्यते मम तु कोऽपि समानधर्मा

कालो हयं निरवधिविपुला च पृथ्वी।।[13]

महावीरचरितम् और उत्तररामचरितम् में वैदिक धर्म की पराकाष्ठा दिखायी देती है। महावीरचरितम् में 'शुन: शेप' का नामोल्लेख प्राप्त होता है–

यस्य भगवतस्त्रैशङ्कवं शौन: शेपं रम्भास्तम्भनं चेत्यपरिमेयमाश्चर्य–जातमाख्यानविद आचक्षते।[14]

'शुन:शेप:' आख्यान ऐतरेय ब्राह्मण में प्राप्त होता है–

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमदुम्बरम्।

सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरश्चरैवेति।।[15]

उत्तररामचरितम् में आत्महत्या को घोर पाप बताया गया है क्योंकि ऋषियों का मत है कि जो आत्मघाती होता है वह मृत्यु के पश्चात् घोर अन्धकार को प्राप्त करता है–

अन्धतामिस्त्रा ह्यसूर्या नाम ते लोका: प्रेत्य तेभ्य: प्रतिविधीयन्ते य आत्मघातिन इत्येवमृषयो मन्यन्ते।[16]

शुक्ल यजुर्वेद के ईशावास्योपनिषद् में वर्णित है कि आत्महत्या का पाप लगेगा अत: आत्मा की आवाज को सुनो और कर्म करो–

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृता:।

तास्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जना:।। [17]

उत्तररामचरितम् में ब्राह्मणों के वाणी की विशेषता बतायी गयी है कि ब्राह्मणों के वाणी के विषय में संशय नहीं करना चाहिए क्योंकि उनकी वाणी शुद्ध, परिमार्जित तथा व्याकरणनिष्ठ होती है। जिसे मंगलकारी माना गया है–

आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां

ये व्याहारास्तेषु मा संशयोऽभूत्।

भद्रा ह्येषां वाचि लक्ष्मीर्निषक्ता

नैते वाचं विप्लुतार्थां वदन्ति।।[18]

'भद्रा ह्येषां वाचि लक्ष्मीर्निषक्ता' यह पंक्ति मूलत: ऋग्वेद से लिया गया है। ऋग्वेद में शुद्ध परिष्कृत वाणी को कल्याणमयी लक्ष्मी के समान बताया गया है–

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।

अत्रा सखाय: सख्यानि जानते, भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि।।[19]

भवभूति ने धार्मिक सिद्धान्तों को अपनी रचनाओं में प्रतिपादित किया है। उत्तररामचरितम् में उन्होंने राजा के परम कर्तव्य का वर्णन किया है–

जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धा–

स्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम्।

युक्त: प्रजानामनुरञ्जने स्या–

स्तस्माद्यशो यत् परमं धनं व:।।[20]

ऐतरेय ब्राह्मण में दुष्यन्त के पुत्र भरत का वर्णन प्राप्त होता है। भरत ने प्रजा हित के लिए महान् कार्य किया जिससे उनकी लोक–ख्याति हुई। उनकै गौरव को प्राप्त करना हाथ से स्वर्ग स्पर्श करने के समान बताया गया है–

महाकर्म भरतस्य, न पूर्वे नापरे जना:।

दिवं मर्त्य इव हस्ताभ्यां, नोदापु: पञ्च मानवा:।।[21]

भवभूति ने अपनी रचनाओं में अतिथि सत्कार के नियमों का वर्णन किया है। अतिथि का जल, फल अथवा मूल (कन्द) आदि सामग्री से सत्कार करना चाहिए–

यथेच्छाभोग्यं वो वनमिदमयं मे सुदिवस:

सतां सद्भि: सङ्ग: कथमपि हि पुण्येन भवति।

तरुच्छाया तोयं यदपि तपसां योग्यमशनं

फलं वा मूलं वा तदपि न पराधीनमिह व:।।[22]

यद्यपि भवभूति ने 'अतिथि सत्कार' का उल्लेख तैत्तिरीय आरण्यक को आधार बनाकर किया होगा क्योंकि उसमें पञ्च महायज्ञों का वर्णन प्राप्त होता है।

पाँच महायज्ञ हैं– (1) ब्रह्मयज्ञ (2) देवयज्ञ (अग्निहोत्र) (3) पितृ यज्ञ (श्राद्ध–तर्पण) (4) मनुष्य यत्र (अतिथि–सत्कार) (5) भूत–

यज्ञ (बलिवैश्व देव यज्ञ, पशु-पक्षियों को अन्न देना)

पञ्च वा एते महायज्ञाः सतति प्रतायन्ते।[23]

मालतीमाधवम् में वैदिक कालिक ऋषि अङ्गिरा के मत का वर्णन किया गया है। अङ्गिरा मुनि का मत है कि जिस कन्या में वर के प्रति मन और नेत्रों में आसक्ति है, उसमें विवाह करने से समृद्धि प्राप्त होती है-

इतरेतरानुरागो हि विवाहकर्माणि परार्ध्यं मङ्गलम्।
गीताश्चायमर्थोऽङ्गिरसा यस्या मनश्चक्षुषोनिर्बन्धस्तस्यामृद्धिरिति।[24]

भवभूति की कृतियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उन्हें न केवल वेद का अपितु उपनिषद्, दर्शन, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, व्याकरण, मनोविज्ञान, भूगोल आदि विषयों का पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने कृतियों में अनेक स्थानों पर दर्शनशास्त्र एवं व्याकरण के पदों का उल्लेख किया है। उन्होंने ग्रन्थों में घटनाओं को इस क्रम में संयोजित किया है कि कथानक पूर्ण रूप से स्वाभाविक प्रतीत होता है। भवभूति ने अपने हृदयनिष्ठ भावनाओं को सहज भाषा में प्रस्तुत किया है जिससे उनकी कृतियों में मौलिकता तथा सजीवता परिलक्षित होता है। उनकी रचना शैली में विदग्धता, कथानक में सारगर्भित विषय-वस्तु का वर्णन एवं अलौकिक प्रतिभा तीनों समन्वित होकर अर्थगौरव की सृष्टि करते हैं। जिसका उदाहरण मालतीमाधवम् में प्राप्त होता है-

यद्वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च
ज्ञानं तत्कथनेन किं न हि ततः कश्चिद् गुणो नाटके।
यत्प्रौढित्वमुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवं
तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पाण्डित्यवैदग्ध्ययोः।।[25]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भवभूति की कृतियों में वैदिक परम्परा का प्रभाव पड़ा क्योंकि उन्हें वैदिक साहित्य का उत्तम ज्ञान था। श्रोत्रियकुलोत्पन्न भवभूति वेद के ज्ञाता माने गये हैं। इसलिए उनकी गणना वैदिक परम्परा के उत्कृष्ट विद्वानों में की जाती है।

अतः महाकवि भवभूति संस्कृत साहित्य जगत् के विलक्षण प्रतिभा वाले श्रेष्ठ कवि हैं। जिनका यशोगान अनेक विद्वानों के द्वारा गाया जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. महावीरचरितम् 1/पृष्ठ 6
2. महावीरचरितम् 1/पृष्ठ 5
3. उत्तररामचरितम् 1/1
4. अथर्ववेद- 6.25.2
5. उत्तररामचरितम् 1/वा. 126
6. उत्तररामचरितम् 2/वा. 46
7. तैत्तिरीय ब्राह्मण 3.9.4.7.8
8. तैत्तिरीय ब्राह्मण 3.3.3.5
9. तैत्तिरीय ब्राह्मण 3.3.3.2
10. तैत्तिरीय ब्राह्मण 2.2.2.6
11. उत्तररामचरितम् 1/1.6
12. अग्निसूक्त 1/1
13. मालतीमाधवम् 1/6
14. महावीरचरितम् 1/पृष्ठ 10
15. ऐतरेय ब्राह्मण 3-3
16. उत्तररामचरितम् 4/पृष्ठ 276
17. ईशावास्योपनिषद्
18. उत्तररामचरितम् 4/18
19. ऋग्वेद 10. 71.2
20. उत्तररामचरितम् 1/11
21. ऐतरेय ब्राह्मण 8.49
22. उत्तररामचरितम् 2/2
23. तैत्तिरीय आरण्यक, द्वितीय प्रपाठक
24. मालतीमाधवम् 2/ पृष्ठ 102
25. मालतीमाधवम् 1/8

ISSN 2278 - 0327

भारत-अमेरिका राजनीतिक, आर्थिक और व्यापार संबंध

अजीत
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

सार

भारत में पश्चिम एशियाई रंगमंच को दुनिया के बाकी हिस्सों की तुलना में एक अलग नजरिए से देखने की प्रवृत्ति है। अंतिम बिंदु के रूप में, अमेरिका कश्मीर के संघर्ष को एक लंबे समय से चले आ रहे प्रश्न के परिणाम के रूप में देखता है जिसे आसानी से वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि दक्षिण एशियाई जिले में आगे की स्थिति और विस्तारित अमेरिकी रणनीतिक भागीदारी ने आतंकवाद और आतंकवादी गतिविधि को नियंत्रित करने या कम से कम नियंत्रित करने में मदद की है, भारत-पाकिस्तान तनाव को नियंत्रण करने से रोका है, और सहयोग और संघर्ष के माध्यम से क्षेत्रीय सुदृढ़ता की आवश्यकता पर ध्यान केंद्रित किया है। 13 दिसंबर के बाद, पाकिस्तान में अमेरिकी मजबूरियों के मौजूद होने को एक स्थिर कारक के रूप में देखा गया, जिससे युद्ध संभावना कम हो गई। इसके अलावा, आतंकवाद के खिलाफ वैश्विक युद्ध का दक्षिण एशिया के साथ-साथ कई क्षेत्रों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। अधिक सहयोग की दिशा में पहला कदम संघर्ष समाधान प्रक्रियाओं को आगे बढ़ाने के लिए क्षेत्रीय राष्ट्रों का प्रयास है। आतंकवाद दुनिया का अब तक का सबसे भीषण अपराध है। अफीम के दलाल, अवैध हथियार के सौदागर, सुलझाए गए दुर्व्यवहार, और सरकारी कर्मियों और अधिकारियों, विशेष रूप से ज्ञान संगठनों को इस दृष्टिकोण से अफीम दलालों के रूप में देखा जाता है, जो आम तौर पर परेशान करने वाला होता है।

मुख्य शब्दः भारत, अमेरिका, संबंध।

परिचयः भारत और अमेरिका के लोकतांत्रिक संबंध

इस ग्रह में दो सबसे बड़े लोकतंत्र भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका हैं। वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 28 प्रतिशत के संयुक्त योगदान के साथ, दोनों अर्थव्यवस्थाएं वैश्विक अर्थव्यवस्था में एक प्रमुख स्थान रखती हैं। वैश्विक व्यापारिक व्यापार बाजार में लगभग 13 प्रतिशत की संयुक्त हिस्सेदारी के साथ, उन्होंने वैश्विक व्यापार और धन को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। संयुक्त राज्य अमेरिका के विपरीत, भारत दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती उभरती अर्थव्यवस्थाओं में से एक के रूप में उभरा है। भारतीय नीति निर्माताओं ने व्यापक आर्थिक स्थिरता सुनिश्चित करने और सामाजिक और आर्थिक विकास को आगे बढ़ाने के लिए कई सराहनीय सुधारों को लागू करके एक जीवंत कारोबारी माहौल बनाने में मदद की है।

अपने विकासशील आर्थिक संबंधों और समान लोकतांत्रिक सिद्धांतों के कारण, भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच ठोस, बढ़ती द्विपक्षीय व्यापार और वाणिज्यिक भागीदारी है। दोनों देशों के बीच व्यापार, निवेश और संबंध वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए परस्पर लाभकारी हैं। दोनों देशों के लिए, दूसरा क्षेत्रीय और वैश्विक शांति और स्थिरता को बढ़ावा देने में एक प्रमुख रणनीतिक भागीदार है। वे बढ़ती द्विपक्षीय साझेदारी के लिए एक सकारात्मक और दूरंदेशी परिप्रेक्ष्य पेश करने के लिए कई वर्षों से एक साथ काम कर रहे हैं। अपने चल रहे संवाद के हिस्से के रूप में, भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका ने कई अवसरों पर उच्च पदस्थ अधिकारियों का आदान-प्रदान किया है। श्री नरेंद्र मोदी ने 2014 में पदभार ग्रहण करने, उच्च स्तरीय वैश्विक बैठकों में भाग लेने और द्विपक्षीय गतिविधियों को पूरा करने के बाद से कई अवसरों पर संयुक्त राज्य का दौरा किया है। जून 2017 में हमारे माननीय प्रधान मंत्री ने संयुक्त राज्य अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति डोनाल्ड जे ट्रम्प के साथ मुलाकात की और रणनीतिक मुद्दों की एक विस्तृत शृंखला पर चर्चा की। व्यापक विषयों पर विचारों को साझा करने के लिए भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच 50 से अधिक द्विपक्षीय अंतर-सरकारी चर्चा तंत्र हैं।

इन यात्राओं के परिणामस्वरूप, दोनों देशों के बीच विविध संबंध और मजबूत हुए हैं। नरेंद्र मोदी, भारतीय प्रधान मंत्री, संयुक्त राज्य अमेरिका में भारतीय अमेरिकी समुदाय और प्रमुख ऊर्जा व्यवसायों के मुख्य कार्यकारी अधिकारियों के साथ उच्च स्तरीय कार्यक्रमों और इंटरैक्टिव सत्रों की एक शृंखला के लिए सितंबर 2019 में संयुक्त राज्य का दौरा करेंगे ।कार्यक्रम में 50,000 से अधिक लोग शामिल हुए थे और इसमें तत्कालीन राष्ट्रपति बराक ओबामा ने भाग लिया था।

दशकों से, भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका ने सांस्कृतिक आदान-प्रदान और लोगों से लोगों के बीच घनिष्ठ संबंध बनाए रखा है। 21 वीं सदी में एक छोटे से अल्पसंख्यक से लेकर अमेरिकी समाज के एक सुस्थापित घटक तक, संयुक्त राज्य अमेरिका में भारतीय डायस्पोरा का काफी विकास हुआ है। भारतीय-अमेरिकी मूल के लोगों ने दोनों देशों को आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक

संसाधन उपलब्ध कराकर अच्छे द्विपक्षीय संबंधों को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसकी शुरुआत में राष्ट्रपति के रूप में डोनाल्ड ट्रम्प की पहली भारत यात्रा ने दोनों अर्थव्यवस्थाओं के बीच द्विपक्षीय संबंधों को एक और आयाम प्रदान किया। दोनों देशों के बीच आर्थिक सहयोग के विस्तार के लिए कई प्रयास किए गए, जिनमें बड़े रक्षा सौदे, स्वास्थ्य और ऊर्जा क्षेत्रों पर समझौते और बड़े पैमाने पर व्यापार समझौते के लिए बातचीत की शुरुआत शामिल है। इसके अतिरिक्त, 5G प्रौद्योगिकी के महत्व और स्वतंत्रता, प्रगति और समृद्धि के लिए एक उपकरण के रूप में इसकी भूमिका पर विस्तार से चर्चा की गई। संयुक्त राज्य अमेरिका ने 2009 से 2017 तक राष्ट्रपति ओबामा के अधीन रहने वाले पूर्व अमेरिकी उपराष्ट्रपति जो बिडेन को अपना 46वां राष्ट्रपति चुना है। इस दौरान, भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका ने दोनों देशों के बीच विश्वास में वृद्धि देखी। श्री बिडेन ने कई मौकों पर संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत के बीच घनिष्ठ संबंधों के लिए अपने समर्थन का संकेत दिया है। Covid-19 महामारी के मद्देनजर, भारत संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ एक पुनः सक्रिय द्विपक्षीय आर्थिक एजेंडा देखेगा, जो आर्थिक विकास, रोजगार सृजन और छोटे उद्यमों को बढ़ावा देने के साथ-साथ व्यापार और निवेश में वृद्धि को बढ़ावा देगा।

भारत-अमेरिका द्विपक्षीय आर्थिक संबंध हाल के वर्षों में, संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ भारत के व्यापार और आर्थिक संबंधों में जबरदस्त वृद्धि हुई है। भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच व्यापार और व्यापारिक संबंध दोनों देशों के बहुआयामी गठबंधन की एक अनिवार्य विशेषता है।

उदारीकरण के बाद, निजीकरण और वैश्वीकरण की अवधि में भारत-अमेरिका आर्थिक संबंध

भारत-अमेरिका संबंधों को विकसित करने के लिए, शीत युद्ध की समाप्ति और 1991 के भारतीय आर्थिक सुधार की शुरुआत, जो 1991 में भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी के पुनर्मूल्यांकन के साथ हुई, ने पूरे परिदृश्य को बदल दिया और आर्थिक क्षमता को मजबूत किया। भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका दोनों उस समय एक दूसरे पर निर्भर थे। इस दौरान भारत को बड़ी मात्रा में विदेशी निवेश की जरूरत थी। इसके परिणामस्वरूप, अमेरिकी कॉर्पोरेट समुदाय भारत में अपने उत्पादों के लिए नए बाजार खोजने के लिए उत्सुक था, जो दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा लोकतंत्र और दुनिया का सबसे अधिक आबादी वाला देश है।

शीत युद्ध की समाप्ति के बाद के वर्षों में, संयुक्त राज्य अमेरिका अपनी विदेश नीति को फिर से आकार देने की कोशिश कर रहा है। राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने कहा, हमारी अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करना, अंतरराष्ट्रीय और घरेलू स्तर पर हमारी सर्वोच्च प्राथमिकता है। एक नई आर्थिक सुरक्षा परिषद की स्थापना की जाएगी, और विदेश विभाग की संस्कृति को बदल दिया जाएगा ताकि अर्थशास्त्र को अब विदेश नीति के गरीब रिश्तेदार के रूप में नहीं देखा जा सके! प्राचीन काल की कूटनीति। पहले, अमेरिकी अर्थव्यवस्था ज्यादातर आत्मनिर्भर थी। अब, यह निर्यात संचालित विकास पर बहुत अधिक निर्भर है। 1966 के बाद से, अमेरिकी अर्थव्यवस्था में व्यापार का हिस्सा ढाई गुना बढ़ गया है। व्यापार अब संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि यूरोप और जापान के लिए। उदारवाद ने भारत में भी जड़ें जमा ली हैं, जो अपने बदलते परिवेश के अनुकूल हो रहा है। भारत सहित सभी देश, वैश्वीकरण के इस युग में वैश्विक अर्थव्यवस्था में शामिल होने के इच्छुक हैं। शीत युद्ध की समाप्ति के बाद विश्व व्यवस्था में बदलाव के कारण, भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका करीब हो गए, क्योंकि पूर्व में अपनी विदेश नीति को निर्देशित करने के लिए एक विकल्प की कमी थी और बाद में वाणिज्यिक हितों को बढ़ावा देने के लिए बाजारों की तलाश थी। हाल ही में, भारत एक सॉफ्टवेयर पावर हाउस के रूप में उभरा है। दोनों देशों के द्विपक्षीय संबंध नई आर्थिक वास्तविकताओं से आकार ले रहे हैं। शीत युद्ध की समाप्ति का विदेशी मामलों में भारतीय रणनीति पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। 1990 के दशक की शुरुआत में, भारत की अर्थव्यवस्था प्रवाह की स्थिति में थी। 1990 के दशक को निरंतर आर्थिक विकास और आर्थिक सुधार में प्रगति द्वारा चिह्नित किया गया था, हालांकि दशक अनिश्चितता और उथल-पुथल की स्थिति में शुरू हुआ था। 1991 में भारत को जिस आर्थिक संकट ने जकड़ा था, वह परस्पर संबंधित चरों की एक विस्तृत श्रृंखला के कारण था। पिछले दशकों की तुलना में 1980 के दशक में भारत के तेजी से बढ़ने के बावजूद, राष्ट्रीय सरकार के बजट घाटे का अनुपात समय के साथ बढ़ता गया। 1980 के दशक में राजकोषीय घाटा सकल घरेलू उत्पाद के लगभग 9 प्रतिशत पर चरम पर था, और यह शेष दशक के लिए उस स्तर पर बना रहा। इसके अलावा, 1980 के दशक में मुद्रास्फीति में वृद्धि हुई और 1990 के दशक की शुरुआत में 10 प्रतिशत थी।

1991 के बीओपी संकट में कई कारणों ने योगदान दिया। अगस्त 1990 में इराक के कुवैत पर आक्रमण और उसके बाद के खाड़ी युद्ध के कारण तेल की कीमत में एक अल्पकालिक उछाल आया। इससे विकट आर्थिक स्थितियां और विकट हो गई हैं। उदाहरण के लिए. विश्व बैंक का तर्क है कि तेल की कीमतों में वृद्धि, खाड़ी क्षेत्र के श्रमिकों द्वारा विदेशी मुद्रा आय की हानि, श्रमिकों के विस्थापन और निर्यात राजस्व में कमी ने भारत और अन्य दक्षिण एशियाई और पूर्वी एशियाई देशों को बुरी तरह प्रभावित किया है। खाड़ी युद्ध की समाप्ति के बाद से विदेशी मुद्रा भंडार अपने निम्नतम स्तर पर था। किसी भी बड़ी पार्टी को जनता से स्पष्ट जनादेश नहीं मिला, जिसके परिणामस्वरूप राजनीतिक अस्थिरता पैदा हुई। अंत में, कई विदेशी

ऋणदाता भारत की आसन्न वित्तीय आपदा के बारे में चिंतित थे।

वैश्विक वित्तीय संकट के बाद भारत-अमेरिका आर्थिक संबंध

क्योंकि भारत दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है और संयुक्त राज्य अमेरिका दुनिया का सबसे बड़ा है, दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय संबंध हमेशा अंतरराष्ट्रीय ध्यान में रहे हैं। 2004 से वाशिंगटन, डीसी और नई दिल्ली, भारत के बीच कई सामान्य सिद्धांतों और उन्नत आर्थिक और व्यापार संबंधों पर निर्मित रणनीतिक गठबंधन का अनुसरण किया गया है। भारतीय अर्थव्यवस्था लगातार बढ़ती दर से विस्तार कर रही है, और अमेरिकी व्यवसाय देखते हैं एक व्यवहार्य निवेश अवसर के रूप में देश। भारतीय नीति निर्माताओं को देश के पिछले कई दशकों में शुरू किए गए सुधारों को जारी रखने की उम्मीद है ताकि इसे और अधिक खुला और बाजार उन्मुख बनाया जा सके।

यूएस सबप्राइम मॉर्गेज मार्केट के पतन के बाद से, पूरी दुनिया एक वित्तीय और आर्थिक संकट की चपेट में आ गई है। संकट के कई संभावित कारण हैं, लेकिन सबसे स्पष्ट हैं गंभीर वित्तीय अनियमितताएं, अत्यधिक जोखिम उठाना, और एक विशाल वैश्विक असंतुलन जो लंबे समय से बना हुआ है। एक खुली अंतरराष्ट्रीय व्यापार प्रणाली में लोगों का विश्वास संकट के परिणामस्वरूप खतरे में है, जिसमें कई देशों द्वारा की गई आर्थिक प्रगति को उलटने की क्षमता है (लैमी, 2012) वैश्वीकरण के नए युग में, यह पहली वैश्विक मंदी है (2008)। वैश्वीकरण के बादके दशकों में, 2007 के मध्य में वित्तीय संकट की शुरुआत तक भारत का काफी विकास हुआ है। भारतीय अर्थव्यवस्था की तीव्र वृद्धि को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से सहायता मिली है।

चूंकि इसके बैंक सबप्राइम उधार के संपर्क में नहीं थे, इसलिए भारत, अधिकांश उभरते देशों की तरह, नकारात्मक प्रभावों के शुरुआती दौर से बचने में सक्षम था। जैसे-जैसे भारत की अर्थव्यवस्था और वित्तीय प्रणाली अधिक एकीकृत होती जा रही है, यह स्पष्ट होता जा रहा है कि अमेरिकी आर्थिक संकट के विकास के परिणामस्वरूप देश को कुछ नकारात्मक जोखिमों का सामना करना पड़ रहा है। हाउसिंग बबल संकट असंतुलन और अमेरिकी मौद्रिक, राजकोषीय और नियामक नीतियों के संयोजन से तेज हो गया था, जिसने मध्यस्थता के जोखिमों के साथ-साथ कॉर्पोरेट प्रशासन मानकों को भी उजागर किया था। अमेरिकी अर्थव्यवस्था की विशालता और वहां के वित्तीय झटके की गंभीरता के कारण भारत जैसे देशों में यह संकट प्रतिध्वनित हुआ है। इससे दोनों देशों के बीच आर्थिक संबंधों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ने की संभावना है।

भारत और अमेरिका के बीच द्विपक्षीय निवेश और व्यापार भारत-एचएस संबंधों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। 1991 से लागू किए गए सुधारों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को नया आकार दिया है और इसे वैश्विक बाजार अर्थव्यवस्था में और अधिक एकीकृत करने में मदद की है। विकास दर में सुधार, निवेश और व्यापार प्रवाह, और आय गरीबी में कमी सभी सुधार प्रक्रिया का परिणाम है। 2030 तक, भारत के दुनिया की शीर्ष पांच अर्थव्यवस्थाओं में से एक होने की उम्मीद है, यह स्थिति 1990 के दशक के उत्तरार्ध से है। जब संयुक्त राज्य अमेरिका ने इसे एक क्षेत्रीय शक्ति के रूप में बड़े पैमाने पर नजर अंदाज कर दिया था। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ व्यापार और निवेश संबंधों को बहुत लाभ हुआ है। जब प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की बात आती है, तो भारत अमेरिकी निवेशकों के लिए एक लोकप्रिय गंतव्य है। संयुक्त राज्य अमेरिका के निवेश ने भारत में लगभग हर उद्योग को प्रभावित किया है।

भारतीयों द्वारा संयुक्त राज्य में निवेश बढ़ रहा है 2000 से "भारत-अमेरिका आर्थिक वार्ता" के साथ नियमित संचार और जुड़ाव के माध्यम से द्विपक्षीय आर्थिक संबंधों की संस्थागत संरचना को विकसित करने के प्रयास किए गए हैं। वैश्विक व्यवस्था पर मौजूदा वित्तीय संकट के महत्वपूर्ण भू-राजनीतिक और आर्थिक प्रभाव हैं। नतीजतन, संयुक्त राज्य अमेरिका की घरेलू आर्थिक नीति की अनिवार्यता उजागर हो गई है, जिससे भारत और चीन जैसे नए खिलाड़ी खेल में आ गए हैं। यह अभी तक स्पष्ट नहीं है कि भारत जैसे देश में आर्थिक संकट की बाधाओं को अवसरों में कैसे बदला जा सकता है।

वैश्विक संकट और भारत-अमेरिका व्यापार संबंध

विदेशी व्यापार वित्तपोषण और वैश्विक व्यापार में तेज गिरावट अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संकट के प्रारंभिक संचरण चौनलों में से दो थे। भारत में संकट से सबसे पहले निर्यात प्रभावित हुए, क्योंकि वे वैश्विक एकीकरण के उचित स्तर वाले अधिकांश देशों में थे। 2011 में, भारत संयुक्त राज्य अमेरिका का 13वां सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार था, जिसका कुल माल व्यापार 57.8 बिलियन अमेरिकी डॉलर था।

ओबामा प्रशासन के तहत भारत अमेरिका संबंध

अमेरिकी भारतीय संबंधों में इस प्रगति से भारतीय कम प्रेरित थे, भले ही बाकी सभी ने देखा हो कि नवंबर 2008 में बराक ओबामा के 44 वें अमेरिकी राष्ट्रपति के चुनाव के साथ एक नए युग की शुरुआत कैसे हुई। दुनिया के सबसे शक्तिशाली नेता के रूप में अपनी जीत के बारे में शुरुआती उत्साह के बावजूद, राष्ट्रपति ओबामा ने भारत को बहुत कम पेशकश की, जिससे मोहभंग बहुत जल्दी हो गया। नवंबर में भारतीय प्रधान मंत्री मनमोहन सिंह की संयुक्त राज्य की यात्रा के बाद, चीजें वास्तव में बहुत ज्यादा नहीं बदलीं।

अमेरिका-भारतीय संबंधों की वर्तमान स्थिति का अंदाजा लगाने के लिए 2008 में बराक ओबामा के चुनाव को देखा जा सकता है। ईरान, क्यूबा और उत्तर कोरिया सहित कई देशों ने ओबामा की इस घोषणा का स्वागतकिया कि वह जॉर्ज डब्ल्यू बुश के तहत आठ साल

के एकतरफावाद को समाप्त करने के प्रयास में बहुपक्षीय कूटनीति का उपयोग करेंगे। चिंताएं कि ओबामा पाकिस्तान के साथ सुरक्षा सहयोग को नवीनीकृत करेंगे, पाकिस्तान की भारत विरोधी कार्रवाइयों के बारे में कुछ नहीं करेंगे, और भारत को अफगान पुनर्निर्माण में अपनी भूमिका को सीमित करने के लिए प्रेरित करेंगे, भारत के दिमाग में फिर से उठना जारी रहेगा। अप्रसार उपायों पर ओबामा प्रशासन के दृढ़ जोर ने चिंता जताई कि यह द्विपक्षीय असैन्य परमाणु सहयोग को खतरे में डाल सकता है।

राष्ट्रपति ओबामा ने अपने पहले प्रशासन के दौरान भारत के बारे में बहुत कम सोचा। अंतर्निहित तर्क की एक मजबूत भावना थी। छोटी या लंबी अवधि में, भारत ने अमेरिकी हितों के लिए कोई खतरा नहीं दिखाया। उस समय भारत में कोई आतंकवादी नहीं था। न तो काला बाजार और न ही वैश्विक संकट, यहां तक कि अमेरिकी अर्थव्यवस्था ने भी भारत में WMD के प्रसार को बढ़ावा नहीं दिया और देश ने 'विफल राज्य' बनने के कोई संकेत नहीं दिखाए। नतीजतन, भारत के लिए इराक में अपनी गड़बड़ी को साफ करने या सेना भेजकर अफगानिस्तान को स्थिर करने में संयुक्त राज्य की मदद करने की संभावना नहीं थी। तो फिर, ओबामा की विदेश नीति को भारत के साथ संबंधों को प्राथमिकता क्यों देनी चाहिए ?

हालाँकि, जैसे-जैसे दिन बीतते गए, ऐसा लग रहा था कि व्हाइट हाउस की विदेश नीति पर जोर भारत के साथ विकासशील संबंधों से तेजी से पीछे हट रहा है। लंबे समय तक, अमेरिकी सरकार ने नई दिल्ली में एक राजदूत को नहीं भेजा। कश्मीर संघर्ष को हल करने के लिए अप्रत्याशित सुझाव दिए गए। राष्ट्रपति ओबामा और उनकी विदेश नीति टीम इस बात पर अड़ी थी कि भारत को एनपीटी, सीटीबीटी ओर भविष्य में किसी भी एफएमसीटी पर हस्ताक्षर करना चाहिए, जिस पर बातचीत की जा सकती है। वे ऐसा करते रहे। इसके बजाय, आतंकवाद का मुकाबला करने में पाकिस्तानी सरकार के समर्थन के लिए हवा तालियों से भरी थी। यह ओबामा प्रशासन के लिए भी समय पर था जब उसने एक नई नीति की घोषणा की जो उन अमेरिकी निगमों को दंडित करेगी जो भारत को अपना रोजगार आउटसोर्स करते हैं। नतीजतन, राष्ट्रपति ओबामा ने अमेरिकी विद्यार्थियों को चेतावनी जारी करते हुए उन्हें चेतावनी दी कि भारत और चीन के छात्र अकादमिक रूप से उनसे बेहतर प्रदर्शन कर रहे हैं।

अमेरिकी विदेश मंत्री हिलेरी क्लिंटन ने चीन और इंडोनेशिया की यात्रा की, लेकिन भारत को छोड़ दिया क्योंकि उन्हें नहीं लगा कि यह आवश्यक है। नवनिर्वाचित उपराष्ट्रपति जो बाइडेन इस्लामाबाद से एशिया के रास्ते में नई दिल्ली में रुके नहीं, जहां वह पहले जाती रही थीं। बराक ओबामा ने काहिरा का दौरा किया और दुनिया भर के मुसलमानों को एक लंबा भाषण दिया। अधिकांश भाग के लिए, उन्होंने केवल इस्लाम के बारे में सकारात्मक बात की, लेकिन वास्तविकता यह है कि भारत की मुस्लिम आबादी दशकों से लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भाग ले रही है, जिसे नजर अंदाज कर दिया गया है।

बिल क्लिंटन के राष्ट्रपति पद के शुरुआती दिनों में, इन सभी घटनाओं ने उस समय की याद दिला दी। संयुक्त राज्य अमेरिका में नए भारतीय राजदूत को राष्ट्रपति क्लिंटन को अपना परिचय पत्र देने के लिए महीनों इंतजार करना पड़ा।

ओबामा के राष्ट्रपति पद के पहले कई महीनों के दौरान, ऐसा प्रतीत हुआ कि भयानक पुराने दिन लौट आए थे। प्रारंभिक क्लिंटन और शुरुआती ओबामा युग कई मायनों में भिन्न थे। जब बिल क्लिंटन ने सत्ता संभाली, तब तक भारत संयुक्त राज्य अमेरिका का दूर का सहयोगी बन चुका था। सोवियत संघ, भारत का लंबे समय से सहयोगी, क्लिंटन के व्हाइट हाउस के ओवल कार्यालय के उद्घाटन के कुछ साल पहले ही ध्वस्त हो गया था।

संदर्भ

1. चक्रवर्ती, मलांचा, (2016),''अफ्रीका के साथ भारत के जुड़ाव को समझना'', इंडियन फॉरेन अफेयर्स जर्नल, पृ. 11
2. इस्लाम, फरीदुल और तिवारी, अविरल और शाहबाज, मुहम्मद। (2016),''भारत अमेरिका द्विपक्षीय व्यापार भारत के व्यापार संतुलन का एक अनुभव'' जर्नल पृ. 64.
3. मुखर्जी, रोहन (2013),''भारत की सॉफ्ट पावर का झूठा वादा'', एसएसआरएन इलेक्ट्रॉनिक जर्नल, पृ. 75-94
4. होन्के, जाना और लेडरर, मार्कस, (2013),''विकास और अंतर्राष्ट्रीय संबंध''
5. साहू, प्रवाकर, (2012),''भारत-अमेरिका आर्थिक संबंध : अवसर और चुनौतियां'', विदेश व्यापार समीक्षा,
6. चुन्हाओ, लो, (2012),''हिंद महासागर में अमेरिका-भारत-चीन संबंध: एक चीनी परिप्रेक्ष्य'', सामरिकविश्लेषण, पृ. 624-639
7. हॉल, इयान, (2012),''भारत की नई सार्वजनिक कूटनीति'', एशियाई सर्वेक्षण, पृ. 1089-1110
8. झांग, बाओहुई, (2010),''संक्रमण में चीनी विदेश नीति रुझान और निहितार्थ'', वर्तमान चीनी मामलों के जर्नल, पृ. 137-158
9. मेलोन, डेविड और मुखर्जी, रोहन, (2010), भारत और चीन: संघर्ष और सहयोग जीवित रहना, पृ. 137-158
10. आमेर रिजवान, विदेश नीति का एक परिचय, 2 अगस्त 2009।
11. आदिल जैनुलभाई, (2006),''इक्विटेबल ग्रोथ नॉट जस्ट ए ड्रीम'', फाइनेंशियल टाइम्स (एशिया संस्करण) 29 नवंबर, 2006
12. एडमिरल जेम्स स्टावरिडिस, यूएसएन कमांडर यूनाइटेड स्टेट्स सदर्न कमांड मिलिट्री स्ट्रैटेजी फोरम 2008
13. अप्पाडोरिया, (1988),''घरेलू और विदेश नीति में एक समकालीन भारत निबंध'', दक्षिण एशियाई प्रकाशक, नई दिल्ली, 1988, पृ. 1241

गुप्त काल में वस्त्रों का वर्गीय विन्यास

अमित कुमार
शोध छात्र, (इतिहास विभाग)
एम.एम. (पी.जी.) कॉलेज, मोदीनगर, गाजियाबाद (उ.प्र.)

शोध-सारांश

गुप्तयुगीन समाज भौतिक संस्कृति के क्षेत्र में भारतीय इतिहास का सर्वश्रेष्ठ युग था। इस भौतिक संस्कृति की उन्नति का पता हमें कालिदास के ग्रंथों से, बाणभट्ट के ग्रंथों से, विदेशी यात्रियों के विवरण से, अजन्ता के चित्रों से और दूसरे पुरातात्विक स्रोतों से लगता है। गुप्त युग में साफ-सुथरे और हल्के कपड़े पहने हुए राजा, सामान्य नागरिक, सामन्तगण, सैनिक, स्त्रियाँ, रानियाँ, कर्मचारी वर्ग, नर्तक वर्ग एवं अन्य वर्ग तथा अन्त:पुर के कठोर नियमों का पालन करती हुई चित्ताकर्षक दासियाँ, सुसज्जित सैनिकों से युक्त जुलूस ये सब भौतिक संस्कृति के विजय चिन्ह के समान हैं। ये सब विधियाँ तथा सुन्दर नक्काशीदार कपड़े गुप्तयुग की पहले की शताब्दियों के भड़कीलेपन से दूर हैं। इन सब विधियों तथा सुन्दर नक्काशीदार धोती और साड़ी पहनने में कलात्मक ढंग से चुन्नटों और सिलवटों के प्रदर्शन से स्पष्ट होता है कि उस युग के पुरुष और स्त्रियाँ वेश विन्यास की कला से पूर्णरूप से अवगत थे। साहित्यिक उद्धरणों, विविध पुरातात्विक साक्ष्यों और विशेषकर अजन्ता के गुहाचित्रों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि गुप्त युग में वस्त्रों की नक्काशियों में भी काफी उन्नति हुई। इनकी वेश-भूषा से इस महत्वपूर्ण तथ्य का पता चलता है कि गुप्त शासक कुषाण राजाओं की तरह विदेशी कंचुक, कोट और पायजामे पहनते थे तथा शुद्ध भारतीय पहनावा भी धारण करते थे। इस सिले वस्त्रों के उपयोग से पता चलता है कि गुप्तों ने देशी और विदेशी दोनों पहनावे उसी तरह ग्रहण कर लिये थे जैसे आज कल पश्चिमी शिक्षा पाये हए नवयुवक सहूलियत के लिए कार्यस्थलों पर जाने में अथवा सामाजिक उत्सवों में शामिल होने पर पश्चिमी पहनावा पहन लेते हैं लेकिन घर पर अपना स्थानीय पहनावा ही पहनते हैं। यह बात भारतीयों के लिए ही नहीं अपितु यूरोपीय ढंग से रहने वाले प्रत्येक एशियावासी के लिए लागू है। हमें गुप्तों की विवेचनात्मक बुद्धि का पता पहरावे में किए गए हेर-फेर से लगता है। उन्होंने कुषाण युग के मोटे, ऊनी अथवा रुई भरे सूती कपड़ों की जगह पतले और पारदर्शी कपड़ों का व्यवहार शुरू किया जो जलवायु के दृष्टिकोण से इस देश के लिए सर्वथा उपयुक्त थे। कुषाण वस्त्रों के भारीपन और बेतरतीब बनावट की जगह हम गुप्त-वेश-भूषा में तैयारी और सफाई देखते हैं जिनसे पहनने वालों की कलात्मक सुरुचि का पता लगता है। गुप्तयुग में सिले हुए विदेशी कपड़ों से धीरे धीरे उनका विदेशीपन निकाल कर उन्हें भारतीय ढांचे में ढाल दिया गया।

महत्वपूर्ण शब्द: गुप्त युग में वस्त्र, कालिदास, बाणभट्ट, कुषाण कालीन वस्त्र, राजपुरुष एवं सामान्य वर्ग के वस्त्र।

युवानच्वांग और इत्सिग की भारत-यात्राएं गुप्त युग की संस्कृति धर्म और सामाजिक परिस्थिति पर अच्छा प्रकाश डालती हैं। इन चीनी यात्रियों के विवरणों और बाणभट्ट के ग्रंथों में आये संस्कृति अवतरणों के आधार पर हम छठवीं और सातवीं सदी की भारतीय वेश-भूषा का सुंदर चित्र खड़ा कर सके हैं। जैन छेदसूत्रों और चूर्णियों में भी, जिनमें वृहद् कल्पसूत्रभाष्य और निशीथ चूर्णी मुख्य है, हम इस युग अथवा इसके पहले के युग की बहुत सी सांस्कृतिक सामग्री पाते हैं।[1] वस्त्रों और पहनावों का तो इनमें विशेष रूप से वर्णन है। इनमें दी हुई वस्त्र की तालिकाओं से यह बताना तो मुश्किल है कि कौन कौन से वस्त्र खास कर गुप्तयुग में ही होते थे, क्योंकि इनमें कुछ बहुत पुराने वस्त्रों के भी नाम आ गए हैं, पर साधारणत: तो यह कहा ही जा सकता है कि ये सब वस्त्र चाहे कितने ही पुराने क्यों न हों गुप्तकाल तक अवश्य बनते व प्रयोग किये जाते थे। गुप्तयुग के बाद इनमें से बहुत से वस्त्रों का चलन कम हो गया था, इसीलिए दसवीं सदी के जैन टीकाकार उनके ठीक ठीक अर्थ नहीं कर पाये।

सभ्य समाज का एक नियम सा है कि उसके अंतर्गत रहने वाले अच्छे कपड़े पहनें और इसके लिए इस बात की आवश्यकता होती है कि तरह तरह के रंगीन और नक्काशीदार कपड़े बनें।[2] बढ़िया कपड़ों की भारत देश में और बाहर काफी मांग थी। भारतीय समाज के स्त्री और पुरुष दोनों कपड़े के शौकीन थे। इस युग में छपाई की भी काफी उन्नति हुई और तत्कालीन नक्काशियां जैसे चारखाने, डोरिया, हंस मिथुन इत्यादि कालांतर में छीपियों या छपाइयों के रूढ़िगत अलंकार बन गये। इन वस्त्रों का वर्गीय विन्यास अर्थात् कौन इन्हें धारण करता था, यह देखना महत्वपूर्ण है।

■ गुप्त शासकों का वेश-विन्यास

गुप्तयुगीन राजषी वेश-विन्यास के क्रम में गुप्तयुगीन सिक्के और अजन्ता के भित्तिचित्र ही जानकारी के प्रधान स्रोत हैं। गुप्तयुगीन सिक्कों में तो गुप्त राजे धोती, दुपट्टा, कंचुक और पायजामे पहनते थे, पर प्राय: वे अपने सिर नंगे रखते थे। साक्ष्यों से जिस शासक की

वेशभूषा का सबसे पहले ज्ञान होता है, वह समुद्रगुप्त था। साधारण भाँति के सिक्कों पर समुद्रगुप्त आधी बाँह वाले कंचुक अथवा कोट पहने हुए है, जिसके चाबदार नुकीले कोने नीचे लटक रहे हैं तथा जिसके आगे पर दोनों घड़ीदार कसीदे का काम है।[3]

अधिकतर सिक्कों में तो कंचुक के दो ही नुकीले कोने होते हैं लेकिन एक सिक्के में चारों कोने दिखलाये गये हैं। इस कंचुक की तुलना मथुरा से मिली हुई एकशक योद्धा की मूर्ति के कंचुक से की जा सकती है।साथ ही समुद्रगुप्त का पाजामा ढीला सलवार न होकर चूड़ीदार है और इनके सिर पर सटकर बैठने वाली टोपी है। जूते अर्ध वृत्ताकार किस्म के हैं। साधारण भाँति के कुछ दूसरे सिक्कों में कंचुक पूरी बाँह का है, बाहें चिपकी न होकर ढीली हैं और कलाइयों पर मोड़ी हुयी हैं। बूट जंघा या अर्ध वृत्ताकार किस्म का है और उसमें बटन लगे हैं। साधारण भाँति के तीसरी किस्म के सिक्कों में आधी बाँह वाले कंचुक का संयोग अधावस्त्रों के साथ है। घुटनों के नीचे तक पहुंचते जूतों के जोड़ पर कुल्ले लगे हैं।

व्याघ्र पराक्रम भाँति के सिक्कों में राजा मुड़ी आस्तीन वाला कसा हुआ कंचुक बटा हुआ कमरबन्द घुटनों के ऊपर तक पहुंचती जाँघिया और कुषाणकालीन पगड़ी, जिसके शीर्ष पर यह लगा हुआ है, पहने हैं।[4] समुद्रगुप्त के वीणा वादक भाँति के सिक्कों से पता चलता है कि राज के थकाने वाले कार्यों से छुट्टी पाकर आराम के समय अथवा संगीत का आनन्द लेते हुए गुप्त राजा ने धोती और टोपी पहनी थी।

चन्द्रगुप्त कुमारदेवी भाँति के सिक्कों में चन्द्रगुप्त चाकदार जामा पहने हुए है जिसके गले पर धुंडीदार काम है और उसमें से झालरें लटक रही हैं। ऐसे पाजामे पर गरारीदार खपुसा किस्म या मुड़ी हुई नोंक वाले जूते हैं। चन्द्रगुप्त कुमारदेवी सिक्कों की भाँति ही कुछ अन्य सिक्कों में चन्द्रगुप्त चाकदार जामा पहने हुए है जिसके शाल पर घुंडीदार काम है। ऐसे पजामे पर गरारीदार खपुसा किस्मया मुड़ी हुई नोंक वाले जूते हैं। साथ ही धनुर्धारी भाँति के सिक्कों में राजा एक समय कंचुक पहनते हैं जो कभी-कभी कमरबन्द से बंधा होता है और इसका फंदा बायीं ओर होता था और उसी ओर इसके सिरे जमीन पर लहराते थे।[5]

धनुर्धारी भाँति के दूसरे सिक्कों में राजा जांघिया और दाहिनी ओर फंदेदार कमरबन्द पहनते हैं। एक सिंह पराक्रम भाँति के सिक्के में राजा कंचुक, कमरबन्द, धोती पहने दिखाये गये हैं। एक दूसरी तरह के कमरबंद में चोटी से लेकर पीछे धुंडियां बनी है। अश्वारोही भाँति के सिक्कों में चन्द्रगुप्त द्वितीय के पहनावे में धोती और कमरबन्द, जिसके छोर पीछे बंधे हुए हैं, मुख्य है। लेकिन कभी-कभी घोड़े पर सवार राजा कमरबन्द से कसा कंचुक और धोती भी पहनते थे। एक ताँबे के सिक्के में बरामदे में आराम से खड़े चन्द्रगुप्त द्वितीय को दोनों कंधों पर पड़ा दुपट्टा जिसका एक छोर उनके बायें हाथ में है, पहने दिखाया गया है।

गुप्त शासक कुमारगुप्त प्रथम के सम्बंध में भी स्पष्ट वर्णन मिलता है। साधारणतः कुमारगुप्त प्रथम चावदार, कंचुक और घुटनों तक की धोती पहने दिखाये गये हैं। कभी-कभी यह धोती एड़ी तक पहुँचती थी। पगड़ी की जगह पूर्णतः कुन्तल अर्थात् सिर के बाल दिखलायी पड़ते हैं। कमरबन्द का कंदा बायीं ओर होता है और उसके सिरे उसी ओर लटका करते हैं। कुमारगुप्त के चाँदी के सिक्कों में वेश-विन्यास की दृष्टि से आकर्षकवस्तु चिपकी टोपी अथवा सजी पगड़ी है जिसका छज्जा ऊपर मुड़ा है। अजन्ता के भित्ति चित्रों में गुप्त राजाओं का पहनावा बड़ा सादा या केवल धोती दुपट्टे का होता था। एक दूसरी जगह राजा धारीदार धोती जिसका एक खाना मोटी धारियों से सज्जित है पहने दिखलाये गये हैं। एक अन्य चित्र में घोड़े पर सवार एक राजकुमार एक पूरे बाहों वाला कंचुक, छोटी धोती और कमरबन्द पहने दिखलाया गया है।

बाघ गुफा के एक भित्ति चित्र में एक राजा धारीदार धोती पहने है।[6] अन्य जगह एक राजा धारी और चारखानेदार धोती और पैरों के बीच लटकता दुपट्टा पहने है तथा दीवार में लगे एक फंदे में अपना बायां हाथ डालकर सुखपूर्वक खड़े हैं। अजंता में गुफा संख्या 17 के एक भित्ति चित्र में एक राजा धोती पहने है और उनके कमरबन्द के छोर नीचे लटक रहे हैं।

■ गुप्त रानियों के वेश-विन्यास

समुद्रगुप्त के साधारण भांति के सिक्कों के पट पर लक्ष्मी देवी एड़ी तक पहुँचती साड़ी और घटने तक पहुँचता पूरे बांह का कंचुक पहनती हैं। स्तनों के नीचे एक पट बंधा है जिसकी मुद्धी अथवा गाँठ बायीं ओर दिखलायी गयी है, उनके कंधे चादर से ढंके है।[7] धनुर्धारी भाँति के सिक्कों में लक्ष्मी धोती और अधबहियाँ कूसिक पहने दिखलायी गयी हैं। कोसम से मिली एक गुप्तकालीन शिव पार्वती की मूर्ति में एकजालीदार टोपी जिसके दोनों ओर फुलकारी का काम हैं, पहने दिखलायी गयी है। अजन्ता के भित्ति चित्रों में रानियाँ एड़ी तक पहुँचती साड़ी या धारीदार घघरी पहनती हैं। अजंता के एक चित्र में दर्पण में अपना मुख देखती हुयी एक राजकुमारी तीनलड़ी करधनी और सुनहरे किनारों वाले कमरबन्द से बंधी साड़ी पहने हैं।[8] एक दूसरी जगह एक रानी धारीदार घघरी और टोपी अथवा पगड़ी पहने है। कभी-कभी अजंता के भित्ति चित्रों में कामदार या कढ़ाई वाली टोपी का भी चित्रण है। एक अन्य रानी हल्के रंग का कंचुक जिसके किनारे पर जवाहिर बने है, पहने है। गुफा संख्या 01 के एक भित्ति चित्र में एक चौकी पर बैठी रानी धारीदार घघरी, स्तन पट्ट और चादर पहने है।[9] वैसे गुप्त रानियों में से अधिकांश की वेशभूषा सामान्य नारियों के समान ही थी परंतु उसमें अलंकरण की मात्रा का बहुतायत पाया जाता है।

■ गुप्त साम्राज्य के सामंतों की वेशभूषा

गुप्त युग में राज्य के उच्चाधिकारी वर्ग सामान्य रूप से कमरबंद से बंधी धोती और पगड़ी पहनते थे। भित्तिचित्रों में एक राजकुमार की धोती का सिरा चुनकर आगे पेट से नीचे की ओर दबाया गया है।[10] कमर के साथ धोती एक मोड़दार खंची हुई पेटी से बंधी है। पेटी के अंदर से कमरबंद निकालकर पहनाया गया है। पगड़ी में पान के आकार का एक शीर्ष पट्ट जिस पर एक पक्षी बैठा है, लगा है। कुछ लोग घर के एकान्त में दोनों सिरे आधे लटकते हुए कमरबन्द के साथ लोग धोती भी पहनते थे। एक भित्ति चित्र में एक अमात्य या राज्यमंत्री एक सफेद पूरी बांह का कंचुक और चादर पहने हैं। उसका सिर अनावृत्त है और वह खल्लका किस्म का पूरा बूट (घुटने तक) पहने है।

एक अन्य मंत्री अधबहियाँ (मिर्जई) कृसिक जिसकी मुहरियों पर वृत्त और चारखाने के जाल बने हैं और छाती पर तिरछी तरह से चादर डाले हैं। गले में एक डोरी भी है जिसके दोनों सिरे एक कांटे से फंसे हैं। गुप्तयुगीन उच्चाधिकारियों के वेश-विन्यास में सादापन होते हुए भी सामन्त अपने कपड़े खूब सजाकर पहनते थे जैसे मीरपुर खास में मिले एक मिट्टी के अर्थ चित्र में गुप्त युग के एक समृद्ध नागरिक की मूर्ति है।[11] उसने जाँघिया के ऊपर धोती इस तरह से पहन रखी है कि उसका सामना तो घुटनों तक पहुँचता है पर पीछा एंड़ियों के जरा ऊपर तक। ढीले तौर से बंधे कमरबन्द के दोनों मुक्त छोर बायीं ओर लटक रहे हैं। चंडादक या जांघिया के ऊपर धोती पहनने की यह इस युग में साधारण प्रथा थी।

सारिपुत्र प्रश्न नामक एक भित्तिचित्र में एक सामन्तया अधीनस्थ राजा का जो उच्च पदाधिकारी बायीं ओर दिखलाया गया है, वह खड़धारियों वाली धोती और छाती को ढंकती हुई चादर जो बायें कंधे पर डाल दी गयी है, पहने है।[12] इसकी चमकदार छोटी पगड़ी के एक तरफ स्वर्ण पुष्प लगा है।

■ गुप्तकालीन स्त्रियों का वेश विन्यास

गुप्त युग में स्त्रियां साड़ी दुपट्टा, चादर, घघरी, कंचुक, कुरता, चोली, लहंगा पहनती थीं। एक सेविका स्त्री पेटी से बंधी साड़ी पहने हुए और उसके कमरबंद के छोर पीछे लटक रहे हैं। इसी चित्र में एक ग्रहिणी की साड़ी की सिलवटें बड़ी सुन्दरता से बनायी गयी है। उसमें कमरबन्द की मुद्धी अथवा गाँठ पीछे बंधी है। अजन्ता के भित्तिचित्रों में कुलीन स्त्रियों को सिले हुए कपड़े भी पहने दिखायी गयी हैं।

एक भित्ति चित्र में एक स्त्री धारीदार, घघरी, जिसके ठीक बीच में फूलों से सजी एक गोट लगी है, पहने है। गुफा संख्या 2 के एक भित्तिचित्र में एक स्त्री महीन कपड़े की चोली और किनारेदार चंडा कमर तक पहने है। एक अन्य स्थान पर जातक के एक चित्र की पृष्ठिका में खड़ी एक स्त्री पतले तथा फूलदार कपड़े का बना कंचुक पहनती है। दुपट्टे पर अलंकार मूल चित्र में बिल्कुल स्पष्ट है। गुफा संख्या 17 के एक भित्तिचित्र में एक स्त्री पारदर्शी कपड़े की बनी घघरी और चोली पहने हुए उपवन में घूम रही है।[13] एक जगह जमीन पर पीछे बैठी एक मध्यवर्ग की स्त्री काले रंग की और बिना बांह की चोली पहने है जिसका ऊपरी हिस्सा, हरा, पीला और नीला है और निचला हिस्सा धारीदार है।

कुछ भित्ति चित्र में एक जगह हाथी पर सवार स्त्रियां दिखलायी गयी हैं।[14] पृष्ठिका में हाथी का महावत् सुनहरी धारियों वाली जाँघिया पहने है। तीन स्त्रियों में एक जो महावत के पीछे बैठी है, ऊन की बनी छोटी बाहों वाली अंगिया, जिसकी मुहरियों पर हरी गोट लगी है, पहने है। चोली का आगे का हिस्सा स्तनों और पेट को ढंकता हुआ, नीचे की ओर बढ़ता हुआ जांघों पर समाप्त होता है, इसका निचला भाग अर्धवृत्ताकार कटा है और दोनों छोर चाकदार है। यह स्त्री एक धारीदार घघरी भी पहनती है। आधुनिक रसोईघर में एप्रिन की तरह का उपरोक्त वस्त्र अजंता के भित्ति चित्रों में कई बार आ चुका है। अजन्ता के एक अन्य भित्ति चित्र में एक स्त्री जिसके तन पर एक मामूली सा कपड़ा है, वह स्त्री एक छपे अथवा कसीदे किये रुमाल अपना सिर ढंके है।[15] इस तरह का शिरोवस्त्र अजन्ता के भित्ति चित्रों और एलोरा की मूर्तियों में काफी आता है।

■ वन में निवास करने वाली व ग्रामीण स्त्रियों का वेश-विन्यास

गुफा संख्या 17 के एक भित्ति चित्र में एक जंगली स्त्री वस्त्र निर्मित घघरी पहने है। इस घघरी की बनावट बहुत सादी है, इसमें केवल पत्रों सहित टहनियां एक मनकों की लड़ी करधनी से आगे पीछे लटका दी गयी है। प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम की प्रतिकृति से अजंता के भित्ति चित्रों में ग्रामीण स्त्रियाँ छोटी साड़ी पहनती हैं।

ग्रामीण स्त्रियाँ एक समान धारीदार छोटी साड़ियां पहनती थीं और अपने सर को रुमाल से ढंके रहती थीं। ग्रामीण क्षेत्रों में एक बड़ी संख्या नाचने, गाने और वाद्ययंत्र बजाकर अपनी आजीविका चलाने वाली महिलाओं की थी जो अपनी आजीविका के अनुरूप वस्त्रों को धारण करती थीं। अजंता के महाजनक जातक वाले भित्ति चित्र में नर्तकी एक लम्बा गहरे भूरे रंग का वृत्तों से अलंकृत पूरे बांह का कंचुक पहने है।[16] इस कंचुक के ऊपर भी आधुनिक काल के एप्रिन जैसा वस्त्र है। उसका लम्बा घाघरा बैगनी हरी और पीली धारियों से सुसज्जित है जिनकी सफेद जमीन पर नग बने हैं। ढोल बजाने वाले की छाती एक धारीदार स्तनपट्ट से, जिसकी गाँठ पीछे बंधी है और छोर नीचे लटक रहे हैं, बंकी है। उसकी घघरी के बीच में एक नग जवाहिर से सुसज्जित पट्टी लगी है।

बाघ की गुफाओं के भित्ति चित्रों में एक स्त्री गायिकाओं का समूह चित्रित है। उसमें सब की सब चोलियाँ पहने हैं। बीच वाली गायिका सफेद चित्ती वाली हरी चोली पहने है। उसके बायीं ओर

वाली नर्तकी का जूड़ा एक सफेद रुमाल से ढंका है, उसके नीचे कंचुक पर एक एप्रिन के समान वस्त्र है। नर्तकी के बगल वाली गायिका आसमानी रंग की अधबहियाँ चोली पहने है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि पुरुष के प्रयोग में आने वाले वस्त्रों की संख्या तीन थी। अपने सिर को वह पाग या वेष्ठन से आवेष्ठित करता और फिर वह दो वस्त्र (दुकूल युग्मम्), यानी उत्तरीय तथा निम्न परिधान पहनता।[17] वेष्ठन पगड़ी का एक प्रकार था जो पुरुष और बालकों के सिर पर बालों को बाँधते हुए लपेटा जाता। उत्तरीय कन्धों को आवृत करने वाला ऊपरी वस्त्र था। धनपतियों के उत्तरीय रत्नजटित होते थे। वे उनका प्रयोग ग्रीष्मकाल में करते थे। मथुरा-संग्रहालय में सुरक्षित कुषाण तथा गुप्त-काल या उससे भी पूर्व की गोलाई में उत्कीर्ण दुसरी मूर्तियों और सुन्दरता से उत्कीर्णित पृष्ठभूमि सहित प्रतिमाओं पर एक उतरीय तथा धोती का परिधान देखा जा सकता है।[18] वहीं स्त्रियों के परिधान में तीन वस्त्र थे। उनके परिधान के लिए अंशुक पदका प्रयोग है। यद्यपि यह पद किसी भी वस्त्र के लिए उपयुक्त हो सकता है, तथापि इस शब्द के जितने संकेत आये हैं, सभी एक से स्त्री-परिधान के सम्बन्ध में संकेत करते हैं। स्त्री-परिधान के तीन वस्त्रों में एक ऊर्ध्व और दूसरा अधोवस्त्र तथा एक दुशाला थे।[19] ऊर्ध्व वस्त्र एक कुर्ती (कासिक) के समान था, जिसका सादृश हम मथुरा-संग्रहालय की कतिपय नारी-मतियों पर प्रदर्शित देखते हैं। इस कुर्ती का सामान्यत: संकेत स्तनांशुक शब्द से हुआ है।

स्पष्ट है कि गुप्तकाल में वस्त्रों में पर्याप्त विविधता और भव्यता विद्यमान थी और समाज के सभी वर्गों के व्यक्ति उनको धारण करते भी करते थे। विदेशी यात्रियों ने भी इसका पूर्ण मनोयोग से वर्णन किया है।

संदर्भ सूची

1. सिंह, डॉ. देवेन्द्र कुमार प्राचीन भारत में मंत्रिपरिषद एवं कार्यप्रणाली, कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2004 पेज 119
2. वही, पेज 126
3. अल्तेकर, डॉ. ए.एस., स्टेट एंड गवर्नमेन्ट इन एन्शियन्ट इण्डिया, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, 1999, पेज 52
4. भण्डारकर, डी.आर., लैक्चर्स ऑन द एन्शियन्ट हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, कलकत्ता 1968 पेज 69
5. भार्गव, डा. वी.एस. प्राचीन भारतीय इतिहास एवं विचार, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 1970 पेज 67
6. शर्मा, डॉ. सुरेन्द्र मोहन, प्राचीन भारतीय चिन्तन में राज्य व समाज, आर.बी.ए.स. पब्लिशर्स,जयपुर 2012 पेज 162
7. वही, पेज 163
8. वही, पेज 167
9. उपाध्याय, डॉ. वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, इंडियन प्रेस प्रा.लि. तृतीय संस्करण, इलाहाबाद, 1969, पेज 174
10. वही, पेज 177
11. भण्डारकर, डी.आर., वही, पेज 94
12. गुप्त, डॉ. शिवकुमार, भारतीय संस्कृति के मूलाधार, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, 2002, पेज 63
13. वही, पेज 60
14. अग्निहोत्री, डॉ. प्रभुदयाल, महाकवि कालिदासः कृतियों का साहित्य शास्त्रीय समीक्षण, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1998, पेज 102
15. वही, पेज 105
16. प्रसाद,ओमप्रकाश और गौरव प्रशान्त,प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास,राजकमल प्रकाशन, पटना, 2006 पेज 217
17. वही, पेज 221
18. अग्निहोत्री, डॉ. प्रभुदयाल, वही, पेज 112
19. वही, पेज 110

मराठा साम्राज्य का इतिहास

अंकित
एम.ए. (इतिहास)
इंदिरा गांधी नेशनल ओपन, यूनिवर्सिटी

शोध आलेख सार

मराठा साम्राज्य जिसे मराठा परिसघं के रूप में भी जाना जाता है। 17 वीं और 18 वीं शताब्दी के दौरान भारत के एक बड़े हिस्से पर हावी था। मराठा साम्राज्य औपचारिक रूप से 1674 में छत्रपति शिवाजी के उदय के साथ शुरू हुआ। मराठा साम्राज्य दक्षिण भारत में मुगल साम्राज्य के विस्तार और आगमन के परिणामस्वरूप पैदा हुआ था। इसने दक्कन के पठार में व्याप्त अराजकता को समाप्त कर दिया इसलिए, मराठा साम्राज्य को भारत में मुगल शासन को समाप्त करने का श्रेय दिया जाता है और इसे अक्सर एक सच्ची भारतीय शक्ति के रूप में देखा जाता है, क्योंकि यह 17वीं और 18वीं शताब्दी के दौरान भारतीय उपमहाद्वीप पर हावी था। अपने चरम पर मराठा साम्राज्य उत्तर में पेशावर से लेकर दक्षिण में तंजावुर तक फैला हुआ था। मराठा जिन्होनें दक्कन के पठार से उभरने वाले एक योद्धा समूह के रूप में शुरुआत की, 19वीं सदी की शुरुआत में उनके पतन से पहले भारतीय उपमहाद्वीप के अधिकांश हिस्सों को नियन्त्रित करने के लिए चले गए। विस्तार मराठा साम्राज्य का इतिहास भारत के इतिहास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। मराठों का उदय छत्रपति शिवाजी भोसंले (1627–80 ई.) के नेतृत्व में सभंव हुआ। मराठा साम्राज्य में कई कुलों का समावेश था। इतिहास के अनुसार वे राष्ट्रकूट, मौर्य, परिहार या परमार (पवार), प्रतिहार, शिलाहार, कदंब, यादव, चालुक्य और भारत के कई अन्य शाही कुलों के वंशज हैं। महाराष्ट्र के मुस्लिम आक्रमणों के समय मराठा अस्तित्व में आए।

मुख्य शब्द: मराठा साम्राज्य, मुगल शासन, संप्रदाय।

परिचय

1300 से 1320 ईस्वी तक की अवधि महाराष्ट्र में तीव्र सघंर्ष का चरण था। उस समय अलाउद्दीन खिलजी ने वर्तमान महाराष्ट्र पर आक्रमण किया। इसमें कई वंश खत्म हुए। मराठों ने राजपूत समूह के साथ अच्छे संबंध विकसित किए। मराठा लोगों का एक बड़ा हिस्सा किसान वर्ग से था। मराठा मराठी भाषी सामाजिक संप्रदाय हैं जो 96 विभिन्न मराठा कुलों से सबं न्धित हैं।

छत्रपति श्री शिवाजी महाराज का जन्म 1627 ई. में पुणे में हुआ था। औरंगजेब के तमाम प्रयासों के बावजूद वह अपने जीवनकाल में शिवाजी की शक्ति को अधीन नहीं कर सका। अपने शासनकाल के दौरान, वर्ष 1674 में शिवाजी ने खुद को मराठा साम्राज्य के स्वतंत्र शासक के रूप में पुष्टि की। 1647 तक छत्रपति शिवाजी ने दो किलों को जीत लिया था और पूरे पुणे क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था। उन्होने धीरे–धीरे इस क्षेत्र में पुरंदर, राजगढ़ और तोरण जैसे किलों पर कब्जा कर लिया। 1659 में शिवाजी ने प्रसिद्ध आदिलशाही सेनापति अफजल खान को मार डाला और उसकी सेना का मनोबल गिरा दिया। उन्होंने पुणे के पास मराठा साम्राज्य की नींव सुरक्षित कर ली, जो बाद में मराठा राजधानी बन गई। शिवाजी ने छापामार रणनीति और शानदार सैन्य रणनीतियों का सही इस्तेमाल किया था। छत्रपति 1660 में और उसके बाद सूरत के प्रमुख बंदरगाह सहित मुगल गढ़ों के खिलाफ कई हमलों का नेतृत्व करने में सफल रहे। 1666 में औरंगजेब द्वारा गिरफ्तारी होने के बाद वो साहसिक रूप से निकलने में सफल रहे और अपने खोए हुए राज्य और सम्मान को पुन: प्राप्त किया। वर्ष 1673 तक पश्चिमी महाराष्ट्र के कई राज्यों पर उनका अधिकार हो गया था और उन्होनें 'रायगढ़' को मराठा साम्राज्य की राजधानी भी घोषित कर दिया था। 1674 में उन्होनें अपने विस्तृत राज्याभिषेक पर 'छत्रपति' की उपाधि धारण की। 1680 में उनकी मृत्यु के समय लगभग पूरा दक्कन उनके राज्य का था। वास्तव में शिवाजी ने न केवल एक विजेता और एक सैन्य राजनेता के रूप में पूरे मराठा इतिहास में अपनी छाप छोड़ी थी, बल्कि उन्हें अच्छे शासक और मेहनती प्रशासक के रूप में प्रशंसित किया गया था। उन्होनें मराठा राज्य की एक ठोस नींव रखी। शिवाजी के बाद सभंाजी गद्दी पर बैठे और मराठा इतिहास में एक नया चरण शुरू हुआ। उन्हें 1689 में औरंगजेब द्वारा बंदी बना लिया गया और मार डाला गया। शिवाजी के दूसरे पुत्र राजाराम सत्ता में आए। वर्ष 1700 में राजाराम की मृत्यु के बाद ताराबाई ने अपने दस वर्षीय युवा पुत्र शिवाजी द्वितीय को सिंहासन पर बिठाया, और औरंगजेब के साथ लड़ाई जारी रखी। छत्रपति शिवाजी के पोते शाहू को 1707 में मुगल कैद से रिहा कर दिया गया था। उन्होंने 1708 ईस्वी में ताराबाई से मराठा सिंहासन पर कब्जा कर लिया और सफलतापूर्वक मुगलों के खिलाफ अपनी लड़ाई जारी रखी और पूर्व मराठा की राजधानी रायगढ़ पर कब्जा कर लिया। मुगलों के खिलाफ लड़ाई 1707 में औरंगजेब की मृत्यु के साथ समाप्त हुई। वर्चस्व की जीत में शाहू अंतत: सफल रहे क्योंकि

उन्हें बालाजी विश्वनाथ नामक सबसे योग्य मराठा प्रमुख की सेवाएं मिलीं। इस संघर्ष से मराठा सरकार की नई प्रणाली विकसित हुई जिसे पेशवा कहा जाता है। पेशवाओं के शासन में मराठा इतिहास अपने चरम पर पहुंच गया। 1712 में शाहू की मृत्यु के बाद गद्दी सभांलने वाले बालाजी विश्वनाथ ने 1712 से 1721 तक शासन किया। 1680 में छत्रपति शिवाजी और 1687 में उनके पुत्र संभाजी की मृत्यु ने 1707 तक मराठा साम्राज्य की अस्थिरता की अवधि की शुरुआत की। बाद में पेशवाओं द्वारा मराठा साम्राज्य का विस्तार किया गया, जिसमें बाजी राव पेशवा प्रथम (1721-1740) की महान भूमिका थी। धीरे-धीरे पेशवा मराठा साम्राज्य के वास्तविक शासक बन गए। बड़ौदा के गायकवाड़, ग्वालियर के शिंदे, इंदौर के होल्कर जैसे मराठा सरदारों या सरदारों ने उत्तर भारत में शक्ति का विस्तार किया। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद दिल्ली के पास की लड़ाई में, मराठों ने 1756 में शाह अब्दाली और नजीब खान के नेतृत्व में अफगान-रोहिला बलों को निर्णायक रूप से हराया। नजीब खान ने मराठों के सामने आत्मसमर्पण कर दिया और उनके कैदी बन गए और 800 वर्षों के बाद इस लड़ाई ने मुस्लिम आधिपत्य से पंजाब को मुक्त कर दिया। 1761 में पानीपत की लड़ाई में मराठों की हार हुई। इससे अफगानों को भी बड़ा नुकसान हुआ और उन्होंने भारत छोड़ने का फैसला किया। मराठा साम्राज्य पर नियंत्रण खोने के बाद, पेशवाओं और शिंदे (ग्वालियर) और होल्कर (इंदौर) जैसे मराठा जनरलों ने इसके बाद, उत्तर और मध्य भारत में खुद को समेकित किया।

1718 ने दिल्ली में मराठा प्रभाव की शुरुआत को चिह्नित किया। 1721 में बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु के बाद बड़े पुत्र बाजीराव पेशवा बने। पुणे ने रायगढ़ से मराठा साम्राज्य की राजधानी के रूप में अपना दर्जा वापस पा लिया था। 1734 में बाजीराव ने उत्तर में मालवा क्षेत्र पर कब्जा कर लिया, और 1739 में उन्होंने पश्चिमी घाट से पुर्तगालियों को खदेड़ दिया। बाजी राव के पुत्र (नानासाहेब) बालाजी बाजीराव बाजी राव की मृत्यु के बाद पेशवा के रूप में सफल हुए। उन्होने 1756 में दिल्ली के पास अहमद शाह अब्दाली को हराया। लेकिन पानीपत की तीसरी लड़ाई (1761) में मराठा युद्ध हार गए, जो मराठों और अहमद शाह अब्दल्ली के बीच हुआ था। बालाजी बाजी राव की मृत्यु उनके बड़े बेटे और भाई की मृत्यु के बाद हुए युद्ध के तुरंत बाद हुई। माधव राव प्रथम ने मराठा इतिहास की विरासत को पुनर्जीवित करने का एक नया प्रयास किया। लेकिन उनकी मृत्यु के बाद एक बार फिर मराठा संकट में पड़ गए।

1772 में महादाजी सिंधिया ने उत्तर भारत में कई जगह अपनी सत्ता स्थापित की। 1774 से 1782 तक प्रथम आंग्ल- मराठा युद्ध चला जिसमें अंग्रेजों की हार हुई। मई 1782 में सालबाई की संधि से युद्ध समाप्त हो गया। पेशवा द्वारा सेना को भारतीय मुसलमानों के अफगान नेतृत्व वाले गठबंधन को चुनौती देने के लिए भेजा गया था जिसमें रोहिल्ला, शुजा-उद-दौला, नजीब-उद-दौला शामिल थे। महादजी शिंदे ने ग्वालियर से दिल्ली और आगरा के क्षेत्रों को नियंत्रित किया, होल्करों ने इंदौर से मध्य भारत को नियंत्रित किया और गायकवाड़ ने बड़ौदा से पश्चिमी भारत को नियंत्रित किया। पानीपत की लड़ाई के एक दशक के बाद, युवा माधव राव पेशवा ने उत्तर भारत पर साम्राज्य के पुनर्निर्माण की पहल की और क्षेत्र को ठीक से प्रबंधित करने के लिए सबसे मजबूत शूरवीरों को अर्ध-स्वायत्तता दी गई।

ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने 1775 में रघुनाथराव की ओर से पुणे में उत्तराधिकार संघर्ष में हस्तक्षेप किया और इसने प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध शुरू किया और 1782 में समाप्त हो गया। अंग्रेजों ने 1802 में बड़ौदा में हस्तक्षेप किया। 1803-1805 में, द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध के दौरान, पेशवा बाजी राव द्वितीय ने एक संधि पर हस्ताक्षर किए। 1817-1818 मे, तीसरे आंग्ल-मराठा युद्ध के दौरान संप्रभुता हासिल करने के अंतिम प्रयास के कारण मराठा स्वतंत्रता का नुकसान हुआ। कोल्हापुर और सतारा राज्यों को छोड़कर पुणे सहित देश का मराठा गढ़ सीधे ब्रिटिश शासन के अधीन आ गया। मराठा शासित राज्य ग्वालियर, इंदौर और नागपुर रियासतों के रूप में ब्रिटिश राज के साथ अधीनस्थ गठबंधन में आ गए और उन्होनें ब्रिटिश 'सर्वोच्चता' के तहत आंतरिक संप्रभुता बनाए रखी। ब्रिटिश राज ने मराठा शूरवीरों की अन्य छोटी रियासतों को भी बरकरार रखा था। ब्रिटिश शासन के खिलाफ1857 की लड़ाई के प्रमुख नेताओं में से एक अंतिम पेशवा, नाना साहिब ने लोगों और भारतीय राजकुमारों को अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने के लिए प्रोत्साहित किया। तांत्या टोपे और रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों के साथ बड़ी बहादुरी से लड़ाई लड़ी और भारतीय सैनिकों ने भी अंग्रेजों के खिलाफ अपनी लड़ाई में खुद को समर्पित कर दिया। 1857 में मराठा अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह में सबसे आगे थे। योजना की कमी, हिंदू शासकों के भीतर उचित समन्वय, राजनयिक प्रयासों की कमी, अस्त्रों और संचार सुविधाओं की कमी के कारण विद्रोह विफल हो गया। 1960 में एक मराठी भाषी महाराष्ट्र राज्य के गठन के बाद, मराठा समुदाय महाराष्ट्र राज्य की राजनीति में प्रमुख हो गया।

सन्दर्भ

1. Agrawal,ashvini (1983). "Events leading to the Battle of Panipat".studies in Mughal History. Motilal Banarsidass.ISBN 81-208-2326-5.
2. Ahmad,aziz; Krishnamurti, R. (1962). "Akbar: The Religiousaspect". The Journal ofasianstudies. 21 (4): 577. JSTOR 2050934. ISBN 0021-9118. DOI :10.2307/2050934.
3. Barua, Pradeep (2005). Thestateat War insouthasia. University of Nebraska Press. ISBN 0-8032-1344-1.
4. Bhave, Y. G. (2000). From the Death ofshivaji to the Death ofaurangzeb: The Critical Years. Northern Book Centre. ISBN 978-81-7211-100-7.

5. Bhosle, Prince Pratapsinhserfoji Raje (2017). Contributions of Thanjavur Maratha Kings (2nd Vol). Notion Press. ISBN 978-1-948230-95-7.
6. Black, Jeremy (2006).a Military History of Britain: from 1775 to the Present. Westport, Conn.: Greenwood Publishing Group. ISBN 978-0-275-99039-8.
7. Bose, MeliaBelli (2017). Women, Genderandart inasia, c. 1500–1900. Taylor &Francis. ISBN 978-1-351-53655-4.
8. Capper, John (1997). Delhi, the Capital of India.asian Educationalservices. ISBN 978-81-206-1282-2.
9. Chaurasia, R.S. (2004). History of the Marathas. New Delhi:atlantic. ISBN 978-81-269-0394-8.
10. Chaturvedi, Prof. R. P. (2010). Great Personalities. Upkar Prakashan. ISBN 978-81-7482-061-7.
11. Chaudhuri, Kirti N. (2006). The Trading World ofasiaand the English East India Company: 1660–1760. Cambridge University Press. ISBN 978-0-52103159-2.
12. Chhabra, G.S. (2005).advancestudy in the History of Modern India. (Volume-1: 1707–1803). Lotus Press. ISBN 978-81-89093-06-8.
13. Cooper, Randolf G.s. (2003). Theanglo-Maratha Campaignsand the Contest for India: Thestruggle for Control of thesouthasian Military Economy. Cambridge University Press. ISBN 978-0-521-82444-6.
14. Disha Experts (2017). Breathing in Bodhi – the Generalawareness/ Comprehension book – Lifeskills/ Level 2 for theavid readers. Disha Publications. ISBN 978-93-84583-48-4.
15. Edwardes,stephen Meredyth; Garrett, Herbert Leonard Offley (1995). Mughal Rule in India. Delhi:atlantic Publishers & Dist. ISBN 978-81-7156-551-1.
16. Farooqui,salmaahmed (2011).a Comprehensive History of Medieval India: Twelfth to the Mid-Eighteenth Century. Pearson Education India. ISBN 978-81-3173202-1.
17. Gash, Norman (1990). Wellington:studies in the Militaryand Political Career of the First Duke of Wellington. Manchester University Press. ISBN 978-0-71902974-5.
18. Ghazi, M.A. (2002). Islamic Renaissance Insouthasia (1707–1867) : The Role Ofshah Waliallah & Hissuccessors. New Delhi:adam. ISBN 978-81-7435400-6.
19. Gokhale, Balkrishna Govind (1988). Poona in the eighteenth century:an urban history. Oxford University Press. ISBN 978-0-19-562137-2.
20. Hasan, Mohibbul (2005). History of Tipusultan. Delhi:aakar Books. ISBN 978-81-87879-57-2.
21. Hatalkar, V. G. (1958). Relations Between the Frenchand the Marathas: 1668–1815. T.V. Chidambaran.
22. Roy, Kaushik (2011). War, Cultureandsociety in Early Modernsouthasia, 1740–1849. Taylor & Francis. ISBN 978-1-136-79087-4.
23. Roy, Kaushik (2004). India's Historic Battles: Fromalexander the Great to Kargil. Orient Blackswan. ISBN 978-81-7824-109-8.
24. Saini,a.K; Chand, Hukam (n.d.). History of Medieval India. New Delhi:anmol Publications. ISBN 978-81-261-2313-1.
25. Sampath, Vikram (2008).splendours of Royal Mysore (Paperback). Rupa &Company. ISBN 978-81-291-1535-5.
26. Sardesai, Govindsakharam (1935).a History of Modern India ...: Marathi Riyasat. 2.
27. Sardesai, H.S. (2002).shivaji, the great Maratha. Cosmo Publications. ISBN 978-81-7755-286-7.
28. Sarkar, Jadunath (1950). at Google Books Fall of the Mughal Empire: 1754–1771. (Panipat), (2nd Vol). M.C.sarkar.
29. Sarkar, Jadunath (1991). Fall of the Mughal Empire. I (4th Vol). Orient Longman. ISBN 978-81-250-1149-1.
30. Sarkar, Jadunath (1994).a History of Jaipur: C. 1503–1938. Orient Blackswan. ISBN 978-81-250-0333-5.
31. Schmidt, Karl J. (2015).anatlasandsurvey ofsouthasian History. Routledge. ISBN 978-1-317-47681-8.
32. Sen,sailendra Nath (1994).anglo-Maratha Relations, 1785–96. 2. Bombay: Popular Prakashan. ISBN 978-81-7154-789-0.
33. Sen,s.N (2006). History Modern India (Vol 3rd). The Newage. ISBN 978-81-224-1774-6.

मुद्रा की तात्विक विवेचना

डॉ. अंकित शर्मा
सहायक प्राध्यापक, योग विज्ञान एवं समग्र स्वास्थ्य विभाग
स्वामी राम हिमालयन विश्वविद्यालय, देहरादून, उत्तराखंड

प्रस्तावना - भारतीय धर्म-साधना पद्धतियों में सभी मत या सम्प्रदाय मुक्तकंठ से मुद्राओं की विशेषता को स्वीकार करते हैं। मुद्रा अपने तात्विक रूप में अत्यधिक गूढ़ है जो मर्मज्ञों मात्र द्वारा ज्ञेय है। परन्तु समसामयिक इसकी जो आज बाह्यवर्ती अंगन्यास अभ्यासों एवं कर्मकांडीय रूप में छवि है वही मात्र इसका परिचय नहीं। अपितु मूलत: मुद्रा अपने चिदानंदात्मक आत्मस्वरूप के उन्मीलन का एक साधन है तथा और घहनार्थ में अन्तरतम यह शिवशक्तिस्वरूपा ही है। यहाँ एक दृष्टि से मुद्रा की कार्य प्रणाली का माध्यम एक ही चैतन्यता किस प्रकार भिन्न भिन्न स्वरूपों में अनुप्राणित है यह जानना आवश्यक है, तो दूसरी ओर उसके साध्य स्वरूप में उसकी स्थिति का ज्ञान ज्ञेय है।

मुद्राओं के बाह्याभ्यन्तर उभयात्मक विषयों की चर्चा ही यहाँ ध्यातव्य है यथा 'योग' शब्द साधन एवं साध्य दोनों ही अर्थों में चर्चित है जैसे '*योग: कर्मषु कौशलम्*'[1] एक साधनार्थ में, तो '*योगश्चित्त वृत्ति निरोध:*'[2] एक साध्यार्थ में प्रयुक्त परिभाषा है। इसे यूँ समझें जैसे कुलार्णव तंत्र में मुद्रा के साधनात्मक पक्ष में उसे साधन के रूप में इस प्रकार दर्शाया गया है-

मुदं कुर्वन्ति देवानां मनांसि द्राव्यान्ति च।
तस्मान्मुद्रा इति ख्याता दर्शितव्या: कुलेश्वरी।।[3]

अर्थात् माँ भगवती कुलेश्वरी को समर्पित (योन्यादी) मुद्राओं के प्रदर्शन से देवता भी प्रसन्न होते हैं एवं यह मन को द्रवित(नियंत्रित/शुद्ध) करने वाली हैं। इससे ज्ञातव्य है की मुद्रा की अपने बाह्य क्रियात्मक पक्ष की विशेषता कदापि कम नहीं जिसके माध्यम से मन को भी प्रभावित किया जाता है तथापि स्थूल से सूक्ष्म साधना की वांक्षनीयता की तरह ही साधक को इसके तात्विक अर्थ को भी अंगीसार करना चाहिये। यथोक्त मालिनीविजयोत्तरतन्त्र (अधिकार।) द्रष्टव्य है-

अथात: सम्प्रवक्ष्यामि मुद्राख्या: शिवशक्तय:।[4]

अर्थात् मुद्रा साक्षात शिव-शक्ति स्वरूपा है। जो मानवीय चेतना को त्रिगुणात्मिका प्रकृति के बंधन से मुक्त कर साक्षात् शिवशक्ति स्वरूपा हो जाने की माध्यम एवं स्थिति दोनों बनाती है। यहाँ पर मुद्रा शब्द की साध्यार्थ में चर्चा स्पष्ट है। आचार्य अभिनव गुप्त कहते हैं कि-"*कुले शरीरे सत्यपि, प्राप्तपरेश्वरैकात्म्येन योगिन:। अतएव तत्रैव दाढर्याद्विस्मृतदेहभावस्य, या काचन उत्थिततत्वादिरूपा देहे स्थिति: सैव चिच्छक्तिप्रकृतिरूपा वास्तवी मुद्रा; न तुनियतकरादिनिर्वर्त्यसन्निवेशादिरूपा इत्यर्थ:। यदुक्तम्- 'नादो मन्त्र: स्थितिर्मुद्रा*"

अर्थात् वह योगी, जो 'कुल' शरीर में स्थित तो दृष्टिगत होता है, किन्तु 'शैवसमावेश' के परामृत में जिसका सम्पूर्ण अस्तित्व डूबा हुआ है और जो चिदैकात्म्य की दृढ़ता से देहभाव विस्मृत कर चुका है, उसकी उठने-बैठने की नि:शेष क्रियायें न रहकर 'मुद्राएं' ही बन जाती हैं। हाथ आदि शरीरांगों से निर्मित आकृतियाँ मात्र 'मुद्रा' नहीं हैं।

मुद्राएं चैतन्यता की द्योतक एवं उसकी सकारात्मक उन्मुखता की पर्याय हैं। योगिनीहृदय तन्त्र में कथित है कि-

क्रियाशक्तिस्तु विश्वस्य मोदनाद् द्रावणात्तथा।
मुद्राख्या सा यदा संविदम्बिका त्रिकलामयी।।[5]

अर्थात् वह संविदम्बिका जब अपनी शक्ति से क्रियात्मिका रूप में आती हैं तो विश्व का मोदन/सर्ग अर्थात द्रावण/विसर्ग करती हैं और उनके इसी क्रिया स्वरूप को मुद्रा कहतें हैं। मुद्रा का एक शाब्दिक अर्थ ही है- क्रियात्मिका। क्रियात्मिका अर्थात् चैतन्यता। जैसा की 'क्षेमराज' 'स्वच्छन्द तन्त्र' में भी मुद्रा की तात्विक विवेचना करते हुए कहते हैं-

मन्त्रो वै ज्ञानशक्तिश्च मुद्रा चैव क्रियात्मिका।[6]

'मन्त्र तो ज्ञान शक्ति है लेकिन मुद्रा परमात्मा की क्रियाशक्ति है।' मुद्रा में प्रयुक्त मूल शब्द 'मोद' है जिसका अर्थ हुआ प्रसन्नता या आनन्द प्रदान करने वाली, देवताओं को प्रसन्न करने वाली, सिद्धों को अत्यंत प्रिया, स्वयं को आनन्द प्रदान करने वाली मुद्रा।

ध्यातव्य यहाँ यह है कि मुद्रा और मन्त्र दोनों भले ही क्रियात्मक रूप से भिन्न प्रतीति रखते हैं परन्तु दोनों का ही आधार स्तम्भ व्यक्ताव्यक्त रूप में 'प्राण' ही है अभिव्यक्ति में प्राण की अनेकानेक गतियाँ हैं जैसे सूर्य सहस्त्ररश्मि है, वैसे ही प्राण भी सहस्त्र गतिसंपन्न है। अभिव्यक्ति में प्राण पृथक-पृथक पथ धारण करता है वह पृथग्वर्त्मात्मा है- *प्राण: पृथग्वर्त्मात्मा।* यथा मन्त्र के परिपेक्ष में तो ब्रह्मोपनिषद में कहा भी गया है-

प्राणो भवेत् परंब्रह्म जगत्कारण मव्यव्ययम्।
प्राणो भवेत् यथामत्रं ज्ञानकोश गतोपि वा।।[7]

अर्थात् प्राण ही जगत का कारण परब्रह्म है। मंत्रज्ञान तथा पंचकोश दोनों प्राण पर ही आधारित है। प्राणशक्ति ही आखों में, वाणी में, चिन्तन और क्रिया में चमकता है। तथा उपरोक्त मुद्रा को भी

मन्त्र की ही भांति क्रियात्मक कहा गया है। मन्त्र विज्ञान में ध्वन्यात्मक संरचना प्राण से अनुप्राणित है वहीं मुद्रा को क्रियात्मक कहने का अर्थ यहाँ जड़ प्रकृति के क्रियात्मकता होने से है और जड़ प्रकृति भी उस परमात्मा के अंश रूप पुरुष के चैतन्य से उत्पन्न प्राण के कारण ही है। दोनों ही उस परब्रह्म सच्चिदानन्द की चैतन्यता से जायमान हैं- जैसा कि आचार्य भास्करराय सेतुबंध (चक्रसंकेत) में कहते है कि-

'यदा तावच्चिच्छक्तिः स्वात्माभिन्नायां भित्तावधिकरणेस्वेच्छया विश्वमयोल्लेख प्रकाशामर्शने करोति। तदा सैव क्रियाशक्तिर्भूत्वा विश्वस्य मोदन- द्रावणरूपधर्मद्वयविशिष्टासती मुद्राख्या भवति।'

अर्थात् जब चित्शक्ति स्वात्माभिन्न भित्ति में स्वेच्छापूर्वक विश्वमयोल्लेख का 'प्रकाश' में आमर्शन करती है, तब वे क्रियाशक्ति बनकर विश्व के मोदन एवं द्रावणरूप धर्मद्वय से विशिष्ट होकर 'मुद्रा' नाम वाली कहलाती है। यहाँ जड़ प्रकृति में सर्ग-विसर्ग क्रिया का स्पंदन ईश्वरीय चेतना से जायमान है। यथा 'नेत्रतन्त्र' कथित है कि 'आत्मा के स्वरूप की अभिव्यक्ति हेतु तीन साधन हैं- मन्त्र, ध्यान और मुद्रा।' मन्त्र परमात्मा की ज्ञान शक्ति है और मुद्रा क्रियाशक्ति है। इस प्रकार उपरोक्त दोनों ही कथन से सांख्योक्त आत्मा के चैतन्य के स्पर्श से जड़ात्मक प्रकृति में आमर्शन इंगित है और यह इस चैतन्य से उत्पन्न यहाँ सूक्ष्म रूप से प्राण के रूप में कार्यरत होता है, जो मुद्रा के माध्यम से परिलक्षित है।

इस प्रकार जहाँ एक ओर चर्चा में मुद्रा माध्यमरूप से मानवीय चेतना को त्रिगुणात्मिका प्रकृति के बंधन से मुक्त करने वाली बताई गयी वहीं दूसरी ओर मुद्रा को स्वयं में एक स्थिति/प्राप्य स्थान/साध्य भी दर्शाया गया है। मुद्रा स्थूलरूप से पञ्चभूत रचित इस स्थूल शरीर के अभ्यासों के प्रयोग सर्वाधिक तन्त्र एवं हठ यौगिक ग्रन्थों में विस्तृत रूप से दिखाई देतें हैं जिनके बाह्याभंतर अभ्यास सर्वसिद्धि प्रदायक हैं जिसका क्रियाविज्ञान सूक्ष्म शरीर में प्राणिक स्तर पर घटता है।

सूक्ष्म शरीर को 'शारीरिकोपनिषद्' में लिंग शरीर भी कहा गया है जिसके अंतर्गत पञ्च ज्ञानेन्द्रियां, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ, पञ्च प्राण, मन एवं बुद्धि ये सत्रह कहे गये हैं-

बुद्धिकर्मेन्द्रियप्राणपञ्चकैर्मनसा धिया।
शरीरं सप्तदशभिः सुसूक्ष्मं लिंगमुच्यते।।[8]

सान्ख्योक्त सूक्ष्म शरीर को करण कहा गया है करण अर्थात्- '*क्रियते अनेन इति करण*'[9] अर्थात् जिसके द्वारा किया जाये वह साधन ही करण है। पुरुष के द्वारा प्रकृति को भोगने में जो सहायक/माध्यम हैं वही करण हैं।

करणं त्रयोदशविधं तदाहरणधारणप्रकाशकम्।
कार्यं च तस्य दशधाऽऽहार्यं धार्यं प्रकाश्यं च॥[10]

योग ग्रंथों अथवा उपनिषद् आदि सभी में पंचकोश सिद्धांत में जो पड़ाव हैं उनसे हम यह समझ सकते हैं कि किस प्रकार यह मुद्रा का स्वरूप कहें या प्रभाव उतरोत्तर स्थिति भेद को प्राप्त होता हुआ आनन्मय से आनन्दमय तक की यात्रा पूर्ण करता है। जैसा कि हठयोग प्रदीपका में मुद्रा के लाभार्थ में कथित भी है-

आदिनाथोदितं दिव्यमष्टैश्वर्य-प्रदायकम्।
वल्लभं सर्व-सिद्धानां दुर्लभं मरुतामपि॥[11]

'मुद' (मोद) या आनंद प्रदान करने वाली तथा सिद्धों को अत्यंत प्रिय यौगिक साधनाएं हैं। मुद्राओं का प्रभाव प्राणिक स्तर पर कार्य करता है, तो प्रथमतया स्थूल पार्थिव शरीर पर ही मुद्रा का प्रयोग दिखता है एवं यही इसका आधार है क्योंकि यही इसका पहला मूल अधिष्ठान है जिस पर इसका क्रियात्मक रूप से अभ्यास किया जा सकता है। यह शक्ति का निवासगृह है, जहां प्राण विश्राम अवस्था में सुषुप्त शयन करता है। परन्तु मुद्राओं के अभ्यास से यहीं से फिर मुद्राओं का प्रभाव स्वरूप यह प्राण जाग्रत होकर सूक्ष्म शरीर के सोपानों पर उर्ध्वारोहण करता है और आनंदमय कोष के सर्वानन्दमय शिखर तक जा पहुँच जाता है। सूक्ष्म शरीर में भ्रूमध्य का स्थान-आज्ञा चक्र ही विज्ञानमय कोष का प्रतीक एवं मनोमय कोष इसके अंतर्गत ही सम्मिलित हैं।

सूक्ष्म शरीर में स्थित चक्रों का विषद विवरण उपनिषद आदि में विस्तृत वर्णित है। उस अध्ययन की सम्पूर्णता के लिए ही हमें कोशों का निरूपण किया गया है। इसलिए भी कि कोशों के ज्ञान से अंतर्रचना का ज्ञान प्राप्त होता है। सूक्ष्म शरीर में सर्वप्रथम प्राणमय कोश आता है जैसा कि ऊपर शारिरिकोपनिषद् में उसके निर्देश को भी अंकित भी किया गया है।

उपसंहार

इस प्रकार मुद्रा की यौगिक दृष्टि से तात्विक विवेचना करने का प्रयास किया गया है जिससे यह ज्ञात होता है कि मुद्राएं अपने अपने तात्विक स्वरूप में अत्यधिक गहनार्थ को धारण किये हुए है जो मर्मज्ञों/विषय-विशेषज्ञों मात्र द्वारा ज्ञेय है। न कि समसामयिक इसकी बाह्यवर्ती अंगन्यास अभ्यासों एवं कर्मकांडीय रूप में छवि इसका असल स्वरूप है। अपितु वास्तवमें तो मुद्रा अपने चिदानंदात्मक आत्मस्वरूप की उपलब्धि का एक साधन है तथा और घहनार्थ में यदि कहें तो यह शिवशक्तिस्वरूपा है। यहाँ एक दृष्टि से मुद्रा की कार्य प्रणाली का माध्यम एक ही चैतन्यता किस प्रकार भिन्न भिन्न स्वरूपों में अनुप्राणित है यह जानना नितान्तावश्यक है।

सन्दर्भ सूची-

1. श्रीमद् भगवद्गीता 2.50
2. पातंजलयोग दर्शन 1/2
3. कुलार्णव तंत्र 1 I/5।
4. मालिनीविजयोत्तरतन्त्र I/1
5. योगिनीहृदय तन्त्र 1/5।
6. स्वच्छन्द तन्त्र 4/35।
7. ब्रह्मोपनिषद
8. शारीरिकोपनिषद 16
9. श्रीमद् भगवद्गीता 18/18
10. सांख्यकारिका 32
11. हठयोग प्रदीपका 3/8

ISSN 2278 - 0327

भारतीय राजनीति पर जाति व्यवस्था का प्रभाव

बृजेश सिंह
एम.ए. (राजनीति विज्ञान), राजनीति विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, हरियाणा, भारत

सार –

भारत में जाति व्यवस्था प्राचीन काल से ही निर्मित और प्रमुख है और यह भारत माता के विकास में एक असाधारण स्थिति के रूप में बनी हुई है। जाति व्यवस्था की उत्पत्ति कार्यात्मक समूह हो सकती है, जिन्हें वर्ण कहा जाता है, जिनकी उत्पत्ति आर्य समाज में हुई है। ऋग्वेद गीत के अनुसार, विभिन्न वर्ग सृष्टिकर्ता के चार उपांगों से उत्पन्न हुए हैं। सृष्टिकर्ता का मुँह ब्राह्मण मंत्रियों में बदल गया, उसकी दो भुजाओं ने राजन्य (क्षत्रियों), सेनानियों और राजाओं को गढ़ा, उसकी दो जांघों ने वैश्य, जमींदारों और जहाजों को आकार दिया, और उसके पैरों से शूद्र (अछूत) शिल्पकारों और श्रमिकों की कल्पना की गई। फिर, यह स्वीकार किया जाता है कि ब्राह्मणों द्वारा अपनी प्रधानता को संपोषित करने के लिए जाति व्यवस्था को अपनाया गया था। जिस समय आर्य जातियाँ भारत में प्रवेश कर चुकी थीं, उन्हें अपनी प्रधानता के साथ बने रहने की आवश्यकता थी, इस प्रकार वे जाति व्यवस्था के साथ बने रहे। लगातार, जाति व्यवस्था को चार महत्वपूर्ण समूहों में औपचारिक रूप दिया गया, प्रत्येक के अपने सिद्धांतों और दिशानिर्देशों और नियमों के सेट के साथ, जो आज तक सक्रिय रूप से अभ्यास किया जा रहा है और यह वह स्थान है जहां एक तरफभारतीय संस्कृति के इतिहास को बचाता है; फिर से देश के विकास में बाधक है। यह बहुत स्पष्ट है कि, रणनीतियों का वर्तमान आयोजन और परिभाषा चक्र हमारे समाज के पूर्व मानकों और डिजाइनों के अधीन हैं। दिन के अंत में, किसी भी भूमि की सस्ंकृति का इतिहास उसकी वर्तमान संरचना की रीड़ के रूप में खेलता है। इस प्रकार, जाति भारत के इतिहास के सबसे अधिक ध्यान देने योग्य तत्वों में से एक है, इसलिए वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में इसकी उपस्थिति के उत्कीर्णन का संदर्भ स्वयं स्पष्ट है। यह पत्र भारतीय राजनीति पर जाति व्यवस्था के प्रभाव पर प्रकाश डालता है।

मुख्य शब्दः भारतीय राजनीति, जाती व्यवस्था, संघर्ष।

परिचय

भारत में चुनावी लोकतंत्र के विकास ने एक अत्यंत परिपक्व आधार बनाया। जाति व्यवस्था एक बंद व्यवस्था है फिर भी यह वास्तव में आगे बढ़ रही है। अंग्रेज भारत की सामाजिक वास्तविकता को समझने के लिए जाति को क्रिस्टल मानते थे। जाति भारत में अपने स्तर की वकालत करने के लिए एक उपकरण में बदल गई। इसने लोगों के बीच जातिगत संघर्ष को प्रेरित किया। मैत्रीपूर्ण जागरूकता में जाति भी धड़कने लगी। इस प्रकार भारतीय समाज में जाति का विकास होने लगा। वर्तमान संविधान ने 1976 (नागरिक अधिकार सरंक्षण अधिनियम) में अस्पृश्यता को अतिरिक्त रूप से समाप्त कर दिया, सीटों का आरक्षण जो अंततः जाति के अतिरिक्त ठोसकरण के बारे में लाया।

भारत में जाति और जातिवाद कभी गायब नहीं हुआ। माइरॉन वीनर का 'राजनीतिक सहयोग' का विचार असाधारण रूप से लागू हुआ। कांग्रेस और विभिन्न दलों द्वारा अपनाई गई राजनीतिक तैयारी की नीति ने भी कई निचली जातियों को पार्टी में शामिल किया। जाति के नैतिक आधार के विघटन के साथ, निचली जातियों द्वारा असहमति की जानबूझकर सीमा भी भंग हो गई थी। इस तरह कुछ केंद्र और निचली जातियों ने संस्कृतीकरण (बडी़ जातियों के रूढ़िवाद की नकल करके) के माध्यम से उच्च जातियों के साथ निष्पक्षता की तलाश की, इसलिए अधिक राजनीतिक शक्ति की गारंटी दी।

भारत में जाति के राजनीतिकरण ने दलगत राजनीति के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जाति को राजनीति की जरूरत है लेकिन राजनीति को जाति की जरूरत है। जब भी जाति समूह राजनीति को अपनी गतिविधियों का चक्र बनाते हैं, तब जाति समूहों को भी अपने व्यक्तित्व की पुष्टि करने और स्थिति पर वार करने का अवसर मिलता है।

एक प्रमुख जाति एक जाति है जो गणितीय रूप से शासन करती है क्योंकि इसकी संख्यात्मक व्यापकता के कारण यह राजनीतिक शक्ति की सराहना करती है। राजनेता दौड़ के दौरान उपयोग के लिए जाति को एक सहायक और लाभप्रद साधन के रूप में देखते हैं। भारतीय राज्यों में राजनीति को राजनीतिक सत्ता के लिए महत्वपूर्ण जाति समूहों के बीच प्रतिस्पर्धा के रूप में भी देखा गया था। जाति को सार्वजनिक राजनीति को विभाजित करने के लिए भी कहा जाता है। जाति हर सामाजिक मुद्दे का सबसे उलझा हुआ गुच्छा है। भारतीय समाज का अनुमान लगाया जाता है। धर्म केवल एक दृढ़ विश्वास है और यह जीवन में कभी भी बदल सकता है, हालांकि जाति एक स्थिर कारक है जो किसी भी घटना में नहीं बदलता है, जब धर्म

बदलता है। जब व्यवसाय बदलता है या आर्थिक भलाई में परिवर्तन होता है तो यह नहीं बदलता है कि जाति स्थिर रहती है। यह एक ओमेगा सम्मान जैसा दिखता है अनिवार्य रूप से एक ही चीज़ का अनुभव करने वाला एक साधारण स्थिर परिवर्तन।

जाति व्यवस्था समाज में बहुमुखी प्रतिभा को ध्यान में नहीं रखती है। यह मानते हुए कि किसी व्यक्ति का परिवार निम्न वित्तीय परतों से आता है, एक जाति व्यवस्था के मद्देनजर समाज में, उस व्यक्ति को उस सीमित स्तर के अंदर रहना होगा। जाति व्यवस्था लोगों को पूर्वाग्रह, सामान्यीकरण और विभिन्न चीजों के प्रति अधिक प्रस्तुत करके समाज को प्रभावित करती है। रैंकिंग में ये अंतर अक्सर समाज के अंदर बहस का कारण बनते हैं। जाति व्यवस्था असंतुलन और बेइमानी से भरी हुई है। एक जाति के लोग दूसरों के साथ घुलने-मिलने के बिना कर सकते थे। ऐसे अनगिनत धर्मों, जातियों और उपजातियों में समाज का यह विभाजन भारतीय देश की एकता और ईमानदारी की पद्धति में आता है। राजनीति में जाति महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि राजनीति असाधारण रूप से गला घोंटती है। इसकी प्रेरणा गारंटीकृत बंदों के लिए शक्ति प्राप्त करना है। तदनुसार, यह विशिष्ट राजनीतिक पदों को प्राप्त करने और संयोजित करने के लिए समाज में व्यापक निष्ठाओं का लाभ उठाता है; हमारे देश में राजनीति के उपरोक्त पाठ्यक्रम में सहयोग और मदद का मौखिककरण महत्वपूर्ण है। जाति एक ऐसा जुड़ाव है जिससे लोग जुड़े हुए हैं। राजनीति और जाति के बीच का सबंध तदनुसार महत्वपूर्ण है और इस प्रक्रिया में दोनों इतनी गहनता से बातचीत करते हैं कि वे बदल जाते हैं। पार्टी के कार्यक्रम अतिरिक्त रूप से जातिगत निष्ठाओं में कटौती करते हैं और एक जाति के व्यक्तियों को दार्शनिक संबद्धता के आधार पर अलग-थलग किया जा सकता है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि जाति के राजनीतिकरण ने निचली जातियों और अन्य पिछड़े समूहों को विशेष रूप से भारत के दक्षिणी क्षत्रे में मदद की है। फिर भी, पछूताछ उभरती है: मेजबान राजनीतिक सभाएं, जो जाति, पहचान और धर्म के लिए विभिन्न समूहों को इकट्ठा करती हैं, उनके पास एक ऐसे समाज को प्राप्त करने का विकल्प होता है जो सरल और लोकलुभावन हो? सब कुछ ध्यान में रखते हुए, ऐसी पार्टियों के प्रमुखों ने असमानतावादी व्यवस्था का लाभ उठाया, फिर भी दुर्भाग्य से उन्होनें अधिक नाजुक क्षेत्रों वाले आम लोगों पर बमबारी की है। निम्न और पिछड़ी जाति समूहों को तैयार करने वाले ये अग्रदूत लोगों के बड़े हिस्से को सुधार और उदारवाद के क्षेत्र से बाहर रखते हुए एक और प्रकार के प्रथम वर्ग में बदल गए हैं। यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि इस तरह के झुकाव ने भारतीय समाज को इस तथ्य के आलोक में पीड़ा दी है कि अग्रदूतों ने सामाजिक लोकतंत्र के आदर्श के लिए खाली बात की पेशकश की है। उच्च जाति समूहों ने निम्न और पिछड़ी जाति समूहों को पर्याप्त जगह नहीं दी है। वे अभी भी एक या दूसरी जाति या धर्म को देखते हुए एक असमान समाज के अपने दर्शन को बनाए रखने का प्रयास कर रहे हैं।

भारतीय राजनीति पर जाति व्यवस्था का प्रभाव जाति कारक भारत में चुनावी राजनीति का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। विभिन्न निकायों के मतदाताओं से अपने उम्मीदवारों को नामित करते समय राजनीतिक दल उस विशिष्ट मतदान जनसांख्यिकीय में नागरिकों के प्रतियोगी और कलाकारों की जाति को याद करते हैं। इस वजह से अप-एंड-कॉमर अपनी जाति के मतदाताओं के वोट प्राप्त करना सुनिश्चित करता है। मुसलमानों से अभिभूत चुनावी क्षेत्रों में, मुस्लिम उम्मीदवारों को भेजा जाता है और जाटों से अभिभूत क्षेत्रों में जाट उम्मीदवारों को अवगत कराया जाता है। दरअसल, कांग्रेस, जनता दल, भाकपा और सीपीएम जैसी धर्मनिरपेक्ष पार्टियां भी अपने उम्मीदवारों को चुनने में जाति के तथ्य के बारे में सोचती हैं।

जाति भारतीय राजनीति में विभाजन और टिकाऊ शक्ति के रूप में कार्य करती है। यह भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में कुछ निहित दलों के उदय का आधार देता है, जिनमें से प्रत्येक सत्ता की लड़ाई में किसी भी शेष समूह को प्रतिद्वंद्वी करता है। बार-बार यह सत्ता के लिए एक अस्वास्थ्यकर लड़ाई को प्रेरित करता है और किसी भी मामले में विघटनकारी शक्ति के रूप में कार्य करता है, यह समूहों के व्यक्तियों के बीच एकता का स्रोत है और एक मजबूतशक्ति के रूप में कार्य करता है। ग्रामीण भारत में, जहां ग्रामीण शक्ति का सामाजिक ब्रह्मांड 15 से 20 किमी के क्षेत्र तक सीमित है, जाति एकजुट करने वाली शक्तियों के रूप में कार्य करती है। यह मुख्य सभा है जिसे वे समझते हैं। जाति समूहों की उपस्थिति भी गुटबाजी को बढ़ावा देती है। भारतीय राजनीति में जाति एक कारक के रूप में है और यह दृढ़ता के साथ-साथ एक परेशानी कारक के रूप में कार्य करती है। विभिन्न जाति समूह विभिन्न राजनीतिक सभाओं और उनके दर्शन के पीछे अपनी वफादारी की मेजबानी करते हैं। दुनिया में अपने परिचय से ही, एक भारतीय निवासी एक जाति प्राप्त करता है और एक विशिष्ट जाति समूह से एक व्यक्ति के रूप में बड़ा होता है। उनके पास या तो महान जातियों में से किसी एक के साथ या बुक कास्ट के लिए एक स्थान है। अपने राजनीतिक निर्देश, आचरण और दृढ़ विश्वास प्राप्त करने में बिताए गए समय के दौरान, वह आम तौर पर जाति समूहों और जातिवाद के प्रभाव में चला जाता है। सार्वजनिक प्राधिकरण के अच्छे प्रशासन और समाज के सुधार के लिए नीति का खुलासा करना एक महत्वपूर्ण कार्य है, फिर भी लोक प्राधिकरण के विभिन्न दृष्टिकोणों और परियोजनाओं को बनाने में जाति का एक अनूठा प्रभाव है। राजनीतिक दल नेविगेशन में जाति को याद करते हैं। जाति भी व्यक्तिगत लोकतांत्रिक व्यवहार, राजनीतिक सहयोग और पार्टी के विकास को प्रभावित करती है। मंत्रिपरिषद के विकास और सार्वजनिक प्राधिकरण में विभिन्न राजनीतिक स्थितियों की व्यवस्था

में जाति अतिरिक्त रूप से एक असाधारण भूमिका निभाती है। आजादी से पहले, भारतीय समाज के कुछ वर्ग आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से पिछड़े थे, जैसे एससी, एसटी और ओबीसी। उन्हें निर्भरता पर जीने की जरूरत थी और बाद में उन्हें विभिन्न मुद्दों से निपटने की जरूरत थी। तदनुसार, स्वतंत्रता के बाद, भारतीय संविधान ने इन सबसे कम सुविधा प्राप्त समूहों की उन्नति के लिए कुछ प्रावधानों को शामिल किया, जो उन समान अधिकारों के साथ-साथ विभिन्न क्षेत्रों में उनके लिए सीटों का आरक्षण प्रदान करते हैं।

अनुच्छेद 46 राज्य को नियोजित जातियों और बुक कुलों की सरकारी सहायता के लिए काम करने और उनके झुकाव की रक्षा के लिए अधिक समय लेने के लिए मार्गदर्शन करता है। यह एससी और एसटी को विश्वासघात और उत्पीड़न की एक विस्तृत श्रृंखला से बचाएगा। अनुच्छेद 330 में नियोजित जातियों और आरक्षित कुलों के लिए लोकसभा सीटों के आरक्षण का प्रावधान है। इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 332 नियोजित जाति और आरक्षित कुलों के लिए प्रत्येक राज्य अधिकारी गेट टुगेदर में सीटों के आरक्षण को समायोजित करता है। पंचायत राज पड़ोस की स्वशासन की एक प्रणाली है जो भारत में प्रचलित है। यह तय करता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में पड़ोस के प्रशासन के मुद्दों को चुने हुए व्यक्तियों के माध्यम से पास की सरकार के माध्यम से सुलझाया जाना चाहिए। पंचायत राज व्यवस्था ने भारत में एक बडा़ हिस्सा ग्रहण किया और प्रशासन की व्यवस्था को कस्बों के लोगों तक पहुँचाया। पंचायत राज व्यवस्था देश की प्रशासन व्यवस्था को और अधिक व्यवहार्य बनाती है। किसी भी मामले मे, यह जाति व्यवस्था विशिष्ट रूप से आस-पास की राजनीति को प्रभावित करती है। उच्च जातियों को इस तथ्य के आलोक में समर्थन प्राप्त हुआ कि वे आर्थिक और राजनीतिक रूप से मजबूत हैं और निचली जातियों को उनसे बहुत कम लाभ हुआ है। कोई कह सकता है कि यह जाति आधारित राजनीतिक व्यवस्था पंचायत राज स्थापना के स्वायत्त कामकाज को बर्बाद कर देती है।निर्णयों में जाति के कार्य के दो पहलू होते हैं। एक पार्टियों और उम्मीदवारों का और दूसरा नागरिकों का। पिछला विकल्प विशिष्ट सामाजिक और मौद्रिक हितों के नायकों के रूप में खुद को विस्तारित करने वाले नागरिकों की मदद की तलाश करता है, अंतिम विकल्प जाति के आलोक में एक पार्टी या आवदे क के लिए अपने वोट का अभ्यास करते समय। लोग जाति और धर्म के आधार पर वोट करते हैं और आवेदक के लाभों के बारे में नहीं सोचते हैं। इस शैतानी के कारण लोकतंत्र अपने आप में एक मजाक में बदल गया है। भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है लेकिन नियमित लोकतंत्र धराशायी हो जाता है। दरअसल, आज भी गैर-दलित बचाए गए संविधान में चुनौती देने वाला कोई दलित प्रतियोगी नहीं मिल सकता है और राजनेता जातिविहीन समाज की चर्चा नहीं करेगें क्योंकि उनका मानना है कि लोगों को अलग-थलग कर देना चाहिए।

जाति कारक भारतीय पार्टी प्रणाली का एक हिस्सा है। भारत में, बहुत से जाति-आधारित राजनीतिक दल हैं जो एक विशिष्ट जाति के हितों को आगे बढ़ाने और उनकी रक्षा करने का प्रयास करते हैं। स्थानीय राजनीतिक दल, विशेष रूप से, जाति कारक से प्रचलित रूप से प्रभावित हैं। DMK और AIADK तमिलनाडु के गैर-ब्राह्मण और गैर-ब्राह्मण राजनीतिक दल हैं।

पजांब में अकाली दल का एक सामुदायिक चरित्र है। यह जाट बनाम गैर जाट के मुद्दे से प्रभावित है। भारत में सभी राजनीतिक दल निर्णयों में वोट प्राप्त करने के लिए जाति का उपयोग एक विधि के रूप में करते हैं। बसपा नियोजित जातियों की मदद पर निर्भर है, जबकि भाजपा काफी हद तक हिंदू जाति और विनिमय समुदाय के बीच अपनी व्यापकता पर निर्भर है। जाति आधारित आरक्षण भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 के साथ है जो धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भारतीयों के अलगाव से इनकार करता है। हालांकि, अनुच्छेद 15 (4) में यह घोषणा करते हुए संशोधन किया गया है कि इस अनुच्छेद में कुछ भी राज्य को किसी भी सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े निवासियों या अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए कोई अनूठी व्यवस्था करने से नहीं रोकेगा। इस तरह संविधान हमेशा पत्राचार के दो परस्पर विरोधी विचारों का प्रतीक है, एक व्यक्तिगत अधिकारों पर आधारित है और दूसरा समूह अधिकारों के आलोक में इसके अतिरिक्त मंडल आयोग, या सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछडा़ वर्ग आयोग (SEBC), 1979 में प्रधान मंत्री मोरारजी देसाई के तहत जनता पार्टी सरकार द्वारा भारत के 'सामाजिक या शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों को अलग करने' के लिए एक जनादेश के साथ निर्धारित किया गया था। यह अनिवार्य रूप से जाति से संबंधित पिछड़े वर्गों की विशेषता है।

व्यक्तिगत वर्ग विशेषताओं के विरोध में जाति नामांकन महत्व के मुद्दे में बदल गया। इसलिए सामान्य प्रति व्यक्ति वेतन के बजाय वर्ग में कम अनुकूल स्थिति ओबीसी सूची में विचार के लिए मॉडल में बदल गई। इस तरह यह जाति भागीदारी के लिए वर्गीय लाभों को अलग करने के लिए उत्तरदायी बनने के लिए संभव हो गया, फलस्वरूप अनुकूल स्थिति प्रत्येक व्यक्ति वेतन के लिए सामान्य के बजाय विवके के मुद्दे में बदल गई। इन पंक्तियों के साथ जाति और वर्ग क्रॉस कटिंग व्यक्तित्व बन गए।

विचार-विमर्श जाति व्यवस्था लोकतंत्र के लिए अभिशाप है। जातियाँ अपनी स्थिति में समान नहीं हैं। वे एक दूसरे के ऊपर खड़े हैं। वे एक दूसरे के इच्छुक हैं। यह तिरस्कार के आकार और घृणा के गिरते आकार का है। लोकतत्रं मूल रूप से दर्शन की दृष्टि से एक साझेदारी निर्माण अभ्यास है, फिर भी हमारे देश में मिलीभगत का निर्माण एक विशिष्ट समुदाय का दूसरे के साथ एक आपराधिक संघ

था (दोनों अधिक जमीनी और गणितीय रूप से शक्तिशाली एक) विभिन्न समुदायों को कम करके आंका। जाति व्यवस्था लोगों के एक वर्ग का लगातार गला घोटकर सांप्रदायिक हिंसा की अग्रदूत है। यह निचली जाति के लोगों को हथियार लेने का अधिकार देता है। नक्सली, माओवादी आदि घटनाक्रम मौद्रिक असंतुलन पर निचली जाति के लोगों की दुश्मनी मात्र है। व्यवसायों का प्रतिबंधित चयन, जिसे एक जाति के भीतर और साथ ही विभिन्न जातियों द्वारा बरकरार रखा जाता है।

एक जाति एक से अधिक पारंपरिक व्यवसायों का पालन कर सकती है, फिर भी उसके व्यक्ति किसी भी मामले में उस सीमा के लिए मजबरू होगें, आहार और सामाजिक बातचीत पर सीमाएं जो यह दर्शाती हैं कि कौन क्या उपभोग कर सकता है और किससे स्वीकार कर सकता है। इसी तरह विवाह की योजना के साथ, ये सीमाएँ उप-जाति स्तर पर लागू होती हैं, न कि केवल जाति स्तर पर। वास्तविक अलगाव देश के कई हिस्सों में है। ये सख्त और शिक्षाप्रद क्षेत्रों और पानी की आपूर्ति जैसे आवश्यक कार्यालयों सहित विकास और पहुंच की सीमाओं से जुड़े हुए हैं।

चूंकि जाति एक अच्छी तरह से स्थापित प्रणाली है जिसका आम तौर पर पालन किया जाता है, लोगों को नए महान और तार्किक मानकों को स्वीकार करना चुनौतीपूर्ण लगता है। जाति व्यवस्था लोगों को अलग करती है और यह आम तौर पर मानवाधिकार मानकों की अवहेलना करती है जिन पर संयुक्त राष्ट्र के उपकरण स्थापित होते हैं। अपने आवदेन में, जाति ने एक विशाल आबादी के उप-मानवीय व्यवहार को प्रेरित किया है। अब तक, भारत के दलितों की आबादी लगभग 17 प्रतिशत है। विभिन्न अल्पसंख्यकों के साथ, उदाहरण के लिए, पैतृक लोग, सिख और मुस्लिम, भारत में अल्पसंख्यक आमतौर पर 85 प्रतिशत स्थापित करते हैं; सबसे दूर। आज तक दलितों और अन्य 'निम्न' जातियों के खिलाफ हिंसा की डिग्री भयावह है। जाति व्यवस्था के तहत प्रचारित सामाजिक भ्रष्टाचार मानव इतिहास में बहुत अधिक समान नहीं है। इस तरह का उपचार वर्तमान समय तक जारी रहता है। अलगाव जीवन के सभी हिस्सों में फैला हुआ है, चाहे काम में, स्कूली शिक्षा, भलाई, भूमि जोत, सुरक्षा, और महिलाओं के अधिकारों के सभी हिस्सों में। 'द्वितीय श्रेणी' की जातियों के मानसिक परिणामों में घोर मानवाधिकारों का दुरुपयोग और निर्दयता के साथ कार्यवाही और इसी तर्ज पर लोकतंत्र को प्रभावित करना शामिल है। चूंकि जाति भारतीय समाज की एक महत्वपूर्ण विशेषता है और विभिन्न राजनीतिक चक्रों में एक प्रचलित कारक के रूप में कार्य करती है, वैसे ही यह नेविगेशन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वास्तव में, राज्य के पुनर्निर्माण के मुद्दे को भी एक विशिष्ट क्षेत्र में एक जाति समूह की अनुचित शक्ति से बचने के लिए ध्यान में रखा गया था। जाति कारक राज्य सरकार की व्यवस्था और विकल्पों को प्रभावित करता है। निर्णायक दल महत्वपूर्ण जाति समूहों का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए अपनी गतिशील शक्ति का उपयोग करने का प्रयास करता है। कांग्रेस ने आम तौर पर उन लोगों को बनाए रखने का प्रयास किया है जिनके वोट बैंक के रूप में नियोजित जातियां हैं। उन जाति समूहों के हितों को आगे बढ़ाने के लिए स्थानीय राजनीतिक शक्ति जो उनकी व्यवस्था का समर्थन या समर्थन कर सकते हैं। भारत का संविधान एक एकल एकीकृत मतदाता और जाति मुक्त राजनीति और प्रशासन की आत्मा का समर्थन करता है। किसी भी मामले में, जाति कारक आम तौर पर लोगों के व्यवहार के लोकतांत्रिक तरीके, उनके राजनीतिक हित, पार्टी संरचना और यहां तक कि विधायी नेविगेशन के निर्धारक के रूप में कार्य करता है। जाति भारतीय सामाजिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण प्रामाणिक घटक है जिसमें विभिन्न तरीकों से भारतीय राजनीति में एक असाधारण स्थान शामिल है। भारत एक लोकप्रियता आधारित राज्य है जहां सभी लोगों को समान अधिकार और अवसर दिए जाते हैं। हालाँकि, जाति व्यक्ति की इस समानता को बाधित करती है।

जाति लोगों को उच्च और निम्न जातियों में विभाजित करती है जो भारतीय लोकतंत्र की स्वतंत्रता को कमजोर करती है। भारत एक उदार बहुमत शासन प्रणाली को अपनाता है जो समान अधिकारों, समानता और अवसर की विशेषता है। जाति और लोकतत्रं एक दूसरे को बेअसर करते हैं। चूंकि जाति व्यक्ति के अस्तित्व को बिगाड़ देती है, लोकतंत्र स्वायत्तता से स्थायी होने में सहायता करता है। दुनिया के लिए किसी व्यक्ति के परिचय से पूरी तरह से पत्थर में नहीं। जाति के साथ राजनीति के जुड़ाव से यह बिगड़ रहा है। जिस तरह से राजनीतिक दल अपने फायदे के लिए जाति का इस्तेमाल करते हैं, उससे समाज में अलग-अलग शिकायतें होती हैं। जाति व्यवस्था भारतीय राजनीतिक दलों के विभाजन के पीछे सिद्धांत व्याख्याओं में से एक है। एक नियम के रूप में, राजनीतिक हिंसा इस आधार पर उभरती है कि विभिन्न राजनीतिक दल जाति के आलोक में विभिन्न दर्शनों में अलग-थलग हैं और अपनी जाति के लिए एक वैध चिंता के आलोक में काम करते हैं। राजनीतिक दल जाति के आधार पर अपने आदर्श वाक्य और धर्मयुद्ध का प्रचार करते हैं। तो कोई यह कह सकता है कि जाति भारतीय राजनीति में एक अद्वितीय भूमिका निभाती रहेगी, यदि लोग जाति के आधार पर वोट देते हैं, उम्मीदवारों के समाज के लिए काम के आधार पर नहीं, तो उस समय, भारत वास्तविक सर्वोत्कृष्टता खो देगा लोकतंत्र। जाति सिर्फ एक व्यक्तित्व चिह्न है। व्यक्ति को जाति के आधार पर कभी नहीं माना जाना चाहिए। समान सामाजिक अधिकारों और समानता वाले समाज की व्यवस्था को जाति में बले गाम धार्मिकता को तोड़ना चाहिए और समाज के सुधार को प्राप्त करना चाहिए। राजनीतिक दलों को चाहिए कि वे जाति आधारित राजनीति को बंद करें और समाज में व्यक्ति के सुधार के

लिए सोचें हमारी स्कूल व्यवस्था भी इस जाति व्यवस्था को खत्म करने में एक असाधारण भूमिका निभाती है क्योंकि बच्चों को निष्पक्षता और संगति दिखाई जानी चाहिए और साथ ही इस लक्ष्य के साथ कि यह जाति व्यवस्था बाद में पूरी तरह से समाप्त हो जाए। विभिन्न सामाजिक कार्यालयों, स्कूलों, व्यापक संचार को लोगों के बीच एक विस्तृत दृष्टिकोण बनाने का दायित्व दिया जाना चाहिए, इस लक्ष्य के साथ कि जाति की मानसिकता को कम किया जा सके। लोगों को परंपरागत रूप से प्रचलित इस जाति व्यवस्था के निराशावादी प्रभावों के प्रति सचेत किया जाना चाहिए। हालाँकि, जाति की राजनीति से बचने का सिद्धांत उत्तर जाति को मारना है। साथ ही, राजनीतिक दलों को सार्वजनिक एकता और ईमानदारी के साथ बने रहने के लिए अपने छोटे-छोटे फायदों से आगे बढ़ने की जरूरत है।

निष्कर्ष

भारत में जाति और राजनीति के बीच एक मधुर संबंध है और दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। जाति भारत में सामाजिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है और इसने विभिन्न स्तरों पर भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। जातिवाद भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी परीक्षा है। लोकतंत्र और जातिवाद एक दूसरे के विरोधी हैं। भारत ने उदार बहुमत वाली शासन प्रणाली को अपनाया है, जो मुख्य रूप से एकरूपता, अवसर और समानता पर आधारित है। जाति जन्म के प्रकाश में असमानता का प्रतिनिधित्व करती है। जाति निष्ठा अन्य जातीय कारक वास्तव में भारतीय राजनीतिक दलों को विभाजित करते हैं और हालांकि दार्शनिक विरोधाभास नहीं। राजनीतिक दौड़ का नेतृत्व जाति के आधार पर किया जाता है और सर्वेक्षणों में हिंसा आमतौर पर जाति आधारित हिंसा होती है। राजनीति जाति आधारित हो गई है और जातियों का राजनीतिकरण हो गया है। जाति समूह राजनीति को अपने फायदे के लिए संसाधनों के रूप में इस्तेमाल करते हैं। लोकतंत्रीकरण चक्र कम करके आंका समुदायों से नए अग्रदूत लाएगा। लोगों का मानना है कि उन्नति और जरूरत है उनकी आवाजों को ट्यून करना चाहिए। राजनीतिक अग्रदूतों को खुद को लोकतांत्रिक बनाना चाहिए और आम आदमी की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक ईमानदार प्रयास करना चाहिए।

संदर्भ

1. चंद्रा, कंचन (जून 2005)। जातीय दल और लोकतांत्रिक स्थिरता। राजनीति पर दृष्टिकोण।
2. देवी नीलम, भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका, जर्नल ऑफएडवांसेज एंड स्कॉलरली रिसर्च इन एलाइड एजुकेशन, 2015।
3. दत्ता, ए आर (संस्करण 2013)। भारत में राजनीतिरू मुद्दे, संस्थान, अरुण प्रकाशन, पानबाजार, गुवाहाटी-1
4. एच. कमल, भारतीय राजनीति में जाति का महत्व, 2020, पाल आर्क की जर्नल ऑफ आर्कियोलॉजी ऑफ इजिप्ट / इजिप्टोलॉजी।
5. कौर हरदीप, भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका, खंड - 5, अंक - 1, 2018, इटं रनेशनल जर्नल ऑफ करंट इंजीनियरिंग एडं साइंटिफिक रिसर्च।
6. कोनेसर, ए यमुना, भारतीय राजनीति में जाति, धर्म और जातीयता, खंड - 6, अंक -2, मई 2018, क्रिएटिव रिसर्च थॉट्स के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल
7. राणा, एस.एस., भारतीय राजनीति में जाति और राजनीतिक दल, खंड - 5, अंक 1 मार्च 2017, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च थॉट्स।
8. रविवेंकट, बी और वेंकटेश उद्दगट्टी, भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका, 2013, एलिक्सिर इंटरनेशनल जर्नल।

ISSN 2278 - 0327

बौद्ध तन्त्र-परम्परा का महायान उद्गम

रुचि शर्मा
संस्कृत-पालि-प्राकृत-विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

भूमिका :

प्रागैतिहासिक काल से भारत नाना जातियों और संस्कृतियों का आश्रय रहा है और उनकी विभिन्न प्रवृत्तियों तथा जीवन विधाओं के संघर्ष और समन्वय के द्वारा भारतीय इतिहास की प्रगति और संस्कृति का विकास हुआ है। इस विकास में आर्येतर जातियों का उतना ही महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है जितना आर्य जाति का। आर्य तथा आर्येतर सांस्कृतिक परम्पराओं का यह समन्वय भारतीय सभ्यता के निर्माण की आधारशिला सिद्ध हुई। इसका प्रभाव एक ओर उत्तरवैदिक कालीन समाज-रचना में स्पष्ट देखा जा सकता है, दूसरी ओर बौद्धिक और आध्यात्मिक आन्दोलन में जिसका चरम परिणाम बौद्ध-धर्म का अभ्युदय था।[1]

जिस समय भगवान् बुद्ध का लोक में जन्म हुआ, उस समय देश में अनेक वाद प्रचलित थे, विचार जगत् में उथल-पुथल हो रहा था। लोगों की जिज्ञासा थी कि कर्म है या नहीं, कर्म विपाक है या नहीं, इस प्रकार का उत्तर पाने के लिए लोग उत्सुक थे। ब्राह्मण और श्रमण दोनों में ही विचार-विमर्श होता था। श्रमण अवैदिक थे। वे वेद का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते थे। ब्राह्मण आस्तिक थे। वे वैदिक-धर्म के अनुसार मन्त्र, जप, दान, होम, मंगल, प्रायश्चित्तादि का अनुष्ठान का विधान करते थे।[2]

बौद्ध धर्म भारत की श्रमण परम्परा से निकला धर्म और दर्शन है। इसके संस्थापक महात्मा बुद्ध, शाक्यमुनि (गौतम बुद्ध) थे। बुद्ध राजा शुद्धोदन के पुत्र थे और इनका जन्म लुंबिनी नामक ग्राम (नेपाल) में हुआ था। गौतम बुद्ध का जीवनकाल छठी से पांचवी शताब्दी ईसा पूर्व है। बौद्ध धर्म दुनिया का चौथा सबसे बड़ा धर्म है।

बौद्ध धर्म के सम्प्रदाय :

बौद्ध धर्म नाना सम्प्रदायों में विभक्त रहा है- प्राचीन और अर्वाचीन। प्रत्येक सम्प्रदाय अपने को भगवान् बुद्ध की आध्यात्मिक विरासत का सच्चा उत्तराधिकारी मानता है। प्रत्येक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदायों से भेद रखते हुए विशिष्ट है। वर्तमान में बौद्ध धर्म में तीन मुख्य सम्प्रदाय है-

1. हीनयान अथवा थेरवाद
2. महायान
3. वज्रयान

हीनयान अथवा थेरवाद :

प्रथम बौद्ध धर्म की दो ही शाखाएं थी- हीनयान (निम्नवर्ग) और महायान (उच्चवर्ग)। हीनयान बौद्ध-धर्म की एक प्राचीन शाखा है जो इस धर्म के आरम्भिक रूप को मानती है। हीनयान बुद्ध के मौलिक उपदेश ही मानता है। हीनयान सम्प्रदाय के लोग परिवर्तन अथवा सुधार के विरोधी थे। यह बौद्ध धर्म के प्राचीन नियमों को उनके मूलरूप में अपनाना चाहते थे। इसलिए हीनयान सम्प्रदाय को स्थिरवादी या थेरवाद सम्प्रदाय भी कहा जाता है।

हीनयान एक व्यक्तवादी धर्म था इसका शाब्दिक अर्थ है- निम्न वर्ग। आरंभ में हीनयान का यह आशय नहीं था। इसका अर्थ है- देवता या स्वर्ग की स्थिति में विश्वास न करना। हीनयान के अनुसार गौतम बुद्ध महामानव है। हीनयान उन्हें आदर और सम्मान का पात्र मानता है। उसमें महायान की भांति गौतम बुद्ध को अलौकिक और अमानव रूप प्रदान नहीं किया जाता। हीनयान अनीश्वरवादी व कर्म प्रधान दर्शन है। बुद्ध की उपासना हीनयान विरुद्ध कर्म है। हीनयान में भिक्षु आष्टांगिक मार्ग एवं चार आर्य सत्यों में विश्वास करते है। हीनयान की साधना अत्यंत कठोर थी, वे भिक्षु जीवन के पक्ष में थे।

बाद में हीनयान सम्प्रदाय दो भागों में विभाजित हो गया- (1) वैभाषिक (2) सौत्रान्तिक। वैभाषिक मत की उत्पत्ति कश्मीर से हुई थी। वैभाषिक त्रिकाल-भेद मानते हुए और धर्मों का अनित्यत्व स्वीकार करते हुए भी धर्म स्वभाव को नित्य एवं त्रैकालिक मानते थे।[3] वैभाषिक स्वभाववादी हैं, बहुधर्मवादी हैं, किन्तु कोई शाश्वत पदार्थ नहीं मानते। उनके द्रव्य सत् है, किन्तु क्षणिक है,[4] सौत्रान्तिक तंत्र-मंत्र से सम्बन्धित था। हीनयान को दो सम्प्रदायों में विभक्त किया गया है- स्थविरवाद और सर्वास्तित्ववाद। स्थविरवाद साहित्य पालि में निबद्ध है। पालि साहित्य को ही प्राचीनतम एवं प्रमाणिकतम बौद्ध साहित्य स्वीकार करते है।[5] थेरवादी साहित्य में तीन पिटक प्रसिद्ध हैं- विनय-पिटक, सुत्त-पिटक, अभिधम्मपिटक। पिटक शब्द के अर्थ 'पर्याप्ति' एवं 'भाजन' किए गए है।[6]

सर्वास्तिवादी सम्प्रदाय स्थविर शाखा से वात्सीपुत्रीयों के पश्चात् विभाजित हुआ था। सर्वास्तिवादी अभिधम्म पिटक को सर्वश्रेष्ठ स्वीकार करते थे।[7] सर्वास्तिवाद के सिद्धान्त की व्याख्याएं दो प्रकार से की गई हैं- वैभाषिक और सौत्रान्तिक मतानुसार। वैभाषिक मतानुसार धर्मों

का अस्तित्व सदा बना रहता है, किन्तु इनके भाव, लक्षण अथवा अवस्था या कारित्र में भेद हो जाता है।[8] सौत्रान्तिक इसे शाश्वतवाद बताते हुए बाह्य और आध्यात्मिक आयतनों की सत्ता को ही वास्तविक सर्वास्तिवाद कहते थे। सर्वदर्शनसंग्रह में कहा गया है कि जहां वैभाषिक बाह्यार्थों की प्रत्यक्षगम्य सत्ता मानते थे, सौत्रान्तिक उन्हें अनुमानगम्य मानते थे।[9]

शंकराचार्य का कहना है– *तत्रैते त्रयो वादिनो भवन्ति। केचित् सर्वास्तित्ववादिनः केचिद् विज्ञानास्तित्वमात्रवादिनः अन्ये पुनः सर्वशून्यत्ववादिन इति। तत्र ते सर्वास्तित्ववादिनो बाह्यमान्तरं च वस्त्वभ्युपगच्छन्ति भूतं भौतिकं च चित्तं चैत्तं च।* [10]

महायान सम्प्रदाय :

महायान बौद्ध धर्म की एक प्रमुख शाखा है, जिसका आरंभ पहली शताब्दी के आसपास माना जाता है। ईसा पूर्व पहली शताब्दी में वैशाली में बौद्ध संगीति हुई, जिसमें पश्चिमी और पूर्वी बौद्ध पृथक् हो गए। पूर्वी शाखा का ही आगे चलकर महायान नाम पड़ा।

महायान शब्द का वास्तविक अर्थ इसके दो खंडों (महायान) से स्पष्ट हो जाता है। 'यान' का अर्थ–मार्ग और 'महा' का अर्थ श्रेष्ठ, बड़ा या प्रशस्त समझा जाता है। महायान से तात्पर्य उस ऊँचे या प्रगतिशील मार्ग से था, जो हीनयान से बढ़कर था। इसी कारण ईसा पूर्व पहली शताब्दी में ही बौद्ध धर्म में विभेद हो गया। जिन्होंने त्रिपिटक में कुछ परिवर्तन किया, उस पूर्वी शाखा को महासंघिक का भी नाम दिया जाता है। बोधिसत्त्व की भावना के कारण महायान बोधिसत्त्वयान के नाम से भी साहित्य में प्रसिद्ध है।

महायान सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार :

देश के दक्षिणी भाग में इस मत का प्रसार देखकर कुछ विद्वानों की मान्यता है कि इस विचारधारा का आरंभ भी दक्षिणी–भारत में हुआ है। महायान भक्ति प्रधान सम्प्रदाय है। इसकी विचारधारा के प्रभाव से महात्मा बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण आरंभ हुआ। इसी ने बौद्ध धर्म में बोधिसत्त्व की भावना का समावेश किया। यह भावना सदाचार, परोपकार, उदारता आदि से सम्पन्न थी। इस मत के अनुसार बुद्धत्व की प्राप्ति सर्वोपरि लक्ष्य है। महायान सम्प्रदाय ने गृहस्थों के लिए भी सामाजिक उन्नति का मार्ग निर्दिष्ट किया।

हीनयान और महायान का भेद मूलतः अधिकार भेद एवं लक्ष्य भेद पर आश्रित है। महायान के सिद्धान्त पक्ष में बुद्धत्व, शून्यता एवं चित्तमात्रता अर्थात् प्रज्ञापारमितोपलब्धि का स्थान मुख्य है।[11] महायान का साधन–पक्ष बोधिसत्त्व चर्या है जिसमें पारमिताएं एवं भूमियां सर्वाधिक महत्त्व रखती है। शील एवं ज्ञान के साथ भक्ति का भी स्थान सुरक्षित है। जिससे बौद्ध तन्त्र परम्परा का उद्भव हुआ।

बौद्ध तन्त्र परम्परा का उद्भव एवं विकास :

महायान की प्रधान प्रेरणा बुद्ध की जीवनी थी। बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए बोधिसत्त्व के द्वारा आश्रित 'यान' ही वास्तविक महायान है। महायानिक साधक ठीक उसी मार्ग और लक्ष्य का पथिक है जिसके शाक्यमुनि स्वयं पथ–प्रदर्शक थे। बौद्ध धर्म आध्यात्मिक विशुद्धि का मार्ग है जो व्यक्ति को तृष्णा विहीन बनाने में अहं भूमिका निभाता है। इस मार्ग को बुद्धत्व अथवा निर्वाण प्राप्ति का मार्ग कहा जाता है।

आध्यात्मिक प्रगति का साधन होने के कारण 'मार्ग' एवं 'यान' के रूप में धर्म की कल्पना प्राचीन है। कठोपनिषद् में रथ का रूपक प्रस्तुत किया गया है।[12] उपनिषदों में अन्यत्र 'पितृयान' एवं 'देवयान' तथा 'देवपथ' और 'ब्रह्मपथ' का उल्लेख प्राप्त होता है।[13] गीता में इन्हें जगत् की शाश्वत् 'शुक्ल' और 'कृष्ण' गतियाँ कहा गया है।[14] छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि '*स एनान्ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते*।[15] प्राचीन बौद्ध साहित्य में भी रथ का रूपक मिलता है।[16] चीनी संयुक्तागम में आष्टाङ्गिक मार्ग के लिए 'सद्धर्म–विनययान, देवयान एवं ब्रह्मयान इन शब्दों का प्रयोग उपलब्ध होता है। पालि–संयुक्त निकाय में भी आष्टाङ्गिक मार्ग के लिए 'ब्रह्मयान' एवं 'धर्मयान' की कल्पना मिलती है।[17] भगवान् बुद्ध ने अपने श्रोताओं के प्रवृत्ति–भेद एवं विकास भेद को देखते हुए मुख्यतः दो प्रकार के धर्म का उपदेश दिया– हीनयान और महायान। हीनयान को श्रावकयान भी कहा गया है। हीनयान सभी प्राणियों के कल्याण का मार्ग न बताकर केवल स्वार्थ कल्याण पर बल देता है। इसके विपरीत महायान में आकाश के समान अनन्त सत्त्वों के लिए अवकाश है। महायान चाहते थे कि अधिकार सम्पन्न होने पर सब बुद्धत्व के मार्ग पर प्रतिष्ठित हों। इस मार्ग को 'बुद्धयान' एवं इस मार्ग के पथिक को 'बोधिसत्त्व' कहते है।

महायान का उद्गम :

महायान के उद्भव के विषय में महायान सूत्रों में प्रकाशित मत ऐतिहासिक दृष्टि से स्वभावतः सन्देह उत्पन्न करता है। महायान सूत्र अपने को बुद्ध प्रोक्त बताते है, किन्तु उनकी भाषा एवं शैली उनकी परवर्तिता सूचित करती है। अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता ही महायान–सूत्रों में प्राचीनतम है। इसका लोकरथ ने चीनी में 147 ई. में अनुवाद किया था।[18] महायान साधना के दो रूप हैं– पारमितायान और मंत्रयान या वज्रयान। पारमितायान धीमी प्रक्रिया है जिसमें सम्बोधि की प्राप्ति असंख्य कल्पों तक होना निश्चित है। जबकि वज्रयान में इसी जन्म में बुद्धत्व की प्राप्ति होती है।[19] पांचवी शताब्दी तक महायान में इन विचारों का प्रचार हो चुका था।[20] परवर्ती महायान बौद्ध–धर्म मंत्रयान का ही विकास है। श्री राहुल सांस्कृत्यायन ने मंत्रयान को ही विकास और विशेषता की दृष्टि से दो भागों में बाँटा है –[21]

मंत्रयान – ई. –400–700 तक।

वज्रयान – ई. 800–1200 तक।

मंत्रयान वह मार्ग है जिसमें मंत्रों और धारणियों की सहायता से निर्वाण की प्राप्ति की जाती है। वज्रयान वह यान है जिसमें मंत्रों व धारणियों को ही नहीं अपितु वज्र शब्द से अभिव्यक्त होने वाली सभी

वस्तुओं को भी साधन के रूप में स्वीकार किया गया है।

बौद्ध तन्त्र परम्परा में मंदिर-निर्माण, देवमूर्तिस्थापन्न शक्तितत्त्व, स्तूपनिर्माण, स्तूप-मूर्ति-पूजा-उपासना आदि मतों की स्थापना एवं विस्तार का विकसित रूप ही वज्रयान सम्प्रदाय है, जिसमें बौद्ध तन्त्र परम्परा का विकास हुआ। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि अशोक के समय से सद्धर्म के प्रचार के लिए जनपदों में, बुद्ध को एक सरल और मूर्त रूप देने का जो प्रयास जारी था उसने क्रमश: महायान को जन्म दिया।

महायानियों का मत है कि तथागत ने सबको उनकी बुद्धि के अनुरूप शिक्षा दी थी, जिससे प्रत्येक व्यक्ति धर्म को समझ सके और धर्म का पालन कर सके । यही महायान का वास्तविक उद्गम है।

सन्दर्भ सूची-

1. डॉ. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, अध्याय-1, पृष्ठ संख्या 1
2. आचार्य नरेन्द्र देव, बौद्ध-धर्म दर्शन, अध्याय-1, पृष्ठ संख्या 1
3. डॉ. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, अध्याय-5, पृष्ठ संख्या 272
4. आचार्य नरेन्द्र देव, बौद्ध धर्म दर्शन, अध्याय-15, पृष्ठ सं. 322
5. डॉ. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, अध्याय-5, पृष्ठ संख्या 227
6. Pitakam pitakatthavidu pariyattibhâjanatthato âhu tena samodhânetvâ tayo pi vinayâdayo neyyâ.
   The Atthasalini-51, By Edward Muller, p. 20.
7. डॉ. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, अध्याय-6, पृष्ठ संख्या 262
8. डॉ. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, अध्याय-5, पृष्ठ संख्या 272
9. प्रो. उमाशंकर शर्मा, 'ऋषि', सर्वदर्शनसंग्रह, पृष्ठ संख्या 7
10. स्वामी योगिन्द्रानन्द कृत, ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य, भाग-2, अध्याय 2, पाद-2, सूत्र 18, पृष्ठ संख्या 678
11. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य, परिच्छेद-5,पृष्ठ संख्या 77
12. आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
    बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मन: प्रग्रहमेव च ।।
    ईशकेनकठोपनिषद्: पृष्ठ संख्या 72
13. स एनान्ब्रह्म गमयत्येष देवयान: पन्था इति ।
    छान्दोग्योपनिषद्- 5/10.2, पृष्ठ संख्या 188
    अन्य-
    'य एतौ पन्थानौ न विदुस्ते कीटा: पतंगा यदिदं दन्दशूकम्।
    बृहदारण्यकोपनिषद्, 6.2.15-16, पृष्ठ संख्या 766
14. गीता, 7.23-27
15. छान्दोग्य उपनिषद्, प्रपाठक-4, खण्ड 15.6, पृष्ठ संख्या 162
16. डॉ. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, अध्याय-7, पृष्ठ संख्या 301
17. वही
18. डॉ. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, अध्याय-8, पृष्ठ संख्या 306
19. डॉ. भागचन्द्र जैन, हेवज्रतन्त्र-योगरत्नमाला। अध्याय-1, पृष्ठ संख्या 24
20. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, तान्त्रिक बौद्ध साधना और साहित्य, परिच्छेद-4, पृष्ठ संख्या 42
21. वही, परिच्छेद-8, पृष्ठ संख्या 110

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

1. ईशकेनकठोपनिषद : हरि नारायण आपटेशलिवाहन शकाब्दा : 1836
2. कठोपनिषद् : श्री श्रेमेन्द्र डॉ. विजेन्द्र कुमार शर्मा, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1994 ई.
3. छान्दोग्योपनिषद् :श्री विष्णुदेवानन्द गिरी महाराज, कैलास आश्रम ब्रह्मविद्यापीठ, ऋषिकेश, उत्तराखण्ड, संस्करण-2017
4. तान्त्रिक बौद्ध साधना और साहित्य : नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी प्रथम संस्करण, संवत् 2015
5. ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य : स्वामी योगिन्द्रानन्दकृत, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-221001 द्वितीय संस्करण, 1996
6. बृहदारण्यकोपनिषद् : रामचन्द्र शास्त्री, वाणी विलास संस्कृत पुस्तकालय: काशी प्रथमावृत्ति:, विक्रम संवत् -2011
7. बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास : डॉ. गोविन्दचन्द्र पाण्डेय, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, लखनऊ, प्रथम संस्करण-1963
8. सद्धर्मपुण्डरीक : डॉ. राममोहन दास, बिहार-राष्ट्र भाषा परिषद्, सैदपुर-विस्तार- पथ, पटना-4, प्रथम संस्करण-2000
9. सर्वदर्शनसंग्रह : प्रो. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी-221001, संस्करण-2012
10. हेवज्रतन्त्र-योगरत्नमाला : डॉ. भागचन्द्र जैनकला एवं धर्म शोध संस्थान, वाराणसी-221005, प्रथम संस्करण, 2009
11. The Atthasalini Edward Muller Oxford University Press Warehouse Amen Corner E.C. 1897.

ISSN 2278 - 0327

इतिहास का ऐतिहासिक विश्लेषण

राजकिशोर
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
जे. एस. हिन्दू पी. जी. कॉलेज, अमरोहा

अतीत में घटित घटनाओं, मानवीय क्रियाकलापों व सामाजिक संबंधों को समझने का एक व्यवस्थित प्रयत्न ही इतिहास है। जब मानव सभ्यता का जन्म हुआ, तब वह संसार में घटित होने वाली घटनाओं व उनके संदर्भों से अंजान था, शनैः-शनैः वह चीजों को समझने लगा। मानव ने ऋतुओं के चक्र देखे, दिन-रात देखे, रोशनी-अंधेरे देखे। मानव समाजों में सभ्यताओं व संस्कृतियों का निरंतर फेर-बदल हुआ, लेकिन वे प्रायः दूसरों द्वारा सिखाये गए क्रियाकलापों की आवृत्ति ही किए जा रहे थे। आविष्कार के स्थान पर पुनरावृत्ति ही नियम था। यह समय धर्म, दर्शन व अध्यात्म जैसे विचारों द्वारा संचालित था। तत्कालीन समय में घटनाएँ एक दूसरे से बिखरी हुई थीं, तथा अर्थहीन थीं। स्पष्ट शब्दों में कहें तो यह अतीत का काल था, न कि इतिहास का।

वस्तुतः इतिहास मानव की स्वयं के बारे में जानने की जिज्ञासा है। जिस रूप में इसका उद्गम हुआ था, आज का इतिहास बिल्कुल भिन्न प्रकृति का है। प्रायः इतिहास को साहित्य के ही एक रूप के तौर पर विश्लेषित किया जाता है, तथा इसका आधार सत्य की अभिव्यक्ति होती है। दरअसल, इतिहास स्वयं में एक भ्रमपूर्ण शब्द है। पृथ्वी पर आज तक जो कुछ भी घटित हुआ है, वह इतिहास है। हालांकि इस प्रकार के इतिहास का सटीक ऐतिहासिक विश्लेषण कर पाना दुष्कर है, इसने अध्ययन की सुविधा हेतु विभिन्न स्वरूपों में वर्गीकृत कर दिया, यथा-पृथ्वी के उद्भव का इतिहास, जीवों के उद्भव व विकास का इतिहास, वनस्पति जगत के उद्भव व विकास का इतिहास, मानव संस्कृति व सभ्यता के उद्भव व विकास का इतिहास आदि। यहाँ विदित इतिहास का आशय मनुष्य की संस्कृति व सभ्यता के उद्भव व विकास के इतिहास से है। इस इतिहास का संबंध मानव के उत्थान-पतन से है। सामान्यतः अतीत की घटनाओं का गहन अध्ययन करके मानवीय मस्तिष्क को समझना ही इतिहास है।

आधुनिक विद्वानों के अनुसार इतिहास की प्रमुखतः तीन मान्यताएं हैं – पहली, इसमें सार्वजनिक घटनाओं का विवरण होता है। सामान्यतः इतिहास में वैयक्तिक जीवन से संबंधित घटनाओं का उल्लेख नहीं होता। दूसरी, वर्णित घटनाओं में क्रमबद्धता होती है। तीसरी, इतिहासकार एक सच्चे वैज्ञानिक के समान घटनाओं को अपूर्ण अथवा विकृत रूप में प्रस्तुत नहीं करते, अपितु उन्हें घटना का वस्तुनिष्ठ व्याख्या करना चाहिए अर्थात् घटना जैसी दिखाई दे, उसका ठीक वैसा ही संपूर्ण विवरण प्रस्तुत करना चाहिए। मशहूर इतिहासकार कार्ल पॉपर का मत है कि वस्तुतः इतिहास का कोई अर्थ नहीं होता, क्योंकि इतिहास का कोई निर्धारित लक्ष्य नहीं होता है। मानव अपने लक्ष्यों को इस पर आरोपित करता है। वास्तव में इतिहास वह है, जो घटित हो चुका है। यहाँ ध्यान आकृष्ट करने वाली बात यह है कि यह अतीत मृत नहीं होता, अपितु प्रत्येक वर्तमान अतीत को अपने अंदर जीवित रखता है।

'इतिहास' आंग्ल शब्द 'History' का हिन्दी रूपांतरण है, जो कि ग्रीक भाषा के 'Historia' से उद्धृत है, इसका अर्थ होता है 'ज्ञात करना'। लैटिन भाषा में भी 'Historia' शब्द ही दृष्टिगोचर होता है। इतिहास का जन्म यूनान के हेरोडोट्स को माना जाता है, उनके काल में इतिहास किसी न किसी मिथक के रूप में बेबीलोनिया में विद्यमान था। हेरोडोट्स द्वारा खोज की विधियों का प्रयोग कर फारस के युद्ध व तात्कालिक समाज का वर्णन प्रस्तुत किया गया। इन्हीं के समकालीन विद्वान थे थ्यूसीडाइडीज। उन्होंने पेलोपोनिशियन के युद्ध का यथार्थ विवरण प्रस्तुत किया। वह ऐतिहासिक विश्लेषण को सटीक व शुद्ध बनाने हेतु तार्किक विश्लेषण को महत्व देने की बात करता है। उनका तर्क स्पष्ट था कि हमें तथ्यों के सहारे आगे बढ़ना चाहिए तथा चश्मदीद गवाहों व साक्ष्यों के आधार पर लेखन कार्य करना चाहिए। थ्यूसीडाइडीज का मत था कि इतिहास केवल निकट के अतीत का वर्णन किया जा सकता है। उन्होंने इतिहास लेखन की एक भिन्न प्रणाली अपनाने का आग्रह किया तथा बताया कि इसमें विश्वसनीयता का होना अत्यंत आवश्यक है। हेरोडोट्स तथा थ्यूसीडाइडीज द्वारा विश्लेषित ऐतिहासिक परंपरा का प्रस्तुतीकरण बाद के इतिहासकारों के लिए आदर्श के रूप में स्थापित रहा तथा इसी के अनुरूप इतिहास लेखन की परंपरा जारी रही।

इतिहास की ऐतिहासिक व्याख्या का एक लंबा काल धर्म, मिथक व ईश्वर की स्थापना व गुणगान के रूप में परिलक्षित रही। यूरोपीय समाज में यह ईसाईत्व पर आधारित रही, उत्तरी अफ्रीका में सेंट अगस्टाइन ने ईश्वर के सहारे इसकी अभिव्यक्ति प्रकट की, वहीं भारतीय संदर्भ में भी 'महाभारत' व जैन ग्रंथों में इस प्रकार के विवरण का उल्लेख दिखाई पड़ता है। समकालीन संदर्भ के कुछ विद्वान भी इस परंपरा को अपनाए हुए हैं, यथा – गिबन, बरी, फिशर, सार्त्र आदि।

बहरहाल, कालांतर में इब्न खाल्दून द्वारा लिखित ग्रंथ 'मोकद्दिमा' ने इतिहास के ऐतिहासिक विश्लेषण में वैज्ञानिकता का समावेश किया। उसने ढेरों यात्राएं की, तथ्यों को संकलित किया, उनपर विचार-विमर्श किया। उन्होंने वैज्ञानिक इतिहास की स्थापना हेतु पूर्वाग्रहविहीन तथा वस्तुपरक इतिहास की धारणा की वकालत की। खाल्दून का यह भी तर्क था कि इतिहास न केवल अतीत की घटनाओं का वैज्ञानिक विवरण प्रस्तुत कर सकता है, अपितु इसमें भविष्यवाणी करने की भी क्षमता निहित होती है। हालांकि उनके विचार वृहत रूप में जनमानस व इतिहासकारों पर अधिक प्रभाव न डाल सके।

आधुनिकता की स्थापना के प्रयोजन से उभरे पुनर्जागरण ने मानव केंद्रित समाज की कल्पना की। इस कल्पना की परिणति ने इतिहास की पुरानी व्याख्या को तहस-नहस कर दिया। ऐसे भी विद्वान सामने आए, जिन्होंने इतिहास को मात्र वर्तमान की कठपुतली के रूप में पेश किया, जैसे -मैकियावेली, वारनेस आदि। रेने डेकार्ट इतिहास को फांतासीपूर्ण कथाओं व परिकथाओं के रूप में प्रस्तुत करते हैं। पुनर्जागरण ने विज्ञान व तर्क को स्थापित किया तथा यह सिद्ध किया की सत्य, उचित व व्यवहारिक वही है जिसे विज्ञान वैधता प्रदान करे, उसके इतर सब कुछ व्यर्थ है, अटकलबाजी मात्र है। वाल्टेयर ने इतिहास दर्शन जैसे शब्द का सूत्र पात किया तथा उसने लुई 14वां के काल का इतिहास लिखा। इसमें राजनीति के अलावा आर्थिक व सांस्कृतिक व्यवस्था के बारे में चर्चा विदित है। 19वीं शताब्दी तक आते-आते विज्ञान पूरी दृढ़ता से समाज पर अपनी पैठ बना चुका था तथा लोगों में यह विश्वास व्याप्त हो चुका था कि जो कुछ भी विज्ञान नहीं है, वह अप्रासंगिक है। प्राकृतिक विज्ञानों के विकास ने मानव जीवन को अधिक सरल व उपयोगी बना दिया। इस प्रकार से समाज के लिए विज्ञान की आवश्यकता धीरे-धीरे बढ़ने लगी। इसी क्रम में सभी विषयों में स्वयं को स्थापित करने की होड़ सी लग गई, यह होड़ थी स्वयं को विज्ञान के रूप में स्थापित करने की।

फ्रांसीसी विद्वान अगस्त कॉम्ट ने समाजशास्त्र को वैज्ञानिक दर्जा प्रदान करते हुए उसकी व्याख्या एक सामाजिक विज्ञान के रूप में की, इसके परिणामस्वरूप इतिहास को भी वैज्ञानिक रूप से वैधता दिलाने पर विचार किए जाने लगे। ब्रिटिश विद्वान बकिल ने कहा कि इतिहास इस कारण आगे नहीं बढ़ पा रहा है क्योंकि यहाँ कोई न्यूटन जैसा इतिहासकार पैदा नहीं हुआ।

इतिहास एक विज्ञान है तथा अतीत की पृष्ठभूमि ही इसकी प्रयोगशाला है। हालांकि विज्ञान की भांति इसमें समान प्रयोग के परिणाम सदैव एक जैसे ही नहीं प्राप्त होते, अर्थात् इसमें परिवर्तित परिणामों के प्राप्त होने की अपार संभावनाएं रहती हैं। चूँकि घटनाएँ तथा उनमें शामिल मनुष्यों की गतिविधियां, विचार, प्रकृति व आदतें सदैव परिवर्तनशील होती हैं, अत: ऐसे में परिणामों में असमानता का होना स्वाभाविक है। 19वीं शताब्दी में इतिहास की ऐतिहासिक परंपरा में काफी फेर-बदल हुए, इसके आयामों में नवीनीकरण व विस्तार हुआ। यही कारण है कि इस शताब्दी को 'इतिहास की शताब्दी' के नाम से जाना जाता है। जर्मनी विद्वान लियोपॉल्ड वॉन राके ने अभिलेखागारों का उपयोग तथ्यों के संकलन में किया तथा दस्तावेजों को इकट्ठा कर उनका इस्तेमाल इतिहास लेखन में किया।

वहीं जर्मनी के ही विद्वान कार्ल मार्क्स ने आदर्शवादी विचारधारा तथा वैज्ञानिक समाजवाद की स्थापना की तथा उसने निष्कर्ष निकाला कि मानव समाज को समझने की प्रमुख तकनीक इतिहास ही है। मार्क्स ने इतिहास को उत्पादन संबंधों का इतिहास बताया। अपने पूर्व के दार्शनिक विद्वानों के नैतिक आधार के विपरीत मार्क्स ने सर्वप्रथम इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की तथा इसके आधार के रूप में उसने बताया कि मानव समाज का विकास वर्ग संघर्ष के माध्यम से हुआ है। मानव समाज के विकास की ऐतिहासिक व्याख्या में मार्क्स ने चार समाजों (आदिम साम्यवाद, दस समाज, सामंतवादी समाज तथा पूंजीवादी समाज) की चर्चा की तथा इसके अलावा एक आदर्शवादी/ यूटोपियन समाज के रूप में साम्यवाद की संकल्पना भी प्रस्तुत की, जहां वह बताता है कि एक साम्यवादी क्रांति के उपरांत एक ऐसे समाज की स्थापना होगी, जो वर्ग विहीन होगा, राज्य विहीन होगा तथा यहाँ निजी संपत्ति का लोग हो जाएगा, गैर-बराबरी समाप्त हो जाएगी। अर्थात् मार्क्स ने इतिहास की व्याख्या के सहारे भूत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों का ही विवरण प्रस्तुत किया है।

मार्क्स के विचारों ने इतिहास दर्शन के विश्लेषण की परंपरा में उथल-पुथल मचा दिया। उनके अनुसार संस्कृतियों के निर्माण में आर्थिक पक्ष महत्वपूर्ण रहा है तथा इसकी स्पष्ट छाप मानव जीवन के प्रत्येक हिस्से में परिलक्षित होती है। उनका तर्क था कि इतिहास की समस्त घटनाओं का विश्लेषण आर्थिक पृष्ठभूमि के तहत किया जाना चाहिए तथा इस प्रकार से हम समाज में हो रहे परिवर्तनों के बारे में स्पष्ट, सटीक व समृद्ध समझ विकसित कर सकेंगे।

जी. डबल्यू. ए. हीगल, ओस्वाल्ड स्पेंगलर तथा अर्नाल्ड टायनबी के इतिहास दर्शन में काफी समानताएँ देखने को मिलती हैं। इन सभी ने इतिहास को एक संपूर्ण व्यवस्था मानते हुए मानव समाज के विकास की धुरी के रूप में व्याख्यायित करने का प्रयत्न किया है। हीगल का मत है कि इतिहास को हम भौतिकवादी व्याख्या के सहारे नहीं समझ सकते, इसके लिए आदर्शवादी व्याख्या अथवा विचार अधिक उपयुक्त व महत्वपूर्ण है। सम्राट, शासक अथवा राष्ट्र के नैतिक विकास की दिशा में ही संस्कृति का विकास निर्धारित व निर्देशित होता है। वहीं स्पेंगलर मानते हैं कि इतिहास का निर्माण कई सांस्कृतिक इकाइयों के सम्मिलन के परिणामस्वरूप हुआ है तथा प्रत्येक संस्कृति की स्वयं में भिन्न प्रकृति होती हैं अर्थात् प्रत्येक संस्कृति की अपनी एक निजी विशेषता होती है। प्रत्येक संस्कृति का उदय, विकास व ह्रास होती है तथा इसी के अनुरूप इतिहास में भी फेर-बदल होते रहते हैं। स्पेंगलर

की ऐतिहासिक व्याख्या 8 मानव संस्कृतियों के अध्ययन पर आधारित है।

टायनबी ने कुल 21 सभ्यताओं के अध्ययन के उपरांत यह तर्क प्रस्तुत किया कि ऐसा नहीं है कि इतिहास उद्देश्यविहीन होता है, वरन इसके निश्चित उद्देश्य होते हैं। इनका मुख्य विचार सभ्यताओं के चुनौती-प्रत्युत्तर का है। जो सभ्यताएँ चुनौतियों का मुकाबला कर लेती हैं, वे जीवित रह जाती हैं तथा भविष्य में भी ऐसे ही चुनौती-प्रत्युत्तर की प्रक्रिया से गुजराती रहती हैं। जबकि जो सभ्यताएँ चुनौतियों का मुकाबला नहीं कर पाती हैं, वे नष्ट/ विलुप्त हो जाती हैं। टायनबी आगे बताते हैं कि मानव इतिहास का आधुनिक काल मानवता के इतिहास का आखिरी चरण है तथा इसके बाद इतिहास को कोई आगामी चरण नहीं आने वाला है। अर्थात् यह इतिहास के विकास के चरमोत्कर्ष की अवस्था है। 20वीं शताब्दी के इतिहास की सर्वमान्य विचारधारा भौतिकवादी है। प्रत्यक्षवादी अथवा अनुभववादी विदानों का मत है कि इतिहास अतीत के तथ्यों का ही वर्णन है, इसके इतर कुछ भी नहीं। वहीं भौतिकवादी इतिहास की वर्ग सापेक्ष के रूप में करते हैं अर्थात् इतिहास अतीत का वास्तविक मित्र होता है।

रेमंड एरों एक स्थान पर लिखते हैं कि मनुष्य की अभिव्यक्ति समाज में कई रूपों में होती है। एक स्थान पर तो वह इतिहास की विषयवस्तु के रूप में परिलक्षित होता है, तो वहीं दूसरे स्थान पर वह स्वयं लेखक/ कर्ता के रूप में भी काबिज रहता है। कहने का आशय यह है कि वह पूर्ण रूप से पूर्वाग्रहविहीन नहीं हो सकता है। यदि वह अपने पूर्वाग्रहों के प्रति सचेत है, तो ऐसी दशा में वह उन पर नियंत्रण अवश्य लगा सकता है तथा यदि वह सचेत नहीं है, तो ऐसे में वह इतिहास उसका स्वयं का रचित भी हो सकता है अर्थात् वह इतिहास की ऐतिहासिक व्याख्या को दूषित भी कर सकता है। किसी भी व्याख्या अथवा विश्लेषण में तथ्य ही सर्वोपरि होते हैं तथ्य ही मूल होते हैं, वहीं अतीत की भी अपनी एक अस्मिता/ पहचान होती है। इन्हीं संदर्भों की इतिहास निर्माण में निर्णायक भूमिका होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

- कार, ई. एच. (1961). वॉट इज हिस्ट्री. यूके. कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय.
- कॉलिगवुड. (1945). द आइडिया ऑफ हिस्ट्री. रीड एंड को हिस्ट्री.
- गूच, जी. पी. (1913). हिस्ट्री एंड हिस्टोरियन्स इन द 19th सेंचुरी. लंदन: लॉन्गमैंस, ग्रीन एंड को.
- पोबिक, ए. (1955). मॉडर्न हिस्टोरियन्स एंड द स्टडी ऑफ हिस्ट्री. लंदन: ओधाम्स प्रेस लिमिटेड.
- मार्क्स, के. (1867). दास कैपिटल. वरटैग वॉन ओट्टो मेसनर.
- टायनबी, ए. जे. (1934-61). ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री. (I-XII भाग). न्यूयॉर्क: ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस.
- टायनबी, ए. जे. (1948). सिविलाइजेशन ऑन ट्रायल. न्यूयॉर्क: ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस.
- स्पेंगलर, ओ. (1918). द डिक्लाइन ऑफ द वेस्ट. न्यूयॉर्क: ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस.
- शाटवेल, जे. (1950). हिस्ट्री ऑफ हिस्ट्री. न्यूयॉर्क: कोलंबिया विश्वविद्यालय प्रेस.
- हिगल, जी. डबल्यू. ए. (1837). द फिलासफी ऑफ हिस्ट्री. न्यूयॉर्क: डोवर पब्लिकेशन्स.

ISSN 2278 - 0327

भारत में रोजगार संबंधों में उभरते रुझान

मनदीप
एम.ए. (NET), राजनीति विज्ञान विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

सार–

स्वतंत्र भारत के बाद के राज्य विनियमन ने उत्पाद बाजार और औद्योगिक संबंध प्रणाली दोनों के प्रबंधन की विशेषता बताई। औद्योगिक शांति के तर्क ने विनियमन के युग में औद्योगिक संबंध प्रणाली के संस्थागत ढांचे को निर्धारित किया। वर्षों से, औद्योगिक क्षेत्र में उत्पाद बाजार और औद्योगिक संबंध प्रणाली दोनों के संबंध में राज्य विनियमन मॉडल की विफलताओं को इंगित किया गया था और दोनों को उदार बनाने के लिए कार्य किया गया है। आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया 1980 के दशक के मध्य से शुरू हुई और 1991 से तेज हो गई। इस बीच, औद्योगिक संबंध प्रणाली में भी कुछ महत्वपूर्ण विकास हो रहे थे। राज्य, नियोक्ता और ट्रेड यूनियनों ने इन ताकतों को अलग-अलग तरीकों से जवाब दिया। इन दोनों ने मिलकर रोजगार संबंधों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया।

मुख्य शब्दः उदारीकरण, औद्योगिक संबंध प्रणाली, राज्य, यूनियन।

परिचय

शासन के औपनिवेशिक मॉडल से आकर्षित होकर, स्वतंत्र भारत में नीति निर्माताओं ने औद्योगिक संबंध प्रणाली और श्रम बाजार के प्रबंधन के लिए मुख्य रूप से आर्थिक नियोजन रणनीति से उत्पन्न होने वाली मजबूरियों के कारण 'राज्य हस्तक्षेप' मॉडल तैयार किया। औद्योगिक संबंध प्रणाली के नियम राज्य के संस्थानों द्वारा निर्धारित किए गए थे जैसे कि अनिवार्य निर्णय, सुलह, स्थायी आदेश, श्रम कानून और केस कानून आदि। इसका उद्देश्य श्रम और पूंजी के कार्यों को विनियमित करना और श्रम-प्रबंधन संघर्षों और विवादों का न्यायिक और प्रशासनिक समाधान प्रदान करना भी था। भविष्य के लिए सामूहिक सौदेबाजी मॉडल को स्थगित कर दिया गया था। हालांकि, राज्य के हस्तक्षेप का मतलब श्रमिकों के अधिकारों का दमन नहीं था। भारत में अपनाई गई राजनीति के संघीय-लोकतांत्रिक-बहुलवादी मॉडल ने यूनियन बनाने के मौलिक अधिकार और कानूनी विनियमन के अधीन औद्योगिक कार्यों की स्वतंत्रता का आश्वासन दिया। विनियमन युग के दौरान सरकार का प्रमुख उद्देश्य औद्योगिक शांति बनाए रखना था। यूनियनों, नियोक्ताओं और राज्य के बीच एक निहित 'सामाजिक समझौता' मौजूद था, जिसके तहत यूनियनों ने बदले में संगठनात्मक और नौकरी की प्रतिभूतियों के लिए औद्योगिक शांति का वादा किया था और नियोक्ता और यूनियन दोनों ने राज्य के विनियमन को स्वीकार कर लिया था।

उत्पाद बाजार और औद्योगिक संबंध प्रणाली में राज्य विनियमन की विफलता तब तक स्पष्ट हो गई और दोनों के विनियमन की मांग जोर से हो गई। 1991 में घोषित नई आर्थिक नीति ने सरकार की आर्थिक नीतियों में विनियमन से उदारीकरण की ओर एक निर्णायक बदलाव का संकेत दिया। उत्पाद बाजार सुधार उपायों ने श्रम की तुलना में पूंजी की सौदेबाजी की शक्ति में वृद्धि की है। गतिशीलता की अधिक सुगमता पूंजी को अधिक सौदेबाजी की शक्ति प्रदान करती है। सरकार का प्रमुख उद्देश्य 'औद्योगिक शांति के तर्क' से 'फर्म और अर्थव्यवस्था की प्रतिस्पर्धात्मकता के तर्क' में स्थानांतरित हो गया। उत्पाद बाजार और श्रम बाजार के बीच इंटरफेस को देखते हुए, सुधारवादियों ने औद्योगिक संबंध प्रणाली और श्रम बाजार के उदारीकरण की मांग की। श्रम सुधारों के लिए नियोक्ताओं की मांगों में कमजोर संघ शक्ति, गैरकानूनी हड़ताल, श्रम संबंधों को व्यक्तिगत बनाना, सार्वजनिक उद्यमों का निजीकरण, श्रम कानूनों को युक्तिसंगत और सरल बनाना, काम पर रखने और आग लगाने और बंद उपक्रमों की स्वतंत्रता, ठेका श्रमिकों को काम पर रखने की स्वतंत्रता, श्रम निरीक्षण प्रणाली को उदार बनाना, स्वतंत्रता शामिल हैं। तकनीकी परिवर्तन शुरू करने, बोनस से संबंधित कानूनी प्रावधानों को निरस्त करने आदि के लिए इन मांगों के लिए विनियमन युग में अपनाए गए औद्योगिक संबंध प्रणाली में राज्य के हस्तक्षेप मॉडल में बदलाव की आवश्यकता है। नए आर्थिक माहौल में आर्थिक, राजनीतिक और संस्थागत ताकतों की परस्पर क्रिया, नए मुद्दे, दुविधाएं, चिंताएं और रणनीतियां सामने आईं और रोजगार संबंध जटिल हो गए हैं।

सरकार कठोर श्रम सुधारों को शुरू करने से कतरा रही है, यानी रोजगार सुरक्षा या पूर्ण पैमाने पर निजीकरण से संबंधित औपचारिक ढांचे में कुछ बदलाव करना। हालांकि, केंद्र सरकार ने ट्रेड यूनियन कानून में संशोधन, निजीकरण के बजाय विनिवेश, भविष्य निधि ब्याज दरों को कम करने, श्रम निरीक्षण प्रणाली को उदार बनाने, विशेष आर्थिक क्षेत्रों में इकाइयों को विशेष रियायतें आदि जैसे 'सॉफ्ट' सुधारों का सहारा लिया।

श्रम सुधार उपायों पर कड़ा रुख अपनाने में असमर्थ, केंद्र

सरकार ने तब बड़ी चतुराई से श्रम सुधारों की जिम्मेदारी राज्य सरकारों पर डाल दी है। श्रम सुधारों के मुद्दे पर संघीय राजनीति का उपयोग करने के कारण हैं। राज्य सरकारें कुछ मामलों पर अपने स्वयं के श्रम कानून बनाने और केंद्रीय कानूनों (भारत के संविधान के तहत शक्तियों के वितरण के कारण) में संशोधन करने की स्थिति में हैं और श्रम कानून प्रवर्तन की महत्वपूर्ण एजेंसियां इन शक्तियों का उपयोग प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए करती हैं जैसे कि पूंजी को आकर्षित करने और बनाए रखने के लिए श्रम क्षेत्र में लचीलापन। इसके अलावा, राज्य स्तर पर श्रम सुधार राष्ट्रीय स्तर पर सुधारों के विपरीत श्रम विरोधों को स्थानीयकृत करेंगे। विभिन्न राज्य सरकारों ने अपने क्षेत्रों में निवेश आकर्षित करने के लिए श्रम नियामक प्रणाली में बदलाव लाने की मांग की है। सुधार उपायों में श्रम निरीक्षण प्रणाली में ढील देना (प्रशासनिक निर्देशों द्वारा निरीक्षणों की आवृत्ति को कम करना या स्व-प्रमाणन प्रणाली शुरू करना, एसईजेड में इकाइयों के लिए विभिन्न निरीक्षण प्राधिकरण, निरीक्षण के लिए पूर्व प्राधिकरण शुरू करना आदि) शामिल हैं। उभरते क्षेत्र जैसे शॉपिंग मॉल, एसईजेड में इकाइयां, सूचना प्रौद्योगिकी और जैव-प्रौद्योगिकी उद्योग, वार्षिक रिटर्न के संबंध में प्रक्रियाओं को सरल बनाना, रजिस्टरों का रखरखाव, फॉर्म आदि में इकाइयों को सार्वजनिक उपयोगिता सेवाओं के रूप में घोषित करना (हड़ताल को और अधिक कठिन बनाने के लिए) या मौसमी या रुक-रुक कर काम करने के रूप में (ताकि उन्हें ठेका श्रम (विनियमन और उन्मूलन) अधिनियम के दायरे से हटाया जा सके।

नव-उदारवादी न्यायिक रुझान

सामान्य और स्वीकार्य धारणा यह थी कि विनियमन युग के दौरान मजदूर वर्ग न्यायपालिका पर अपने सहयोगियों में से एक के रूप में भरोसा कर सकता था, हालांकि ऐसे निर्णय भी हुए हैं जो श्रम अनुशासन को रोकने और दुकान के फर्श में व्यवस्था स्थापित करने की मांग करते थे। लेकिन 1990 के दशक के दौरान और बाद में ठेका श्रमिकों, निजीकरण, हड़ताल के अधिकार, बंद आदि से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण निर्णयों ने श्रमिकों और ट्रेड यूनियनों के हितों और हितों का समर्थन नहीं किया। सर्वोच्च न्यायालय ने (ए) निजीकरण के मामले में कार्यपालिका (यानी सरकार) की नीति स्वतंत्रता की पुष्टि की है, (बी) हड़ताल के अधिकार के खिलाफ आम तौर पर आलोचनात्मक टिप्पणी की है और सार्वजनिक कर्मचारियों की हड़ताल के अधिकार को प्रतिबंधित किया है, (सी) बंद आदि जैसे सार्वजनिक विरोधों पर प्रतिबंध लगाया, (डी) आवश्यक सेवा रखरखाव अधिनियम (एस्मा) लागू करने के लिए सरकार से समर्थन या कहा, (ई) उन्मूलन पर अनुबंध श्रमिकों के स्वत: अवशोषण के लिए अपने स्वयं के आदेश को उलट दिया और तर्क दिया कि प्रासंगिक कानून में स्वत: अवशोषण प्रदान नहीं किया गया था, इस प्रकार इसने अनुबंध श्रम और हड़ताल के अधिकार जैसे मुद्दों पर शीर्ष न्यायालय द्वारा आयोजित पदों को फिर से लिखा। हड़ताल जैसे श्रमिकों के कार्यों से संबंधित न्यायपालिका की स्थिति और कार्रवाई उसके रुख में बदलाव का एक दिलचस्प उदाहरण है। इसने ट्रेड यूनियनों के कृत्यों और कार्यों, सार्वजनिक कर्मचारियों द्वारा हड़ताल, मुंबई में नगरपालिका कर्मचारियों को बोनस भुगतान, आदि पर सवाल उठाने वाली जनहित याचिकाओं को स्वीकार किया और यूनियनों के कार्यों पर रोक लगाने के आदेश पारित किए। केंद्र और राज्य सरकारें हड़तालों पर एस्मा लागू करने के लिए तैयार रही हैं और न्यायपालिका अक्सर इसका समर्थन करती है, यहां तक कि इसे प्रोत्साहित भी करती है।

राजनीति-ट्रेड यूनियन नेक्सस

मद्रास, बंगलौर, बॉम्बे और यहां तक कि कलकत्ता जैसे महत्वपूर्ण महानगरों में उद्यम संघवाद का उदय मुख्य रूप से राजनीतिक संघवाद मॉडल के साथ निराशा और विफलता के कारण हुआ था। इसका मुख्य दोष यह है कि राजनीतिक हित अक्सर श्रमिक संगठनात्मक हितों पर शासन करते हैं और संघ आंदोलन में विभाजन उत्पन्न करते हैं और इसलिए संघ शक्ति कमजोर होती है। दूसरे, सत्ताधारी राजनीतिक दलों और उनकी श्रमिक शाखाओं के बीच संघर्ष सुधार अवधि के दौरान फले-फूले हैं। राजनीतिक दलों ने विरोध में श्रम सुधार के उपायों का विरोध किया, हालांकि उन्होंने केंद्र या राज्य स्तर पर सत्ता में रहते हुए उन्हें लागू करने की मांग की! अंत में, ट्रेड यूनियन संघों ने संघ की संगठनात्मक राजनीति को दलीय राजनीति के अधीन करने की निरर्थकता को महसूस किया है। सुधार के बाद की अवधि में ट्रेड यूनियन कार्यों और रणनीतियों के लिए इनका महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

सामूहिक सौदेबाजी में नए रुझान भारत में सामूहिक सौदेबाजी का कवरेज 3 प्रतिशत जितना कम है। हालांकि, यह कम आंकड़ा कुछ दिलचस्प जमीनी हकीकतों को छुपाता है। सामूहिक सौदेबाजी भारत में कई उद्योगों में औद्योगिक संबंध प्रणाली में नियम बनाने के महत्वपूर्ण तरीकों में से एक रहा है। सामूहिक सौदेबाजी के विकास के संबंध में कुछ प्रमुख अवलोकन यहां किए जा सकते हैं। एक, निजी क्षेत्र में मजबूत विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति रही है, जहां कोयंबटूर, मुंबई जैसे क्षेत्रों में कपास, रेशम, बागान जैसे उद्योगों में भी उद्यम स्तर की सौदेबाजी सौदेबाजी का प्रमुख स्तर बन गई है, जहां उद्योग-व्यापी सौदेबाजी ऐतिहासिक प्रथा रही है। दूसरा, सार्वजनिक क्षेत्र में सामूहिक सौदेबाजी का स्वरूप बदल गया है: सरकार दीर्घकालीन निपटान (दस वर्ष) को प्राथमिकता देती है, इसने वेतन को श्रमिकों और सार्वजनिक उद्यम दोनों के प्रदर्शन के साथ जोड़ने की मांग की है, इसने सामूहिक समझौतों आदि से उत्पन्न होने वाले व्यय के लिए बजटीय समर्थन वापस ले लिया है। तीसरा, हाल के वर्षों में बढ़ी हुई प्रतिस्पर्धा के कारण सामूहिक सौदेबाजी में प्रमुख प्रबंधकीय उद्देश्य

श्रम लागत को कम करना, उत्पादन या उत्पादकता में वृद्धि, कार्य संगठन में लचीलापन की वृद्धि करना है। काम के समय में, वीआरएस के माध्यम से नियमित कर्मचारियों की संख्या में कमी करना, गुणवत्ता पर जोर देना आदि शामिल है। चार कई समझौते अब नई कार्य माप प्रणाली शुरू करने, कार्य प्रथाओं में बदलाव, उत्पादन प्रोत्साहन देने, फ्लेक्सी काम करने आदि की बात करते हैं। ऐसे कई उदाहरण हैं जहां ट्रेड यूनियनों ने कंपनी की वित्तीय स्थिति को समझा है और विभिन्न तरीकों से अपने सहयोग की पेशकश की है। पांच, ट्रेड यूनियनों ने ठेका श्रमिकों जैसे कार्यबल के हाशिए के वर्गों को संगठित करने और रोजगार सुरक्षा, नियमित सामूहिक अनुबंध आदि जैसे महत्वपूर्ण लाभों पर बातचीत करने में सक्षम हैं।

श्रम-प्रबंधन संघर्षों में वृद्धि

आर्थिक सुधारों से अपेक्षा की गई थी कि पूंजी के पक्ष में सापेक्ष सौदेबाजी की शक्ति में बदलाव के कारण औद्योगिक संघर्षों को कम किया जाए, जिसके पास रोजगार के लिए कई हथियार हैं और इस प्रकार अंतिम उपाय के रूप में औद्योगिक संघर्षों का उपयोग कर सकते हैं। हालांकि, नियोक्ताओं और सरकार के उपायों, नीतियों और रणनीतियों से उत्पन्न तनाव के परिणामस्वरूप श्रम प्रबंधन संघर्षों की घटनाओं में वृद्धि हुई है। जबकि काम के रुकने की संख्या में कमी आई है, 1990 के दशक के बाद से काम के रुकने के कारण श्रमिकों की भागीदारी और काम की मात्रा में कमी आई है।

श्रमिकों के विरोध की दो विशेषताओं का यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है। एक, हड़तालों में कार्यकर्ताओं की लामबंदी सुधार के बाद की अवधि के दौरान प्रभावशाली रूप से बढ़ी है। अखिल भारतीय हड़तालों, सार्वजनिक क्षेत्र में काम रुकने की घटनाओं में वृद्धि, बड़े प्रतिष्ठानों द्वारा तालाबंदी और 'आंदोलनकारी जुड़ाव' की लगातार घटनाएं जो सुधारों और पुनर्गठन प्रक्रियाओं से उत्पन्न मुद्दे हैं काम के ठहराव में श्रमिकों की लामबंदी में वृद्धि की व्याख्या करने वाले कारणों की व्याख्या कर सकते हैं।

निष्कर्ष

वैश्वीकरण और नई आर्थिक ताकतों ने श्रम बाजार और औद्योगिक संबंध प्रणाली में महत्वपूर्ण बदलाव किए हैं। औद्योगिक संबंध प्रणाली ने उन्हें अलग-अलग तरीकों से प्रतिक्रिया दी है। श्रम और पूंजी की एजेंसियों ने अपने-अपने हितों के पक्ष में ठोस कार्रवाई के लिए राज्य की ओर देखा और व्यापक श्रम सुधारों को शुरू करने के लिए उस पर दबाव डाला। राज्य ने उन तरीकों से जवाब दिया जो अपने प्रमुख राजनीतिक हितों की रक्षा करेंगे और ऐसी रणनीतियों को अपनाया जो रोजगार सुरक्षा जैसे श्रम के मौलिक हितों को नुकसान पहुंचाए बिना शांत करने की मांग करते थे। हालांकि, सरकार ने निवेश को आकर्षित करने के अपने आर्थिक लक्ष्य की दृष्टि नहीं खोई और पूंजीपतियों के हितों के अनुकूल श्रम संबंधों में हस्तक्षेप या हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। इसने अपना ध्यान अब तक असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों की भीड़ की उपेक्षाओं की ओर भी पुनर्निर्देशित किया। इस प्रकार, राज्य की भूमिका 'जटिल' है और इसे पूंजी या श्रम के पक्ष में अच्छी तरह से फिट नहीं किया जा सकता है। हालांकि, अनुकूल वातावरण ने नियोक्ताओं को लचीलेपन को प्राप्त करने और संघ शक्ति को कमजोर करने के लिए 'हार्ड' और 'सॉफ्ट' दोनों तरीकों को विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया। अधिकांश ट्रेड यूनियनों ने कुछ अवसरों पर एक साथ बंधी और नीति क्षेत्र में एकजुट लड़ाई लड़ी और राष्ट्रीय स्तर पर परिवर्तनों का विरोध किया। सूक्ष्म स्तर पर, उन्होंने बाजार के तर्क का जवाब दिया और श्रम लचीलेपन, वेतन पुनर्गठन, काम के बोझ आदि के मुद्दों पर परामर्श करने पर नियोक्ताओं को सहयोग दिया और परामर्श न किए जाने पर कठिन लड़ाई लड़ी और उन्हें दरकिनार करने की मांग की। उन्होंने अनौपचारिक क्षेत्र में अब तक उपेक्षित श्रमिकों पर और अधिक समावेशी संघ आंदोलन बनाने के लिए अधिक ध्यान देना शुरू कर दिया। ऐसा लगता है कि अलग-अलग हितों के बीच संघर्ष भारत में गतिशील ताकतों के एक अजीबोगरीब समूह के रूप में सामने आया हैं जबकि औद्योगिक संबंध प्रणाली और श्रम बाजार का औपचारिक या कानूनी ढांचा वस्तुतः समान रहा है, कुछ महत्वपूर्ण बदलाव भी हुए हैं, जो ढांचे के मापदंडों को फिर से परिभाषित करना चाहते हैं।

विनियमन युग में राज्य का एक निश्चित एजेंडा था, यानी औद्योगिक संबंध प्रणाली में नियम बनाने की प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने के लिए अपने सभी संस्थानों और तंत्रों का उपयोग करना। इसका हस्तक्षेप अक्सर श्रम के पक्ष में काम करता था जहाँ तक आर्थिक बाधाएँ अनुमति देती थीं। बाजार की मांग है कि राज्य की नीतियों को फर्मों की प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ाने और पूंजी को आकर्षित करने और बनाए रखने में सहायता करनी चाहिए। हालांकि यह निश्चित है कि नीतियों को बदलने की जरूरत है, यह कैसे और किस दिशा में बदलेगा यह राजनीतिक अर्थव्यवस्था के विचारों पर निर्भर करता है।

संदर्भ

1. बर्धन, प्रणब (2019), सोशल जस्टिस इन द ग्लोबल इकोनॉमी, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, फरवरी 3-10: 467-80।
2. बर्धन, प्रणब (2019), द पॉलिटिकल इकोनॉमी ऑफ रिफॉर्म्स इन इंडिया, राकेश मोहन (सं.), फैसेट्स ऑफ द इंडियन इकोनॉमी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली में।
3. भट्टाचार्जी, देबाशीष (2021), द श्न्यू लेफ्ट, ग्लोबलाइजेशन एंड ट्रेड यूनियन्स इन वेस्ट बंगालरू व्हाट इज टू बी डन., इंडियन जर्नल ऑफ लेबर इकोनॉमिक्स, 44 (3): 447-57।
4. दावाला, सरथ (2018), एंटरप्राइज यूनियनिज्म इन इंडिया,

फ्रेडरिक एबर्ट स्टिफ्टंग (एफईएस), नई दिल्ली।

5. देशपांडे सुधा, स्टैंडिंग, गाइ एंड देशपांडे, ललित (2018), लेबर फ्लेक्सिबिलिटी इन ए थर्ड वर्ल्ड मेट्रोपोलिस, इंडियन सोसाइटी ऑफलेबर इकोनॉमिक्स एंड कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
6. देशपांडे, एल.के., शर्मा, अलख एन, करण, अनूप के और सरकार, संदीप (2018), लिबरलाइजेशन एंड लेबर, लेबर फ्लेक्सिबिलिटी इन इंडियन मैन्युफैक्चरिंग, इंस्टीट्यूट फॉर ह्यूमन डेवलपमेंट, नई दिल्ली।
7. गोल्डार, विश्वनाथ (2019), भारत में विनिर्माण में रोजगार सृजन पर व्यापार का प्रभाव, आर्थिक विकास संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय, http://www-iegindia-org/ workpap/ wp297-pdf,12 नवंबर 2019 को एक्सेस किया गया।
8. जॉन, जे. (2018), ओवरऑल इंक्रीज एंड सेक्टोरल सेट्सबैक्सरू लेसन्स फ्रॉम ट्रेड यूनियन वेरिफिकेशन 2002 डेटा (अनंतिम), लेबर फाइल, जनवरी–अप्रैल: 13–25।
9. कृष्णा मूर्ति, आर. (2017), नेगोशिएटिंग वेज सेटलमेंट एक्सपीरियंस ऑफ इनोवेटिव मैनेजमेंट, इंडियन इंडस्ट्रियल रिलेशंस इंस्टीट्यूट, मुंबई।
10. पेज, कारमेन एंड रॉय, तीर्थंकर (2016), रेगुलेशन, इंफोर्समेंट एंड एडजुडिकेशन इन इंडियन लेबर मार्केट्स, हिस्टोरिकल पर्सपेक्टिव, रिसेंट चेंजेस एंड वे फॉरवर्ड, पेपर प्रेजेंटेड ऑन लेबर एंड एम्प्लॉयमेंट इश्यूज इन इंडिया, अगस्त 2006, नई दिल्ली, आयोजित मानव विकास संस्थान और विश्व बैंक द्वारा।
11. रामास्वामी, ई.ए. (2018), वर्कर कॉन्शियसनेस एंड ट्रेड यूनियन रिस्पांस, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
12. सैनी, देबी एस. (2017), होंडा मोटरसाइकिल एंड स्कूटर्स इंडिया लिमिटेड, विजन, 9(4)रू71- 82.
13. श्रौति, अरविंद और नंदकुमार (2017), नई आर्थिक नीति, बदलते प्रबंधन रणनीतियाँ श्रमिकों और ट्रेड यूनियनों पर प्रभाव, फ्रेडरिक एबर्ट स्टिफ्टंग (एफईएस), नई दिल्ली।
14. श्याम सुंदर, के.आर. (2018 ए), विकास, निवेश और रोजगार पर श्रम विनियमन का प्रभाव: महाराष्ट्र का एक अध्ययन, औद्योगिक विकास के लिए अध्ययन संस्थान (आईएसआईडी), यूरोपीय संघ (ईयू), श्रम अध्ययन के लिए अंतर्राष्ट्रीय संस्थान (आईआईएलएस), और बुकवेल, नई दिल्ली।
15. श्याम सुंदर के.आर. (2018 इ) ट्रेड यूनियन्स इन इंडिया: फ्रॉम पॉलिटिक्स ऑफ फ्रैगमेंटेशन टू पॉलिटिक्स ऑफ एक्सपेंशन एंड इंटीग्रेशन? बेन्सन, जॉन और झू, वाई. (संस्करण), ट्रेड यूनियन इन एशिया, रूटलेज में।
16. श्याम सुंदर, के.आर. (2019 ए), महाराष्ट्र में औद्योगिक संबंधों की वर्तमान स्थिति और विकास, आईएलओ–एशिया–प्रशांत वर्किंग पेपर सीरीज, दक्षिण एशिया के लिए उपक्षेत्रीय कार्यालय, नई दिल्ली।
17. श्याम सुंदर, के.आर. (2019 बी), भारत में रोजगार संबंध: रुझान और चुनौतियां, भारत श्रम और रोजगार रिपोर्ट की तैयारी पर एक कार्यशाला में प्रस्तुत पेपर, 28–29 जुलाई, 2019, मानव विकास संस्थान, नई दिल्ली।
18. श्याम सुंदर, के.आर. (2019 सी), लेबर इंस्टीट्यूशंस एंड लेबर रिफॉर्म्स इन कंटेम्परेरी इंडियारू ट्रेड यूनियन्स एंड इंडस्ट्रियल कॉन्फ्लिक्ट, वॉल्यूम। आई, इक्फई यूनिवर्सिटी प्रेस, हैदराबाद

समाज सुधारक के रूप में कबीर

दर्शना
शोधार्थी
योग्यता:- एम०ए०,(हिन्दी) जे०आर०एफ०

शोध आलेख सार: - हिन्दी सन्त साहित्य में अनेक सन्त कवि हुए हैं, उन्हीं सिद्ध कविरत्नों में तरासे गये महान् रत्न सन्त कबीरदास जी हुए है हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल के इकलौते ऐसे कवि हुए है जो आजीवन समाज और लोगों के मध्य व्याप्त आंडबरों पर कुठराघात करते रहे। उन्होनें एक सत्य के माध्यम से समाज का मार्गदर्शक बनकर एक सच्ची मानवता पर बल दिया जिससे समाज में व्याप्त निंदा, अहंकार, जातिगत भेद-भाव, धार्मिक पाखण्ड, छल कपट जैसी अनेक कुरीतियों को छोड़कर एक सच्चा मानव बना जा सकता है। कबीर दास जी समाज में शान्ति स्थापित करना चाहते थे इसलिए उन्होंने अपने जीवन में सत्य, अहिंसा, सदाचार, परोपकार जैसे नियमों को अपनाया तथा शान्तिमय जीवन जीने का सन्देश दिया।

इनका आविर्भाव ऐसे काल, समाज और वातावरण में हुआ था जिसमें चारों तरफ भेदभाव, अन्धविश्वास, वर्ण व्यवस्था, घृणा और वैर भावना जैसी कुरीतियों ने अपने पैर जमा रखे थे चारो और पाखण्ड का राज था तथा अपने-अपने धर्म को श्रेष्ठ सिद्ध करने वालों ने गरीब जनता को पथ-भ्रष्ट कर रखा था और धर्म के ठेकेदार अपना उल्लू सीधा करने में मसगूल थे जिन सिद्धान्तों तथा नियमों की रचना धर्म और समाज की रक्षा के लिए की गई थी, वहीं नियम और सिद्धान्त समाज और निम्न वर्ग के लिए विनाश के कारण बनते जा रहे थे। ऐसे में कबीरदास जी ने समाज व जनता के दु:ख-दर्द को अनुभव किया और अपने क्रान्तिकारी विचारों से उनके दु:खों के निवारण के लिए सन्देश दिये।

मुख्य शब्द: अन्धविश्वास, क्रांतिकारी कुरीतियाँ, साम्प्रदायिकता, निरर्थक, भक्षण, साम्राज्य, कर्मकाण्ड, ऐकेश्वरवाद

परिचय - हिन्दी साहित्य के सन्त परम्परा के सन्त और समाज सुधारक कवि कबीरदास का जन्म काशी के लहरतारा तालाब के पास विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से माना जाता है और ऐसा भी माना जाता है कि जगत गुरू रामानन्द जी के आशीर्वाद से इनका जन्म विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ जो कि लोक-लाज के डर से कबीर शिशु को तालाब के निकट फेंक आई, वहाँ से नीरू और नीमा जुलाहा दम्पति ने भगवान का आशीर्वाद समझकर उसे उठा लिया और उसका पालन-पोषण किया। एक बार कबीर गंगाघाट की सीढ़ियों पर लेटे हुए थे तभी रामानन्द वहाँ गंगा स्नान करने आये, उनका पैर कबीर के शरीर पर रखा गया तथा मुख से राम-राम शब्द निकला उसी राम को कबीर ने दीक्षा-मंत्र मान लिया और रामानन्द जी को अपना दीक्षा - गुरू स्वीकार लिया। कबीरदास सन्त होते हुए भी गृहस्थ आश्रम से जुड़े हुए थे। कबीरदास अधिक शिक्षित नहीं थे लेकिन उनका व्यक्तित्व सम्पूर्ण समाज को प्रभावित करता रहा है।

विश्लेषण

सन्त कबीरदास एक सच्चे समाज सुधारक तथा जनता के हितेषी थे तथा इनसे जनता का दु:ख-दर्द सहन नहीं हो सकता था। कबीर शास्त्रज्ञान से रहित, अशिक्षित परन्तु संस्कार सहित और समाज के हर वर्ग से वाकिफ थे। कबीर दास का आविर्भाव ऐसे समय में हुआ जब मध्यकालीन समाज की व्यवस्था पूर्ण रूप से डगमगा रही थी तत्कालीन मुस्लिम शासक हिन्दू जनता पर अत्याचार कर रहे थे जिससे हिन्दू समाज निराश और हताश होकर भगवान की शरण में जाने लगा जिससे समाज में अनेक कुरीतियाँ व्याप्त हो गई। जिसको कबीरदास ने बहुत करीब रो अनुभव किया।

दुखिया दास कबीर है जागे और रोवे।
सुखिया सब संसार है खावे और सोवे।।[1]

कबीर के समय में मुस्लिम शासकों का प्राधान्य था, मुस्लिम शासको ने हिन्दू समाज का हर प्रकार से शोषण किया मन्दिर तोड़े गये हिन्दुओं से बलपूर्वक धर्म परिवर्तन करवाया जाता था और इनके शिक्षण संस्थानों को तोड़ा गया जिससे हिन्दु जनता बहुत ही निराशाजनक स्थिति में पहुंच गई। तत्कालीन समाज में महिलाओं की स्थिति ओर भी अधिक दयनीय थी महिलाओं का क्रय-विक्रय होने लगा था जिससे हिन्दू समाज में बाल-विवाह, पर्दा प्रथा जैसी कुरीतियाँ सामने आई इन सभी समस्याओं को कबीरदास ने बहुत नजदीक से देखा तथा अनुभव किया इन्होंने अपनी लेखनी के द्वारा इन सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया और जन्मजात श्रेष्ठता को अस्वीकार करके कर्मगत श्रेष्ठता पर बल दिया है।

कलि का ब्राह्मण मसखरा, ताहि न दिजै दान।
स्यौ कुंठक न कहि चले साथ चला जजमान
ब्राह्मण बूडा बापुणा, जनेऊ कै जोरि।
लख चौरासी मां गेलई, पार ब्रहमा सौ तोड़ि।।[2]

सन्त कबीर दास जी का काल बहुत ही हिंसक और विधर्मी शासकों का काल था, जिनके लिए निर्दोष जनता का खून बहाना कर लगाना, शोषण करना आम बात थी जिससे वे स्वयं ऐयाशी भरा जीवन जी सके । हिन्दू जनता पर मुगलों का प्रकोप था जिससे विभिन्न प्रकार

से शोषण का शिकार जनता कुंठा भरा जीवन व्यतीत करने को मजबूर थी। सन्त कबीर दास जी ने ऐसे शासकों का विरोध किया और अपनी वाणी के द्वारा समाज मे समानता स्थापित करने का सन्देश दिया ।

ईश्वर भक्ति

हिन्दी साहित्य में प्रसिद्ध सन्त, भक्त और समाज सुधारक कवि कबीरदास जी निर्गुण सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखते थे। इनके पूज्य राम राजा दशरथ पुत्र राम नहीं थे बल्कि इनके राम निराकारी थे, जिनका कोई रंग, रूप, आकार नहीं होता अर्थात कबीर दास जी की भक्ति निर्गुण निराकार परमात्मा के चरणों में अर्पित थी। कबीरदास जी के अनुसार ईश्वर को कोई नाम देना आवश्यक नहीं होता बल्कि परमात्मा को अनुभव किया जा सकता है। मन्दिर, मस्जिद, मूर्ति-पूजा, रोजा, तिलक, माला, तीर्थ आदि को इन्होंने निरर्थक बताया है। मध्यकालीन भारत में मुस्लिम शासकों के चंगुल में फंसी हिन्दू जनता भगवान को ही एक मात्र सहारा मान कर मूर्ति-पूजा, जादू-टोना, व्रत, तीर्थ आदि को अपनाने लगी जिससे समाज में इस प्रकार की कुरीतियों का आविर्भाव हुआ। समाज में बहुत सी प्राकृतिक आपदाएं एवं महामारियाँ और बीमारियों को भी देवी- देवता का प्रकोप माना जाने लगा तथा इनका उपचार भी देवी-देवता को मनाकर पूजा-पाठ के द्वारा किया जाता था। इस प्रकार मध्यकालीन सामाजिक स्थिति लगभग डगमगा गई थी। इस प्रकार की स्थिति से निपटने के लिए कबीरदास जी ने ऐकेश्वरवाद पर बल दिया। इन्होंने बताया कि सम्पूर्ण जनता एक ही परमात्मा की देन है ईश्वर हमारे अन्दर ही समाहित है हमें उसे अनुभव करना है बाहर ईधर-उधर ढूंढने से परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती, जिस प्रकार एक मृग कस्तूरी की खुशबू से उसे जंगलों में ढूंढता फिरता है उसी प्रकार हम मनुष्य परमात्मा को मन्दिर, तीर्थ आदि स्थान पर खोजते फिरते हैं।

कस्तूरी कुण्डली बसे, मृग ढूंढे बन मांहि।
एसै घटि-घटि राम है, दुनियां देखे माहि।।[3]

प्रेम का प्रचार तथा अहंकार का त्याग -

मध्यकालीन समाज में धार्मिक विद्वेष एवं जातिगत भेदभाव के कारण हिंसा, घृणा एवं वैमनस्य का साम्राज्य था। निम्न वर्गीय समाज अर्थात शूद्रों के साथ पशुवत व्यवहार किया जाता था जिसका अनुभव सन्त कबीरदास जी ने स्वयं किया है। धर्म के ठेकेदारों ने शास्त्रों की दुहाई देकर मनुष्यों के बीच गहरी खाई पैदा कर दी थी जिससे निम्न वर्ग व सामान्य जनता में आपसी वैर - भावना पैदा हो गई। सन्त कबीरदास जी ने प्रेम के माध्यम से इस द्वेष व कलेश को मिटाकर बन्धुत्व भावना व समानता का प्रचार करने का प्रयास किया इन्होंने शास्त्रज्ञान वाले पंडितों पर कटाक्ष करते हुए कहा कि यदि मानव के प्रति प्रेम, दयाभाव नहीं है तो कितना भी शास्त्रज्ञान क्यों न हो निरर्थक है।

पोथी पढि-पढि जग मुआ, पंडित भया न कोय
एकै अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।[4]

सन्त कबीरदास जी ने मध्यकालीन समाज के टुकडों में बिखरने का एक अन्य कारण अहंकार को माना है, कोई राजमद से ग्रस्त है, किसी को धनमद है, किसी को अपने पाण्डित्य का अभिमान है कोई अपने रूप और यौवन के अंहकार से आत्म विस्मृत है इस प्रकार अहंकार से ग्रस्त व्यक्ति ही समाज को खोखला करता है कबीर दास जी ने अहंकार को अन्तकरण की दुर्बलता का प्रतीक बताया है तथा इसकी व्याप्ति को अत्यन्त सूक्ष्म बताया है।

मन रे तन कागद का पुतला
लागै बूंद बिसि जाइदिन में गरब कर क्यों इतना।।[5]

कबीरदास जी कहते है कि जीवन की सार्थकता मानव से प्रेम करने में है यदि मनुष्य, मानव से प्रेम नही कर सकता तो वह ईश्वर से कैसे कर सकता है। मनुष्य से प्रेम करने का आशय है ईश्वर से प्रेम। लेकिन यह प्रेम सरलता से सुलभ नहीं होता इसके लिए समस्त कामनाओं का परित्याग करके अहंम भाव का उत्सर्ग करना पड़ता हैं।

वर्ण व्यवस्था व जाति प्रथा का विरोध

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में वर्ण व्यवस्था व जाति प्रथा प्राचीन काल से ही ऋषि मुनियों की देन रही है। मध्यकालीन समाज में हमारी सामाजिक व्यवस्था चार वर्णो में विभाजित हो चुकी थी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। वस्तुतः सामाजिक व्यवस्था को क्रियाशील रखने के लिए चारों वर्णो का सहयोग आवश्यक है विभिन्न वर्णों का कर्त्तव्यों या वर्ण धर्म का भी उल्लेख किया गया है। ब्राह्मण को चारों वर्णों में सर्वश्रेष्ठ और उच्च कुल का माना गया है तथा ब्राह्मणों का दायित्व ज्ञान वितरण, शास्त्र ज्ञान, त्याग तपस्या, समाज संचालन आदि माना जाता रहा है क्षत्रिय को समाज व देश के संरक्षक का प्रतीक माना गया और वैश्य का कार्य दान, वाणिज्य, व्यापार आदि निर्धारित किया गया शूद्रों को समाज रूपी पुरूष के चरणों का प्रतीक मानकर शेष तीनों वर्णों की सेवा का दायित्व सौंपा गया था। इस प्रकार चारों वर्णों को गुण कर्म के आधार पर दायित्व दिया गया तथा इनमें किसी को श्रेष्ठ या हीन नहीं माना गया था। परन्तु कालान्तर में अनेक विकृतियाँ आ गई और वर्णों का आधार कर्म न रहकर जन्म हो गया। वंश परम्परा के आधार पर वर्ण व्यवस्था होने के कारण समाज में संकीर्णता तथा श्रेष्ठता और नीवता की भावना पनपने लगी। डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के शब्दों में

'कबीर दास का पण्डित बहुत अदना सा आदमी है, स्वर्ग और नरक के सिवा कुछ जानता नहीं, जात-पात और छुआ-छूत का अंध उपासक है, तीर्थ स्थान और व्रत उपवास का ठूंठ समर्थक है-तत्वाज्ञानहीन, आत्मविचार विवर्जित विवेक-बुद्धिहीन अद्द गंवार।'[6]

इस प्रकार इस काल में चार वर्ण विभिन्न जातियों में विभाजित होने लगे जिससे हिन्दू समाज अपनी वास्तविक स्थिति खो बैठा। जाति -प्रथा के कारण समाज में सामाजिक अन्याय भी बढ़ा सर्वश्रेष्ठ जाति मानी जाने वाले ब्राह्मण के अपराधिक कार्य पर दण्ड में छुट दी गई

जबकि निम्न वर्ग अर्थात् शूद्र पर निरपराध होते हुए भी अत्याचार किये जाते थे परिणामस्वरूप समाज में वैमनस्य और घृणा का परिवेश पैदा हो गया। सन्त कबीर दास जी ने सभी वर्ण और जातियों को एक ही परमात्मा की सन्तान माना है तथा सभी की उत्पति भी एक ही स्थान से मानी है।

एक बूंद एकै मल मूतर, एक चाम एक गूदा।
एक जाति से सब उतपना को बाह्मन को सूदा।[7]

साम्प्रदायिकता का खण्डन -

सामप्रदायिकता का अर्थ है धर्म के नाम पर अपने समुदाय को श्रेष्ठ मानना तथा दूसरों को निम्न मानना। प्राचीन काल से ही हमारा समाज विभिन्न समुदाय में विभाजित होता आ रहा है। सन्त कबीर दास जी के काल में हिन्दू तथा मुस्लिम मुख्य सम्प्रदाय थे जो एक दूसरे के कट्टर विरोधी थे। जातीय आधार पर हरिजन दहन, हिन्दू - मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि के बीच साम्प्रदायिक विवाद का भीषण रूप इतना विकृत हो गया था कि उसका प्रभाव आज भी समाज में देखने को मिलता है। इसमें देश की जनतान्त्रिक व्यवस्था, एकता और राष्ट्र की अखण्डता को खतरा पैदा हो गया। इन परिस्थितियों में कबीरदास जी के सन्देश अधिक प्रासंगिक बन गए है। इन्होंने अपनी साखी, शब्द और रमैणी के माध्यम से वर्णाश्रम एवं शास्त्रसम्मत तमाम ढकोसलों को अधर्म मानते हुए भक्ति का एक सर्वसम्मान मार्ग प्रस्तुत किया है। कबीर साहब के निर्गुण सम्प्रदाय के दरबार सभी वर्ण, जाति, धर्म, के मनुष्यों के लिए खुले थे अर्थात् कबीरदास जी ने सभी साम्प्रदायिक भेदभाव को मिटाकर समानता से रहने का सन्देश दिया।

हिन्दू कहे मोहि राम पियारा, तुर्क कहे रहिमाना।
आपस मे दोऊ लरिमूये, मर्म न कहू जाना।।[8]

धार्मिक पाखण्ड का विरोध -

धर्म के के नाम पर मूर्ति - पूजा, नाम जप, माला, तिलक, व्रत, रोजा - नमाज, हज तीर्थयात्रा, रमजान, मन्दिर-मस्जिद आदि की बंदिश से मुक्त हृदय से राम रहिम की उपासना के माध्यम से कबीरदार जी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता का ही नहीं, वरन् मानव मात्र की एकता और समानता का सन्देश दिया है। उन्होंने ईश्वर को मन्दिर-मस्जिद की कैद से मुक्त करके बाहरी कर्मकाण्डों से मुक्त कर जीवन के खुले क्षेत्र में ले आए। उनकी इस विचारधारा से निम्न वर्ग में उत्साह और आत्मगौरव की भावना का संचार हुआ। कबीर दास जी ने मूर्ति-पूजा का विरोध करते हुए लिखा है-

कबीर पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजूं पहार।
घर की चाकी क्यों नाहिं, पूजै पीसि खाय संसार।।[9]

इसी प्रकार तत्कालीन समाज में जादू-टोना, झाड़-फूंक जैसे अन्धविश्वास जैसी कुरीतियाँ अपनी जड़े जमाएं जा रही थी। विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक आपदाएं आने पर उसे देवी या देवता का प्रकोप मान लिया जाता था तथा बिमारियों का इलाज भी जादू-टोना या झाड़-फूंक के माध्यम से होने लगा समाज में निम्न वर्गीय जनता अज्ञान के कारण अपनी राभी रागरयाओं का कारण देवी-देवता का प्रकोप ही गानती थी। रान्त कबीरदार जी ने इन परिस्थितियों को अनुभव किया और अपनी लेखनी और शब्दों, पदों के द्वारा समाज को जागरूक करने की कोशिश की।

मुस्लिम समाज पर व्यंग्य करते हुए कबीर दास जी कहते है कि मुस्लिम समुदाय के लोग मस्जिद पर चढ़कर परमात्मा को जोर-जोर से पुकारते है ऐसा करने से परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि कबीर के अनुसार परमात्मा तो हमारी अन्तरात्मा में ही विद्यमान होता है।

कांकर पाथर जोरि के, मस्जिद लई बनाए।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय।।[10]

लोक कल्याण की भावना -

सन्त कबीरदास जी की साधना हमेशा लोक कल्याण और सामाजिक उत्थान के लिए होती है। उन्होनें अपने शुद्ध सरल और सात्विक जीवन से समाज को प्रभावित किया और समाज के सामने उच्च आदर्श स्थापित किया। समाज में फैली अनेक विकृतियाँ, आडंबर, धार्मिक कर्म-काण्ड आदि पर अपने शब्द रूपी बाणों से तीखे व्यंग्य किये और मानवता को प्रतिष्ठित करने के लिए प्रत्येक मनुष्य को सदाचार, सद्भाव और सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया जिससे एक स्वस्थ और शान्तिमय समाज की स्थापना हो सके। कबीर दास जी के अनुसार हमें स्वयं को मन, क्रम और वचन से सुन्दर बनना चाहिए न कि दूसरों में बुराई खोजें। समाज में सभी के साथ मिलजुल कर रहने और भाईचारे का सन्देश कबीर जी ने दिया है ।

साई के सब जीव है कीरी कुंजर दोय।[11]

जीव हिंसा का विरोध -

मध्यकालीन समाज अन्धविश्वास और अनेक सामाजिक कुरीतियों का काल था। इस समाज में देवी-देवता को प्रसन्न करने के लिए पशु बली जैसी हत्याएं होने लगी थी। हिन्दुओं में शाक्तों और मुस्लिम में धर्म के नाम पर कुर्बानी देने वालों को कबीरदास जी ने निर्भिकता से फटकार लगाई है इसी प्रकार रोजा, नमाज, व्रत आदि को निरर्थक बताते हुए हिंसा का विरोध और शान्त जीवन जीने का सन्देश दिया है।

दिनभर रोजा रहत है, रात हनत है गाय ।
यह तो खून वह बंदगी कैसी खुशी खुदा है।[12]

इस प्रकार तत्कालीन समाज घोर अन्धविश्वास का काल था लोग अज्ञानवंश धर्म के नाम पर भेड़-बकरी जैसे पशुओं की बली देना अपने कुल देवता को प्रसन्न करने के लिए करते थे।

बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात है, ताको कौन हवाल।।[13]

तीर्थाटन का विरोध

तीर्थ यात्रा हमारे देश में प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण माना जाता है मध्यकालीन भारत में धार्मिक पाखण्ड अपनी चरम सीमा पर था

इसमें तीर्थयात्रा भी एक प्रकार का धार्मिक पाखण्ड ही था लोगों का मानना था कि कितने भी पाप, हिंसा, जीव हत्या कर लो गंगा स्नान करने पर सभी पाप धूल जाते है। कुछ ऐसा मानते थे कि गंगा स्नान करने से हमारा शरीर पवित्र हो जाता है कुछ परमात्मा की प्राप्ति और मोक्ष प्राप्ति के लिए बार-बार तीर्थयात्राएं करते थे। कबीरदास जी शास्त्रज्ञान से रहित होते हुए भी समाज के प्रत्येक रीति-रिवाज को समाज कल्याण की दृष्टि से देखा है। इन्होंने तीर्थाटन को निरर्थक बताया है और कहा है कि गंगा स्नान करने से परमात्मा की प्राप्ति होती तो सबसे पहले मछली को प्राप्ति होती क्योंकि वह तो रहती ही गंगा में है। कबीर दास जी के अनुसार तीर्थयात्रा एक भ्रम जाल है इसमें लोग फंसे रहते है वास्तविक परमात्मा की प्राप्ति तो मानव सेवा और लोक कल्याण में है। तीर्थ स्नान से शारीरिक मैल तो धूल जाता है लेकिन मन का मैल अर्थात् कुविचार दूर नहीं हो सकते अहंकार तथा कुविचारों का त्याग करके ही परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है।

सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार समझना -

सज्जन महापुरूषों का जन्म लोक कल्याण के लिए होता है परमात्मा इस संसार से कष्टों का निवारण करने और संसार का उद्धार करने के लिए बार- बार कभी राम का रूप लेकर, तो कभी कृष्ण, कभी विष्णु तो कभी कबीर रूप में अवतार लेते रहे हैं । सन्त कबीरदास जी का जीवन भी मानव कल्याण के लिए ही समर्पित था। उन्होंने आजीवन संघर्ष करते हुए कर्तव्य का पालन करते रहे और सामाजिक कुरीतियों से त्रास्त मानव की रक्षा करते रहे उन्होंनें कहा भी है कि वृक्ष स्वयं फल भक्षण नहीं करते, नदियां जल का संचय स्वयं के लिए नहीं करती उसी प्रकार संतों का जीवन भी परोपकार के लिए ही होता है।

वृक्ष कबहूं नहि फल भखे, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने साधुन धरा शरीर।[14]

सन्त कबीर सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार की भांन्ति देखना चाहते थे उन्होनें संसार में एकता स्थापित करने के लिए दया, परोपकार, ज्ञान और विनम्रता का मार्ग अपनाया। उन्होनें कहा भी है हमारे पास दुनियाँ की सारी दौलत होने के बावजूद भी यदि दया और विनम्रता जैसा गुण नहीं है तो हमें कभी भी सम्मान प्राप्त नहीं हो सकता।

कबीर जी कहते है कि सम्पूर्ण संसार को एक परिवार तभी बनाया जा सकता है जब देश में साम्प्रदायिक तनाव को कम किया जाए। हिन्दू - मुस्लिम भेदभाव को मिटाया जाए और समाज में व्याप्त पूजा-पाठ, जप, तप, माला, छापा, तिलक, केश मुण्डन, व्रत-उपवास, रोजा - नमाज जैसी निरर्थक कुरीतियों को समाज से उन्मूलन किया जाए। कबीरदास जी समाज को संबोधित रूप में देखाना चाहते थे।

'कबीर दास ऐसे ही मिलन बिन्दू पर खडे थे, जहां एक और हिन्दुत्व निकल जाता था और दूसरी और अशिवा जहां एक और हिन्दुत्व निकल जाता है, दूसरी ओर मुस्लिमान, जहां एक और ज्ञान भक्ति मार्ग निकल जाता था दूसरी ओर योग मार्ग, जहां एक और निर्गुण भावना निकल जाती है, दूसरी और सगुण साधना । उसी प्रशस्त चौराहे पर वे खड़े थे। वे दोनों को देख सकते थे और परस्पर विरूद्ध दिशा में गए और मार्गो के गुण दोष स्पष्ट दिखाई दे जाते थे।[15]

निष्कर्ष -

मध्यकालीन समाज घोर अन्धविश्वास और सामाजिक कुरीतियों से ग्रस्त था। समाज में अनेक वर्ण, जाति सम्प्रदाय अपने-अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए एक दूसरे को निम्न दर्शाने के लिए होड़ लगी रहती थी। चारों और हिन्दू-मुस्लिम भेद-भाव में निम्न वर्ग पिसता जा रहा था। शासक लोग अपना उल्लू सिद्ध करने के लिए गरीब जनता का शोषण कर रहे थे धर्म के नाम पर मूर्ति - पूजा, जादू-टोना, व्रत-रोजा, नमाज, तीर्थयात्रा, माला-जाप आदि कर्मकाण्ड सामान्य हो गये थे। जाति-पाति छूआछूत इस काल की मुख्य समस्या बन गई थी। ब्राह्मणों का साम्राज्य था क्योंकि उन्हें सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त था। शूद्रों को निम्न माना जाता था, कबीरदास जी ने इसे बहुत करीब से अनुभव किया क्योंकि वे स्वयं जुलाहा जो निम्न समझी जाने वाली जाति से सम्बन्ध रखते थे। सन्त कबीर दास जी ने वर्ण व्यवस्था छूआछुत, ऊँच-नीच की भावना का निषेध करते हुए अपनी शब्द, साखी, और रमैणी के माध्यम से समानता का सन्देश दिया। जातिय आधार पर हिन्दू, मुस्लिम, सिख, इसाई, शोषित तथा शोषक वर्ग के प्रति आक्रोश व्यक्त किया। वर्णाश्रम एवं शास्त्र सम्मत तमाम ढकोसलों को अधर्म मानने वाले सन्तों में सन्त कबीर दास जी ने हिन्दू और मुस्लिम दोनों के लिए अपनी लेखनी के माध्यम से भक्ति का एक सर्वसम्मान निर्गुण निराकार उपासना का मार्ग प्रस्तुत किया, जिसके द्वार सभी वर्ण-समुदाय, दीन-हीन जनता के लिए बिना किसी भेदभाव के उन्मुक्त थे । इस प्रकार सन्त कवि कबीरदास जी ने कभी अपने क्रान्तिकारी विचारों द्वारा और कभी विनम्र और दयाभाव वाले संदेशों द्वारा समाज में व्याप्त कुरीतियों पर कुठराघात करते हुए समानता से रहने का सन्देश दिया।

संदर्भ -

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ0 259
2. श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, अंग-17, साखी-1, पृ0 28
3. श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, पृ0 - 112,
4. श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, पृ0 36,
5. वही पृ0 - 117
6. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, पृ0 132
7. कबीर ग्रन्थावली, श्याम सुन्दर दास, पद - 57, पृ0 82
8. बीजक, कबीरदास, पृ0 33
9. माताप्रसाद गुप्त, कबीर ग्रन्थावली, पृ0 65
10. कबीरदास, बीजक, पृ0 338
11. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 - 77
12. राम चन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, पृ0 96
13. वही
14. हरिऔध, कबीर वचनावली, पृ0 122
15. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ0 77-78

ISSN 2278 - 0327

भारतेन्दु के निबंधों की भाषिक संरचना (शब्दगत और वाक्यगत)

डॉ. वीणा गांधी
एसोसिएट प्रोफेसर
श्री अरविंद महाविद्यालय (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय

भाषा और भाषाभाषी समाज का संबंध अभिन्न और नित्य है। भाषा साहित्य, समाज और संस्कृति की रक्षक भी है और संवर्द्धक भी। कभी तो व्यक्ति और समाज भाषा का परिष्कार और संस्कार कर उसकी अभिव्यंजना शक्ति का संवर्द्धन करते हैं तो कभी भाषा व्यक्ति विशेष के द्वारा प्रस्तुत होकर नई भंगिमा,नई अभिव्यंजना शक्ति से संपृक्त हो उठती है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक ऐसे ही हस्ताक्षर हैं जिन्होंने हिन्दी को जातीय अस्मिता और परिवेश से जोड़कर उसकी दूरगामी यात्रा को सुनिश्चित किया।

आधुनिक चेतना के प्रतिनिधि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने प्रचुर मात्रा में गद्य साहित्य का निर्माण कर जन-जागरण का संदेश दिया। उनके द्वारा रचित प्रत्येक विधा- कविता, कहानी, नाटक, निबंध, आलोचना आदि से यह स्पष्ट हो जाता है।

भारतेन्दु का प्रभाव भाषा और साहित्य दोनों पर ही बहुत गहरा है। उन्होंने भाषा को परिमार्जित कर उसका जो स्वरूप निर्धारित किया उसने आने वाले साहित्यकारों का मार्ग प्रशस्त किया। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में 'भारतेन्दु ने साहित्यिक हिन्दी को संवारा, साहित्य के साथ हिन्दी के नए आंदोलन को जन्म दिया, हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय और जनवादी तत्वों को प्रतिष्ठित किया- उन्होंने हिन्दी के लिए संघर्ष किया, सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में उसका व्यवहार सुदृढ़ किया।'[1]

यह सर्वविदित है कि भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी की विभिन्न शैलियों में गद्य साहित्य लिखा जा चुका था। शासकीय और अदालती क्षेत्रों में भी खड़ी बोली का प्रवेश हो चुका था लेकिन खड़ी बोली हिन्दी का स्वरूप क्षेत्रीय बोलीगत विशेषताओं को लिए हुए था। इस संबंध में आचार्य रामचद्र शुक्ल की टिप्पणी विशेष महत्वपूर्ण है। वे लिखते हैं- 'जब भारतेन्दु अपनी मंजी हुई परिष्कृत भाषा सामने लाए तब हिन्दी बोलने वाली जनता को गद्य के लिए खड़ी बोली का प्राकृत साहित्यिक रूप मिल गया और भाषा के स्वरूप का प्रश्न न रह गया। प्रस्ताव काल समाप्त हुआ और भाषा का स्वरूप स्थिर हुआ।'[2]

भारतेन्दु की गद्य भाषा जीवंत, व्यवस्थित और सजीव है। यह जीवंतता और सहजता उनके निबंधों में परिलक्षित होती है। 'भारतेन्दु द्वारा स्थिर किए गए खड़ी बोली गद्य के स्वरूप निर्माण के तीन आधार थे-

1. प्रमुखत: हिन्दी के तद्भव और प्रचलित शब्दों का प्रयोग, 2. उर्दू के लोक प्रचलित शब्दों का प्रयोग, 3. आवश्यकता पड़ने पर संस्कृत के मूल शब्दों(तत्सम) शब्दों को ग्रहण करने की नीति।'[3] यह नीति भारतेन्दु युगीन सभी गद्य लेखकों की रही है। इस संबंध में हमें यह ध्यान रखना होगा कि उस समय हिन्दी का मानक स्वरूप स्थिर नहीं हुआ था, इसलिए हिन्दी के प्रयोग में व्याकरणिक अशुद्धियों से इंकार नहीं किया जा सकता।

भारतेन्दु ने इतिहास, पुरातत्व, धर्म, समाज-सुधार, कला, जीवनी, यात्रा-वृतांत, भाषा, साहित्य, राजनीति आदि अनेक विषयों पर निबंध लिखे हैं। यहां उनके निबंध साहित्य की भाषिक संरचना (शब्दगत और वाक्यगत) का संक्षिप्त विवेचन किया गया है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी के साहित्यिक प्रयोग में कृत्रिमता के विरोधी थे। उन्होंने अपने लेख में न केवल उर्दू-फारसी की जटिल शब्दावली का बहिष्कार किया बल्कि संस्कृत के क्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से बचने का भी प्रयास किया। उन्होंने जन-मानस में प्रचलित हिन्दी के सरल रूप में अपने विचार रखे। शब्द भंडार की दृष्टि से उनके निबंधों में 'स्वदेशी भाषाओं के शब्द 97.53 प्रतिशत हैं। शेष शब्द अन्य स्त्रोतों से आए हुए और विदेशी हैं। स्वदेशी शब्दों में 16.25 प्रतिशत तत्सम, 81 प्रतिशत तद्भव, अरबी-फारसी भाषाओं के शब्द 1.52 प्रतिशत हैं।'[4]

भारतेन्दु ने अपने ऐतिहासिक, पौराणिक, पुरातात्विक, आलोचनात्मक लेखों और निबंधों में स्थान-स्थान पर तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण हैं- शिलाखंड, आच्छादित, शिखर, देवालय, विद्या बुद्धि ,वाक्शक्ति, दैहिक, निज, तत्व, पार्थिव, आत्मिक नराधम, सृष्टि, प्रदत्त, संरक्षण, विलक्षण, अखंड, स्नेह, संस्कार, इन्द्रिय निग्रह , सहस्त्र, रुधिर, दत्तक, सूक्ष्म ,श्रुति, प्रचंड, मार्तंड, प्रस्तरमय, श्वास, मत्स्य, भीषण, सूक्ष्म, अन्वेषण, प्रवृत्ति, संतप्त, प्रचंड, मृगतृष्णा, द्रव्य, सेतु आदि। इनमें रुढ़ और यौगिक दोनों ही प्रकार के शब्दों का प्रयोग हुआ है। यात्रा वृतांतों, सामाजिक-सांस्कृतिक लेखों, व्यंग्य प्रधान रचनाओं आदि में तद्भव शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है।

'संस्था, अस्त्र-शस्त्र, संस्कार, जाति, व्यवसाय नाते-रिश्ते,खाद्य पदार्थ,पेयपदार्थ,अन्न, खाद्य सामग्री ,आभूषण, वाहन, मुद्रा, धातु, बैठने के उपकरण ,अवयव, काल, स्थान,वृक्ष, पुष्प और पक्षी संबंधी तद्भव हैं।'[5]

'खुशी' नामक निबंध में अरबी-फारसी के शब्दों की बहुतायत है या कहें कि यह निबंध उर्दू में लिखा गया है। उदाहरण के लिए 'खुशी खुद कोई चीज नहीं है बल्कि तकलीफ के उलटे अक्स का नाम खुशी और यह सबब है कि रंज और राहत लाजिम मलजूम है। बल्कि इसी से हमेशा यह एक मुअइअन कायदा है कि कोई काम बगैर तकलीफ के शुरु नहीं होता।'[6]

भारतेन्दु ने अपने निबंधों और लेखों में नागरी में अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए कुछ शब्दों को देखा जा सकता है- डेप्यूटेशन, सेल्फ गवर्नमेंट, कारेस्पांडिग, अनरेरी मेंबर, कंजरवेटिव, लिबरल,चेयरमैन, मजिस्ट्रेट, मेस्मेरिज्म, सेकंड क्लास, इंस्टिट्यूट, ऐड्रेस, पब्लिक ओपिनियन, इलेक्ट्रिक टेलीग्राफ, स्पीच आदि। इनमें से अधिकांश शब्द ऐसे हैं जो अंग्रेजी भाषा जानने वालों या अंग्रेजी में शिक्षित वर्ग द्वारा प्रयोग किए जाते हैं। आवश्कतानरूप भारतेन्दु ने अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हिन्दी शब्दों के साथ संयुक्त करके भी किया है। जैसे एडिटर जात, महा रेडिकल्स, लिबरल नव्य आत्मागण, हिन्दी ग्रामर आदि। इसी प्रकार कुछ अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुरूप अनुवाद कर नए शब्दों का सृजन किया है। जैसे- व्योमयान (बैलून), पेट्रन(परमाध्यक्ष)।

भारतेन्दु ने उपसर्ग और प्रत्ययों के संयोग से अनेक नवीन शब्दों की रचना की है। उदाहरण के लिए-विधर्तीगण, विष्णुपरत्व, महामानास्पद, मौनावलम्बन, रसिकमन्य,वीरमन्य, पथावरोधक, ज्योतिषारि, सर्वविलायत, सहायहीन, पद्धतिपने, सुभोजक आदि ऐसे ही शब्द हैं।

अनेक स्थानों पर भारतेन्दु ने शब्दों के उच्चरित रूप को लेखनबद्ध किया है, जैसे मर्यादा- मरजादा, यात्री-जात्री, ग्राहक-गांहक, उम्मीदवार-उम्मेदवार, सुनना-सुन्नै, खाई-खाईं, ज्यादा-जियादा, कायस्थ-कायथसे, अंग्रेजी-अंगरेजी, व्यापारी-व्यौपारी आदि। मानकता की दृष्टि से ऐसे प्रयोग अमानक हैं।

भारतेन्दु की भाषा में क्रियारूपों के प्रयोग में प्राय: दीर्घीकरण की प्रवृत्ति दिखाई देती है जैसे- करैं, घूमैं, लगैंगी, सुनैं, निबहैगी, करैंगे, कहैंगे, भेजैंगे, बढ़ावैं, करैं, क्यौंकि, निकलैं, सोचैं, मरैंगे, आदि। इसी प्रकार र्+व के संयुक्ताक्षरों में एक अतिरिक्त व् ध्वनि का प्रयोग किया है जैसे- सर्व्वदा, सर्व्वथा, सर्व्वनाश, सर्व्व, पूर्व्व आदि। सूर्य, धर्म आदि शब्दों में क्रमश: य् और म् ध्वनि के आगम से सूर्य्य, धर्म्म आदि शब्दों की संरचना हुई है। भारतेन्दु ने अनेक स्थानों पर ब्रज भाषा के क्रियारूप आवै, होवे, होय आदि का प्रयोग किया है। इन लेखों में अनेक स्थानों पर हिन्दी की बोलियों में प्रचलित प्रयोगों का सौंदर्य देखा जा सकता है- फिरती बार (लौटती बार), एक बेर दृष्टि आदि।

भारतेन्दु के निबंधों की वाक्यगत संरचना भी विशिष्टता लिए हुए है। चूंकि भारतेन्दु संस्कृत, उर्दू, हिन्दी, अंग्रेजी भाषाओं के विद्वान थे अत: वे निबंधों में आवश्कतानुसार इन भाषाओं के वाक्यों का प्रयोग करते थे। 'वैष्णवता और भारतवर्ष' निबंध में उन्होंने स्थान-स्थान पर वेदों, उपनिषदों की सूक्तियों और मंत्रों का उल्लेख किया है यथा- *'ध्येय:सदा सवितृ मंडल मध्यवर्ती नारायण: सरसि जासनसंनिविष्ट, तद्विष्णो: परमं पदम्-------इदं विष्णुर्विचक्रमे।'*[7]

भ्रूणहत्या नामक निबंध में तो उन्होंने संस्कृत के अनेक श्लोक देकर अपने विचारों की तार्किकता सिद्ध की है।[8] खुशी नामक निबंध में शब्द संरचना से लेकर वाक्य संरचना तक सभी उर्दू शैली के अनुरूप हैं।[9] इसी प्रकार उनके निबंधों में अंग्रेजी के वाक्यों का प्रयोग भी देखा जा सकता है। ऐसे वाक्य अंग्रेजी पढ़े-लिखे पात्रों के संदर्भ में या ऐसे ही प्रसंगों के संदर्भ में लिखे गए हैं, जैसे-I have no leisure ,Sir. Please stop a little, I am just coming, Sir they(are) complaining very much for water, He is a rich man. His fore-fathers were very rich bankers of my city आदि।

भारतेन्दु के यात्रा वृतांत संबंधी लेख वर्णनात्मक शैली में लिखे गए हैं। इन लेखों को पढ़ते हुए पाठक अपने आप को सहयात्री की भूमिका में पाता है। इनमें सरल एवं छोटे वाक्यों का प्रयोग है। यात्रा वर्णन में क्रियाएं वर्तमानकालिक कृदन्त और पूर्णकालिक कृदन्त रूप में हैं जिससे वर्णन में सजीवता, सहजता और सरलता का गुण आ गया है। उदाहरण के लिए -'यहां श्री गंगाजी अपना नाम नदी सत्य करती हैं अर्थात् जल के वेग का शब्द बहुत होता है और शीतल वायु नदी के उन पवित्र छोटे-छोटे कनों को लेकर स्पर्श ही से पावन करता हुआ संचार करता है'।[10]

भारतेन्दु ने भावप्रवणता के क्षणों में अनेक स्थानों पर उद्देश्य + विधेय युक्त वाक्यों का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए 'मजा है तमाशा है खेल है धूम है, दिल्लगी है मसखरापन है, लुच्चापन है, हंसी है, मूर्खता है, खिलौने हैं, बालक हैं, पट्ठे हैं, नासमझ हैं, जड़ हैं मोहित हैं - सब परन्तु उसके समझ में और उसके लोगों के समझ में भेद है इसी से'।[11]

सामाजिक-सांस्कृतिक महत्व के लेखों में भारतेन्दु ने भावात्मक शैली के अनुरूप संयुक्त और मिश्र वाक्यों का प्रयोग किया है। यद्यपि ये वाक्य कई-कई पंक्तियों के हैं तथापि पाठक को अर्थ ग्रहण करने में कठिनाई नहीं होती। इसका कारण है कि इनको पढ़ते हुए पाठक भी भारतेन्दु के विचारों और भावनाओं की समभूमि पर स्थित हो जाता है। उदाहरण के लिए निम्न प्रसंग को देखा जा सकता है-'सर्व्व सामर्थ्यमान उस को सुन कर भी लोग सर्व्वदा उसको नहीं मानते पर

हां जब कुछ दु:ख पड़ता है तब स्मरण करते हैं जब लोगों का कुछ बनता है तो उस को धन्यवाद तो थोड़े लोग देते हैं पर जो कुछ काम बिगड़ता है तो गाली सभी देते हैं, पानी न बरसै तो, घर का कोई मर जाय तो, रोग फैले तो, हार जाय तो सब प्रकार से वह गाली सुनता है इसी से।' [12]

'ग्रीष्म ऋतु' और 'सूर्योदय' नामक लेख में तो एक से दो पृष्ठों तक के वाक्य देखे जा सकते हैं। 'खुशी' नामक निबंध की वाक्य संरचना अवश्य जटिल है।

भारतेन्दु के निबंधों की वाक्यगत संरचना के अध्ययन में संज्ञापदबंध और विशेषण पदबंधों की भाषिक संरचना का अध्ययन भी विशेष महत्वपूर्ण है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं- 'हे जोगा जिवलाल रामलालादि मिश्री समूह जीविका दायक! आप कामिनी-भंजक धुरीश विनाशक बारनिस चूर्णक हौ।' [13] एक अन्य उदाहरण है -'तुम्हारी हरित कपिश पिंगल लोहित कृष्ण शुभाद्रि नानावर्ण शोभित अतिशयरंजित भल्लुकमेदमार्जितकुन्तलावलि देख कर के हमको वासना हुई कि हम तुम्हारा स्तव करैं।'[14] ऐसे उदाहरणों में प्रयुक्त विशेषणों की श्रृंखला भाषाई सौंदर्य की आभा को द्विगुणित कर देती है। वास्तव में पदबंधों की संरचना की दृष्टि से भारतेन्दु की भाषा का अध्ययन विस्तृत अनुसंधान की मांग करता है।

शब्द सीमा की मर्यादा का निर्वहन करने के लिए प्रस्तुत लेख में भारतेन्दु के निबंधों और लेखों की व्यंग्यात्मक भाषा की संरचनात्मक विशेषताओं को संक्षिप्त रूप में लिया गया है।

'भारतेन्दु की व्यंग्य भाषा निरंतर प्रभावी संरचना के रूप में सामने आती है और एक सर्वथा विलक्षण संकल्प को प्रस्तावित करती है।' [15]

भारतेन्दु ने अपनी व्यंग्य भाषा को व्यंग्यार्थ शब्दों, पदबंधों और वाक्यों के चयन और विचलन द्वारा विलक्षणताप्रदान की है। प्रमाण के लिए भारतेन्दु की तत्सम शब्दावली का वैभव और सौंदर्य 'स्तोत्र पंचरत्न' संबंधी लेखों यथा 'अथमदिरास्तवराज', 'कंकर स्तोत्र', 'अंगरेज स्तोत्र', 'स्त्री सेवा पद्धति' में देखा जा सकता है। मदिरा के लिए 'बोतल बासिनी', 'कुलमर्यादासंहारकारिणी', 'हे मुख-कज्जलावलेपके', 'सर्व्वानन्द सारभूते', 'पूर्व्व पुरुष संचित विद्या धन राज संपर्कादि जन्य कठिन प्राप्य प्रतिष्ठा समूह सत्यानाशिनी' जैसे विशेषणों के चयन से व्यंग्यार्थ चमत्कृत हो उठा है। [16]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी भाषा की संरचनात्मक विशेषताओं के आधार पर नवीन अभिव्यक्तियों का निर्माण किया और हिन्दी की अभिव्यंजना शक्ति को नई ऊंचाई प्रदान की। उन्होंने संस्कृत, अरबी-फारसी, अंग्रेजी, क्षेत्रीय बोलियों और प्रादेशिक भाषाओं के शब्दों और भाषिक संरचनाओं का सार्थक प्रयोग कर 'नई चाल में ढली' हिन्दी का सृजन किया। यह हिन्दी परंपरागत सांस्कृतिक धरोहर के साथ भारतीय नवजागरण की राष्ट्रीय और जनवादी चेतना को सशक्त रूप से अभिव्यक्त करने में समर्थ और सक्षम हुई।

(लेख में उद्धृत शब्द,पदबंध, वाक्यांश और वाक्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रंथावली खण्ड 6 में संकलित विभिन्न निबंधों और लेखों से लिए गए हैं।)

संदर्भ सूची -

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएं, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली(1984), पृष्ठ 154-157
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी(30वां संस्करण), पृष्ठ 246
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र (संपादक), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली(दूसरा संस्करण), पृष्ठ 493
4. भारतेन्दु : साहित्य और भाषा दर्शन, डॉ. उषा माथुर, भारतेन्दु: पुनर्मूल्यांकन के परिदृश्य, कृष्ण कुमार शर्मा (संपादक), केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा(1987), पृष्ठ 319
5. वही, पृष्ठ 319
6. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रंथावली (खण्ड 6), ओम प्रकाश सिंह (संपादक), प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली(2008), पृष्ठ 107
7. वही, (खण्ड 5) पृष्ठ 279
8. वही, (खण्ड 6) पृष्ठ 93-99
9. वही, (खण्ड 6) पृष्ठ 105-116
10. वही, (खण्ड 6) पृष्ठ 5
11. वही, (खण्ड 6) पृष्ठ 162
12. वही, (खण्ड 6) पृष्ठ 142
13. वही, (खण्ड 6) पृष्ठ 156
14. वही, (खण्ड 6) पृष्ठ 158
15. भारतेन्दु की व्यंग्य- भाषा, डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी, भारतेन्दु : पुनर्मूल्यांकन के परिदृश्य, कृष्ण कुमार शर्मा(संपादक), केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा(1987), पृष्ठ 288
16. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रंथावली (खण्ड 6), ओम प्रकाश सिंह (संपादक), प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली(2008), पृष्ठ 153-154

'प्रतिज्ञा' उपन्यास में नारी जीवन का मर्मस्पर्शी चित्रण व सुधारवादी दृष्टिकोण

मोनिका
शोधार्थी
योग्यता: एम.ए. (हिन्दी), बी.एड., जे.आर.एफ (हिन्दी)

शोध आलेख सार -

विश्व साहित्य में प्रेमचंद एक अमर नाम है जिनके उपन्यासों और कहानियों ने हर आयुवर्ग के पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। उनके उपन्यासों में ग्रामीण और शहरी जीवन से जुड़ी हर समस्या का सजीव चित्रण मिलता है। प्रेमचंद का हर उपन्यास हमारे समाज में फैली कुरीतियों एवं जीवन की विषमताओं से जूझते आम आदमी की जिंदगी पर आधारित है। संभवत: इसी दृष्टिकोण के फलस्वरूप प्रेमचंद हर पाठक के चहेते रहे हैं। 'प्रतिज्ञा' उपन्यास को इन्होंने 'प्रेमा' नाम से संशोधित करके प्रकाशित करवाया जो उर्दू के 'हमखुर्मा व हमस्वाब' का हिंदी रूपांतरण है। प्रस्तुत उपन्यास में स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय समाज की कुप्रथाओं को दर्शाया गया है जिसमें विधवा विवाह, छुआछूत, अनमेल विवाह आदि परंपराओं को मुख्य रूप से उजागर किया गया है। उपन्यास का केंद्रीय पात्र विधुर अमृतराय है जो काशी के आर्य मंदिर में एक व्याख्यान सुनकर किसी विधवा से विवाह करने की प्रतिज्ञा करता है। उसके इस फैसले से उसकी प्रेमिका अथवा उसकी स्वर्गवासी पत्नी की बहन को अवश्य आघात पहुँचता है लेकिन वह भी उसकी इस अडिग प्रतिज्ञा का सम्मान करती है।

मुख्य शब्द:- तिरस्कृत, मर्मस्पर्शी, आचरण, सांत्वना, हिफाजत, त्यागमय, अभिषाप।

'मर्म' से अभिप्राय है - हमारे शरीर के अंदर का वह भाग या स्थान जहाँ आघात पहुँचने से अत्यधिक वेदना का अनुभव होता है और स्पर्शी से अभिप्राय है - छू लेने वाला। अत: उपन्यास के संदर्भ में 'मर्मस्पर्शी' से अभिप्राय है - ऐसा सजीव चित्रण जिसे पढ़कर हृदय पसीज जाए। सामान्य अर्थों में कहा जा सकता है कि किसी घटना के माध्यम से पाठक के हृदय को गहराई तक प्रभावित करने वाला अथवा छू लेने वाला ही मर्मस्पर्शी चित्रण कहलाता है। 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में प्रेमचंद ने स्त्री जीवन का ऐसा ही चित्रण प्रस्तुत किया है जिसे पढ़कर सहृदय अवश्य ही द्रवीभूत होता।

''प्रतिज्ञा' उपन्यास वैधव्य जीवन पर आधारित है, जिसमें अनमेल विवाह व छुआछूत जैसी अनरीति का वृतांत प्रस्तुत किया है। शारीरिक व मानसिक कष्ट सहती हुई जीवन-यापन करने वाली भारतीय नारी का सजीव चित्रण किया है। उपन्यासकार ने स्त्री के विधवा होने के पहले की सामान्य परिस्थितियों और खुशहाल जिंदगी का वर्णन करके तत्कालीन समय में होने वाली विधवा जीवन की विडंबनाओं को उजागर किया है। काशी के रहने वाले वसन्त कुमार और पूर्णा अपने वैवाहिक जीवन में खुशहाली से रहते थे। होली के दिन की सुहानी सुबह उनके लिए रोमांचकारी थी क्योंकि पूर्णा अपने पति द्वारा उपहार में दी गई साड़ी पहनकर अप्सरा सी लग रही थी और पति भी उसे इस कदर निहार रहे थे कि अपनी निगाहों में ही बसा लेना चाहते थे। ''आज तो जी चाहता है तुम्हें आँखों में ही बिठा लूं।''[1] लेकिन उनकी तकदीर की रेखा ने कुछ ऐसे करवट ली कि चंद कमल के फूलों को पाने की अतृप्त लालसा ने गंगा की हरों में ही वसन्तकुमार की सांसों को समा लिया। पूर्णा जो अपने विवाह के दो वर्ष पश्चात ही विधवा हो गई। उसके सौभाग्य का सूर्य इस प्रकार अस्त हुआ कि सिवाय अंधकार के इस संसार में अपना कोई नहीं था। पूर्णा के भाग्य से ही समाज में तिरस्कृत, अपमानित तथा पीड़ित विधवाओं की मजबूरियों का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है। वो बेबस स्त्री अभी अपने पति की मृत्यु से उभरी भी नहीं होती कि समाज के लोग उसे संदेह की नज़रों से देखते हैं। प्राचीन काल हो या वर्तमान समय विधवाओं की आबादी ना पहले कम थी ना अब कम है। वैवाहिक साथी की मृत्यु के उपरांत स्थिति काफी चिंताजनक होती है लेकिन विधुर पुरुषों की अपेक्षा विधवा महिलाओं के हालात इतने बदतर हो जाते है कि जीवन का गुजारा करना भी मुश्किल हो जाता है जब परिवार में एकमात्र व्यक्ति कमाने वाला हो। नायिका पूर्णा की दशा भी कुछ इसी प्रकार है। उसकी इसी दयनीय स्थिति पर रहम करके वसन्तकुमार के मित्र कमलाप्रसाद व उसके परिवार वाले अपने घर में आश्रय प्रदान करते है। इससे पहले जब भी उनके घर जाती प्रेमा की सखी बनकर लेकिन आज उसकी दशा बदल चुकी थी उसके सपने टूट कर बिखर गए थे। मेहमान बनकर जाने का संकोच उसकी नजरों में साफझलक रहा था क्योंकि यह स्वागत सम्मान का सूचक न होकर दया का सूचक था। पति की मृत्यु के बाद जिंदगी के हसीन पल कब दु:ख में बदलकर दया, करूणा व आश्रय के पात्र बन जाते है इसका अहसास हर कोई नहीं कर सकता। विधवा जिंदगी स्त्री के लिए अभिशाप बन जाती है जब वह अपने तरीके से न जीकर समाज के नकारात्मक दृष्टिकोण की वजह से कठिनाई और अभाव में रहकर जीवन जीने को मजबूर होती है। उसे न केलव सौभाग्य के सब प्रतीकों का त्याग करना पड़ता है बल्कि शरीर को अधिकाधिक विकृत और कुरूप बनाना पड़ता है। विद्रूप दिखने और शरीर को अत्यधिक कष्ट देने में ही उसके वैधव्य जीवन की सार्थकता मानी जाती है। फटे पुराने कपड़े पहनना, ज़मीन पर सोना, जिन्दा रहने भर के लिए रूखा सूखा भोजन करना, बाल मुंडवाना एक विधवा के लिए समाज

द्वारा अनिवार्य बना दिया जाता है। सफेद कपड़े पहनना तो जैसे एक विधवा की पहचान बन गई है। कमलाप्रसाद जब पूर्णा के लिए रंगीन रेशमी साड़ी लेकर आते है तो वह उसे अस्वीकार कर देती है क्योंकि यह समाज अब रंगीन वस्त्र पहनने की इजाजत नहीं देता। सफेद वस्त्रों में रहना ही अब उसके जीवन का सार है। ''देखा, यह साड़ी है पूर्णा, उस दिन तुमने इसे अस्वीकार कर दिया। आज मेरी खातिर इसे स्वीकार कर लों। तुम्हारी यह सफेद साड़ी देखकर मेरे हृदय में चोट सी लगती है। मैं ईमान से कहता हूँ, यह तुम्हारे वास्ते लाया था।''[2] आधुनिक समाज में भी हम यही देखते है कि विधवा के साथ अन्याय किया जाता है अपनो द्वारा ही उसे अपमानित किया जाता है। विवाहित हो या अविवाहित स्त्री को हमेशा पुरुष के साथ ही आवश्यकता महसूस करवाई जाती है और जब किसी कारणवश वह साथ उससे छूट जाए तो जिन परिस्थितियों का सामना स्त्रियों को करना पड़ता है वह बदतर होते है। समाज ने पुरुष की प्रधानता को बढ़ावा देते हुए ऐसे नियम बना दिए हैं मानो पुरुषों को अबला नारी पर अन्याय, अत्याचार, शोषण तथा रोब जमाने के लिए ही पैदा किया है। ''क्या यह आज की नई बात है? पुरुष ने सदैव स्त्री की रक्षा की है, फिर रोब क्यों न जमाये?''[3] किसी भी समय का समाज हो, वह अपनी संवेदनहीनता और पित्रसत्ता की आड़ में हमेशा महिलाओं का शोषण करता आया है। जिस समाज में पित्रसत्ता का अधिपत्य हो उसमें नारी-स्वाभिमान को हमेशा पैरों तले रौंदा गया है और हमेशा उसे अपने सभी रूपों में पुरुष के अधीन ही रहना पड़ा तथा उसी की निगरानी में वह सुरक्षित समझी गई है। यह तो सर्वमान्य है कि जिस समाज की सारी शक्तियाँ एक ही वर्ग के हाथों में केंद्रित हो तो उनमें हुकूमत करने की निरंकुशता का बढ़ना स्वाभाविक है। यही संसार के नियम है कि स्त्री को हमेशा पुरुष से बुद्धि, पौरूष और बल में कमजोर माना गया है। उपन्यास में पूर्णा जब सुमित्रा को कहती है ''यह तो संसार की प्रथा है बहन! मर्द स्त्री से बल में, बुद्धि में, पौरूष में अक्सर बढ़कर होता है, इसलिए उसकी हुकूमत है। जहाँ पुरुष के बदले स्त्री में यही गुण है वहां स्त्रियों की ही चलती है। मर्द कमाकर खिलाता है, क्या रोब जमाने से भी जाए।''[4] कहने को तो वर्तमान में स्त्री को पुरुषों के बराबर अधिकार दिए गए है लेकिन इसकी वास्तविकता आज भी यही है कि समाज का नकारात्मक रवैया उन्हें शंकाओं के कटघरे से बाहर नहीं आने देता। महिलाएँ किसी से कम नही, वे पुरुषों की तरह ही सब काम करती हैं वे जीवन जीने को स्वतंत्र है लेकिन जब बलात्कार व शोषण जैसी घटनाएं सामने उपस्थित होती है तो ये सब बातें बेमतलब सी लगती है। ''सोचो, अभी एक मिनट पहले तुम मुझसे कैसे बातें कर रहे थे? क्या तुम इतने निर्लज्ज हो कि मुझ पर बलात्कार करने के लिए भी तैयार हो? लेकिन तुम धोखे में हो।''[5] कथाकार ने प्रेमा जैसी स्त्री के माध्यम से प्रेम का बलिदान करने वाली स्त्री का हृदय-स्पर्शी चित्रण किया है। अमृतराय के विधवा से विवाह की बात सुनकर भले ही प्रेमा का हृदय काँप उठा परन्तु उसके इस फैसले से वह गर्व भी महसूस करती है। तीन साल से उसे प्रति मानकर मन मंदिर में स्थापित करने के बावजूद भी उसे फैसले का विरोध न करके उसका साथ देने की बात वास्तव में उसकी त्यागमय मूर्ति रूप प्रस्तुत होता है। ''नहीं अम्माँजी, आपके पैरों पड़ती हूँ, आप उनसे कुछ न कहिए, उन्होंने हमारी बहनों की ही खातिर तो यह प्रतिज्ञा की है। हमारे यहाँ कितने ऐसे पुरुष है जो इतनी वीरता दिखा सके? मैं इस शुभकार्य में बाधक न बनूँगी।''[6] प्रेमा जो जीवन भर अमृतराय के साथ उसके जीवन की हर विपत्ति और यातनाओं को सहने के लिए तैयार थी, इस अवहेलना को सहन न कर सकी। अमृतराय के प्रति उसका अटूट प्रेम और असीम भक्ति को वह निकालकर किसी ओर को समर्पित करने की न उसे खुशी थी न ही अपनी इच्छा पर अधिकार। लाला जी के फैसले से प्रेमा के माता-पिता ने उसका विवाह दाननाथ से करने का निर्णय लिया तब प्रेमा कहती है ''आपकी जो इच्छा वह कीजिये, मुझे सब स्वीकार है। वह कहने जा रही थी जब कुँए में ही गिरना है, तो जैसे पक्का वैसे कच्चा, उसमें कोई भेद नहीं। पर जैसे किसी ने उसे सचेत कर दिया। वह तुरन्त पत्र वहीं फेंककर अपने कमरे में लौट आयी और खिड़की के पास सामने खड़ी होकर फूट-फूटकर रोने लगी।''[7] प्रेमा जैसी न जाने कितनी स्त्रियां अपने परिवार की इच्छाओं के सामने अपनी इच्छाओं का गला घोटते हुए तथा अपनी प्रेममयी भावनाओं की आहुति देकर त्याग की मूर्ति बनकर रहती है। वहीं कमलाप्रसाद पत्नी से अपना मन हटाकर पूर्णा को अपने प्रेम जाल में फंसाना चाहता है। उसका तेजस्वी स्वरूप उस पर इस कदर हावी हो जाता है कि झूठ-सच बोलकर अपनी बातों में बहलाना चाहता है। उसे प्रेम को ईश्वर का स्वरूप, उसकी प्रेरणा बताकर उसे अपनी ओर आकर्षित करने की कोशिश करता है। ''पूर्णा नेकनामी और बदनामी सब ढकोसला है। प्रेम ईश्वर की प्रेरणा है उसको स्वीकार करना पाप नहीं, उसका अनादर करना पाप है।''[8] कमलाप्रसाद न सिर्फ पूर्णा को अपनी बातों में लेता है बल्कि दाननाथ जो कि अमृतराय का सबसे सच्चा मित्र था, उसको भी बहलाकर उनकी मित्रता में दरार डालता है। अमृतराय विधवा-आश्रम बनवाने के लिए व्याख्यान देकर लोगों को संबोधित करके चंदा एकत्रित करने की अपील करता है लेकिन कमलाप्रसाद व्याख्यान में भी बाधाएं डालने और कोलाहल मचाने के लिए अपने आदमी तैयार करता है ताकि अमृतराय को नीचा दिखा सके। ''अजी नहीं, जरा चलकर रंग तो देखे, एक हजार आदमी ऐसे तैयार कर रखे है, जो अमृतराय का व्याख्यान सुनने के बहाने जाँएगे, और इतना कोलाहल मचायेंगे कि लाला साहब स्पीच न दे सकेगें। टाँय-टाँय फिस्स हो के रह जायेगा। दो-तीन सौ आदमियों को सिखा रखा है कि एक-एक पैसा चंदा देकर चले आये जरा चलकर उन सबों की बातें तो सुनो।''[9] कमला के बहुत प्रयास करने पर भी वह अपने मकसद में कामयाब न होकर खुद को कोसता है। पूर्णा भी कितना ही चाहती कि कमलाप्रसाद की ओर से अपना मन हटा ले, पर यह शंका उसके मन में बैठ गई कि कहीं सच में उन्होंने आत्महत्या कर ली तो सारा दोष उसी पर होगा और वह मुँह दिखाने लायक नहीं रहेगी। यही स्त्री की सबसे बड़ी खामी है कि हर बात पर विश्वास करके भावनाओं पर नियंत्रण नहीं रख पाती। कमलाप्रसाद उसे आत्महत्या

करने की धमकी देकर अपने पास रोक लेता है। ''देखों, पूर्णा, अगर तुमने द्वार खोला तो पछताओगी। छाती में छुरी मार लूँगा। सच कहता हूँ, छाती में छुरी मार लूँगा।''[10] आधुनिक समाज में भी महिलाओं की यही स्थिति है, पुरुष उन्हें डराकर, धमकाकर या झूठा प्रेम दिखाकर अपनी बातों पर विश्वास दिला देते है। पुरुष कितनी भी घिनौनी हरकत करें समाज में उस पर आवाज नहीं उठती, लेकिन विधवा को अगर पुनर्विवाह की स्वीकृति भी मिलें तो न जाने कितनी नजरें शंकाओं से भरी उठेंगी कि उसने कौनसा गुनाह किया होगा। अगर पुरुष भी विधवा पुनर्विवाह के लिए कदम आगे बढ़ाता है तो समाज की नजर में वह घृणित कार्य है। अमृतराय ने जब विधवा से विवाह की प्रतिज्ञा ली यह सुनकर उनके ससुर बदरीप्रसाद उनसे अपना हर संबंध तोड़ लेने का निर्णय करते है क्योंकि उनके लिए यह कार्य समाज में अमान्य है और समाज के नियमों के विरूद्ध फैसला लेने से वे उससे बाहर मानने लगते है। ''अगर वह रो-रोकर मर जाना चाहती है, तो मर जाये, लेकिन मैं अमृतराय की खुशामद करने न जाऊंगा। जो प्राणी विधवा-विवाह जैसे घृणित व्यवसाय में हाथ डालता है, उससे मेरा कोई संबंध नहीं हो सकता।''[11] विधवाओं की ऐसी स्थिति देखकर हर कोई शायद दु:ख का अनुभव करें लकिन स्वानुभूति और सहानुभूति रखना इसमें काफी फर्क होता है। पूर्णा कमलाप्रसाद से दूर जाना चाहती है किन्तु उसके आश्रय पर रहकर दर-दर की ठोकरे भी नहीं खाना चाहती। पुरुष जो चाहे वो कर सकता है वो सब सही ही होता है। लेकिन एक स्त्री को अपनी मान-मर्यादा का हर कदम पर ध्यान रखना पड़ता है। पूर्णा के वैधव्य जीवन और अकेलेपन का अनुचित फायदा उठाकर कमलाप्रसाद उसके पवित्र आचरण को कलंकित करना चाहता है। वह अपनी मर्दानगी से जो चाहता कर सकता वह सब सही था किन्तु पूर्णा को औरत होने के नाते अपने कदम पीछे हटाने पड़े। हर कदम पर औरत को ही नीचा दिखाया जाता है। ''अब जाने दो बाबूजी, क्यों जीवन भ्रष्ट करना चाहते हो। तुम मर्द हो, तुम्हारे लिए सब माफहै, मैं औरत हूँ मैं कहाँ जाऊँगी।''[12] पुरुष को कोई फर्क नहीं पड़ता स्त्री विवाहित है अथवा अविवाहित वह सिर्फउसे एक शिकार की नजरों से देखता है कि वह उसके हाथ से निकल न जाए। कमलाप्रसाद ने भी इसी नियति को अपनाया कि पूर्णा को शिकार की तरह ही अपने प्रेम जाल में फंसाना चाहा लेकिन उसकी पत्नी सुमित्रा पूर्णा को सांत्वना देती हुई उपन्यास के खिलाफलड़ने की प्रेरणा देती है। वह उसे समझाती है कि कमला की नीयति क्या है और वह उसकी बातों में न आए और खुद को उसके साये से भी दूर रखें। कमलाप्रसाद इसी प्रेम की आड़ में पूर्णा को प्रेमा से मिलाने का बहाना बनाकर अकेले में अपने बगीचे में ले जाता है, उसे पाने की लालसा उस पर इस कदर हावी हुई कि उसे कुछ सही या गलत की पहचान न रहीं। उसकी नजरों में जो चिनगारियां निकल रही थी, वह हिंसक पशु का प्रतिबिम्ब था जिसे पूर्णा ने भांप लिया और वह अपने सतीत्व, अपनी अस्मत की हिफ़ाजत करते हुए न चाहती हुई भी अमृतराय द्वारा बनाए गये वनिता-आश्रम में पहुँच जाती है। वहाँ ईश्वर के चरणों में अपना मन हल्का कर मानसिक शांति का अनुभव करती है।'' भक्ति मनुष्य का अंतिम आश्रय है।''[13] वह भवन विधवाओं का आश्रम ही नहीं उनका प्रशिक्षणाय भी है, वहाँ उनके द्वारा बनाई गई वस्तुओं का विक्रय होता है जिससे उनमें स्वावलम्बन का अनुभव होता है। अमृतराय के मित्र दाननाथ अब उन्हें विधवा से विवाह करने की प्रतिज्ञा याद दिलाते है तो अमृतराय वनिता-भवन की तरफ इशारा करके जाहिर करते है कि अब इनका निर्वाह करने में ही मेरी प्रतिज्ञा पूरी होगी। ''मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुका।''[14] अमृतराय की तरह वर्तमान में भी कोई अपने कर्तव्य का पालन करें तो विधवाओं की दयनीय स्थिति को सुधार सकते है।

निष्कर्ष- प्रेमचंद साहित्य को केलव मनोरंजन और विलासिता से जोड़कर रखने के हिमायती नहीं थे। वे उसी साहित्य को खरा मानने के पक्षधर थे जिसमें उच्च चिंतन, स्वाधीनता भाव और जीवन की अनुभूति और सच्चाई हो। इनके साहित्य में अनमेल विवाह, नारी जीवन, दहेज की समस्या, कृषक जीवन का यथार्थ और देशी रियासतों का ब्रिटिश साम्राज्य के साथ मिलकर भारतीय जनता पर किये जाने वाले अत्याचारों का मर्मस्पर्शी वर्णन मिलता है जिसमें 'प्रतिज्ञा' उपन्यास नारी जीवन की ही मार्मिक कहानी प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास में आर्य समाज की सुधारवादी दृष्टि और सनातन हिंदू दृष्टि के माध्यम से दो विरोधी मूल्य दृष्टियों के द्वंद्व को दर्शाया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में कमलाप्रसाद जो अबला नारी पर अत्याचार करने वाला दुराचारी था, पूर्णा का सतीत्व भ्रष्ट करने की कोशिश करता है तो पूर्णा उस पर प्रहार करके अमृतराय की शरण में पहुँचती है। इस घटना से कमलाप्रसाद की समाज में हँसी होती है परिणामस्वरूप वह अपनी नियत को बदल लेता है और पत्नी के साथ खुशी से रहने लगता है। इधर दाननाथ जो अमृतराय का सबसे अच्छा मित्र था कमला की बातों में आकर उस पर संदेह करता है, जब उसे उसकी सच्चाई पता चलती है तो वह पछतावे से भरकर अमृतराय से माफी माँगता है वे उसे क्षमा कर देते है दोनों में फिर से मित्रता हो जाती है। इस दृष्टिकोण से उपन्यासकार यह दर्शाता है कि वर्तमान में भी हम किसी प्रकार परिस्थितियों में बदलाव लाकर समाज के नकारात्मक नजरिए को बदलकर महिलाओं के प्रति एक नई सोच को विकसित कर सकते है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में नारी जीवन से जुड़ी गंभीर समस्या के विभिन्न पक्षों को उठाकर हर तरह से सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया है।

संदर्भ-

1. प्रेमचंद, प्रतिज्ञा, सरस्वती-प्रेस, पृष्ठ-30
2. वही, पृष्ठ-100
3. वही, पृष्ठ-144
4. वही, पृष्ठ-147
5. वही, पृष्ठ-185
6. वही, पृष्ठ-20
7. वही, पृष्ठ-76
8. वही, पृष्ठ-161
9. वही, पृष्ठ-132
10. वही, पृष्ठ-160
11. वही, पृष्ठ-19
12. वही, पृष्ठ-103
13. वही, पृष्ठ-226
14. वही, पृष्ठ-230

ISSN 2278 - 0327

क्या ऑनलाइन शिक्षा कक्षीय शिक्षा का समुचित विकल्प है

डॉ. विवेक कुमार सिंह
अतिथि अध्यापक, शारीरिक शिक्षा
केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
भोपाल परिसर, भोपाल, मध्य प्रदेश

अर्थव्यवस्था और सामाजिक जीवन के अलावा कोरोना वायरस ने जिस चीज को सर्वाधिक प्रभावित किया है वह है शिक्षा व्यवस्था और पठन-पाठन। स्कूली से लेकर उच्च स्तरीय शिक्षा लगभग ठप हो गई है। हालांकि कुछ स्कूल, कॉलेज या विश्वविद्यालयों ने जूम, गूगल क्लासरूम, माइक्रोसॉफ्ट टीम, स्काइप जैसे प्लेटफॉर्मों के साथ-साथ यूट्यूब, व्हाट्सएप आदि के माध्यम से ऑनलाइन शिक्षण का विकल्प अपनाया है, जो इस संकट-काल में एकमात्र रास्ता है, लेकिन इस ऑनलाइन शिक्षा का कुछ हलकों में इस प्रकार से महिमामंडन किया जा रहा है मानो हमारी शिक्षा व्यवस्था की हर समस्या का समाधान इसमें छिपा हुआ है। क्या सचमुच ऑनलाइन शिक्षा देश की सारी शैक्षिक जरूरतों का हल है? क्या ऑनलाइन शिक्षा कक्षीय शिक्षा का समुचित विकल्प है और भारतीय परिवेश के अनुकूल है? इन प्रश्नों का उत्तर जानने के साथ यह समझना भी जरूरी होगा कि शिक्षा के उद्देश्य क्या हैं?

शिक्षा के तीन प्रमुख उद्देश्य-

1- व्यक्ति एवं चरित्र निर्माण
2- समाज कल्याण
3- ज्ञान का उत्तरोत्तर विकास

भारतीय चिंतन परंपरा के अनुसार शिक्षा के तीन प्रमुख उद्देश्य हैं- व्यक्ति एवं चरित्र निर्माण, समाज कल्याण और ज्ञान का उत्तरोत्तर विकास। ऑनलाइन शिक्षा इन लक्ष्यों की पुर्ति कहां तक करती है, इसकी परख जरूरी है। परंपरागत यानी आमने-सामने के कक्षीय पठन-पाठन में विद्यार्थियों के सामने सिर्फ ज्ञान नहीं उढ़ेला जाता है, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से चरित्र निर्माण की प्रक्रिया भी सतत चलती रहती है। कक्षीय परिवेश में सह-अस्तित्व एवं सहयोग, व्यापक साझेदारी, सामूहिकता एवं वैचारिक सहिष्णुता का भाव छात्रों में विकसित होता है।

■ *शिक्षक का आचरण और उसके क्रियाकलाप का छात्रों पर बहुत गहरा असर पड़ता है*

इसके साथ-साथ शिक्षक का आचरण और उसके क्रियाकलाप का छात्रों पर बहुत गहरा असर पड़ता है। शैक्षिक परिसर में विविधतापूर्ण सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि और विभिन्न विषयों के छात्रों का आपस में अंतरव्यवहार, बहस, विवेचन एवं तर्क-वितर्क व्यक्तित्व के समग्र-संतुलित निर्माण में बड़ी भूमिका निभाते हैं। विभिन्न शिक्षणेतर गतिविधियां एवं अन्य क्रियाकलाप व्यक्तित्व निर्माण को पूर्णता की ओर ले जाते हैं।

■ *ऑनलाइन शिक्षा साधक के बजाय बाधक साबित हो सकती है*

ऑनलाइन पद्धति में उपरोक्त चीजें नहीं के बराबर अथवा बहुत कम मात्रा में संभव हैं। इसमें विद्यार्थी ज्ञान तो हासिल कर लेगा, लेकिन उसका मनोजगत एक रोबोट की तरह ही यांत्रिक होगा। इंटरनेट और वर्चुअल वर्ल्ड के वर्तमान दौर में पहले ही समाज से कटते जा रहे बच्चों-युवाओं में सोशल स्किल और संतुलित-सम्यक् व्यक्तित्व के विकास में ऑनलाइन शिक्षा साधक के बजाय बाधक साबित हो सकती है। अगर ऐसा हुआ तो शिक्षा का प्रथम लक्ष्य यानी व्यक्ति-चरित्र निर्माण का कार्य अपूर्ण ही रहेगा।

■ *व्यक्ति में सामाजिक जीवन के लिए जरूरी गुण ठीक से विकसित होने चाहिए।*

शिक्षा का दूसरा उद्देश्य समाज का कल्याण है, जो पहले लक्ष्य से ही जुड़ा हुआ है। अगर व्यक्ति में सामाजिक जीवन के लिए जरूरी गुण सहअस्तित्व, सामूहिकता एवं सहिष्णुता आदि ठीक से विकसित न हो पाएं तो समाज भौतिक स्तर पर भले संपन्न हो जाए, लेकिन उसमें अनेक विसंगितयां होंगी और जो सामाजिक समस्याओं को जन्म देंगी।

■ *ज्ञान का विकास भी ऑनलाइन पद्धति में एक सीमा तक ही संभव है*

शिक्षा का तीसरा उद्देश्य ज्ञान का विकास भी ऑनलाइन पद्धति में एक सीमा तक ही संभव है। उसमें पुस्तकीय-सैद्धांतिक ज्ञान तो हासिल होगा, लेकिन व्यावहारिक ज्ञान से अपेक्षाकृत वंचित ही रहेंगे। विज्ञान, प्रौद्योगिकी और मेडिकल जैसे विषयों की पढ़ाई तो प्रयोग-व्यावहारिक जानकारी के बिना न तो मुमकिन होगी और न ही मुक्कमल।

आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था उचित नहीं, क्यों? और विकल्प

यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि इस संसार में मानव ऐसा प्राणी है जिसकी

सर्वविध उन्नति कृत्रिम है, स्वाभाविक नहीं। शैशवकाल में बोलने, चलने आदि की क्रियाओं से लेकर बड़े होने तक सभी प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने हेतु उसे पराश्रित ही रहना होता है, दूसरे ही उसके मार्गदर्शक होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि समय-समय पर विविध माध्यमों अथवा व्यवहारों से मानव में अन्यों के द्वारा गुणों का आधान किया जाता है। यदि ऐसा न किया जाये, तो, मानव ने आज के युग में कितनी ही भौतिक उन्नति क्यों न कर ली हो, वह निपट मूर्ख और एक पशु से अधिक कुछ नहीं हो सकता -यह नितान्त सत्य है।

अत: सृष्टि के आदि, वेदों के आविर्भाव से लेकर आज तक मानव को जैसा वातावरण, समाज व शिक्षा मिलती रही वह वैसा ही बनता चला गया, क्योंकि ये ही वे माध्यम हैं, जिनसे एक बच्चा कृत्रिम उन्नति करता है और बाद में अपने ज्ञान तथा तपोबल के आधार पर विशेष विचारमन्थन और अनुसन्धान द्वारा उत्तरोत्तर ऊँचाइयों को छूता चला जाता है। इस जगतीतल में आज जितना बुद्धिवैभव और भौतिक उन्नति दृष्टिपथ में आती है, वह पूर्वजों की शिक्षाओं का प्रतिफल है। उसके लिए हम उन के ऋणी हैं। वे ही हमारे परोक्ष शिक्षक हैं। यह परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है। अत: सामान्यत: कहा जा सकता है कि मानव की उन्नति की साधिका शिक्षा है। जिसका वैदिक स्वरूप इसप्रकार है- जिस से विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उस को शिक्षा कहते हैं। (सत्यार्थप्रकाश के अन्त में दत्त स्वमन्तव्यामन्तव्य-प्रकाश में शिक्षा की परिभाषा।) ऐसे उत्कृष्ट स्वरूप वाली शिक्षा से एक व्यक्ति मानव बनता है और मानवों का समुदाय समाज कहलाता है। यदि शिक्षा समाज में रहकर दी जा रही है तो उसका प्रभाव शिक्षार्थी पर पड़ना अवश्यम्भावी है। वह वैसा ही बनता है जैसा समाज है।

प्राचीन काल में शिक्षारूप यह उच्च कोटि का कार्य नगरों और गाँवों से दूर रहकर शान्त, स्वच्छ और सुरम्य प्रकृति की गोद में किया जाता था। दोनों में क्या भेद है, इसको समाजों के तुलनात्मक अध्ययन से समझा जा सकता है। अत: प्राचीन और आधुनिक समाज की संक्षेप में समीक्षा करते हैं, जिससे शिक्षा कहाँ और कैसे वातावरण में दी जानी चाहिए यह भी स्वत: स्पष्ट हो जायेगा। तत: आधुनिक शिक्षा के उद्देश्य आदि पर विचार कर उसका विकल्प सूच्य रहेगा। प्राचीन समाज- प्राचीन भारत की सामाजिक स्थिति को जानने के लिए तात्कालिक साहित्य ही एक मात्र शरण है। उस काल में संस्कृत ही बोलचाल और लेखन की भाषा थी, अत: उसमें उपलब्ध वेदेतर ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद् आदि वैदिकवाङ्मय और वाल्मीकिरामायण, माहाभारत आदि लौकिक साहित्य का विशाल भण्डार सहायक बनेगा। उन सभी से प्रमाणों की झड़ी लगाई जा सकती है, लेकिन दो तीन बहुश्रुत ग्रन्थों का ही उल्लेख हमारे अभीष्ट को सिद्ध करने में पर्याप्त होगा। उस समय शिक्षा के केन्द्र ऋषि, मुनियों के आश्रमस्थल होते थे, जो यजुर्वेदीय *मंत्र उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम्। धिया विप्रो ऽ अजायत।।* (यजुर्वेद 26.15) के प्रतिबिम्बरूप थे, जिसके अनुसार पर्वतों के पार्श्ववर्तीभाग और नदियों के संगम स्थान पर प्राकृतिक स्वच्छ वातावरण में श्रेष्ठबुद्धि का विकास उत्तमोत्तम हुआ करता है। इसीलिए वहाँ के समाज की सर्वविध समृद्धि आज से भी उन्नत दिखाई देती है। राजा अश्वघोष की विचारोत्तेजक ये पंक्तियाँ- *न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यप:। नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुत:।।* (छान्दोग्योपनिषद् 5.11.5) प्राचीन भारत के गौरव को डिण्डिमघोष के साथ कहती हुई समाज की उन्नत स्थिति को ही स्पष्टत: वर्णित करती है। जिसमें अश्वघोष की गर्वोक्ति है कि मेरे किसी जनपद में कोई चोर, कृपण और शराबी नहीं है। न कोई अग्निहोत्र न करने वाला और अविद्वान् है। कोई स्वेच्छाचारी मनुष्य नहीं तो स्वेच्छाचारिणी स्त्री कहाँ से होगी? इसी प्रकार का समाज वाल्मीकिरामायण में भी उपलब्ध है। उदाहरणार्थ- *तस्मिन् पुरवरे हृष्टा धर्मात्मानो बहुश्रुता:। नरास्तुष्टा धनै: स्वै: स्वैरलुब्धा: सत्यवादिन:।। कामी वा न कदर्यो वा नृशंस: पुरुष: क्वचित्। द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान् न च नास्तिक:।। नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्कर:। कश्चिदासीदयोध्यायां न चावृत्तो न संकर:।।* (वाल्मीकिरामायणम् 1.6.6, 8, 12) अर्थात् उस श्रेष्ठ अयोध्यानगरी का असाधारण समाज था, जिसमें सभी प्रजाजन प्रसन्न, धर्मात्मा, बहुश्रुत विद्वान् थे। निर्लोभी, अपने-अपने धन से सन्तुष्ट रहने वाले और सत्यवादी थे। वहाँ कहीं कोई कामी, कंजूस, क्रूर व्यक्ति न था। न कोई मूर्ख और नास्तिक था। न ही अग्निहोत्र और पंच यज्ञ न करने वाला, न निम्न सोच वाला और चोर था। न ऐसा था जो सदाचारी न हो या वर्णसंकर हो। आज के परिप्रेक्ष्य में कोई स्वप्न में भी शायद ऐसे समाज की परिकल्पना नहीं कर सकता! विचारने पर एतादृश समाज की उन्नति के मूल में उत्तम शिक्षाव्यवस्था और राजव्यवस्था ही दिखाई देती है।

ऐसा ही भारत का चित्र लॉर्ड मैकाले ने भी खींचा था, साथ ही लम्बे समय तक अपने अधीन करने के लिए यहाँ की शिक्षाव्यवस्था और संस्कृति को बदलने का सुझाव दिया, जिसमें वह कामयाब हुआ

I have travelled across the length and breadth of India and I have not seen one person who is a thief. Such wealth I have seen in the country, such high moral values, people of such caliber; that I do not think we would ever conquer this country, unless we break the very backbone of this nation, which is her spiritual and cultural heritage, and therefore I propose that we replace her old and ancient education system, her culture, for if the Indians think that all that is foreign and English is good and greater than their own, they will lose their self-esteem, their native self-culture and they will become what we want

them, a truly dominated nation." - Lord Macaulay in his speech on Feb 2, 1835, British Parliament

(मैंने भारत की लंबाई और चौड़ाई में यात्रा की है और मैंने एक व्यक्ति को नहीं देखा है जो एक चोर है। ऐसी दौलत मैंने देश में देखी है, ऐसे उच्च नैतिक मूल्य, ऐसे कैलिबर के लोग; मुझे नहीं लगता कि हम कभी भी इस देश पर विजय प्राप्त करेंगे, जब तक कि हम इस राष्ट्र की रीढ़ की हड्डी को तोड़ न दें, जो उसकी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत है, और इसलिए मैं प्रस्ताव करता हूं कि हम उसकी पुरानी और प्राचीन शिक्षा प्रणाली, उसकी संस्कृति को बदल दें, जैसे कि अगर भारतीयों को लगता है कि वह सब कुछ विदेशी और अंग्रेजी अच्छा है और अपने स्वयं के मुकाबले अधिक है, वे अपने आत्म-सम्मान, अपनी मूल आत्म-संस्कृति को खो देंगे और वे वही बन जाएंगे जो हम उन्हें चाहते हैं, एक सही मायने में प्रभुत्वशाली राष्ट्र।'- लॉर्ड मैकाले 2 फरवरी, 1835 को ब्रिटिश संसद पर भाषण)

बदलते दौर में जहाँ सब कुछ डिजिटल हो रहा है, वहीँ शिक्षा का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। असल में देखा जाये तो इंटरनेट, मोबाइल फोन, मोबाइल एप्लिकेशन, टैबलेट, लैपटॉप और अन्य आधुनिक उपकरणों के विकास होने के बाद आज की दुनिया ही डिजिटल हो गई है। वहीँ भारत में भी कई शहरों की शिक्षा प्रणाली भी आधुनिकीकृत हो रही हैं, जिससे डिजिटलीकरण के लिए रास्ता बन गया है। देखा जाये तो डिजिटल शिक्षा भारत की पारंपरिक शिक्षा प्रणाली में अपनी जगह बना चुकी है।

इसी आधार पर बदलते दौर में डिजिटल शिक्षा एवं कक्षा शिक्षाण के प्रभावो की चर्चा की गई है।

डिजिटल शिक्षा और कक्षा की शिक्षा के बीच अंतर

भारी भरकम बस्ते और ढेर सारी किताबों के साथ स्कूल जाना अब बीते दिनों की बात हो गई है। वह दिन अब गुजर चुके हैं, जब स्कूलों में किताबों द्वारा बच्चों को पढ़ाया जाता था। और शिक्षक अपनी बातों को समझाने के लिए ब्लैकबोर्ड का इस्तेमाल करते थे। इन सब पारम्परिक चीजों को पीछे छोड़ते हुए अब ज्यादातर स्कूलों में डिजिटल शिक्षण और अन्य डिजिटल पद्धतियों का उपयोग किया जा रहा है।

डिजिटल शिक्षा का छात्रों को लाभ-

यहाँ पर एक सवाल यह उठता है की पारम्परिक शिक्षा के बीच शुरू हो रही डिजिटल शिक्षा से बच्चों को लाभ कैसे मिलता है? तो इस सवाल के जवाब में हमें कई तर्क दिए जाते हैं। मसलन पहला तर्क है, संवादात्मक।

- डिजिटल शिक्षा के जरिए कक्षाओं का शिक्षण अधिक मजेदार और संवादात्मक बनाया जा रहा है। जिससे बच्चे इस पर अधिक से अधिक ध्यान दे। जिसके लिए वह न केवल इसे सुने बल्कि इसे स्क्रीन पर देखे भी। जिससे उनकी नई नई चीजे सीखने की क्षमता में काफी इजाफा भी हो रहा है।
- डिजिटलिजेशन का यहाँ एक यह फायदा भी है की संवादात्मक ऑनलाइन प्रस्तुतीकरण या संवादात्मक स्क्रीन के माध्यम से व्यावहारिक सत्र में शैक्षणिक सामग्री छात्रों को विवरणों पर और अधिक ध्यान देने में मदद करती है। जिससे वह गतिविधियों को अपनी झमता पर पूरा करने में सक्षम बनते हैं।
- समय पर काम को पूरा करने के लिए बच्चों को आज ऐसे साधन चाहिए जो उनके काम में उनकी मदद करे। ऐसे में पेन और पेंसिल की बजाय आधुनिक उपकरणों का उपयोग करने पर बच्चो का जहाँ समय बचता है। वहीँ बच्चे अपने कार्यों को कम समय में पूरा कर लेते हैं।
- अक्सर ऐसा देखने को मिलता है की किताबों को पास रख पढ़ते समय बच्चे उन पर इतना ध्यान नहीं देते, जिससे उनकी शब्दावली अधूरी और कमजोर रह जाती है। दरअसल हमारी किताबें भरपूर ज्ञान तो देती हैं, पर बच्चों को पूरी तरह से अपनी ओर खींच नहीं पाती। जिसका एक कारण किताबों का मनोरंजक तरीके से प्रस्तुतिकरण का न होना है। तो दूसरी तरफ ऑनलाइन स्क्रीन की सहायता से छात्र अपनी भाषा कौशल में सुधार कर लेते हैं। जिसमे उन्हें कठिन शब्दों के अर्थ तुरंत मिल जाते हैं। वहीँ ई-बुक से या ऑनलाइन अध्ययन सामग्री के जरिए वे नए शब्द सीखकर अपनी शब्दावली का विस्तार भी कर लेते हैं।
- कई बार ऐसी शिकायत मिलती है की छात्र कई कारणों के चलते अपने शिक्षकों से कक्षा में प्रश्न पूछने से झिझकते हैं। जिस कारण किसी भी विषय विशेष पर उनकी जानकारी या तो अधूरी रह जाती है, या फिर हो ही नहीं पाती। लेकिन डिजिटल शिक्षा के माध्यम से छात्र अपनी दुविधा को तुरंत मिटा सकते है, बल्कि उससे जुड़ी कई अन्य जानकारी भी पा सकते हैं। जिस पर हम कह सकते हैं की डिजिटल शिक्षा के माध्यम से छात्रों को उनकी योग्यता के अनुसार सीखने में मदद मिलती है।

शिक्षा के माध्यमों का बेहतर विकल्प बनती जा रही डिजिटल शिक्षा के बारे में सबसे अच्छी बात यह है कि यह उपयोगकर्ता के अनुकूल है। जिसे कोई भी, कहीं भी और कभी भी इस्तेमाल कर अपने पाठ्यक्रम को आसानी से पढ़ सकता हैं। मसलन यात्रा के दौरान या फिर किसी कारणवश अवकाश लेने पर छूटे हुए विषयों को हम आसानी से पा सकते हैं।

डिजिटल शिक्षा का सबसे बड़ा फायदा यह है की इसके माध्यम से हमे ऑनलाइन अध्ययन सामग्री आसानी से उपलब्ध हो जाती है। हालाँकि अभी पूरी शिक्षा प्रणाली डिजिटल रूप में नहीं हुई है, फिर भी छात्र अपनी जरूरतों के आधार पर डिजिटल सामग्री का लाभ

उठा सकते हैं। डिजिटल शिक्षा के तहत ऑनलाइन शिक्षा के साथ–साथ छात्र दूर बैठे सलाहकारों से मार्गदर्शन भी प्राप्त कर सकते हैं। जो हर समय उनकी समस्याओं को हल करने के लिए मौजूद रहते हैं।

डिजिटल शिक्षा का छात्रों को नुकसान–

बदलते जमाने में समय के साथ चलने के लिए बच्चों के लिए डिजिटल शिक्षा जितनी जरुरी हैं, वहीँ डिजिटल शिक्षा के अपने कई नुकसान भी हैं। जैसे–

- डिजिटल शिक्षा को पाने के लिए लोगों को कई उपकरणों को लेना होता है। जो काफी महंगे होते हैं। यही कारण है कि डिजिटल शिक्षा देने वाले अधिकांश अंतर्राष्ट्रीय स्कूल और विद्यालय नियमित स्कूलों की तुलना में अधिक महँगें होते हैं। इसी कारण डिजिटल शिक्षा पाना हर किसी के बस की बात नहीं होती।
- पारम्परिक किताबी शिक्षा से हम घर हो या स्कूल कही भी पढ़ाई कर सकते हैं। जबकि डिजिटल शिक्षा के लिए न केवल स्कूल में बल्कि घर में भी सस्ते ब्रॉडबैंड में उचित आधारभूत संरचना की आवश्यकता होती है।
- समय का पाबंद होना आज के समय में बहुत जरुरी है। वहीँ डिजिटल शिक्षा के तहत सीखने के लिए बेहतर प्रबंधन और कठोर योजनाओं की जरुरत होती है, जबकि पारंपरिक रूप में कक्षा में बैठ कर पढ़ने में सब कुछ एक निश्चित समय सारिणी के अनुसार होता है।
- यूँ तो इंटरनेट पर सभी जवाब आसानी से प्राप्त हो जाते हैं, जिससे छात्रों को कभी किसी विषय पर पढ़ते हुए ज्यादा सोच विचार करने की जरुरत नहीं होती। जिस कारण छात्रों की बुद्धि एक दायरे में ही सीमित हो जाती है। जिससे बच्चों की रचनात्मक क्षमता में कमी आती है।
- डिजिटल शिक्षा चाहे कितनी ही सुविधा छात्रों को उपलब्ध करा दे। लेकिन इस सुविधा के कारण छात्रों में अध्ययन की खराब आदतों को बढ़ावा मिल रहा है। जो छात्रों में आलसी दृष्टिकोण को धीरे धीरे विकसित कर रहा है। जिससे छात्र अपंनी सोच और झमताओं को छोड़ पूरी तरह से इस पर निर्भर हो रहे हैं। देखा जाये तो डिजिटल शिक्षा छात्रों में शिक्षा के बुनियादी तरीके को भुला रही है। यहाँ तक कि अब बच्चे मामूली समस्याओं और होमवर्क के लिए भी डिजिटल साधनों की सहायता ले रहे हैं।
- डिजिटलाइजेशन के तहत सबसे खराब बात यह सामने आती है की यहाँ पर कई प्रकार की सामग्री होती है, जो छात्रों के लिए उपयुक्त नहीं होती। इसमें बहुत सारी चीजे ऐसी है, जो बच्चों के लिए अच्छी नहीं होती, यदि इस सामग्री पर छात्रों की पहुँच होती है, तो यह उनका भविष्य बर्बाद कर सकती हैं।

आज इसी का एक उदाहरणड ीयू में विधि की पढ़ाई की उच्च गुणवत्ता का बड़ा कारण मूट कोर्ट हैं।

दिल्ली विश्वविद्यालय में तो कानून की पढ़ाई की उच्च गुणवत्ता का एक बड़ा कारण वहां चलने वाले मूट कोर्ट हैं जिसमें एक आभासी अदालत बनाकर अदालत की भांति कार्यवाही संपन्न होती है। छात्रों के ज्ञान के परीक्षण में भी ऑनलाइन पद्धति पूरी तरह से मुक्कमल नहीं। ऑनलाइन में आमतौर पर वस्तुनिष्ठ प्रारूप में परीक्षाएं होती हैं, जिसमें विद्यार्थियों के विवेचन और समालोचनात्मक दृष्टिकोण का सम्यक परीक्षण नहीं हो पाता।

शिक्षा का एक अन्य उद्देश्य रोजगार भी है, पर विशुद्ध ऑनलाइन डिग्री इसमें ज्यादा कारगर सिद्ध नहीं होगी। मल्टीटास्किंग के मौजूदा दौर में कोरे सैद्धांतिक ज्ञान से ज्यादा व्यावहारिक ज्ञान और सोशल स्किल को तवज्जो दी जाती है, जो ऑनलाइन में थोड़ा कच्चा ही रह जाता है।

भारतीय परिवेश में इंटरनेट कनेक्टिविटी, कंप्यूटर की सुलभता भी एक समस्या ऑनलाइन शिक्षा रामबाण के रूप में पेश किया जा रहा है फिर भी ऑनलाइन शिक्षा को अगर एक रामबाण के रूप में पेश किया जा रहा है तो उसकी वजह या तो लोगों की आधी–अधूरी समझ अथवा शिक्षा को मुनाफा कमाने का धंधा मानने वाली मानसिकता है। यह अनायास नहीं कि ऑनलाइन शिक्षा के सबसे बड़े प्रवक्ता निजी क्षेत्र के संस्थान ही हैं। अकादमिक जगत में इसे लेकर ज्यादा उत्साह नहीं है।अमेरिका–यूरोप के देशों में भी विद्यार्थियों की यही कामना होती है कि वे कक्षीय पढ़ाई करें अमेरिका–यूरोप के देशों में भी जहां एक दशक पूर्व से ही जीवन का हर क्षेत्र ऑनलाइन संचालित है वहां भी उच्च शिक्षा की बहुत अधिक फीस होने के बावजूद विद्यार्थियों की यही कामना होती है कि वे कक्षीय पढ़ाई करें। यह तब है जब हार्वर्ड, एमआइटी, स्टैनफोर्ड आदि संस्थानों के कोर्स ऑनलाइन प्लेटफॉर्म पर उपलब्ध हैं।

ऑनलाइन शिक्षा कामकाजी लोगों के लिए सही है जो नियमित शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते तब क्या ऑनलाइन शिक्षा को बिलकुल खारिज कर दिया जाए ? जी नहीं। यह उन कामकाजी लोगों के लिए बहुत फायदेमंद है जिनके लिए नियमित शिक्षा प्राप्त करना कठिन है। नए तरह के रोजगार पाने अथवा प्रमोशन में ऑनलाइन प्रोग्राम उनके लिए बहुत मददगार साबित होंगे। विभिन्न डिग्री कार्यक्रम में परंपरागत शिक्षा प्राप्त कर रहे रेग्युलर विद्यार्थियों के लिए भी ऐड–ऑन कोर्स के रूप में ऑनलाइन कोर्स उनके ज्ञान–कौशल में इजाफा कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त गरीब या सुदूर इलाकों के छात्रों के लिए जिन्हें बहुत अच्छे शिक्षक या समृद्ध पुस्तकालय उपलब्ध नहीं हैं, उनके लिए श्रेष्ठ संस्थानों द्वारा तैयार ऑनलाइन अध्ययन सामग्री वरदान सिद्ध होगी। एचआरडी मंत्रालय ने तैयार किया ई–लर्निंग प्लेटफॉर्म बहुत उपयोगी है।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा तैयार किए गए ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म जैसे स्वयं, दीक्षा, ई-बस्ता, नेशनल रिपॉजिटरी ऑफ ओपन एजुकेशनल रिसोर्सेज, शोधगंगा, विद्वान, ई-पीजी पाठशाला आदि बहुत उपयोगी हैं। कक्षीय पठन-पाठन के एक सपोर्टिंग टूल के रूप में इन्हें अपनाना नि:संदेह लाभकारी होगा।

इस कोरोना संकट के दौरान वैकल्पिक तौर पर ऑनलाइन शिक्षा अवश्य एक जरूरत है, लेकिन सामान्य दिनों में भारत के समग्र विकास के लिए परंपरागत कक्षीय शिक्षा के सहायक के रूप में ही यह सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध होगी न कि उसके विकल्प के रूप में। अत:इस दारुण स्थिति में उक्त महत्त्व को समझते हुए भारत सरकार और अन्य ऐसे ही समर्थ तथा सशक्त एन० जी० ओ०, डी० ए० वी० संस्थान आदि सामाजिक संगठन आगे आए। भारत के सोये स्वाभिमान को जगाए और भारतीय उच्च आदर्शों और परम्पराओं की पुन: स्थापना शिक्षाव्यवस्था के माध्यम से करवा कर भारतवर्ष के खोए हुए गौरव को प्राप्त करवाने में यथाशक्ति योगदान देंगे। क्योंकि शिक्षा ऐसा माध्यम है, जिससे शीघ्र और उचित दिशा में उन्नति होने में विलम्ब नहीं हुआ करता।

निष्कर्ष-

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आधुनिक शिक्षापद्धति अनेक समस्याओं की जड़ है। जिसका मूलोच्छेद जब तक नहीं किया जायेगा तब तक समस्त समाज को शिक्षित और मानवोचित गुणों का उसमें आधान करवाना कथमपि सम्भव नहीं होगा। मनुष्य के केवल बाह्य स्वरूप को सुधारने का कार्य आज की शिक्षा का है। जबकि बाह्य से आन्तरिक स्वरूप अधिक महत्त्व रखता है परन्तु बाह्य और आन्तरिक समुदित हुए चार चाँद लगाने में समर्थ हैं। प्राचीन आश्रम व्यवस्था विचार शक्ति को शुद्ध कर उभयविध उन्नतियों को सिद्ध करती है। इसलिए यदि समाज में मानवता लानी है, प्रकृति के प्रदूषण को बचाना है, बच्चों के विद्यालय में आवागमन हेतु लगने वाले समय को बचाना है तो प्राच्य और अर्वाच्य दोनों के मेल से एक नई शिक्षापद्धति लागू करनी होगी जो सम्पूर्ण समाज को चाहे वह निर्धन से निर्धन हो या मध्यम या बहुत धनाढ्य सब को अध्ययन का समान अवसर देवे। जिससे समाज में स्वाभाविक साम्यवाद आयेगा, जातिवाद निर्मूल होगा, कर्त्तव्यकर्म को महत्त्व दिया जायेगा, आरक्षण की आवश्यकता न होगी। गुरुकुलीय शिक्षापद्धति में प्रकृति की गोद में पड़ने से भौतिक संसाधनों के प्रति अधिक अनुराग न होगा, आसक्ति न होगी, दिखावा न होगा। विनयभाव आयेगा और व्यक्ति वित्त, बन्धु, वय, कर्म और विद्या को क्रमश: महत्त्वशाली समझेगा, जबकि अब केवल वित्त को ही महत्त्व दिया जा रहा है। आश्रमव्यवस्था में किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बद्ध न होने से केवल मनुर्भव (ऋग्वेद 10.53.6) अर्थात् मानव बन का पाठ पढ़ाया जायेगा। प्रात: सायं सन्ध्याकाल में शरीर को पूर्ण मानसिक और शारीरिकरूप से स्वस्थ रखने के लिए अग्निहोत्र और कुछ प्राणायामों के साथ अन्तर्ध्यान करवाना अपेक्षित होगा जिससे स्वदुर्गुण यदि हैं तो उन्हें दूर करने के लिए दृढ़ संकल्प शक्ति तैयार की जा सकती है। इसप्रकार जीवन स्वयमेव धार्मिक बन जायेगा, क्योंकि धर्म पूजा पाठ का नाम नहीं है। न वह मन्दिरों में है, न गुरुद्वारों में, न मस्जिदों वा चर्चों में। वस्तुत: सही से कर्त्तव्य कर्मों को करना ही धर्म है। या जिससे समाज, प्रकृति की सम्यक् संस्थिति और मोक्षरूप परम आनन्द की प्राप्ति हो, वह धर्म है। अन्त में संक्षेप में यदि यह कहा जाये कि सम्पूर्ण देश में नवोदय विद्यालयों की तरह छात्रावासों में रहकर ही पढ़ाई करवाना सुनिश्चित कर दिया जाये तो भी प्रतिदिन करोड़ों रूपये के पर्यावरण प्रदूषण, समयहानि, जनहानि, धनहानि से बचा जा सकता है और उक्तव्यवस्था मूर्तरूप धारण कर लेवे तो देश पुन: प्राचीन गौरव को प्राप्त करने में देर नहीं लगायेगा और कालिदास के रघुवंश के '*शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्। वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।।*' जैसे वाक्य पुन: भारत के भाल का शृंगार बन जायेंगे।

अंत में उपर्युक्त पाठ का यही सार निकलता है की आज के समय में डिजिटल शिक्षा जरुरी तो है, लेकिन इसका उपयोग एक हद तक और किसी की देख रेख में ही होना चाहिए। जिससे इस तकनीक का छात्रों को पूरा पूरा लाभ मिले, वहीं उनका मानसिक, शारीरिक और चारित्रिक हनन भी न हो।

संदर्भ सूची -

1- पाठक पीडी, 'भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं'

2- हुमायूं कबीर, 'स्वतंत्र भारत में शिक्षा'

3- डॉ राधाकृष्णन, 'द कंसेप्ट ऑफ मैन'

4- ऋग्वेद

5- यजुर्वेद

6- वाल्मीकिरामायणम्

7- छान्दोग्योपनिषद्

8- यजुर्वेद

9- www.researchgate.net

ISSN 2278 - 0327

साहित्य सृजन प्रक्रिया में संवेदनशीलता का योगदान

राज बाला
शोधार्थी, Reg.no.191SHS04170009
ओमस्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय
हिसार (हरियाणा)

प्रोफेसर डॉ. सुनीता सिंह
शोधनिर्देशिका, हिंदीविभाग
ओमस्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय
हिसार (हरियाणा)

सारांश –'संवेदना वह मानसिक प्रक्रिया है, जिससे हमें किसी उत्तेजना के गुण मात्र की चेतना होती है।' मानव मस्तिष्क में संवेदना अधिकतर दु:खित अवस्था में ही अनुभव होती है। मानव ह्रदय में भाव उत्पन्न होकर संवेदना का रूप धारण करते हैं, लेकिन भावुकता क्षण भर के लिए होती है, जबकि संवेदना स्थायी होती है। साहित्य के माध्यम से ही संवेदना को अभिव्यक्ति मिलती है, साहित्य समाज की अभिव्यक्ति होता है क्योंकि समाज में चाहे कैसी भी घटनाएँ हो रहीं हों या हुई हों, उनका प्रतिबिम्ब हम साहित्य में देख सकते हैं। साहित्यकार का व्यक्तित्व सबसे महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि उसमें संवेदनाओं को ग्रहण करने की शक्ति होती है। व्यक्ति, समाज या वर्ग में जो कुछ भी घटित होता है, साहित्यकार की संवेदना उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया करती है। यही संवेदना वाणी का रूप धारण कर साहित्य का रूप प्राप्त कर लेती है। संवेदना का संबंध काव्य के आंतरिक स्वरुप से होता है, जिसे काव्य का भाव-पक्ष या अनुभूति पक्ष भी कहा जाता है। इसे काव्य की आत्मा भी माना जाता है। संवेदना के संबंध में आनंद प्रकाष दीक्षित लिखते हैं, 'कलाकार अपने परिवेश के सम्पर्क में आता है, परिवेश की कोई वस्तु, किसी प्रकार की संवेदना कलाकार में निर्माण करती है, इस संवेदना की प्रतिक्रिया के लिए या प्रत्युदगार की यह अधीरता, यह आकुलता उसे प्रकाशन पर, अभिव्यंजना पर, अभिव्यक्ति पर विवश करती है। इस विवशता का परिणाम कलाकृति के रुप में प्राप्त होता है। संवेदना का आलंबन संसार की कोई वस्तु या घटना या प्रक्रिया होती है।'

भूमिका –संवेदना मस्तिष्क की सामान्य एवं सरलतम प्रक्रिया है। मनुष्य अपनी ज्ञानेन्द्रियों जैसे आँख, नाक, कान, इत्यादि के माध्यम से भौतिक जगत का ज्ञान प्राप्त करता है। मानव मस्तिष्क से संवेदना का चिर संबंध है। मस्तिष्क ही मनुष्य को अच्छे-बुरे की पहचान करवाता है क्योंकि मस्तिष्क विवेकयुक्त होता है। जब कोई भौतिक जगत की वस्तु किसी ज्ञानेन्द्रिय को प्रभावित करती है तो चेतन हो जाती है, इसी प्रक्रिया को संवेदना कहा जाता है। इस लौकिक जीवन में मनुष्य सुखात्मक और दुखात्मक दोनों प्रकार की अनुभूतियों को अनुभव करता है। अत: यही अनुभव संवेदना कहलाता है। अंग्रेजी में संवेदना को 'सिंपैथी' अथवा 'फैलो-फीलिंग' तथा मनोविज्ञान में 'सैंसेशन' कहते हैं। जैसे हम किसी मधुर संगीत को सुनकर रोमांचित हो उठते हैं तो यही रोमांच एक प्रकार की संवेदना है। इस प्रकार से संवेदना का संबंध मानव मन से है, किसी वस्तु को देखकर मन में जो तरह-तरह के भाव उत्पन्न होते हैं, वही संवेदना है। यह मन के अंदर से भी उत्पन्न होती है और बाहर से भी। भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में संवेदनाएँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं।

संवेदना का अर्थ –सामान्य अर्थ में देखा जाए तो संवेदना का शाब्दिक अर्थ होता है सम+वेदना जिसमें सम का अर्थ समान तथा वेदना का अर्थ दु:ख होता है। अत: संवेदना का शाब्दिक अर्थ हुआ समान दु:ख। मनोविज्ञान के क्षेत्र में संवेदना शब्द का प्रयोग मनुष्य की ज्ञानेंद्रियों के अनुभवों के लिए किया जाता है। मनुष्य की प्रारंभिक अनुभूति को संवेदना कहते हैं। मनुष्य प्रारंभ में अपनी ज्ञानेंद्रियों द्वारा किसी वस्तु या उद्दीपक के किसी भी गुण की अनुभूति करता है, उस अनुभूति को संवेदना कहते हैं।

संवेदना शब्द दो शब्दों के योग से बना 'सम्यक् + वेदना' । संस्कृत हिंदी कोश में संवेदना शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार बताई गयी हैं- 'संवेदनम् ना । सम्भविद् ल्युट् अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान जानकारी।' रामचन्द्र वर्मा मानक हिंदी कोश के अंतर्गत संवेदना शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है- 'व्युत्पत्ति की दृष्टि से विद् धातु में येच प्रत्यय जोड़ने पर के स्थान पर अन आदेश हो गया फिर 'ई' को गुण करने से वेदना शब्द निष्पन्न हुआ । 'प' स्त्रीलिंग में टाप् प्रत्यय जुड़ने पर वेदना शब्द बना। वेदना शब्द के पूर्व समु उपन्य जोड़ने से संवेदना शब्द बना है।' संवेदना शब्द संस्कृत की मूल धातु विद् से विकसित हुआ है। इसमें सम् उपसर्ग जुड़ने पर संविद संवेद संवेदन और संवेदना शब्द बनते हैं। इनके क्रमश: अर्थ है। चेतन या सज्ञान, बोध या ज्ञान, अनुभूति सहजानुभूति आदि। डॉ. नवीन चन्द्र लोहनी संवेदना शब्द की उत्पत्ति वेद से मानते हैं जिसका अर्थ बोध, अनुभव अथवा ज्ञान होता है। इस प्रकार संवेदना, विद्, वेद, संवेद संवेदना, संवेदना का विकसित रूप हैं। सामान्य रूप में संवेदना का अर्थ बोध प्राप्ति, ज्ञान प्राप्ति अनुभव प्राप्ति होता है। 'अर्थात् बोध कराने योग्य अथवा ज्ञान, अनुभूति प्राप्त कराने योग्य मनोविज्ञान में इन्द्रियानुभाव को संवेदना कहते है। वस्तु से जब इन्द्रियों का संपर्क होता है तो एक प्रक्रिया घटित होती है, एक उत्तेजना का बोध होता है, वह संवेदना है । इस प्रकार संवेदना का प्रयोग अलग अलग अर्थों में किया जाता रहा है।

अनुभूति धातु ज्ञानप्राप्ति संवेदनशील, संवेदनीय संवेद्य, संवेदित आदि हिंदी अर्थ में तथा मेंसेक्सिन, सेंसिबिलिटी, सिम्पैथी, फिलिंग,

सेंसेटिव मेन्स सेशन जैसे अंग्रेजी शब्दों के पर्याय के रूप में किया जाता है।

अनेक विद्वानों ने संवेदना शब्द का अर्थ बताने का प्रयास किया है। अलग-अलग शब्द कोश तथा साहित्य कोश में भी इस शब्द के अर्थ बताए गए हैं यथा हिंदी साहित्य कोश के अनुसार साधारणत: संवेदना शब्द का प्रयोग सहानभुति के अर्थ में होने लगा है, मूलत: वेदना या संवेदना का अर्थ ज्ञान या ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव है। मनोविज्ञान में इसका यही अर्थ ग्रहण किया जाता है। उसके अनुसार ज्ञानेन्द्रिय द्वारा भौतिक जगत् अथवा भौतिक पदार्थ विषयक प्रत्यक्ष बोध होने की प्रक्रिया संवेदना कहलाती है। संवेदना द्वारा बाह्य जगत के बोध से व्यक्ति में उत्तेजन, ऊर्जा निर्मित होकर विशिष्ट प्रक्रिया प्रकट होती है। डॉ. नगेन्द्र ने संवेदना शब्द के मनोवैज्ञानिक और साहित्य शास्त्रीय अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा हैं- 'मूलत संवेदना का अर्थ हैं, ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त अनुभव' अथवा ज्ञान किन्तु आजकल सामान्यत: इस शब्द का प्रयोग सहानुभूति के अर्थ में होने लगा है। मनोविज्ञान में अब भी इस शब्द का प्रयोग मूल अर्थ में ही किया जाता है।

संवेदना का कोशगत अर्थ -मानक हिंदी कोश में संवेदना के निम्नलिखित अर्थ बताएं गये हैं- '(अ) मन में होने वाला अनुभव या बोध, अनुभूति (आ) किसी के कष्ट को देखकर मन में होने वाला दु:ख। किसी की वेदना देखकर स्वयं भी बहुत कुछ उसी प्रकार की वेदना - का अनुभव करना सहानुभूति (इ) उक्त प्रकार का दु:ख या सहानुभूति प्रकट करने की क्रिया का भाव केन्डोले।

संस्कृत - हिंदी कोश के अनुसार 'संवेदनम् ना। सम्, विद्, ल्युट (अ) प्रत्यक्ष ज्ञान, जानकार, (आ) तीव्र अनुभूति, भावना, अनुभूति भोगना। (इ) देना, आत्मसमर्पण करना।' मानक हिंदी - अंग्रेजी कोश के अनुसार संवेदना 'Feeling, condolence, sensation, sensitive आदि ।

भाषा - शब्द कोश में दिये गये अर्थानुसार 'संवेदना सुखदु:खादि की प्रतीति या अनुभूति या समवेदना' उच्चतर हिंदी अंग्रेजी कोश में संवेदना का अर्थ दिया गया है 'Sensitivity – sensation, sensibility feeling" हिंदी शब्दकोश के अनुसार 'संवेदना- अनुभूति, सहानुभूति (जैसे हार्दिक संवेदना प्रकट करने का भाव दु:ख की अनुभूति।' नवनीत एडवांस्ड डिक्शनरी के अनुसार "Sensitivity the state or quality of being sensitive" अर्थात् संवेदनशीलता मन की भावुकता है ।

संवेदना की परिभाषाएँ -अनेकानेक विद्वानों ने संवेदना को अपने - अपने ढंग से परिभाषित किया है। हाँ कुछ विद्वानों की परिभाषाएँ देने भर का प्रयत्न है। हिंदी साहित्य कोश के अनुसार 'संवेदना उत्तेजना के संबंध में देह रचना की सर्वप्रथम सचेतन प्रतिक्रिया हैं, जिससे हमें वातावरण की ज्ञानोपलब्धि होती हैं।'

श्री शिव मृदुल लिखते हैं- 'वेदना की सम्यक् प्रकार से अभिव्यक्ति का नाम ही संवेदना है। संवेदना सृजन का प्राण हैं जिस साहित्य में करूण रस की निष्पत्ति के साथ नैसर्गिक न्याय की अभिव्यक्ति द्वारा शाश्वत मानव मूल्यों की रक्षा करती हैं।'

डॉ. निधि गुप्ता लिखती हैं कि 'सहृदय के हृदय में स्थित भाव की गहन अनुभूति का नाम संवेदना हैं। भाषा शब्द कोश के अनुसार 'संवेदना अर्थात् अनुभव सुख दु:ख आदि की प्रतीति वह सिद्धान्त जिसमें ज्ञान की उपलब्धि संवेदना के द्वारा होती हैं।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के मतानुसार 'मनोविज्ञान में इन्द्रियानुभाव को ही संवेदना कहते हैं। वस्तु से जब इन्द्रियों का स्पर्श होता हैं, तो एक प्रक्रिया घटित होती है। बाह्य वस्तुओं के सन्निकर्ष से हमारे नाड़ी तंतुओं में प्रतिक्रिया होती है।''

इस प्रकार विद्वानों द्वारा दी गई उपयुक्त परिभाषाओं तथा विचारों के आधार पर हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि संवेदना सजीव में पहले से ही विद्यमान होती है। समय के अनुसार उसका जागना संवेदनशीलता है। संवेदना का संबंध मन के ज्ञानात्मक पहलू और अनुभूति के भावात्मक पहलू से होता है। जिसमें मनुष्य को आशा, आकाक्षाओं, सुख - दु:ख, रागलोभ, द्वेष, घृणा, लज्जा, ग्लानि, स्नेह, करुणा, सहानुभूति जैसे भाव निहित हो सकते है। संवेदना मानवीय सम्बन्धों में ज्ञानात्मक और भावात्मक इन दो रूपों में रची - बसी है।

संवेदना का स्वरूप -संवेदना का अर्थ और स्वरूप मनोविज्ञान और साहित्य में भिन्न-भिन्न रूप में ग्रहण किया गया जाता है। मनोविज्ञान में संवेदना का अर्थ और स्वरूप कुछ इस प्रकार बताया जाता है कि किसी व्यक्ति को बाह्य जगत की पहचान उसके ज्ञानेन्द्रियों से होती है। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा किसी वस्तु घटना या स्थिति का अनुभव होता है।

जीवन की प्रारंभिक अनुक्रिया संवेदना होती है। यह एक मानसिक क्रिया है। इसे ज्ञान की प्रथम सीढ़ी भी कहा जाता है। संवेदना के द्वारा केवल एहसास या आभास होता है। संवेदना में अर्थ एवं अनुभव नहीं होता है। इस प्रकार की अनुभूति मनुष्य के शरीर में उपस्थित नाड़ी तंत्र के द्वारा होती है। मनुष्य के शरीर में दो प्रकार के नाड़ी तंत्र होते हैं-

- ज्ञान वाहक नाड़ी तंत्र
- कार्य वाहक नाड़ी तंत्र

जब मनुष्य किसी वस्तु या उद्दीपक के संपर्क में आता है तो मनुष्य की ज्ञानेंद्रियां उसके गुण के अनुसार उस वस्तु या उद्दीपक के प्रति उत्तेजित होती है, इस प्रकार की उत्तेजना विक्षोभ को उत्पन्न करती है। इस विक्षोभ को शरीर विज्ञान की भाषा में नाड़ी आवेश कहते हैं। यह आवेश ज्ञान वाहक नाड़ियों की सहायता से मस्तिष्क में स्थित ज्ञान केंद्र में पहुंचता है। ज्ञान केंद्र में उस वस्तु के गुण की अनुभूति होती है जिसे संवेदना कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि आपके शरीर में किसी स्थान पर कोई स्पर्श करें तो आपके शरीर में उस जगह पर उत्तेजना होती है इस उत्तेजना से शरीर के उस भाग में एक विक्षोभ उत्पन्न होता है। यह बिच्छू ज्ञान वाहक नालियों के द्वारा मस्तिष्क में स्थित ज्ञान केंद्र में पहुंचता है जिससे मस्तिष्क में उस स्पर्श की अनुभूति होती है जिसे मनोविज्ञान की भाषा में संवेदना कहते हैं।

संवेदना के प्रकार

संवेदना को मुख्यत: दो भागों में बांटा गया है –

1. बाह्य संवेदना 2. आंतरिक संवेदना के प्रकार–

बाह्य संवेदना के प्रकार– बाह्य संवेदना मनुष्य की ज्ञानेंद्रियों पर आधारित होती है। बाह्य संवेदनाएं निम्न पांच प्रकार की होती हैं –

1. **दृष्टि संवेदनाएं**– आंखो द्वारा प्राप्त होने वाली संवेदना को दृष्टि संवेदना कहते हैं।
2. **ध्वनि संवेदनाएं**– कानों द्वारा प्राप्त होने वाली संवेदनाओं को ध्वनि संवेदना कहते हैं।
3. **गंध संवेदनाएं**– नाक द्वारा प्राप्त होने वाली संवेदनाओं को गंद संवेदना कहते हैं।
4. **स्पर्श संवेदनाएं**–बच्चा से प्राप्त होने वाली संवेदनाओं को स्पर्श संवेदना कहते हैं।
5. **स्वाद संवेदनाएं**– जीह्वा द्वारा प्राप्त होने वाली संवेदना हो को स्वाद संवेदना कहते हैं।

आंतरिक संवेदना के प्रकार–

आंतरिक संवेदनाएं डगलस और हॉलैंड के द्वारा बताई गई हैं। आंतरिक संवेदनाएं निम्न दो प्रकार की हैं–

1. **मांसपेशिय संवेदनाएं** – मांस पेशियों में होने वाली संवेदना हो को मांस पेशिय संवेदनाएं कहते हैं।
2. **शारीरिक संवेदनाएं**– शरीर के अंदर होने वाली संवेदनाओं को शारीरिक संवेदनाएं कहते हैं।

संवेदना के स्तर

संवेदना के मुख्य तीन स्तर होते हैं –

संवेदी सीमांत – ज्ञानेंद्रियों की एक सीमा होती है अर्थात् यदि कोई आवाज बहुत दूर से आ रही हो या बहुत धीमी हो तो उस आवाज को हम नहीं सुन पाते। अत: जो आवाज सीमा के अंदर हो उसे हम संवेदी सीमांत कहते है। अर्थात् हमारी संवेदनाओं की कुछ निर्धारित सीमा होती है। इन संवेदना ओं को संवेदी सीमांत कहते हैं।

निरपेक्ष सीमांत – न्यूनतम मूल्य होना आवश्यक है। किसी वस्तु या उद्दीपक का न्यूनतम मूल्य होना जिसके द्वारा हम उसका आभास कर सकें, इस प्रकार के सीमांत को निरपेक्ष सीमांत कहते हैं।

विभेदक सीमांत– दो वस्तुओं या उद्दीपकों में अंतर होना आवश्यक है। उद्दीपकों के अंतर को विभेदक सीमांत कहते हैं।

संवेदना की उपयोगिता– संवेदना की उपयोगिता निम्न है –

1. संवेदना के द्वारा मानसिक विकास होता है
2. संवेदना प्रत्यक्षीकरण के लिए सहायक सिद्ध होती है।
3. संवेदना संप्रत्यय में सहायक सिद्ध होती है।
4. किसी वस्तु या उद्दीपक का आभासी ज्ञान कराना।
5. अवधान के विकास के लिए उपयोगी।

संवेदना के गुण– संवेदना के गुण निम्न हैं –

1. प्रत्येक संवेदना अद्वितीय होते हैं
2. संवेदना विशिष्ट होती है
3. एक संवेदना दूसरी संवेदना से स्पष्ट होती है
4. एक निर्धारित विस्तार होता है
5. प्रत्येक संवेदना का स्थानीय लक्षण होता है
6. संवेदना का प्रसार होता है
7. संवेदना की एक अवधि होती है।

इस प्रकार संवेदना अर्थात् समवेदना या समानुभूति, अथवा आंतरिक वेदना को हम संवेदना कह सकते हैं, जिसमें दु:खी व्यक्ति को अपने समकक्ष माना जाता है। दूसरे के प्रति आवेग, व्याकुलता, छटपटाहट या फिर आस्था, प्रेम, करुणा का भाव मन में जागना संवेदना है। यही संवेदना रचनाकार की रचना में प्यास हो वह इसी संवेदना को पंचेन्द्रियों के माध्यम से पाठकों के हृदय तक पहुँचाता है।

साहित्य सृजन प्रक्रिया के लिए संवेदनशीलता को आवश्यक माना गया है। संवेदनशीलता एक अर्थ में युगीन परिवेश की स्थितियों को ग्रहण करने की मानसिक तैयारी है। संवेदनशील रचनाकार युगीन परिवेश की स्थितियों को महसूस करता है। वह उन स्थितियों की उपेक्षा न करते हुए परिवेश की अनिवार्यता को स्वीकार कर उसे समझने का प्रयास करता है। आखिर साहित्यकार भी तो एक मनुष्य ही होता है। परन्तु आम आदमी की अपेक्षा उसमें संवेदनशीलता एवं भावुकता अधिक होता है। इसी कारण साहित्य में मनोगत संवेदनाओं का अभिव्यक्तिकरण तीव्र रूप में होती है। मराठी समीक्षक प्रो. अरविन्द वामन कुलकर्णी कहते हैं– 'कोणत्याही अनुभवातील सूक्ष्मातिसूक्ष्म बारकावे टिपण्याची क्षमता म्हणजे संवेदनक्षमता होय' अर्थात् किसी भी अनुभूति के अतिसूक्ष्म पहलूओं को ग्रहण करने की क्षमता रखना ही संवेदनशीलता है। साहित्यकार सामाजिक यथार्थ से अपने साहित्य सृजन के लिए सामग्री जुटाता है। विषय–वस्तु का अभिप्राय सामग्री हैं, जो कच्चा माल कहलाती हैं, जिसका उपयोग साहित्यकार अपनी साहित्य निर्मिती के लिए करता है। साहित्य रचना के लिए वस्तु अर्थात् सामग्री की आवश्यकता अनिवार्य होती हैं लेकिन इतने भर से ही साहित्य रचना निर्माण नहीं होता। ज्ञानेंद्रियों के द्वारा वातावरण में उपस्थित वस्तु या उद्दीपक को जानना संवेदना कहलाता है।

संदर्भ सूची

- आदित्य नारायण तिवारी, शिक्षा मनोविज्ञान (भाग–1) पृ. – 556
- आनंद प्रकाश दीक्षित: आलोचना प्रक्रिया और स्वरुप पृ. 43
- तपेश चतुर्वेदी, कविता में संवेदना का स्वरुप – 112
- धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोष भाग – 2 पृ. – 863
- डॉ. वदरीनाथ कपूर: वैज्ञानिक परिभाषा कोष, पृ. 215
- भोलानाथ तिवारी तथा महेन्द्र चतुर्वेदी, व्यावहारिक हिंदी अंग्रेजी शब्दकोष –646
- राजकमल वोरा –संवेदना और सौदर्य पृ– 52
- शेखर शर्मा, समकालीन संवेदना और हिंदी नाटक पृ. – 24–25

ISSN 2278 - 0327

किन्नर विमर्श

डॉ. विशाल भारद्वाज
असिस्टैण्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर।

''किं नरो वा नारी वा'' अर्थात् 'क्या यह नर है अथवा नारी' - इस व्युत्पत्ति के आधार पर 'किन्नर' शब्द बना है। संस्कृत साहित्य में प्राप्त विभिन्न उल्लेखों से ज्ञात होता है कि किन्नर जाति के लोग अधिकतर पहाड़ों पर निवास किया करते थे तथा गायन में सिद्धहस्त थे। गायन विद्या में निपुण किन्नरों के लिये यजुर्वेद में 'मयु' शब्द का प्रयोग किया गया है तथा इन्हें प्रजापति के लिये नियोजित करने की बात कही गयी है - ''*मयु: प्राजापत्य..... ।।*''[1]

किन्नर जाति के परिप्रेक्ष्य में महर्षि वाल्मीकि द्वारा विरचित रामायण महाकाव्य में वर्णित प्रजापति कर्दम के पुत्र एवं बाह्लिक देश के शासक श्रीमान् इल राजा इल की कथा का यहां प्रतिपादन करना अत्यन्त अपेक्षित है। शिकार खेलते हुये वे उस प्रदेश में पहुंच गये जहां भगवान् शंकर स्त्री रूप में प्रकट होकर देवी पार्वती का प्रिय करने की अभिलाषा से वहां के पर्वतीय झरने के पास उनके साथ विहार करते थे। उस वन के विभिन्न भागों में जहां-जहां पुलिंग नामधारी जन्तु अथवा वृक्ष थे, वे सभी के सभी स्त्रीलिंग में परिणत हो गये थे -

''कृत्वा स्त्रीरूपमात्मानमुमेषो गोपतिध्वज:।
देव्या: प्रियचिकीर्षु: संस्तस्मिन् पर्वतनिर्झरे।।
यत्र यत्र वनोद्देशे सत्त्वा: पुरुषवादिन:।
वृक्षा: पुरुषनामानस्ते सर्वे स्त्रीजना भवन्।।''[2]

वहां पहुंचकर राजा इल भी स्वयं को स्त्रीत्व में परिवर्तित हुआ देखकर अत्यन्त दु:खी हुये। जब राजा इल ने भगवान् शिव से पुरुषत्व प्राप्ति की अभिलाषा प्रकट की तो उन्होंने राजा इल को यह कह कर मना कर दिया कि वह पुरुषत्व को छोड़कर अन्य कोई भी वरदान मांग ले-

''...उत्तिष्ठो श्रिष्ठ राजर्षे कार्दमेय महाबल।।
पुरुषत्वमृते सौम्य वरं वरय सुव्रत।.......''[3]

भगवती उमा से याचना करने पर उसे भगवती ने कहा,'' राजन्! तुम पुरुषत्व प्राप्तिरूप जो वर चाहते हो, उसके आधे भाग के दाता तो महादेव जी हैं और आधा वर मैं तुम्हें प्रदान कर सकती हूं। अर्थात् तुम्हें प्रदान हुये आजीवन स्त्रीत्व को मैं आधे जीवन के लिये पुरुषत्व में परिवर्तित कर सकती हूं। अत: तुम मेरा दिया हुआ आधा वरदान स्वीकार करो और तुम जितने-जितने काल तक स्त्री और पुरुष रहना चाहो, उसे मेरे सम्मुख कहो'' -''*...अर्धस्य देवो वरदो वरार्धस्य तव ह्यहम्।।*
तस्मादर्धं गृहाण त्वं स्त्रीपुंसोर्यावदिच्छसि।...''[4]

तब राजा इल ने एक मास तक भूतल पर अनुपम रूपवती स्त्री के रूप में तथा एक मास तक पुरुष के रूप में रहने का वरदान मांगा, जिसे भगवती उमा ने सहर्ष प्रदान कर दिया। तदनन्तर वह राजा इल त्रिभुवनसुन्दरी नारी 'इला' होकर वन में विचरने लगा। वहां सोमदेव के पुत्र बुध तपस्या कर रहे थे तथा वे इला को देखकर इसके अद्भुत रूप-सौन्दर्य को देखकर मोहित हो गये। इला के साथ विचरण करने वाली उसकी सखियों से बुध ने इला का परिचय पूछा। इला की सखियों ने बुध को बताया कि इला उनकी स्वामिनी है तथा इसका कोई पति नहीं है। वह वनप्रान्त में उनके साथ अपनी इच्छा से विचरण करती है। तब ब्राह्मण बुध ने पुण्यमयी आवर्तनी विद्या का आवर्तन करते हुये उनसे कहा,'' तुम सब लोग किंपुरुषी (किन्नरी) होकर पर्वत के किनारे रहोगी। इस पर्वत पर शीघ्र ही अपने लिये निवास स्थान बना लो। पत्र तथा फल-मूल से ही तुम सबको सदा जीवन निर्वाह करना होगा। आगे चलकर तुम सभी स्त्रियां किंपुरुष नामक पतियों को प्राप्त कर लोगी।'' किंपुरुषी नाम से प्रसिद्ध होकर विशाल संख्या में वे स्त्रियां सोमपुत्र बुध की बात सुनकर उस पर्वत पर निवास करने लगीं -

'' अत्र किंपुरुषीर्भूत्वा शैलरोधसि वत्स्यथ।
आवासस्तु गिरावस्मिञ्शीघ्रमेव विधीयताम्।।
मूलपत्रफलै: सर्वा वर्तयिष्यथ नित्यदा।
स्त्रिय: किंपुरुषान्नाम भर्तृन् समुपलप्स्यथ।।
ता: श्रुत्वा सोमपुत्रस्य स्त्रिय: किंपुरुषीकृता:।
उपासांचक्रिरे शैलं वध्वस्ता बहुलास्तदा।।''[5]

हिमालय के औषधिप्रस्थ नामक नगर में निवास करने वाली इस प्रजाति के लिये महाकवि कालिदास ने भी 'कुमारसम्भवम्' महाकाव्य में 'किन्नर' के स्थान पर 'किम्पुरुषा:' शब्द का प्रयोग भी किया है -

'' जितसिंहभया नागा यत्राष्वा बिलयोनय:।
यक्षा: किम्पुरुषा: पौरा योषितो वनदेवता:।।''[6]

किन्नरों को महाकवि कालिदास ने मधुर तथा सुरीले कण्ठ वाले गायकों के रूप में चित्रित किया है। कम्बोज के शासकों को पराजित करने के उपरान्त महाराज रघु ने हिमालय पर्वत की ओर प्रस्थान करना प्रारम्भ किया। वहां पहाड़ी गणों के साथ महाराज रघु का घनघोर युद्ध हुआ। महाराज रघु द्वारा धुआंधार बाण बरसाकर उत्सवसंकेत पहाड़ियों के छक्के छुड़ा दिये जाने पर किन्नरों द्वारा मिलकर रघु के बाहुबल की प्रशंसा में अनेक गीत गाने का उल्लेख प्राप्त होता है -

'' शरैरुत्सवसंकेतान्स कृत्वा विरतोत्सवान्।
जयोदाहरणं बाह्वोर्गापयामास किन्नरान्।।''[7]

इक्ष्वाकुवंशीय राजा राम द्वारा अष्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किये जाने पर

महर्षि वाल्मीकि जी की आज्ञा से सीता जी के पुत्र लव तथा कुष महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित 'रामायण' को सस्वर गाते हुये वहां घूमने लगे। एक तो राम का चरित्र तथा उस पर महर्षि वाल्मीकि उसके रचयिता और फिर किन्नरों के समान मधुर कण्ठ वाले लव तथा कुश उसके गायक। इस महाकाव्य की इन्हीं विशेषताओं के कारण ही यह बात सिद्ध होती है कि इस धरातल पर कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं होगा जोकि इसको सुनकर मोहित न हो जाये –

'' वृत्तं रामस्य वाल्मीके: कृतिस्तौ किन्नरस्वनौ।
किं तद्येन मनो हर्तुमलं स्यातां न शृण्वताम्।।'' [8]

महाकवि कालिदास का लव तथा कुश के मधुर कण्ठ की तुलना किन्नरों के मधुर कण्ठ से करना किन्नरों की सरस गायन प्रतिभा को अभिव्यक्त करता है।

किन्नरों द्वारा मधुर कण्ठ के साथ-साथ ऊंचे स्वर से गायन करने का उल्लेख भी महाकवि कालिदास ने किया है। कुमारसम्भवम् महाकाव्य में सुमेरु पर्वत की शोभा का वर्णन करते हुये महाकवि कालिदास कहते हैं कि सुमेरु पर्वत पर ऐसे छेद वाले बांस बहुतायत से होते हैं, जो वायु भर जाने पर बजने लगते हैं। उनके बजने से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो ऊंचे स्वर से गीत गाने वाले किन्नरों के गायन के साथ वे संगत कर रहे हों –

'' य: पूरयन् कीचकरन्ध्रभागान् दरीमुखोत्थेन समीरणेन।
उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणां तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम्।।'' [9]

एक अन्यत्र स्थल पर वर्णन प्राप्त होता है कि हिमालय पर्वत पर पोले बांसों में जब वायु भरती है तो उनमें से मीठे-मीठे स्वर निकलने लगते हैं तथा किन्नरों की स्त्रियां भी उनसे स्वर मिलाकर त्रिपुर-विजय के गीत गाने लगती हैं –*'' शब्दायन्ते मधुरमनिलै: कीचका: पूर्यमाणा: संसक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभि:।...''*[10]

नलचम्पू में किन्नरों के गीतों को सुनकर लोगों के रमणाभिमुख होने का उल्लेख किया गया है। वहां सन्दर्भ प्राप्त होता है कि चांदी से निर्मित शिखरों वाले सुशोभित सानुनायक पर्वत पर गाते हुये किन्नरों को सुनकर कौन व्यक्ति रमणाभिमुख नहीं होता था अर्थात् सभी जन*'' राजते राजतेनायं सानुना सानुनायक:। यस्मिन्निषम्य गायन्तं किन्नरं किं न रंस्यते।।''*[11]

'मेघदूतम्' में वर्णन प्राप्त होता है कि अलकापुरी नगरी में अचल सम्पत्ति वाले कामी लोग अप्सराओं के साथ बातें करते थे तथा ऊंचे स्वर में मधुर कण्ठों से कुबेर का यश गाने वाले किन्नरों के साथ बैठे हुये वैभ्राज नामक बाहरी उपवन में रात-दिन विहार करते थे –

'' अक्षय्यान्तर्भवननिधय: प्रत्यहं रक्तकण्ठैरुद्गायद्भिर्धनपतियष: किन्नरैर्यत्र सार्द्धम्।
वैभ्राजाख्यं विबुधवनितावारमुख्यासहाया बद्धालापा बहिरुपवनं कामिनो निर्विषन्ति।।'' [12]

किन्नर स्त्रियों का उल्लेख भी कुमारसम्भवम् महाकाव्य में किया गया है। हिमालय की गुफाओं में निवास करने वाली किन्नरियों के लज्जाशील होने का संकेत भी महाकवि कालिदास ने देते हुये कहा है–

'' यत्रांषुकाक्षेपविलज्जितानां यदृच्छया किम्पुरुषांगनानाम्।
दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बास्तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति।।'' [13]

किन्नरी राजकुमारियों की बात भी महाकवि कालिदास ने की है। भगवान् शिव से विवाह करने की अभिलाषा रखने वाली पार्वती जब महादेव जी के गीत गाने लगती थीं, तब इनकी संगीत की सखियां और वनवासिनी किन्नरी राजकुमारियां उनके रुंधे गले से निकले हुये शब्दों को सुन-सुनकर प्राय: आंसू बहा देती थीं –

'' उपात्तवर्णे चरिते पिनाकिन: सबाष्पकण्ठस्खलितै: पदैरियम्।
अनेकश: किन्नरराजकन्यका वनान्तसंगीतसखीररोदयत्।।'' [14]

महाकवि अश्वघोष ने मन्दराचल में किन्नरों के निवास का संकेत दिया है। सौन्दरनन्द महाकाव्य में उल्लेख प्राप्त होता है कि इक्ष्वाकुवंशीय राजकुमारों द्वारा स्थापित धनवान्, विद्वान्, शान्त तथा अनुबद्ध लोगों से युक्त नगर उसी प्रकार सुशोभित हुआ सुशोभित हुआ जिस प्रकार किन्नरों से भरा हुआ मन्दराचल पर्वत –

''वसुमद्भिरविभ्रान्तैरलंविद्यैरविस्मितै:।
यद् बभासे नरै: कीर्णं मन्दर: किन्नरैरिव।।''[15]

विभिन्न सन्दर्भों से ऐसा प्रतीत होता है कि किन्नरों का निवास स्थान अधिकतर पहाड़ों पर ही होता था। सौन्दरनन्द महाकाव्य में जब नन्द के संन्यासी होने का समाचार उसकी पत्नी सुन्दरी को मिलता है तो वह जोर-जोर से रोना प्रारम्भ कर देती है। उसके करुण रुदन को सुनकर महल के भीतरी भाग से सारी महिलायें घबराकर ठीक उसी प्रकार महल की छत पर चढ़ जाती हैं, जिस प्रकार कभी-कभी भयभीत होकर किन्नरियां पहाड़ की चोटियों पर चढ़ जाती हैं –

''तां चारुदन्तीं प्रसभं रुदन्तीं संश्रुत्य नार्य: परमाभितप्ता:।
अन्तर्गुहादारुरुहुर्विमानं त्रासेन किन्नर्य इवाद्रिपृष्ठम्।।''[16]

किन्नरों में भी अपनी प्रियतमाओं के प्रति सामान्य पुरुष की भान्ति ही स्नेह का भाव होता है। इस तथ्य का प्रतिपादन करते हुये महाकवि अश्वघोष ने कहा है कि कामपीड़ित किन्नरों का मन कामिनी के बिना पहाड़ की चोटियों पर घूमते हुये भी नहीं रमता –

''...गिरिसानुषु कामिनीमृते कृतरेता इव किन्नरश्चरन्।।''[17]

इस प्रकार स्पष्ट है कि आज समाज में किन्नरों को वह आदर प्राप्त नहीं है, जोकि संस्कृत साहित्य में प्राप्त विभिन्न साहित्यिक सन्दर्भों से ज्ञात और पुष्ट होता है।

सन्दर्भ

1. यजुर्वेद, 24/31
2. वाल्मीकीयरामायण, 7/87/12-13
3. वाल्मीकीयरामायण, 7/87/19-20
4. वाल्मीकीयरामायण, 7/87/24-25
5. वाल्मीकीयरामायण, 7/88/22-24
6. कुमारसम्भवम् , 6/39
7. रघुवंषम् , 4/78
8. रघुवंषम् , 15/64
9. कुमारसम्भवम् , 1/8
10. मेघदूतम् , पूर्वमेघ, 60
11. नलचम्पू , 2/8
12. मेघदूतम् , उश्ररमेघ, 10
13. कुमारसम्भवम् , 1/14
14. कुमारसम्भवम् , 5/56
15. सौन्दरनन्द, 1/48
16. सौन्दरनन्द, 6/35
17. सौन्दरनन्द, 8/12

ओमीश परुथी के साहित्य में नारी की दशा व दिशा

डॉ. कविता चौधरी
सह-आचार्य, शोध-निर्देशक (हिंदी-विभाग)
ओम स्टेर्लिंग ग्लोबल, विश्वविद्यालय
हिसार, हरियाणा

राजेश्री
शोध-छात्रा, हिंदी
ओम स्टेर्लिंग ग्लोबल, विश्वविद्यालय
हिसार, हरियाणा

सारांश

ओमीश परुथी जी ने हिंदी के आधुनिक लेखन को नई दिशा व नया भाव बोध और नई भंगिमा व कलेवर प्रदान कर हिंदी साहित्य में विशिष्ट स्थान अर्जित किया है। उन्होंने मानवीय स्वतंत्रता और नैतिक ईमानदारी के लिए आदमी को प्रबुद्ध किया है। मानवीय सरोकार उनकी रचनाओं में सर्वोपरि है। उनका साहित्य कथ्य और शिल्प की दृष्टि से मंजा हुआ है। उन्होंने अपनी रचनाओं में जन साधारण की भावनाओं, परिस्थितियों और उनकी समस्याओं के साथ-साथ नारी की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण किया है।

मुख्य शब्द : मानवीय सरोकार, शिल्प, शोषण, यथार्थ, जागरूक

प्रस्तावना :

दुनिया की सार्थकता उसकी गतिशीलता में है और इसको गतिशील रखने में स्त्री और पुरुष दो तत्त्व हैं। मानव सृष्टि का विकास इन दोनों पर आधारित है। न अकेला पुरुष सृष्टि का निर्माण कर सकता है और न अकेली स्त्री मानव जाति की रचना कर सकती है। दोनों का महत्व बराबर होने पर भी पुरुष को अधिक महत्व दिया गया है। शोषण हमेशा स्त्री का हुआ है और शोषक हमेशा पुरुष रहा है। प्राचीन काल में स्त्री पुरुष की प्रेरणा और उसकी शक्ति के रूप में वेदों में जानी गई, परंतु मध्यकाल में स्त्री की स्थिति दारुण हो गई और आधुनिक काल में नारी की दशा में सुधार तो हुआ परंतु उसकी स्थिति आज भी ज्यादा अच्छी नहीं है। नारी की साक्षरता दर बढ़ रही है और वह घर की चारदीवारी से निकलकर कामकाजी हो रही है मगर उनकी तरक्की के साथ-साथ उनके विरूद्ध आपराधिक मामलों में बढ़ोतरी हो रही है, जो चिंता का विषय है। परुथी जी ने हर विषय पर अपनी लेखनी चलाई है, जिसमें मुख्य रूप से नारी शोषण का चित्रण यथार्थ के धरातल पर किया है।

उद्देश्य :

प्रस्तुत शोध-पत्र के लेखन का उद्देश्य ओमीश परुथी की रचनाओं के माध्यम से नारी शोषण से समाज को रूबरू करवाना है। उनके साहित्य को जन-जन तक पहुंचाते हुए नारी के प्रति सोच में बदलाव लाना है। नारी अस्तित्व हेतु परुथी जी द्वारा दिए गए सुझावों से समाज को जागरूक करना है।

शोध प्रविधि :

प्रस्तुत शोधपत्र लेखन में विवेचनात्मक विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि को आधार बनाया गया है।

नारी चित्रण :

नारी ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना है, जिसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। संसार में दो शक्तियां हैं, एक तलवार तो दूसरी कलम, किंतु इन दोनों से भी अधिक शक्तिशाली एक तीसरी शक्ति भी है- नारी।

नारी समाज का वह हिस्सा है, जिसके बिना सब कुछ अधूरा है। नारी का समाज में महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इसके बिना पुरुष भी पूर्ण नहीं है। पुरुष का जन्म भी नारी से ही संभव है। नारी के योगदान के बिना एक समृद्ध समाज की कल्पना नहीं की जा सकती।

वैदिक युग में नारी की छवि सामाजिक दृष्टि से सम्मानजनक थी। वह स्वच्छंदतापूर्वक सामाजिक कार्यों में शामिल हो सकती थी। उत्तर वैदिक काल में नारी की वह गौरवपूर्ण स्थिति नहीं रह सकी क्योंकि नारी को लेकर पुरुष की मानसिकता में अंतर आ गया और उसे परिवार व समाज में आश्रित समझा जाने लगा। धीरे-धीरे नारी का स्वतंत्र व्यक्तित्व समाप्त हो गया। लड़की को मायके में पराया धन और ससुराल में पराये घर की कहते हैं। भारतीय नारी अपनेपन से हमेशा अपरिचित है, यह तो पुराने समय से ही शरणार्थी है -

'बीस वर्ष तक पराया धन
विवाह के बाद
लड़की पराये घर की
अपनत्व से सदैव अपरिचित
भारतीय नारी या चिरविस्थापित?' [1]

20वीं शताब्दी में नारी संगठनों, समाज सुधारकों एवं सरकार द्वारा नारी की स्थिति में किए गए सुधार से नारी और समाज के अंत:संबंध में पर्याप्त परिवर्तन लक्षित हुए। कानून की दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय नारी की समाज में सिर उठाकर चलने, पुरुष के समान प्रत्येक अधिकार का उपयोग करने की पूर्ण आजादी दी गई है।

नारी शोषण :

नारी की स्थिति में सुधार तो हुआ है मगर इनकी दशा आज भी

दयनीय है क्योंकि इन्हें अत्याचारों से मुक्ति नहीं मिल पाई है। परुथी जी ने 'इंतिहा' कहानी में दलित लड़की के साथ हुए शोषण का चित्रण अत्यंत संवेदनशीलता के साथ किया है। दलित बस्ती में एक लड़की को समय से पूर्व मल-निवृति का आवेग हुआ। घर में पखाना नहीं था, बाहर बहुत अंधेरा था। उसकी बाहर जाने की हिम्मत नहीं हो रही थी, परंतु मजबूरीवश राम-राम जपते हुए वह घर से निकल पड़ी। खेत में सुरक्षित जगह देखकर आवेग-निवृत होकर घर आ रही थी कि दो दरिंदों ने उसे धर-दबोच लिया। चीखने-चिल्लाने पर उसके मुंह को जोर से दबा कर अपनी हवस का शिकार बना लिया। लड़की अपनी दुर्दशा देख सुबकते हुए बोली- 'कमीनों ! नरक में जाओगे। कीड़े पड़ेंगे। मेरी जिंदगी बर्बाद करने वालो। तुम्हारे घर पर भी कहर बरसें।' [2]

वह लड़की बेइज्जत होकर घर न जाकर रेल के नीचे कटने के लिए कूद पड़ी तो वहां से गुजर रहे सिपाही ने उसे वहां से बचा तो लिया, मगर थाने के पीछे बने कमरे में ले जाकर मुंह काला करने लगा, लड़की हाथ-पांव जोड़ने लगी - 'ऐसा न करो माई- बाप ! मैं तो पहले ही जुल्म की मारी हूँ ।'.....'हाथ जोड़ती हूँ। मुझे मेहरबानी कर जेल में डाल दो। फिर नरक में न धकेल.....।'[3]

'श्रेयसी' कहानी में भी कॉलेज के चपरासी काशी की बेटी मृणाल को जसवंत चौधरी का बेटा शंटी कॉलेज से लौटते समय दिन-दहाड़े उठा ले गया। हवस पूरी करने के बाद अगले दिन अधमरी करके पास के गांव में फेंक गया।

'अंतहीन' कहानी में हिमांशु द्वारा रितु का शोषण करते दर्शाया गया है। ये दोनों प्रेमी-प्रेमिका हैं। हिमांशु का दोस्त कांत कैंसर की आखिरी स्टेज पर है। हिमांशु कांत को खुश देखने के लिए रितु को कांत से प्रेम करने का अभिनय करने को कहता है, तब रितु चिढ़ते हुए कहती है - 'व्हॉट नानसेंस! तुम कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हो? मैं तुम्हारे अलावा किसी के बारे में ऐसा सोच भी नहीं सकती।'[4]

वह हिमांशु द्वारा ज्यादा दबाव देने पर कांत से प्रेम का अभिनय करती है, जिससे कांत ठीक होने लगता है। हिमांशु रितु से ये नाटक जारी रखने को कहता है, रितु नाराजगी जाहिर करते हुए कहती है - 'मैं औरत हूँ। स्टेज की कलाकार नहीं। दोहरी भूमिका निभाते-निभाते मेरा दम घुटने लगा है। तुम पर दोस्ती का जुनून हावी है, तुम न समझ पाओगे मेरे अंतस की सुक्ष्म उलझनें। मुझसे और न होगा। मुझे मुक्त करो। मुझे जाने दो।' [5]

'पापा! लगा लिया ना दाग़' कहानी में भी कामवाली की बेटी बीना के लिए सेठ ताराचंद की गंदी मानसिकता को दर्शाया है। सेठ द्वारा सूट के बारे में पूछने पर बीना ने डरे-सहमे स्वर में कहा - 'अंकल जी, दोनों सूट माँ ने रख लिए हैं। उसने पहले पहन लिए, उसे बड़े पसंद आए .... मुझे नया सूट सिलवा कर देने को कह रही थी।'[6] बीना की आँखों में भय मिश्रित उलझाव उभर आया ।

परुथी जी ने गद्य के साथ-साथ काव्य में भी नारी की दशा को उजागर किया है। 'द्वापर की दहलीज' कविता में नारी की अत्यंत दयनीय दशा का मार्मिक चित्रण किया है -

' डाली-डाली
नोंच ली जाती है उसकी
माली दूर हो जाते हैं
सब देख।
दर-दरवाज़े
भद्र पुरुष कर लेते बंद।' [7]

कानून में नारी को अधिकार तो बहुत मिले हैं परंतु उस पर अपराध बढ़ते ही जा रहे हैं और अपराधी कानून की परवाह किए बिना आजाद घूम रहे हैं -

' सृष्टि की वह लता सुंदरतम्
अवलंब बिना, बढ़ने को तत्पर
उसका हरसाना न भाता कुछ को
पत्र-पुष्प नोच डाले उसके
क्षत-विक्षत वह पड़ी धरा पे
आँखें सजल, अधर मौन हैं
फब्तियाँ सुन, घुटती भीतर।'[8]

'शक्ति हुई अपाहिज' कविता में मानव रूपी भूखा भेड़िया बेरहमी से अबला को नोच डालता है और प्रशासन चुपचाप देखता रह जाता है

' इक बार फिर से
टूटती रही रगें
तड़पती रही रूह
सिसकते रहे जज़्बात।
शक्ति हुई अपाहिज
नारी भई अबला।' [9]

नारी की बदलती सोच :

नारी को बिना किसी भेदभाव के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने के अधिकार से ही नारी की परिस्थितियों में बदलाव आया है। आज की नारी पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ रही है और यही नहीं समाज और सरकार भी इसमें महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

समाज में बराबरी के लिए, आर्थिक विकास के लिए, लोकतंत्र को मजबूत करने के लिए, लैंगिक समता लाने के लिए नारी को सशक्त होना जरूरी है।

वर्तमान समय में महिला सदियों पुरानी परंपराओं और दुष्टताओं से लोहा ले रही है। बंधनों से मुक्त होकर अपने निर्णय खुद लेने लगी है। उन्होंने शिक्षा के साथ-साथ समाज में भी अपना वर्चस्व बनाना

शुरू कर दिया है। आजकल वह अन्याय, शोषण और अत्याचार के खिलाफपूरी ताकत से विद्रोह करती दिखाई देती है।

'श्रेयसी' कहानी में लेखक ने नारी के सशक्त होने का भी वर्णन किया है । मृणाल के साथ हुए रेप की घटना जब श्रेयसी को सहेली आस्था से पता चली तो श्रेयसी कॉलेज समय में बनाई फोरम के बारे में पूछती है – 'किसी जमाने में हमने मिलकर कॉलेज में एक फोरम बनाई थी– 'अस्मिता'। नगर की जागरूक महिलाओं के साथ मिलकर नारी सशक्तिकरण के लिए कुछ आयोजन भी किए थे, अब भी सक्रिय है क्या 'अस्मिता'?'[10]

श्रेयसी के समझाने पर भी उनके पिता ने रेपिस्ट का केस नहीं छोड़ा तब श्रेयसी वापिस हॉस्टल जाने के बात कहती है तो उसकी सहेली आस्था उसे समझाते हुए कहती है – 'आई डोंट एप्रूव ऑफ इट। बी करजियस। यह तो एस्केपईजम होगा.... आज शाम शहर की कुछ संस्थाएं मिलकर मृणाल के केस में प्रशासन की लेट–लतीफी के विरोध में जागरण–यात्रा निकाल रही हैं अगर तुम ज्वाइन करना चाहती हो, तो अहमदाबाद जाने का इरादा छोड़ दो। पर यह समझकर आना कि तुम्हारे पापा के विरोध में भी प्रदर्शन हो सकता है। पुतला भी जलाया जा सकता है।'[11]

श्रेयसी अपने पिता से रेपिस्ट का केस छुड़वाने के लिए अनशन पर बैठ जाती है। श्रेयसी की माँ ने उसके पिता को समझाने की बहुत कोशिश की मगर वे नहीं माने तो उसने श्रेयसी की दादी को गांव से बुला लिया। दादी के समझाने पर भी श्रेयसी के पिता नहीं मान रहे थे तब दादी ने कहा –'ठीक है, आज से मैं भी अन्न ग्रहण न करूंगी। जल भी नहीं। देखती हूं तू कैसे नहीं मानता।'[12] अंत में घर की नारी शक्ति को देखकर डी.के.शाह को रेपिस्ट का केस छोड़ना पड़ा। इस प्रकार नारी शक्ति की जीत हुई।

'इंतिहा' कहानी में सिपाही ने दलित लड़की को अपनी हवस का शिकार बना लिया लड़की सुबकती रही मगर अंत में हिम्मत करके ब्लेड से सिपाही के अंग को काट डाला । सिपाही की हालत देखकर लड़की हंसते हुए बोली– 'हरामी! अब किसी और को तो नरक में नहीं लाएगा।'[13] अंत में लड़की ने अपने अत्याचारों का बदला ले लिया।

आज नारी की सोच बदली है और उसके कार्यक्षेत्र बदल गए हैं। वह हर क्षेत्र को अपने प्रभाव क्षेत्र में लेकर अपनी शक्ति, योग्यता, प्रखरता, क्षमता का प्रदर्शन कर रही है। नारी जमीन से लेकर आसमान तक अपना प्रभुत्व स्थापित कर रही है। परुथी जी ने 'समय के करघे पर' कविता में सशक्त होती नारी का वर्णन किया है

'उठी स्वयं
तो सहचर को भी उठाया
कल हाथ पकड़
मनु को कैलाश दर्शाया
एवरेस्ट चढ़
आज नारीत्व गर्वाया।'[14]

निष्कर्ष–

परुथी जी ने अपने साहित्य में नारी की दशा व दिशा को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया है। उन्होंने समाज में फैली समस्याओं के साथ–साथ नारी की दुर्दशा को महसूस करके उनकी स्थिति में सुधार लाने के लिए अपने साहित्य में अनेक अत्यंत सराहनीय प्रयास किए हैं। भारतीय समाज के लोगों को नारी के प्रति अपनी रूढ़ीवादी मानसिकता में बदलाव लाना होगा। समाज में बराबरी का दर्जा लेने के लिए, आर्थिक विकास के लिए, लोककतंत्र को मजबूत करने के लिए और लैंगिक समानता लाने के लिए नारी को सशक्त होना होगा। नारी में आत्म विश्वास, आत्म सम्मान, आत्म निर्भरता को जगाना जरूरी है, जो देश की उन्नति के लिए महत्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. ओमीश परुथी, आस्था के अस्थिकलश, पृष्ठ–35
2. ओमीश परुथी, सुलगती साँझ, पृष्ठ–46
3. ओमीश परुथी, सुलगती साँझ, पृष्ठ–48
4. ओमीश परुथी, सुलगती साँझ, पृष्ठ–95
5. ओमीश परुथी, सुलगती साँझ, पृष्ठ–104
6. ओमीश परुथी, सुलगती साँझ, पृष्ठ–26
7. ओमीश परुथी, आखरखोर, पृष्ठ–85
8. ओमीश परुथी, आखरखोर, पृष्ठ–57
9. ओमीश परुथी, अस्ताचल के उजाले, पृष्ठ–80
10. ओमीश परुथी, सुलगती साँझ, पृष्ठ–78
11. ओमीश परुथी, सुलगती साँझ, पृष्ठ–82
12. ओमीश परुथी, सुलगती साँझ, पृष्ठ–84
13. ओमीश परुथी, सुलगती साँझ, पृष्ठ–49
14. ओमीश परुथी, आखरखोर, पृष्ठ–98

चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'गिलिगडु' में' वृद्ध दशा

कान्ता देवी
पी-एच० डी० शोधार्थी (हिन्दी विभाग)
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

मानव जीवन की तीन अवस्थाएँ होती है बाल्यवस्था, किशोरवस्था व वृद्धावस्था। वृद्धावस्था जीवन की संध्या के समान है जिसे व्यक्ति को सहन करना ही पड़ता है। प्राचीनकाल से भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली प्रथा चली आ रही है। जिसमें सबसे बुजुर्ग आदमी घर का मुखिया होता है और उसी के नाम से पूरे घर की पहचान होती है लेकिन वर्तमान में औद्योगिकरण, नगरीकरण व आधुनिकीकरण के कारण संयुक्त परिवार लुप्त होते जा रहे हैं। आर्थिक व सामाजिक परिवर्तन के कारण संयुक्त परिवार व्यवस्था का स्थान एकाकी परिवार ने ले लिया है। ''संयुक्त परिवार प्रणाली के अन्तर्गत वृद्धों को सामाजिक सुरक्षा प्राप्त थी परन्तु जैसे-जैसे प्रौद्योगिकरण, नगरीकरण व सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि हुई वैसे ही संयुक्त परिवारों का विघटन होने लगा।''[1] भारतीय समाज में संयुक्त परिवारों का अपघटन के कारण वृद्धों की दशा अत्यन्त दयनीय होती जा रही है।

वृद्ध समस्या किसी समाज, देश की न होकर अर्न्तराष्ट्रीय स्तर की हो गई है। जिसका उदाहरण है 1982 में आस्ट्रिया की राजधानी विएना में वृद्धावस्था की समस्या पर किया गया विश्व सम्मेलन। आधुनिकता के इस युग में युवा वर्ग पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होकर अपने रीति-रिवाजों का खण्डन कर विकासोन्मुख की ओर अग्रसर तो हो रहे हैं लेकिन हमारे मूल्य, हमारे संस्कार बिसूरते जा रहे हैं। जिस आधुनिकता को समृद्धि का नाम दिया जा रहा है वही हमारी संस्कृति को निगलती जा रही है। डॉ० सरिता वशिष्ठ- ''पश्चिम से आई ये आंधी कहाँ जाकर रुकेगी, कुछ नहीं कहा जा सकता। हमारे घर, हमारे परिवार, हमारे मन्दिर है पूजा स्थल है, देवालय है जहाँ के देवी-देवता हमारे बुजुर्ग है जहाँ सदाचार और शिष्टाचार के शिखर देखे जा सकते हैं। संयुक्त परिवारों से हमारे देश का गौरव है लेकिन आज ये सब खण्डित होते जा रहे हैं।''[2] वर्तमान में वृद्धों की इस दयनीय दशा को देखते हुए हिन्दी उपन्यासकारों ने गहन लेखन किया है। बदलते परिवेश में वृद्ध अपने सम्मानपूर्ण स्तर को खोते जा रहें हैं वे अपने ही घर में उपेक्षित है। 'गिलिगडु' उपन्यास में जसवंत सिंह कुछ दिनों के लिए अपने बेटे-बहू के पास दिल्ली रहने के लिए आता है। लेकिन यहां न उनके लिए जगह थी न प्यार। हर दिन उनको महसूस कराया जाता कि वो इस घर के सदस्य नहीं बोझ है। ''कानपुर से आते ही उन्हें इस बात से प्रसन्नता हुई थी कि चलो बेटे-बहू ने टॉमी की जिम्मेदारी सौंपकर उन्हें अपनी गृहस्थी की किसी जिम्मेदारी के काबिल तो समझा। अब तो उन्हें यह भी लगने लगा है कि घर में वे सही अर्थों में किसी के लिए बुजुर्ग है तो वह केवल टॉमी है। पोते मलय-निलय के नाज-नखरे उठाने का सुख उनकी थाली का कौर नहीं।''[3] एक दिन कर्नल स्वामी जसवंत सिंह को चोट लग जाने पर उनके घर तक छोड़ने आते हैं। जसवंत सिंह की इच्छा होती है कि वह अपने अजनबी दोस्त को घर बुलाकर कॉफी पिलाए लेकिन जिस घर में वह खुद अपरिचित है किसी को घर कैसे बुलाए, ''कानपुर से दिल्ली आए हुए उन्हें अरसा हो गया घर की चौखट में दाखिल होते ही वे स्वयं को अपरिचितों की भांति प्रवेश करता हुआ अनुभव करते हैं। कैसे कहें!''[4] जसवंत सिंह अपनी बेटी शालिनी से भी अपने साथ घर में हो रहे बुरे बर्ताव का जिक्र करता है, ''उनका मानना है कि घर में एक नहीं दो कुत्ते हैं- एक टॉमी, दूसरा अवकाश प्राप्त सिविल इंजीनियर जसवंत सिंह। टॉमी की स्थिति निस्संदेह उनकी बनिसबत मजबूत है। उसकी इच्छा-अनिच्छा भी परवाह में बिछा रहता है। पूरा घर। उनके लिए किसी को बिछे रहना जरूरी नहीं लगता। टॉमी अच्छी नस्ल का कुत्ता है। सोसाइटी में उनके घर का रुतबा बढ़ाता है। उनके चलते उनका रुतबा कलंकित हुआ है। कलंकित होकर अक्षत-चंदन क्यों चढ़ाए।''[5]

आज घर में वृद्धजन की हालत अजनबी के जैसी हो गई है। खाने में उसकी इच्छा-अनिच्छा न जानकर सिर्फ औपचारिकता को पूरा करते हैं। ''दलिए का डिब्बा खाली पड़ा है। सांझ से पहले नहीं आ सकता। नाश्ते में क्या बाबूजी चीला खाना पसन्द करेंगे?''[6] उन्हें याद आ जाता है। परसो बहू सुनयना की चचेरी बहन आई थी उनके लिए मुंगौडे विशेष रूप से बने थे। पिसी दाल फ्रिज में रखी होगी। सम्भव है उन्हीं की भांति औरों से भी सदुपयोग की जानकारी ली गई हो। औरों ने चीला खानें से इनकार कर दिया होगा। वे अनिच्छा प्रकट करने की औकात नहीं रखते। इच्छा-अनिच्छा घर वालों की होती है। घर में आकर रहने वालो की नहीं। ''कई दफे उन्होंने महसूस किया है उन्हें बचे हुए सीले बिस्कुट पहुँचा दिए जाते है। बहू सुनयना का विचार होगा कि उनसे बढ़िया रद्दी की टोकरी कोई ओर हो ही नहीं सकता।''[7] कई दिनों तक कर्नल स्वामी पार्क नहीं आए थे इसलिए जसवंत सिंह को उनकी चिंता होने लगी। जसवंत सिंह हालचाल के लिए कर्नल स्वामी को फोन करने लगते हैं। तभी बहू सुनयना की भृकुटियों ने अदृश्य रहते हुए उन्हें टोका।'' आधे घन्टे से किसे फोन लगा रहे हैं बाबूजी ? घर में आने वाला कोई जरूरी फोन अटक सकता है। सुबह नरेन्द्र का फोन चार्जर पर लगा होता है।''[8] बहू सुनयना जसवंत सिंह को जल्दी ही अहसास करा देती है कि उसकी इस घर में क्या जगह है।

संयुक्त परिवार में वृद्धों को घर में सबसे ऊँचा सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था। उनके आदेश व निर्देश को मुख्य माना जाता था, घर की बहू-

बेटियाँ व घर के अन्य सदस्य उनका आदर सत्कार करते थे लेकिन वर्तमान में यह स्थिति अब बदल गई है। अब परिवार के सदस्य अपने बुजुर्गों के मान-सम्मान की धज्जियाँ उड़ाने से भी नहीं चूकते। ''आखिर बाबूजी इस संभ्रात सोसाइटी में उनकी इज्जत खाक में मिलाने पर क्यों उतारू है? अपनी उम्र का लिहाज किया होता। अभी भी जवानी का जोश बाकी हो तो दिक्कत कैसी? चले जाया करें रेडलाइट एरिया। कौन पेंशन कम मिलती है उन्हें जो मौजमस्ती में हाथ बंधे है। कम से कम अड़ोस-पड़ोस की किशोरियों पर तो नजर न डाले। मुँह दिखाने लायक रखे उन्हें सोसाइटी में।''[9]

वृद्धावस्था बहुत ही भयावह अवस्था है जिस तक पहुँचते-पहुँचते व्यक्ति शारीरिक रूप से अत्यधिक कमजोर हो जाता है, शरीर में अनेक रोग पनपने लगते हैं। ''वृद्धावस्था की यह पद्धति टूटना एवं कमजोरी से जुड़ी हुई है उम्र बढ़ने के साथ ही लोगों में जैविक एवं शारीरिक परिवर्तन होते हैं जो मानव शरीर के सभी भागों में परिलक्षित होते हैं।''[10] जसवंत सिंह को डकार की बीमारी है उनका बार-बार डकार लेना बहू सुनयना को पसंद नहीं नरेन्द्र पितीजी को समझाता है कि खाना खाने के बाद कमरे में घूम लिया करें। आपके डकार लेने से सुनयना का जी खराब हो जाता है। ''बिल्कुल ठीक यही सीख तुम अपनी बहू को क्यों नहीं देते? उसे नहीं सीखना चाहिए, बुजुर्गों के संग कैसे रहा जाता है? छींक,पाद, डकारें जवानी और बुढ़ापा नहीं देखती नरेन्द्र।''[11]

''वर्तमान में पारिवारिक संरचना में परिवर्तन होने तथा एकाकी परिवारों में वृद्धि व परिवार के सदस्यों की आर्थिक कार्यो में भागीदारी होने पर वृद्धों की देखभाल एक समस्या बन गई है।''[12] आधुनिकता की आड़ में व्यक्ति इतना खुदगरज हो गया है कि उसके पास अपने बुजुर्गों की सेवा व देखभाल के लिए भी समय नहीं है। जसवंत सिंह को बवासीर है इसीलिए कभी कभी पायजामे में खून के धब्बे लग जाते हैं। बहू सुनयना जसवंत सिंह से रूक्ष स्वर में कहती है ''उनके पायजामे और चड्ढी में लगे खून के धब्बे वाशिंग मशीन में नहीं छूटते। उनके बाथरूम में टिन की बट्टी रख दी गई है। कपड़े धोने डालने से पहले वे स्वयं धब्बों को रगड़ लिया करे। बच्चों के सफेद यूनिफार्म इसी लापरवाही के चलते लगभग पीले पड़ रहे।''[13]

''पश्चिमी सभ्यता के कारण छोटे परिवार की लालसा तथा रोजगार के लिए एक जगह से दूसरी जगह पलायन के कारण वृद्धों को अपने परिवार का समर्थन नहीं मिलता तथा उनकी परिवार से दूरी बढ़ जाती है।''[14] जिंदगी के इस आखिरी पड़ाव में वृद्ध को एक साथी की जरूरत होती है। अणिमा का भरा-पूरा परिवार है लेकिन परिवार के द्वारा उपेक्षित होने के कारण अकेली है। अणिमा अखबार में एक इस्तीहार निकलवाती है ''तलाश है एक पेंशनयाफ्ता विधवा रीड़र को एक अकेले या विधुर जीवन साथी की जो जीवन के आखिरी पड़ाव में उनका हमसफर बन सकें। शादीशुदा एक लड़कें और दो जवान बाल-बच्चों वाली बेटियों की माँ वह अपने दायित्वों से मुक्त हो चुकी है। बच्चे अपनी घर-गृहस्थी में रमे हुए हैं। और उन्हें अकेलापन काट रहा है। इच्छुक व्यक्ति अपना फोटो, परिचय सहित विचारार्थ प्रेषित करें।''[15]

सम्पत्ति का लोभ व्यक्ति को संकीर्ण और स्वार्थी बना देता है। सुनयना और नरेन्द्र की नजर जसवंत सिंह के बैंक लॉकर में रखे जवाहरत पर होती है। ''नरेन्द्र ने बताया कि सुबह सुनयना अपने काम से बैंक गई थी। बता रही थी कि लॉकर का किराया अचानक बहुत बढ़ गया है। बाबूजी अपने कानपुर वाले लॉकर को सरेन्डर क्यों नही कर देते? फिजूल किराया भरने का कोई अर्थ नहीं। वैसे भी घर में दो-दो लॉकर की जरूरत भी नहीं। जहाँ-तहाँ चीजें पसरी पड़ी रहें तो उनकी देखभाल में भी दिक्कत आती है।''[16]

बेटी शालिनी भी जायदाद के लालायित है। ''बाबूजी, कानपुर वाला लॉकर आप सरेंडर क्यों नही कर देते''

''लॉकर में अभी है तो बहुत कुछ बाबूजी! अम्मा के अपने कई सेट पाँच तोले की आजीवाली नथ, चांदी का ढ़ेरों सामान।''

''अम्मी हमेशा कहती रही-अपनी पचलड़ और कुन्दन का सेट अन्विता को देगी और विक्रम की बहू के लिए...''[17]

समाज में जगह-जगह वृद्धाश्रम खुले हुए हैं। इन वृद्धाश्रम में वृद्धजन या तो परिवार द्वारा पीड़ित होने पर स्वयं रहने आ जाते हैं या बच्चों द्वारा जबरदस्ती भेज दिए जाते हैं। नरेन्द्र अपने बीवी बच्चों को लेकर अमेरिका बसने के लिए जा रहा है लेकिन अपने पिताजी को साथ न ले जाकर एक वृद्धाश्रम में उनके रहने का बन्दोबस्त कर देता है। यह बात शालिनी अपने पिताजी को बताती है। ''भैया तो यहाँ तक सोच रहे हैं कि जहाँ बाबूजी का मन लगे, वे प्रसन्नचित्त रहें उन्हें वहीं रखा जाए। उन्होंने पता लगाया है कि नोएडा के सेक्टर पचपन में कोई आनंद निकेतन वृद्धाश्रम है, क्यों न उनके रहने की व्यवस्था वहीं कर दी जाए। हम उम्रों की जमात में बाबूजी का मन लगा रहेगा। भैया जगह देख आए हैं। वे बता रहें है कि बहुत सुंदर है। भोजनादि की व्यवस्था उत्तम कोटि की है। उन्हें वहाँ रखने के निर्णय से भैया पर खर्च का अतिरिक्त बोझ पड़ेगा। भैया उसे सहर्ष उठाने के लिए तैयार हैं।''[18]

आज के कथा साहित्य में उन कृतियों की भी कमी नहीं है जिनके केन्द्र में वे बुजुर्ग स्त्री व पुरुष हैं जिनकी सन्तानें परदेश चली गई है, या वहीं बस गई है और वे अपने अकेले या दुकेलेपन में अकेले ही है या कहें एक बुजुर्ग दम्पति अकेलेपन झेलते हुए उसका सामना करते हुए उनका अकेलापन हमारे मन में ऐसी टीस पैदा करता है कि हम अपने समय को, अपने दौर को, एक नयी तरह से देखने आरे अनुभव करने लगते हैं। जहाँ यह समस्या एक आयामी नहीं रह जाती, वह कई आयामों को प्रकट करने लगती है।''1921 वीं सदी में वृद्धजन और युवा पीढ़ी के बीच संवादहीनता की खाई अत्यन्त गहरी होती जा रही है। परिवार के होते हुए भी वृद्ध अकेला है। उसे अपने बच्चों से वह सहयोग नहीं मिल पाता जिसकी वह आशा रखता है। परिवार के द्वारा की गई उपेक्षा उनकी समस्या को और अधिक जटिल बना रही है। ''ऊपर से उन्हें वनवास देने का अपने ही औलादों का षडयन्त्र? द्वन्द्व में पड़े ऊभ-चुभ होते रहे कि कोई पिता अपने ही परिवार के लिए तिरस्कार का विषय कैसे हो

सकता है। उनके लिए अभी किसी ने किया ही क्या है? न पैसो-रूपयों से न असाध्य रोग के रोगी हो उन पर बोझ बने उनकी जवानी को लंगड़ी मार रहे! शालू ने कैसे सुन लिया? प्रतिवाद क्यों नहीं किया कि बाबूजी को अपने संग अमेरिका क्यों नहीं ले जाते भैया? कौन वे हवाई जहाज से लटक जाते। कानपुर छोड़ दिल्ली आने-भर को राजी नहीं थे। समझाए, बुझाए हिलने का मन बनाया। लाड़ली बेटी से कहने भर को कहा नहीं गया कि भैया के घर जगह नही तो न सही अपने बाबूजी को वह अपने पास रखेगी। उनकी सेवा को अपना सौभाग्य समझेगी। बाबूजी ने कौन अन्तर बरता उन्हें पालने में।''[20]

''भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ अभी आर्थिक विकास और आधुनिकीकरण हो रहा है। वृद्धों की हालत खराब हो रही है।''[21] युवा वर्ग का शहर की तरफ पलायन व नौकरी की तलाश के कारण अलग-अलग शहरों में जा बसे हैं। शहरों में कम जगह होने के कारण बच्चे अपने माँ-बाप को साथ नहीं ले जा पाते जिस कारण वृद्धों में अकेलेपन की भावना पनपने लगी है।''चौरानबे की बात होगी। पत्नी की मौत के बाद कर्नल स्वामी निपट अकेले हो गए थे। तीनों बेटों ने तब तक नई नौकरियां पकड़कर नए भविष्य की तलाश में नए शहरों को अपना डेरा बना लिया था। छूंछे वादों के अंबार पर उन्हें बैठाए हुए कि बहुत उन लोगों के लिए संभव हो पाएगा कि उनके अप्पूपन उनके साथ ही रह सकें। बंगलोर, हैदराबाद में कुछ ही समय में उनके अपने छोटे-मोटे फ्लैट भी हो गए। पिछली गरमियों में मंझला श्री नारायण आया था हैदराबाद से। आया वह विशेष प्रयोजन से ही था कि उनके अप्पू नोएडा वाला चार कमरों वाला फ्लैट बेवजह अगुवाए हुए हैं। फ्लैट बेचकर क्यों नहीं अप्पू उससे प्राप्त रकम तीनों भाइयों को बाट दें? उनके तंग फ्लैट उन्हें तंग कर रहे हैं। तीनों ने अपने-अपने शहर में प्लाट खरीद लिए हैं और अब उन्हें इस बात की जरूरत महसूस हो रही है कि अपने प्लाटों पर वे अपने मनपसंद बंगले का निर्माण कर जितनी जल्दी हो सकें खुले घरों में पहुँच खुलकर रह सकें। खुलकर रहने के लिए उन्हें तगड़ी रकम की जरूरत है। लोन के चक्कर में बैठे- बिठाए फंसना उन्हें मंजूर नहीं। मंजूर भी क्यों हो जब साधन घर में मौजूद हो।''[22]

वर्तमान में व्यक्ति इतना लालची व स्वार्थी हो गया है कि वह अपने विवेक को खो बैठा है। ''श्री नारायण का प्रस्ताव उन्होंने ठुकरा दिया। क्रुद्ध नारायण ने पिता पर हाथ उठा दिया। कर्नल स्वामी के रोने-चीखने का आर्त स्वर सुनकर मिस्टर एण्ड़ मिसेज श्री वास्तव का दिल दहल उठा। दरवाजा भड़भड़ाया। श्री नारायण ने उन्हें दरवाजा खोल देने की चिरौरी की। श्री नारायण ने भीतर से ही आपसी मामले में दखल न देने की धमकी दी। घबड़ाए श्री वास्तव जी ने सौ नम्बर डायल कर पुलिस सहायता बुला ली। पुलिस ने दरवाजा खुलवाया। लहूलुहान कर्नल स्वामी को 'कैलाश अस्पताल' ले जाया गया।''[23] कर्नल स्वामी की ऐसी कपूत सन्तान को देखकर मिसेज श्री वास्तव अपने आपको बहुत भाग्यशाली समझती है कि उनकी कोई औलाद नहीं है। ''ऐसी कसाई औलादों से तो निपूता भला। हमें इस बात का कोई गम नहीं कि हमारी कोई अपनी औलाद नहीं...''[24]

आज युवावर्ग बुजुर्गों के प्रति अपने कर्तव्यों से मुकर रहा है। भौतिकता के इस युग में युवा वर्ग के लिए वृद्ध आवांछनीय हो गया है। ''मानव की समृद्धि का एक ही अर्थ रह गया है भौतिक सम्पन्नता। बुजुर्गों के अनुभव को 'स्क्रेप' कहकर खारिज किया जा रहा है। वे आउटडेटेड और ओल्ड फैशंड जैसे सम्बोधनों से सम्बंधित किए जा रहे हैं।''[25] संयुक्त परिवार में जिन वृद्धजन को पूर्वज माना जाता था आज उनकी दशा अत्यन्त सोचनीय हो गई है। ''जिन संतानों के पालन-पोषण के लिए उन्होंने दिन का चैन व रात की नींद हराम की है, स्वयं भूखे रहकर उन्हें खिलाया है स्वयं गीले में सोकर उन्हें सूखे बिस्तर पर सुलाया है, मेहनत मजदूरी करके उन्हें स्वावलम्बी बनाया है, वे ही उन्हें तरह-तरह के कष्ट दे रहे हैं। उलहनाएं व प्रताडनाएं दे रहे हैं। दो रोटी के लिए तरसा रहे हैं। इतना ही नहीं उन्हें घर से निकाल रहे हैं। वृद्धाश्रम में रहने के लिए अथवा सड़कों पर भीख मांगने के लिए मजबूर कर रहे हैं।''[26]

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः-

1. के० एन० एस० यादव, एजिंग सम इमरजिंग इश्यूज, मानक पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण 2016, पृष्ठ-6
2. डॉ० सरिता वशिष्ठ, हिन्दी कथा-साहित्य में नारी विमर्श,परिषद पत्रिका, मार्च 2005, पृष्ठ-215
3. चित्रा मुद्गल, 'गिलिगडु,' पृष्ठ-10
4. वही,पृष्ठ-14
5. वही,पृष्ठ-96
6. वही,पृष्ठ-39
7. वही,पृष्ठ-86
8. वही,पृष्ठ-46
9. वही,पृष्ठ-59
10. डॉ. आर. एन. मुखर्जी. सामाजिक शोध एवं सांख्यिकी, दिल्ली संस्करण, 1997, पृष्ठ-34
11. चित्रा मुद्गल, 'गिलिगडु', पृष्ठ-80
12. परमजीत कौर ढ़िल्लन, साइको-सोशल आसपैक्ट्स ऑफएजिंग इन इण्डिया, कान्सेप्ट पब्लिसिंग, नई दिल्ली, 1992, पृष्ठ -16
13. चित्रा मुद्गल, 'गिलिगडु', पृष्ठ-71
14. वीणा एवं सरजू पटेल गन्डोतरा,एजिंग इन इन्टरडिसिप्लीनरी अप्रोच, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण-2011, पृष्ठ-4
15. चित्रा मुद्गल, 'गिलिगडु', पृष्ठ-77
16. वही, पृष्ठ-86
17. वही, पृष्ठ-95
18. वही, पृष्ठ-96-97
19. बिपाशा, जन-जून, 2009, पृष्ठ-137
20. चित्रा मुद्गल, 'गिलिगडु', पृष्ठ-102-103
21. परेश द्विवेदी (2014), वृद्धावस्था के विविध आयामः समस्या एवं चुनौतियाँ, राधा कमल मुखर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष 16 (1) जनवरी-जून, पृष्ठ-22
22. चित्रा मुद्गल, 'गिलिगडु', पृष्ठ-136-137
23. वही, पृष्ठ-137
24. वही, पृष्ठ-138
25. म. वि. कुबडे, वृद्धो की दिशा और दशा, समाज कल्याण पत्रिका, नई दिल्ली, अक्टूबर- 5 पृष्ठ-25
26. डॉ. वृन्दा सिंह, वृद्धावस्था जीवन की सांध्यबेला, प्राक्कथन

पंचतन्त्र की प्राचीनता : प्रश्न एवं विमर्श

वर्तिका मिश्रा
एस.आर.एफ., शोध छात्रा
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

शोधसार-

सम्पूर्ण संस्कृत कथा साहित्य में औपदेशिक जन्तु कथात्मक ग्रंथ के रूप में पंचतन्त्र से भला विश्व का कौन सा कथा प्रेमी परिचित नहीं है? पंचतन्त्र की कथाओं ने विश्व के समस्त विद्वानों से प्रशंसा प्राप्त की हैं। इस ग्रन्थ की लोकप्रियता बाल वर्ग से लेकर वृद्ध वर्ग तक रही फलतः प्रस्तुत शोधलेख 'पंचतन्त्र : प्रश्न एवं विमर्श' में इसकी कालावधि व इसके वैशिष्ट्य पर विचार करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द-पंचतंत्र, प्रश्न-विमर्श, नीति, नैतिक मूल्य, बाल-मंजूषा इत्यादि।

संस्कृत-वाङ्मय में कथा साहित्य का अन्यतम् एवं विशिष्ट स्थान रहा है। कथा साहित्य की सरसता, सरलता, मधुरता, रस पेशलता, रोचकता व भावाभिव्यंजकता ने विश्व के समस्त कथा-साहित्य प्रेमियों व विद्वानों से प्रशंसा प्राप्त की है।

शैलीगत दृष्टिकोण से सम्पूर्ण संस्कृत कथा साहित्य चतुर्धा विभक्त है-

1. अद्भुत कथा।
2. कल्पित कथा।
3. लोक कथा।
4. पशु कथा अथवा जन्तु कथा।

संस्कृत-वाङ्मय कथा साहित्य की उद्गम भूमि रहा है। वस्तुतः यदि सूक्ष्म अवलोकन किया जाय तो, यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि मानव की स्वाभाविक, कौतुकमयी प्रवृत्ति को जब साहित्य में स्थान मिला तब वह 'कथा-विधा' के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

भारतवर्ष में कथायें मात्र कौतुकमयी प्रवृत्ति की पूर्ति का ही साधन नहीं रहीं, अपितु नैतिक, धार्मिक, राजनैतिक चिन्तन व शिक्षण के लिए भी प्रयुक्त की जाती रहीं। इसी क्रम में अधिकांश कथा ग्रन्थों में व्यक्ति विशेष को स्थान न देकर पशु पक्षियों को स्थान दिया गया। पंचतन्त्र में इन पात्रों को विशेष स्थान दिया गया। पंचतन्त्र संस्कृत जन्तु कथा साहित्य का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इसमें निबद्ध कथायें भारतवर्ष ही नहीं अपितु सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में नितान्त प्राचीन हैं। यह ग्रन्थ अपनी नैसर्गिक उपदेशप्रद, विनोदपूर्ण शैली के कारण आबालवृद्ध प्रिय रहा है। अपने इसी स्वरूपगत वैशिष्ट्य के कारण पंचतन्त्र सदैव से ही विद्वद्गोष्ठी के मध्य विचार-विमर्श का केन्द्रबिन्दु रहा है। यथा पंचतन्त्र की रचना कब हुई? इसके प्रणेता कौन हैं? पंचतन्त्र का उदय एवं विकास का काल तथा इसकी प्राचीनता? इत्यादि।

प्रस्तुत शोधलेख इसी जिज्ञासा व अनुत्तरित प्रश्नों के सन्दर्भ में किया गया एक लघु प्रयास है। अतः 'पंचतन्त्र की प्राचीनता : प्रश्न एवं विमर्श' विषय-शीर्षक में इन्हीं बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है।

पंचतन्त्र की प्राचीनता एवं विकास

पंचतन्त्र जिन कथा-मुक्ताओं का संग्रह है वे विश्व में नितान्त प्राचीन हैं किन्तु इसके प्रणेता को लेकर विद्वानों में विप्रतिपत्तियाँ रहीं। पंचतन्त्र में विभिन्न स्थानों पर उल्लेख है कि यह ग्रन्थ आचार्य विष्णु शर्मा द्वारा लिखा गया है।

सकलार्थशास्त्रसारं जगति समालोक्य विष्णुशर्मेदम्।
तन्त्रैः पंचभिरेतच्चकार सुमनोहरं शास्त्रम्।। [1]

किन्तु संस्कृत साहित्यशास्त्र में विष्णुशर्मा के रूप में दो विद्वान् समादृत हैं। प्रथम विष्णुशर्मा के रूप में मौर्ययुगीन राजनीतिशास्त्र के प्रमुख ग्रंथ अर्थशास्त्र के प्रणेता व द्वितीय विष्णुशर्मा के रूप में पंचतन्त्र के प्रणेता। मौर्ययुगीन आचार्य विष्णुशर्मा चाणक्य के नाम से भी जाते हैं। वे अपनी कूटनीति व राजनीतिशास्त्रीय पाण्डित्य के लिए भी जाने जाते हैं फलतः पंचतन्त्र जो कि एक नीतिशास्त्रीय कथात्मक ग्रंथ है के प्रणेता के रूप में भी इन्हें ही स्वीकार किया जाता है।

किन्तु पंचतन्त्र के प्रस्तावना के श्लोकों में चाणक्य व विष्णुशर्मा को पृथक् स्वीकार किया गया है।

मनवे वाचस्पतये शुक्राय पराशराय ससुताय।
चाणक्याय च विदुषे नमोऽस्तु नयशास्कृतृभ्यः।।

यद्यपि इस सन्दर्भ में विद्वानों का मत है कि प्रस्तावना से सम्बद्ध श्लोक स्तुत्यर्थ बाद में जोड़ा गया होगा। अतएव चाणक्य व विष्णुशर्मा दोनों ही भिन्न-भिन्न स्वीकृत किये गये हैं।

पृथक् स्वीकार करने के विषय में एक अन्य मत यह भी है कि आचार्य विष्णुदत्त के रूप में प्रसिद्ध थे न कि विष्णुशर्मा। किन्तु यह मत इतना प्रमाणिक नहीं हो सकता क्योंकि शर्मा पद कुलीन वर्ग के लिए सामान्यतः प्रयुक्त होता था।

रचनाकाल की दृष्टि से पंचतन्त्र का रचयिता यदि अर्थशास्त्र के प्रणेता चाणक्य को माना जाय तो इसका समय 345 ई० पू० से 300 ईसा पूर्व मानते हैं ग्रंथ में रचयिता की आयु अस्सी वर्ष मानी गयी है। अतएव सम्भवत: यह हो सकता है कि यह उनके जीवन के अन्तिम समय की रचना रही हो। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पंचतन्त्र का रचनाकाल 300 ई० के आस पास रहा होगा।

पाश्चात्य समीक्षकों में प्रो० हर्टेल पंचतन्त्र का समय 200 ई०पू० के बाद मानते हैं।

ए०बी०कीथ इसका समय 200 ई०पू० के बाद का समय मानते हैं। मत के पीछे उनका तर्क यह है कि पंचतन्त्र में दीनार शब्द का प्रयोग हुआ है। जिसे लैटिन भाषा में *Denariu* मानते हैं।

भाषा शैली की दृष्टि से पंचतन्त्र का समय 300 ई०पू० के लगभग मानना भी उचित है। गुणाढ्यकृत बृहत्कथा में उल्लिखित पंचतन्त्र का पाठ भी सिद्ध करता है कि उस समय तक पंचतन्त्र ख्यातिलब्ध ग्रंथ था। अत: पंचतन्त्र का समय 300 ई०पू० के लगभग मानना उचित है।

पंचतन्त्र के वैशिष्ट्य को निम्न रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है–

सकलार्थशास्त्रसारं तु जीवजन्तुकथास्संयुतम्।
विश्वसाहित्यमूर्धन्यं भूषते पंचतन्त्रकम्।।

पंचतन्त्र के कथामुख से यह विदित होता है कि इसके प्रणेता अशीति वर्ष के वयोवृद्ध ज्ञानसम्पन्न नैष्ठिक कर्मकाण्डी ब्राह्मण थे। आचार्य विष्णुशर्मा समस्त शास्त्रों में पारंगत छात्र–समूह में अध्यापन हेतु प्रसिद्ध व सर्वसमादृत लब्धकीर्ति विद्वान थे। प्रस्तुत कथन की पुष्टि ग्रन्थ में उल्लिखित निम्न पंक्तियों से हो जाती है–

'*तदत्रास्ति विष्णुशर्मा नाम ब्राह्मण: सकलशास्त्रपारङ्गम: छात्रसंसदि लब्धकीर्ति:*'।[3]

ग्रन्थ में आचार्य विष्णुशर्मा दक्षिण भारत के महिलारोप्य नगर के राजा अमरशक्ति के सभासद के रूप में अभिहित किये गये हैं। महाराज अमरशक्ति के अनुरोध पर बहुशक्ति, उग्रशक्ति व अनन्तशक्ति नामक परम दुर्मेध शास्त्रविमुख उनके तीनों पुत्रों को नीतिशास्त्र में निष्णात कर देने का प्रण जब उन्होंने किया तब वे अशीति वर्ष के वयोवृद्ध ज्ञानसम्पन्न प्रबुद्ध विद्वान् थे। विष्णुशर्मा स्वभाव से परम् निर्लोभ, निष्काम, जितेन्द्रिय व अर्थलिप्सा से शून्य थे। पंचतन्त्र के प्रणेता विष्णुशर्मा ने राजपुत्रों को नीतिज्ञ बनाने का प्रण किया तब उन्होंने विद्या प्रदान करने का कार्य निर्मूल्य किया।

'*नाहं विद्याविक्रयं शासनशतेनापि करोमि।*'[4]

की भीष्म प्रतिज्ञा को सुनकर राजदरबारस्थ समस्त सभासद विस्मय से अवाक् हो गये। नीतिज्ञ बनाने जैसा दुष्कर व अकल्पनीय कार्य को उन्होंने मात्र छ: मास की अल्पावधि में सम्पन्न किया। तथा यह ग्रन्थ रत्न बालकों को प्रबुद्ध बनाने के उद्देश्य से सर्वत्र ही सर्वसमादृत वसप्रशंसित हुआ। यदि संस्कृत वाङ्मय में निबद्ध साहित्य में पंचतन्त्र को यदि 'नैतिक–बालमंजूषा' कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

ग्रन्थ के कथामुख में उद्धृत निम्नलिखित पद्य इसकी निर्भ्रान्त उद्घोषणा करता है–

अधीते य इदं नित्यं नीतिशास्त्रं श्रृणोति च।
न पराभवमाप्नोति शक्रादपि कदाचन।।[5]

पंचतन्त्र का संघटनात्मक स्वरूप

पंचतन्त्र एक नीतिशास्त्रीय कथात्मक ग्रन्थ है। सम्पूर्ण ग्रन्थ पाँच तन्त्रों में विभक्त है।

1. **मित्रभेद**–यह प्रथम तन्त्र है इसमें एक मुख्य कथा व त्रयोविंशति (23) उपकथाएं हैं।
2. **मित्रसम्प्राप्ति**–इस तन्त्र में एक मुख्य कथा व सप्त (7) उपकथाएं हैं।
3. **काकोलूकीयम्**–इसमें भी एक मुख्य कथा व सप्तदश (17) अन्य कथायें हैं।
4. **लब्धप्रकाश**–चतुर्थ तन्त्र के रूप में विख्यात इस तन्त्र में एक मुख्य कथा तथा एकादश (11) उपकथायें हैं।
5. **अपरीक्षितकारकम्**–पंचम् तन्त्र में एक मुख्य कथा तथा चतुर्दश (14) अन्य उपकथाएं हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण पंचतन्त्र पाँच भागों में विभक्त है जिनमें कुल कथाओं का योग (72) 'द्विसप्तति' है, यदि 'कथामुख' रूपी भाग का परिगणन कर लिया जाय तब यह योग त्रिसप्तति (73) हो जायेगा।

पंचतन्त्र में तन्त्र पद का सामान्य अभिप्रेत अर्थ है 'शास्त्र'।

तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेनेति तन्त्रम्।–कशिका

पंचतन्त्र के सुप्रसिद्ध पाश्चात्य समीक्षक डॉ० हर्टेल ने 'तन्त्र' पद का समुचितार्थ 'राजनीति' एवं 'नीति' से लिया है। यद्यपि श्री हर्टेल से अनेक विद्वानों का उपर्युक्त पद की व्याख्या को लेकर मतवैभिन्नय रहा है, तथा डॉ० विन्टरनित्ज, प्रो० स्पेयर, प्रो० थॉमस व श्री वेंकट सुब्बिथ आदि विद्वानों ने डॉ० हर्टेल के मत की आलोचना की है।[6]

'शब्दकल्पद्रुम' में भी 'तन्त्र' पद का अर्थ 'नीति' से नहीं लिया गया है। किन्तु पंचतन्त्र में 'तन्त्र' पद का अभिप्राय 'नीति' ही है। शास्त्रीय सन्दर्भों में 'तन्त्र' का पर्याय शास्त्र है।'शास्त्रों में किसी तथ्य का शंसन या प्रतिपादन किया जाता है तथा पंचतन्त्र में राजनीति, लोकनीति, धर्मनीति, अर्थनीति, आचारनीति आदि नैतिक तत्वों का शंसन अर्थात् प्रतिपादन किया गया है। ग्रन्थ की प्रत्येक सूक्ति में ग्रन्थकार की नीतिमत्ता परिलक्षित होती है। लोकनीति से सम्बद्ध विषयों में आचार्य की निरीक्षण शक्ति प्रशंसनीय है। पंचतन्त्र की भाषा मुहावरे व लोकोक्तियों से युक्त मनोरंजनात्मक, हास–परिहासपूर्ण, ललित अभिराम एवं हृदयावर्जक है। वाक्य विन्यास में न तो कहीं दुरूहता है और न ही भावों को समझने में दुर्बोधता है।

कथानक का वर्णन गद्य शैली में किया गया है व उपदेशात्मक

सूक्तियों को पद्य में निबद्ध किय गया है। संस्कृत जन्तु कथा साहित्य में पंचतन्त्र प्रतिनिधि ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित है। इसमें जीवन की गहराइयों को, जटिलताओं को, परम नीतितत्व विशारद विष्णु शर्मा ने जितनी सूझबूझ के साथ प्रस्तुत किया है प्रशंसनीय है। वे मानव द्वारा हीन व निकृष्ट समझे गये पशु पक्षियों की पटु कथायें सुनाकर इन उपेक्षित प्राणियों से कुछ शिक्षा ग्रहण करने की चमत्कारपूर्ण अभ्यर्थना करते है और साथ ही बुद्धि तथा बल में श्रेष्ठ होने का जो दम्भ मानव में है उसको प्रत्यक्ष चुनौती देते हैं। संस्कृत जन्तु कथायें शिक्षाप्रद होने के साथ-साथ मनोरंजरकता के दायित्व का निर्वहन भी करती हैं।

पंचतन्त्र के संस्करण

पंचतन्त्र के सर्वाधिक प्राचीन संस्करण के रूप में 'तन्त्राख्यायिका' पंचतन्त्र के नाम से विख्यात है। पंचतन्त्र के चार संस्करण विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं।

1. पहलवी भाषा में निबद्ध, सम्प्रति उपलब्ध नहीं है किन्तु इसकी कथाओं का परिचय सीरियन, तथा अरबी अनुवादों की सहायता से प्राप्त है।
2. द्वितीय संस्करण जो कि गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' में अन्तर्निविष्ट है। यह पैशाची भाषा में निबद्ध हे। यद्यपि इसका मूल भाग नष्ट हो गया किन्तु क्षेमेन्द्र रचित 'बृहत्कथामंजरी' एवम् सोमदेव कृत 'कथासरित्सागर' में इसके अंश प्राप्त होते हैं।
3. तृतीय संस्करण 'तन्त्राख्यायिका' है तथा उसी से सम्बद्ध पूर्णभद्रकृत जैन कथा संग्रह है। इस संस्करण की दो प्रतियां कश्मीर से शारदा लिपि में प्राप्त हुई हैं। हर्टेल ने 1910 ई० में यह संस्करण प्रकाशित किया था।
4. चतुर्थ संस्करण दक्षिणी पंचतन्त्र का मूल रूप है 'नेपाली पंचतन्त्र' तथा 'हितोपदेश' इस संस्करण के मूल प्रतिनिधि हैं।[7]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर पंचतन्त्र की लोकप्रियता का आकलन किया जा सकता है। जर्मनी के दो विद्वान डॉ. हर्टेल एवं डॉ. बेनफी ने पंचतन्त्र पर विशद अनुसन्धान किया है। पंचतन्त्र की कथाओं ने अपनी सर्वजनप्रियता के कारण वैश्विक भ्रमण किया है। इसका प्रमाण लॉ फान्टेन रचित 'फेबल्स' व ईसप की कथाएँ हैं, इन ग्रन्थों में पंचतन्त्र की कथाओं की स्पष्ट प्रतिच्छवि दृष्टिगोचर होती है। बाइबिल के पश्चात् यदि किसी ग्रन्थ के सर्वाधिक संस्करण निकाले गये तो इसका श्रेय पंचतन्त्र को ही जाता है। इसके लगभग 250 संस्करण विश्व की 50 से अधिक भाषाओं में उपलब्ध हैं।

ध्यातव्य है कि यूरोपीय देशों के भ्रमण से इन कथाओं ने भिन्न कलेवर धारण कर लिया किन्तु इनकी आत्मा पंचतन्त्र ही है। पंचतन्त्र की कथाओं को यहाँ नया आवरण मिला है किन्तु सार अपरिवर्तित ही रहा है।

पंचतन्त्र में दरिद्र ब्राह्मण की कथा प्रख्यात है जो सत्तू से भरे अपने घड़े को जिस पर वह अपने ऐश्वर्य का हवाई महल खड़ा कर रहा था पैर के आघात से स्वयं फोड़ डालता है इसी कथा की प्रतिच्छाया लॉ फान्टेन की दूध की मटकी ले जाने वाली 'ग्वालिन की कथा' में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।[9]

पंचतन्त्र की कथाओं ने मध्ययुगीन यूरोपीय कथा साहित्य को विशेष रूप से प्रभावित किया। बोकेचिओ, चाउसर, लॉ फॉन्टेन, रोमानारूम और डेकामेराँ की कथाओं में हम पंचतन्त्र को पाते हैं।

नि:संशय, पंचतन्त्र विश्व साहित्य की दिव्य विभूति है कथा के साथ नीति की महनीय शिक्षा प्रदान करने की सुन्दर भारतीय योजना तथा पंचतन्त्र की कथाओं में निहित मूल्य इसे काल और समय सीमा की परिधि में नहीं बाँध सकते। इस ग्रन्थ की रचना जिस भी काल या शताब्दी में हुई हो इसकी कथाओं में प्रदत्त शिक्षा इस ग्रन्थ की शाश्वतता व प्रासंगिकता को पुष्ट करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पंचतन्त्रम् कथामुखम् श्लोक सं० 3
2. पंचतन्त्रम् कथामुखम् श्लोक सं० 2
3. पंचतन्त्रम् कथामुखम् पृ०सं० 9-10
4. पंचतन्त्रम् कथामुखम् पृ०सं० 10
5. पंचतन्त्रम् कथामुखम् पृ०सं०10
6. संस्कृत साहित्य में नीतिकथा का उद्गम एवं विकास पृ०सं० 2
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास-कपिलदेव द्विवेदी पृ०सं०-577
8. संस्कृत साहित्य का इतिहास-कपिलदेव द्विवेदी पृ०सं०-580
9. संस्कृत साहित्य का इतिहास-बलदेव उपाध्याय पृ०सं०-452

ISSN 2278 - 0327

शैवाष्टक स्तोत्र काव्यों में छन्द-अलंकार योजना

हेमन्त शर्मा
पीएच.डी. शोधार्थी
संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

डॉ. सुनीता सैनी
शोध–निर्देशिका, असोसिएट प्रोफेसर
संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक

स्तुति परक काव्यों को स्तोत्रकाव्य कहा जाता है। विभिन्न कवियों ने संस्कृत में अनेक स्तोत्र काव्यों की रचना की है। अपने इष्ट देव या देवी की स्तुति करने के लिए संस्कृत कवियों ने प्राचीन काल से ही स्तोत्र काव्यों की रचना की है। वैदिक काल में इन्द्र, अग्नि, सूर्य, मित्र, उषा, रूद्र आदि देवताओं के स्तुति परक मन्त्र उपलब्ध होते है रामायण, महाभारत आदि के काल से लेकर वर्तमान काल तक अनेक देवी–देवताओं पर संस्कृत में स्तोत्र काव्य लिखे गए है, जैसे – शिव, विष्णु, राम, कृष्ण, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी आदि तथा अन्य अभीष्ट देवी–देवताओं पर स्तुति पर काव्य बहुतायत में मिलते है। इनमें भी शिव पर लिखे गए स्तोत्र काव्यों की संख्या अत्यधिक है। शिव की पूजा सम्पूर्ण भारतवर्ष में अपनी–अपनी परम्परा व विधि के अनुसार की जाती है। प्रस्तुत शोध–पत्र में शिव के केवल उन्हीं स्तोत्र काव्यों को शोध का आधार बनाया गया है, जो अष्टक परम्परा से संबंधित है, मॉनीयर विलियम के शब्दकोश के अनुसार अष्टक शब्द का अर्थ है– Consistitng of a Eight Parts[1] अर्थात् जिसके आठ भाग हो, उन्हें अष्टक कहा जाता है। प्रस्तुत शोध में जिन–जिन शैवाष्टकों का संग्रह किया गया है, उनका नामोल्लेख इस प्रकार है

1. रुद्राष्टकम्
2. लिङ्गाष्टकम्
3. शङ्कराष्टकम्
4. शिवाष्टकम्
5. विश्वनाथाष्टकम्
6. बिल्वाष्टकम्
7. प्रदोष–स्तोत्राष्टकम्
8. महादेवाष्टकम्
9. चन्द्रशेखराष्टकम्
10. पशुपत्यष्टकम्
11. विश्वमूर्त्याष्टकम्
12. शिवनामावल्यष्टकम्
13. अभिलाषाष्टकस्तोत्रम्
14. कालभैरवाष्टकम्
15. विश्वनाथस्तवम्

छन्द योजना

'छन्दस्' शब्द 'छदि सवर्णे' धातु से 'असुन्' प्रत्यय जुड़कर निष्पन्न होता है। भाषा में स्वत: उद्भूत गति का बाह्य रूप ही छन्द है। इसमें मात्रा, वर्ण, गति, और यति की व्यवस्था होती है। छन्दों से शब्दों में लयात्मकता तथा संगीतात्मकता आती है।

निरूक्त में आचार्य यास्क ने 'छन्दांसि छादनात्'[2] कहकर छन्द का विवेचन किया है। महाकवि क्षेमेन्द्र के अनुसार अनुचित छन्दों का प्रयोग गले में पड़ी मेखला के समान प्रयोक्ता की मूर्खता को सूचित करता है। जिस प्रकार नवयुवति के योग्य वृद्धपुरुष नहीं हो सकता उसी प्रकार सहज भावों के लिए रूखे भावों के लिए सरस छन्द अनुपयुक्त होता है।[3] भाषा की दृष्टि से 'छन्दस्' का शाब्दिक अर्थ 'आच्छादन' है। इस प्रकार छन्दों के द्वारा भाव या रस को आच्छादित किया जाता है। वृत्तरत्नाकर के अनुसार छन्द दो भागों में विभक्त है–

1. वैदिक छन्द
2. लौकिक छन्द

इनमें से लौकिक छन्द के दो भेद होते है –

1. वार्णिक
2. मात्रिक

इनमें वार्णिक को वृत्त और मात्रिक को जाति कहा जाता है। वृत्त रत्नाकर में वृत्त के 3 भेद बताए गए है –

1. समवृत्त
2. अर्धसमवृत्त
3. विषमवृत्त गण व्यवस्था

जिस प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् शिव द्वारा व्याप्त है, उसी प्रकार यह समस्त वाङ्मय मकारादि (म, य, र, स, त, ज, भ, न, ग तथा ल) इन दस वर्णों से व्याप्त है। प्रारम्भिक आठ अक्षरों से आठ गणों के नाम तथा ग से गुरु और ल से लघु का संकेत समझना चाहिए।

तीन वर्गों के समूह को गण कहते है। इन गणों के सामान्य लक्षण इस प्रकार है–

मगण – ऽऽऽ	नगण – ।।।	सगण – ।।ऽ
भगण – ऽ।।	तगण – ऽऽ।	रगण – ऽ।ऽ
जगण –।ऽ।	यगण – ।ऽऽ	लघु तथा गुरु – ।ऽ

इन गणचिन्हों को याद करने के लिए एक सामान्य नियम बताया गया है– *यमाताराजभानसलगम्।*

संग्रहीत शैवाष्टकों में किन–किन छन्दों का प्रयोग किया गया है, उनका यहाँ पर विवेचन किया गया है।

अनुष्टुप्

लक्षण– *श्लोके षष्ठं गुरुज्ञेयं, सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।*
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं, सप्तमं दीर्घमन्ययोः ।।[4]

व्याख्या – अनुष्टुप् एक वार्णिक छन्द है जिसके प्रत्येक चरण में आठ वर्ण होते है। इसके चारों चरणों में छठा अक्षर गुरु तथा पाँचवाँ लघु होता है। दूसरे और चौथे चरणों में सातवाँ अक्षर लघु होता है तथा पहले और तीसरे चरणों में सातवाँ अक्षर गुरु होता है।

'बिल्वाष्टकम्' स्तोत्र में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया गया है।

I IS I I SSS ISS S I S I S
त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्रयायुधम्।
त्रिजन्मपाप–संहारमेकबिल्वं शिवार्पणम्।।
(बिल्वाष्टकम्, श्लोक – 1)

उपेन्द्रवजा (ज, त, ज, गु, गु)

लक्षण– *उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ*

व्याख्या – जिस पद्य के प्रत्येक पाद में जगण, तगण, जगण तथा गुरु हो उसे 'उपेन्द्रवज्रा' छन्द कहते है। इसके पदान्त में यति होती है।

I S IS S II S I SS IS IS SIIS ISS
अकारणायाऽखिलकारणाय, नमो महाकारणकारणाय।
नमोऽस्तु कालानल लोचनाय, कृतागसंमानव विश्वमूर्ते।।
(विश्वमूर्त्याष्टकस्तोत्रम्, श्लोक–1)

तूणकम् (र, ज, र, ज, र)

लक्षण– *तूणकं समानिकापदद्वयं विभान्तिमम्।।*

व्याख्या– जिस पद्य में रगण, जगण, रगण, जगण और रगण आते हो उसे तूणकम् छन्द कहते है।'कालभैरवाष्टकम्' में तूणकम् छन्द है।

S I S I S I SIS IS ISI S
देवराजसेव्यमानपावनाङ्घ्रिपङ्कजं
व्यालयज्ञ सूत्र मिन्दु शेखरं कृपाकरम्।
नारदादियोगवृन्दवन्दितं दिगम्बरं,
काशिका पुराधिनाथ कालभैरवं भजे।।
(कालभैरवाष्टक, श्लोक – 1)

दोधकम् (भ, भ, भ, गु, गु)

लक्षण– *दोधकवृत्तमिदं भ भ भाद् गौ।*

व्याख्या– जिस पद्य के चरण में तीन भगण और दो गुरु हो, उसे 'दोधक' छन्द कहते है। इसके पदान्त में यति का नियम है।

'लिङ्गाष्टकम्' स्तोत्र में इस छन्द का प्रयोग किया गया है–

S I I SI IS I I SI S I I S I I S I I SI
ब्रह्ममुरारि सुरार्चितलिङ्गनिर्मल भासित–शोभित–लिङ्गम् ।
जन्मज–दुःखविनाशक–लिङ्गंतत्प्रणमामि सदाशिव लिङ्गम्।।[6]

द्रुतविलम्बितम् (न, भ, भ, र)

लक्षण– *द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ*[7]

व्याख्या –जिस पद्य के प्रत्येक चरण में क्रमशः एक नगण, दो भगण और अन्त में रगण हो उसे द्रुतविलम्बित छन्द कहते है। इसके पदान्त में यति होती है। इसको 'सुन्दरी' भी कहते है। संग्रहीत स्तोत्रों में से 'पशुपत्यष्टकम्' स्तोत्र इस छन्द में मिलता है।

I I I S I I S II S I S I II SI IS I IS I S
पशुपतिं धुपतिं धरणीपतिं भुजगलोकपतिं च सतीपतिम्।
प्रणत–भक्त–जनार्तिहरं परं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम्।।
(पशुपत्यष्टकम्, श्लोक – 1)

भुजङ्गप्रयातम् (य, य, य, य)

लक्षण– *भुजङ्गप्रयातं भवेद्यैश्चतुर्भिः*[8]

व्याख्या– जिस पद्य के प्रत्येक चरण में चार यगण हो उसे 'भुजङ्गप्रयातम्' कहते है।'रुद्राष्टकम्' में प्रायः 'भुजङ्गप्रयातम्' छन्द देखने को मिलता है–

I S S I S S I S S ISS IS S I S S I S S I S S
नमामीशमीशान निर्वाणरूपं, विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपम् ।
निज निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं, चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं ।।
(रूद्राष्टकम्, श्लोक–1)

इस स्तोत्र के अतिरिक्त 'विश्वनाथस्तव' स्तोत्र में भी यह छन्द पाया गया है।

I S S IS SI S S I S S I S S I S S I S S I S S
चिताभस्म–भूषार्चिताभासुरागं, श्मशानालयं त्र्यम्बकं मुण्डमालम्।
कराभ्यां दधानं त्रिशूलं कपालं, भजेऽहं मनोऽभीष्टदं विश्वनाथम् ।।
(विश्वनाथास्तव, श्लोक – 3)

वसन्ततिलका (त, भ, ज, ज, गु, गु)

लक्षण– *उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।*[9]

व्याख्या – जिस पद्य के प्रत्येक चरण में तगण, भगण, दो जगण, दो गुरु हो, उसे वसन्ततिलका कहते है। इसके पदान्त में यति होती है। संग्रहीत किए गए स्तोत्रों में से 'शङ्कराष्टकम्', 'शिवाष्टकम्', 'विश्वनाथाष्टकम्', 'प्रदोषस्तोत्राष्टकम्' और 'शिवनामावल्यष्टकम्' स्तोत्रों में वसन्ततिलका छन्द देखने को मिलता है।

S SIS IIIS II S I S S
हे वामदेव शिवशङ्कर दीनबन्धो,
काशीपते पशुपते पशुपाशनाशिन् । (शङ्कराकष्टम्, श्लोक– 1)

S S IS III SII SIS I
तस्मै नमः परम–कारण–कारणाय,
दीप्तोज्ज्वलज्ज्वलित–पिङ्गल–लोचनाय। (शिवाष्टकम्, श्लो.– 1)

S SIS I II SI IS I SS
गङ्गातरङ्ग–रमणीय–जटाकलापं,

गौरी-निरन्तर-विभूषित-वामभागम् ।

(विश्वनाथाष्टकम्, श्लोक - 1)

S S IS I II S I IS IS I

सत्यं ब्रवीमि परलोकहितं ब्रवीमि,

सारं ब्रवीम्युपनिषद् हृदयं ब्रवीमि । (प्रदोष स्तोत्राष्टकम्, श्लो.-1)

S SI S I I I S II SIS S

हे चन्द्रचूड मदनान्तक शूलपाणे,

स्थाणो गिरिश गिरिजेश महेश शम्भो।

(शिवनामावल्यष्टकम्, श्लो.-1)

शिखरिणी (य, म, न, स, भ, ल, गु)

लक्षण- *रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।*[10]

व्याख्या - जिस पद्य के प्रत्येक चरण में क्रम से यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, लघु और गुरु हो, उसे 'शिखरिणी' छन्द कहते है। इसके छः और ग्यारह वर्णों पर यति होती है। शोध प्रबन्ध में शामिल किए गए स्तोत्रों में 'महादेवाष्टकम्' स्तोत्र शिखरिणी छन्द में है।

IS SS SS II II ISS IIIS

शिवं शान्तं शुद्धं प्रकटमकलकं श्रुतिनुतं

महेशानं शम्भु सकल-सुर-ससेव्य-चरणम् ।

गिरीशं गौरीशं भवभयहरं निष्कलमजं

महादेवं वन्दे प्रणतजन-तापोपशमनम् ।।

(महादेवाष्टकम्, श्लोक - 1)

शालिनी (म, त, त, गु, गु)

लक्षण- *शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः।*[11]

व्याख्या- जिस पद्य के प्रत्येक चरण में मगण, दो तगण तथा दो गुरुवर्ण हो, उसे 'शालिनी' छन्द कहते है। इसके चार और सात अक्षरों पर यति होती है। 'अभिलाषाष्टकम्' स्तोत्र शालिनी छन्द में है।

SS S S SISSISSSSSSSISSISS

एकं ब्रह्मैवाद्वितीयं समस्तं, सत्यं सत्यं नेह नानास्ति किञ्चित् ।

एको देवो न द्वितीयोऽवतस्थे तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम् ।।

(अभिलाषाष्टकस्तोत्रम्, श्लोक - 1)

हरनर्तनम् (र, स, ज, ज, भ, र)

लक्षण- *रसौ जजौ भरसंयुतौ करिबाणखैहरनर्त्तनम्।*

व्याख्या - जिस पद्य में रगण, सगण, 2 जगण, भगण और रगण होते है, वह हरनर्तनम् छन्द होता है। संग्रहीत स्तोत्रों में से %चन्द्रशेखराष्टकम्% स्तोत्र में यह छन्द मिलता है।

S I S I I S II II SI S II S IS

रत्नसानुशरासन रजताद्रि-श्रृङ्गनिकेतनं,

सिञ्जिनीकृत-पन्नगेश्वरमच्युतानन-सायकम् ।

क्षिप्रदग्धपुरत्रयं त्रिदिवालयैरभिवन्दितं

चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ।।

(चन्द्रशेखराष्टकम्, श्लोक - 2)

अलंकार योजना

अलम् पूर्वक् कृ धातु के योग में करण या भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय करने पर निष्पन्न अलंकार शब्द से तात्पर्य ऐसे शब्द से है, जो पर्याप्त अथवा योग्य बना दे। प्रकारान्तर से 'अलंकरोति इति अलंकार' तथा 'अलंक्रियते अनेन इति अलंकारः'।[12] जिस प्रकार भौतिक शरीर को कुण्डलादि अलंकार सुशोभित करते है। उसी प्रकार शब्द और अर्थ रूप वाले काव्य के शरीर को काव्य के अलंकार सुशोभित करते है। आचार्य मम्मट ने अलंकार के विषय में वर्णन करते हुए कहा है -

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।

हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रांसोपमादयः।।[13]

जो अङ्ग अर्थात् अङ्गभूत शब्द और अर्थ के द्वारा विद्यमान होने वाले उस (अङ्गी) रस का हार इत्यादि के समान कभी उपकार करते है। वे अनुप्रास तथा उपमादि अलंकार कहलाते है। आचार्यों के दृष्टिभेद से अलंकारों के प्रकार, भेद एवं उनके भेदक तत्त्वों के वैविध्य तथा निर्धारण की उद्धावना की गई है। सभी आचार्यों ने अलंकारों को शब्द और अर्थ के आधार पर शब्दालंकार और अर्थालंकार दो भेदों में विभक्त किया है, किन्तु कुछ आचार्यों ने उभयालंकार नाम से अलंकार का तीसरा भेद भी स्वीकार किया है।

संग्रहीत शैवाष्टकों में अलंकारों का सीमित प्रयोग ही दृष्टिगोचर होता है, क्योंकि स्तोत्र-काव्यों में विशेषणों की अधिकता होती है अलंकारों के समुचित विकास का अवसर वहाँ नहीं होता तथापि जिन अलंकारों का इन अष्टकों में प्रयोग हुआ है वे इस प्रकार है।

अनुप्रास अलंकार

अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।[14]

वर्णसाम्यमनुप्रासः[15]

अर्थात् स्वर की विषमता रहने पर भी शब्द, पद, पद्यांश के साम्य को अनुप्रास अलंकार कहते हैं।

'रुद्राष्टकं स्तोत्र' की कई पंक्तियाँ अनुप्रास अलंकार को दर्शाती है-

नमामीशमीशान-निर्वाणरूपं (श्लोक - 1, पंक्ति-1)

निजं निगुणं निर्विकल्पं निरीहं (श्लोक - 1, पंक्ति- 3)

गिराज्ञान-गोती-तमीशं गिरीशम् (श्लोक - 2, पंक्ति-2)

करालं महाकाल-कालं कृपालं (श्लोक - 2, पंक्ति -3)

प्रचण्डं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेश (श्लोक - 5, पंक्ति-1)

कलातीत-कल्याण-कल्पान्तकारी (श्लोक- 6, पंक्ति-1)

इसके अतिरिक्त 'विल्वाष्टकम्' स्तोत्र में भी अनुप्रास अलंकार की झलक देखने को मिलती है।

त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्रयायुधम्।

त्रिजन्मपाप-संहारमेकबिल्वं शिवार्पणम्।।

ऊपर दर्शायी हुई पंक्तियों में न, ग, क, प और त्र की आवृत्ति बार-बार आने से यहाँ अनुप्रास अलंकार है।

उपमा

साधुर्म्यमुपमा भेदे[16]

अर्थात् जहाँ उपमान और उपमेय का भेद होने पर भी परस्पर साधारण धर्म से सम्बद्ध होना कहा जाता है, वहाँ उपमा अलंकार होता है।

भस्मानुषक्त-विकचोत्पल-मल्लिकाय,

***नीलाब्जकण्ठ**-सदृशाय नमः शिवाय।* (शिवाष्टकम्, श्लोक - 3)

गौरीकटाक्ष-नयनार्ध-निरीक्षणाय,

***गोक्षीरधार-धवलाय** नमः शिवाय।* (शिवाष्टकम्, श्लोक - 7)

ऊपर दर्शाये गए 'नीलाब्जकण्ठ' और 'गोक्षीरधारधवल' में उपमा अलंकार है।

काव्यलिङ्ग अलंकार

हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते।[17]

अर्थात् जहाँ वाक्यार्थ अथवा पदार्थ किसी के हेतु के रूप में उपनिबद्ध हो वहाँ काव्यलिङ्ग अलंकार होता है।

न जनको जननी न च सोदरोन तनयोन चभूरिबलं कुलम् ।

अवति कोऽपि नकालवशं गतं भजत रे मनुजागिरिजापतिम् ।।

(पशुपत्यष्टकम्, श्लोक - 2)

प्रस्तुत श्लोक में काल के प्रहार से उत्पन्न होने वाले भय के नाश का एकमात्र हेतु शिव को बताया गया है। अतः यहाँ काव्य लिङ्ग अलंकार है।

रूपक

आचार्य विश्वनाथ ने रूपक अलंकार का लक्षण करते हुए कहा है कि- निषेध रहित उपमेय पर उपमान के आरोप को रूपक अलंकार कहते है। जहाँ भेद रहित उपमान का उपमेय में आरोप हो, परन्तु उपमेय के स्वरूप का निषेधक कोई शब्द न हो, वहाँ रूपक होता है। यह रूपक तीन प्रकार का होता है -

1. साङ्ग
2. निरङ्ग
3. परम्परित

रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे।

तत्परम्परितं साङ्गं निरङ्गमिति च त्रिधा।।[18]

यहाँ पर संग्रहीत किए गए स्तोत्रो में जिन पंक्तियों में रूपक अलंकार पाया गया है, उन्हें दर्शाया गया है।

न यावदुमानाथ-**पादारविन्द**

(रुद्राष्टकम्, श्लोक - 7, पंक्ति- 1)

हे विश्वनाथ **भवबीज** जनातिहारिन्

(शङ्कराष्टकम्, श्लोक - 1, पंक्ति-3)

हे सर्वदेव-परिपूजित-**पादपदम्**

(शङ्कराष्टकम्, श्लोक - 4, पंक्ति-3)

आदाय **हृत्कमल**-मध्यगतं परेशं

(विश्वनाथाष्टकम्, श्लोक - 7, पंक्ति-1)

सारोऽयमीश्वर **पदाम्बुरुहस्य** सेवा

(प्रदोष स्तोत्राष्टकम्, श्लोक - 1, पंक्ति-4)

पञ्चपादप-पुष्पगन्ध-**पदाम्बुजद्वय**-शोभितं

(चन्द्रशेखराष्टकम्, श्लोक-3, पंक्ति-1)

अभयदं **करुणा-वरुणालयं** भजत रे मनुजा गिरिजा पतिम्।

(पशुपत्यष्टकम्, श्लोक - 4, पंक्ति-2)

स्त्रोत काव्यों का उद्देश्य इष्टदेवता की भावपूर्ण स्तुति करना ही होता है। अतएव शैवाष्टक स्तोत्र काव्यों में छन्दौचित्य का विशेष महत्व है। अनुष्टुप्, उपेन्द्रवज्रा, तूणकम्, दोधकम्, द्रुतविलम्बितम्, भुजङ्गप्रयातम्, वसन्ततिलका, शिखरिणी, शालिनी, हरनर्त्तनम् आदि छन्द भक्तिभाव पूर्ण स्तोत्र काव्यों के लिए उत्कृष्ट सिद्ध होते हैं क्योंकि इन छन्दों में गेयता सहजभाव से समाहित है। अत्यधिक अलंकारों के प्रयोग के स्वाभाविकता नष्ट हो सकती है। इसलिए शैवाष्टक स्तोत्र काव्यों में यथोचित मात्रा में ही अलंकारों का समावेश मिलता है।

सन्दर्भ -

1. ENGLISH SANSKRIT DICTIONARY (M.MONIER-WILLIAMS) PAGE NO. 117
2. निरुक्त -7.12, पृ0 583
3. सुवृत्ततिलकम् -3, 113-114
4. विद्यानिधि प्रकाशन, पृ0 15
5. वृत्तरत्नाकर, तृतीयाध्याय, सूत्र - 34
6. लिङ्गाष्टकम्, श्लोक - 1
7. वृत्तरत्नाकर, तृतीयाध्याय, सूत्र -50
8. वृत्तरत्नाकर, तृतीयाध्याय, सूत्र -55
9. वृत्तरत्नाकर, तृतीयाध्याय, सूत्र -78
10. वृत्ताकर, तृतीयाध्याय, सूत्र -91
11. वृत्तरत्नाकर, तृतीयाध्याय, सूत्र - 35
12. वामन शिवराम आप्टे, शब्दकोश, पृ० 102
13. काव्यप्रकाश - 8/67
14. साहित्यदर्पण - 10/3
15. काव्यप्रकाश - 9/104
16. काव्यप्रकाश - 10, पृ0 466
17. साहित्य दर्पण - 10/62
18. साहित्य-दर्पण - 10/28

सुषम बेदी के कथा-साहित्य में नस्लवाद

निशा
शोधार्थी (हिंदी)
बाबामस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थलबोहर, रोहतक

नस्लवाद :

नस्लवाद का अर्थ-नस्लवाद शब्द 'नस्ल' शब्द से बना है। नस्लवाद शब्द का प्रादुर्भाव अंग्रेजी में सन् 1508 में हुआ। पहले इस शब्द का प्रयोग किसी श्रेणी या व्यक्तियों के समूह के लिए प्रयुक्त होता था लेकिन यह बात स्पष्ट तौर पर नहीं की जा सकती थी कि संबंधित श्रेणी या व्यक्तियों का समूह वैज्ञानिक तौर कोई विलक्षण चीज हैं। 18वीं शताब्दी मैं पहली बार 'नस्ल' शब्द ने मनुष्य के शारीरिक गुणों की तरफ इशारा किया। इसी आधार पर 'एक सामाजिक प्रक्रिया का सूत्रपात हुआ जिसको नस्लीकरण कहा जा सकता है और उसके द्वारा वर्गीकरण की विधि विकसित हुई। यूरोप की ऐतिहासिक रचनाओं में और फिर भेद भरे ढंग से विश्व की जनसंख्या के लिए प्रयोग हुई।'[1]

'नस्लवाद' शब्द को भिन्न भिन्न विद्धानों ने परिभाषाओं में बाँधने का प्रयत्न किया है। इन परिभाषाओं द्वारा नस्लवाद के अनेक पक्ष उभरकर सामने प्रकट होते हैं।

'जब किसी समूह के शारीरिक गुणों के अंतर की बात उसके सामाजिक व्यवहार, नैतिकता या बौद्धिक गुणों को निर्धारित करने के पक्ष में की जाती है तो वह नस्लवाद कहलाता है।'[2]

मनुष्य का रहन-सहन उसके पैतृक गुणों से प्राप्त किया जा सकता हैं जो विभिन्न नस्ली समूहों से प्राप्त होते हैं और जो जीवों के बढ़ियापन या घटियापन को प्रकट करते हैं। इन परिभाषाओं का आधार यह है कि नस्लवाद वह नकारात्मक विचार है जो कोई समूह दूसरे समूह के प्रति जीव-वैज्ञानिक या दूसरे आंतरिक गुणों-अवगुणों के कारण अपने से अलग करने के लिए प्रयोग करता है। यह दूसरे समूहों के गुणों के आधार पर खंडन करता है।

'ऐशियन' ऐसा शब्द है जिसमें इंडियन, पाकिस्तानी, श्रीलंका, बंग्लादेश आदि से आए लोग आ जाते हैं। जिनका संबंध भारतीय उपमहाद्वीप से है। अपने-अपने दायरे में इनकी पहचान गाँव या मजहब से बँधी हुई है। पर जब ये लोग विदेश की नस्लवादी भेदभावना का शिकार हुए तब इन्हें अपनी पहचान एक विशेष नस्ल की संस्कृति के तौर पर हुई।

सुषम बेदी एक ऐसी लेखिका हैं जिन्होंने प्रवासी परिवेश की विभिन्न समस्याओं को अपने कथा-साहित्य में उजागर किया है। उनके साहित्य में सृजित कथा वस्तु जीवन के यथार्थ पर आधारित हैं। बेदी जी एक भावुक लेखिका है। उन्होंने उसका सहज व सजीव चित्रण अपने कथा साहित्य में किया। इनके साहित्य में रंग, नस्ल, जाति और लिंग के प्रति प्रवृत्ति अधिक ही प्रबल दिखाई देती है। सुषम बेदी ने अपने कथा-साहित्य में नस्लवाद के विभिन्न पहलू उस इस प्रकार चित्रित किए हैं-

नौकरी में नस्लवाद :

आज विश्व के विभिन्न देशों में नस्लवाद की नीति दिखाई देती है लगभग सभी प्रवासी भारतीय को इसे भोगना पड़ता है। वे चाहकर भी इसका विरोध नहीं कर पाते। विदेश में रहते प्रवासियों को नौकरी की तलाश में इस समस्या से काफी जूझना पड़ता है। भारतीय लोग चाहे कितनी मेहनत करके सफलता अर्जित कर लें। लेकिन उन्हें निम्न कोटि का कहा जाता है।

नौकरी के लिए साक्षात्कार के समय अंग्रेज अधिकारी पक्षपातपूर्ण नीति अपनाते हैं परन्तु प्राय: उन्हें भारतीयों की योग्यता के आगे झुकना पड़ता है।

'हवन' उपन्यास में अणिमा अंग्रेज अधिकारियों की पक्षपातपूर्ण नीति के बारे में अपनी सहेली नजमा को बताती है।

'इस कॉलेज की नौकरी के लिए भी इंटरव्यू से पहले सब इसी तरह का शक मन में डाल रहे थे- ऐशियाई महिला और अंग्रेजी पढ़ाए अमरीकनों को। पर मेरे क्रेडेशियल सबसे बढ़िया थे। इनका खेल इन्हीं के पत्तों से खेलों, तब मिलती है सफलता।'[3]

कई बार अपने आसपास व्याप्त नस्लवाद का यथार्थ रूप नौकरी के रूप में सामने आता है। प्रवासी भारतीयों की बढ़ती संख्या के कारण विदेश में नौकरियों के अवसर कम होने के कारण गोरे लोग यह महसूस करने लगे कि उनके नौकरी के अवसर खत्म होते जा रहे हैं जिससे उनके मन में यह भावना घर कर गई है।

'लौटना' उपन्यास में मीरा से एड अपनी कुंठा को व्यक्त करते हुए कहता है- 'एक तो सारे एशियाई आकर हमारी नौकरियाँ छीनते जा रहे हैं, ऊपर से हमीं पर जातीय वैमनस्य और रंगभेद का आरोप लगाया जाता है। अपने देश में चाहे भूखों मरे, यहाँ आकर सभी अपने समान अधिकारों की बात करने लगते हैं।'[4]

पश्चिमी समाज एक में अच्छी नौकरी प्राप्त करना आसान नहीं

है। एक अच्छी नौकरी पाने के लिए पश्चिमी समाज को यह भरोसा दिलाया जाए कि हम उनके समाज के लायक हैं। इसके लिए उच्च शिक्षा, प्रभावशाली व्यक्तित्व और अच्छी अंग्रेजी का आना अनिवार्य है।

इस प्रकार सुषम बेदी ने हवन और लौटना उपन्यास के माध्यम से सुषम बेदी ने नौकरी में नस्लवाद उठाया है। प्रवासी भारतीय कितनी भी शिक्षा प्राप्त कर ले नौकरी में उनके साथ भेदभाव की नीति अपनाई जाती है। इस तरह उनके मन में गहरा आघात पहुँचता है जिसके परिमाणस्वरूप वे हीन भावना, बेगानापन व अजनबीपन का शिकार हो जाते हैं। लेकिन अपनी योग्यताओं के बल पर सफल भी होते हैं और अच्छी नौकरी भी प्राप्त करते हैं।

शिक्षा में नस्लवाद –

नस्लवाद की समस्या शिक्षा में भी देखी जा सकती हैं। स्कूल, कॉलेजों में भारतीय बच्चे अपनी तीव्र बुद्धि के कारण विशेष स्थान प्राप्त कर लेते तो यह बात भी गोरे लोगों के लिए असहनीय हो जाती है, तो ऐसी स्थिति में अक्सर ब्लैक, बासटर्ड, ब्लैक डॉग आदि गालियों से प्रहार करते है।

भारतीयों को अच्छी शिक्षा व नौकरी मिलने के कारण गोरे लोगों में विद्रोह की भावना प्रकट होने लग जाती है। 'हवन' उपन्यास की अणिमा अंग्रेजों की विद्रोह की भावना का शिकार हो जाती है। वह कहती है–'व्यक्तिगत रूप में वे शिक्षा व नौकरी के क्षेत्र में हर एशियाई से दोस्त के रूप में पेश आते पर प्रवासियों के पूरे समाज के प्रति उनमें विद्रोह का भाव था। उन्हें लगता है कि उनकी नौकरियाँ उनके हक उनसे छिन रहे हैं। कोई संगठित विद्रोह जैसी बात नही थी और इस तरह का अनुदार नजरिया तो अक्सर महसूस हो जाता था, तभी तो इस देश का उदारवादी दल भी कमजोर पड़ रहा था।'[5]

विदेशी समाज में भारतीय शिक्षा को हीन समझा जाता है। अपनी भारतीय शिक्षा के कारण प्रवासी भारतीयों नस्लवाद का बार–बार शिकार होना पड़ता है।

'लौटना' उपन्यास में मीरा जब अपनी उच्च शिक्षा के बल पर नौकरी प्राप्त करने जाती है तो उसे एक भारतीय प्रोफेसर कहने लगी, 'मुझे नहीं लगता कि तुम्हें असिस्टेंट, प्रोफेसर बनने की कोई उम्मीद भी करनी चाहिए.... वह कभी नहीं होगा! देखो हिन्दुस्तान से पीएच० डी० कर लेना कोई बड़ी बात नहीं। सैकड़ों पीएच० डी० करते हैं वहाँ। कोई ठीक स्टैंडर्ड तो है नहीं वहाँ... अब यहाँ तो पीएच० डी० में इतना काम करना पड़ता है पहले कोर्स वर्क ही दो–चार साल करते रहो, तब जाकर थीसिस लिखने की बात होती है। भारत में तो बस छूटते ही थीसिस लिखी और बात खत्म तभी बड़ी कच्ची, बड़ी घटिया किस्म की थीसिस लिखते हैं लोग। हिन्दुस्तानी पीएच० डी० के बूते पर तुम्हें नौकरी ढूँढनी ही नहीं चाहिए। उनकी कोई कीमत नहीं यहाँ।'[6]

इस प्रकार सुषम बेदी ने अपने कथा–साहित्य द्वारा शिक्षा मैं फैले नस्लवाद का उजागर किया है। शिक्षा के क्षेत्र में भारतीयों को नस्लवाद की समस्या से जूझना पड़ता है। अंग्रेजों को लगता है कि उनकी नौकरी व शिक्षा के क्षेत्र में प्रवासी भारतीयों ने अवसर कम कर दिए। जिनकी वजह से नस्लवाद की भावना फैल रही है।

सामाजिक परिवेश में नस्लवाद :

दो संस्कृतियों के आपस में मिलने और मूल्यों के बीच आपसी टकराहट से परिवेश में तनाव पैदा होता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तनाव की स्थित सामाजिक विरोधों के मानसिक प्रतिबिम्ब होती है। मनुष्य सामाजिक यर्थाथ का हिस्सा ही है। सामाजिक यथार्थ निरंतर परिवर्तन के बीच विरोध भी कर सकते हैं।

भारतीय संस्कृति, विदेशी भूमि पर अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान है। प्रत्येक देश की मुख्य संस्कृति दूसरे देश की संस्कृति को अपने में मिलाने का प्रयत्न करती है। परन्तु दूसरे देश की संस्कृति इतनी जल्दी मुख्य संस्कृति में नहीं मिल पाती। परिणामस्वरूप विश्व स्तर पर सांस्कृतिक और सामाजिक तनाव उत्पन्न होता है।

विदेश में भारतीय संस्कृति उन्हें दूसरे से अलग करती है क्योंकि उनकी जीवन शैली उन्हें विदेशी समाज में एक अलग पहचान देते हैं। विदेश मैं नस्लवाद का अस्तित्व ही सामाजिक तनाव का सृजन करता है और इस तरह भारतीय मनुष्य बेगानेपन व हीनभावना का शिकार हो जाता है।

सुषम बेदी ने अपने कथा–साहित्य में नस्लवाद से उत्पन्न हीनभावना व बेगानेपन को प्रवासी भारतीयों की मानसिकता के माध्यम से व्यक्त किया है।

भारतीय गोरे लोगों के सामने स्वयं को हीन समझते हैं और अपनी इस हीनभावना के कारण नस्लवाद का शिकार हो जाते हैं। नस्लवाद के भय से बचने के लिए कई बार वे भारतीय होना स्वीकार नहीं करते।

'हवन' उपन्यास में राधिका नस्लवाद के कारण हीनभावना की शिकार है। उसने अपनी सहेलियों को अपना नाम लोरा बताया है। राधिका के साथ शॉपिंग करते हुए स्टोर में गीता को उसकी सहेली मिली तो अपना परिचय देते हुए गीता को मिसेज जोनसन नाम से संबोधित किया। आपको गलतफहमी हुई कि राधिका उन्हें टोककर टूटी–फूटी हिंदी में समझाने लगी, 'मम्मी, वह तो मजाक में मैंने अपना नाम इन्हें लोरा जॉनसन बतला दिया था, करें क्या आपका हिन्दुस्तानी नाम किसी की समझ में नहीं आते। मुझे सब बुलाते थे रैं... डि... खा... इट इज़ सो फनी, इजंट इट!'[7]

उपर्युक्त तथ्य जो कि साधारण लगता है, लेकिन इनकी प्रकृति जटिल है जो बहुत सारी संभावनाओं से ओत–प्रोत है। प्रवासी भारतीय नस्लवाद से स्वतंत्र नहीं हो सकते और न ही होना चाहते हैं क्योंकि वे गर्व महसूस नहीं करते खुद को भारतीय कहलाना।

कई देशों में नस्लवाद की प्रक्रिया इतनी तीव्र हो गई हैं कि भारतीय प्रवासी अंग्रेजों से नफरत करने लगे हैं। भारतीय स्वयं ही इन्हें अपने से भिन्न जाति के रूप में देखने लगे हैं। अब उनका आकर्षण अंग्रेजों के प्रति कम होकर, काले (हब्शी) लोगों की ओर हो गया है। इन्हें इन काले लोगों में अपनापन दिखाई देता है। कम से कम इनके कारण ये हीन भावना का शिकार नहीं होते।

'चिड़िया और चील' कहानी संग्रह में 'विभक्त' कहानी की नायिका अनन्या अमेरिका में रहते हुए भी भारत के प्रति उसका लगाव गहरा है। अंग्रेजों के अपमानजनक व्यवहार के कारण ही काले लोगों के प्रति उसका आकर्षण होता है वह अपार्टमेंट भी उन्हीं के इलाके में लेती है और विवाह भी एक काले लड़के से ही करना चाहती है। वह अपनी प्रोफेसर से कहती है, 'आप तो कभी नहीं आयेगी मेरे अपार्टमेंट....हारलम में जो हैं.... वहाँ कोई नहीं आना चाहता। सब डरते क्यों हैं ?.... मुझको समझ नहीं आता ये लोग तो गोरों से ज्यादा अच्छे है।'[8]

सुषम बेदी के कथा-साहित्य के अध्ययन के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि भारतीयों को मानसिक विषाद के दु:ख को भोगना पड़ता है। प्रवासी भारतीयों को विदेशी समाज में नस्लीवाद व्यवहार को सहन करने की मजबूरी यह है कि वह सब कुछ छोड़कर वापस नहीं लौट सकता क्योंकि पैसों का मोह उसे ऐसा नहीं करने देता। मूलवासियों की प्रवासियों के प्रति सोच में परिवर्तन नहीं हो पा रहा है। यही कारण है कि विदेशी नागरिकता प्राप्त करने के बावजूद भी प्रवासी नस्लवादी व्यवहार के कारण हीनता के शिकार होते हैं।

इसी प्रकार बेगानेपन की समस्या भी मनुष्य की मानसिकता का अटूट भाग है। जो परिस्थितियों के अनुकूल-प्रतिकूल का आधार है। बेगानापन शारीरिक नहीं मानसिक होता है। पुराने विश्वासों का टूटना और उनकी जगह नये विश्वासों का बनना ही मानसिक तौर पर बेगानगी है। बेगानगी युक्त मनुष्य शारीरिक तौर पर अपने स्थान पर निराशा, भटकन उदासी प्राप्त करता है ।

प्रवासियों में पनप रही बेगानगी का कारण नस्ली भेदभाव भी है। ऐसी स्थिति में वह अंदर टूट से जाते हैं। प्रवासी मनुष्य के लिए भारतीय पहचान महत्वपूर्ण है लेकिन विपरीत परिस्थितियों के अनुकूल उसे अपनी पहचान गँवानी पड़ती है, जिसके कारण उसका भीतर से टूटना स्वाभाविक है।

'हवन' उपन्यास में अणिमा का पति जब विदेश जाता है तो विदेशी चकाचौंध में डूब जाता है। उसे वहाँ के लोगों में अपनापन दिखाई देता है। किन्तु अणिमा पहले से इस देश में रह रही है और बेगानेपन के भाव से परिचित करवाते हुए कहती हैं, 'तुम सिर्फ न्यूयार्क को देखकर ही बात रही हो, यहाँ रोज इतने नए-नए देशों, रंगों के प्रवासी आते हैं कि न्यूयार्क तो एक मेल्टिंग पाट बन गया है । वहाँ ऐसा अजनबीपन महसूस नहीं होता, पर यह भी सच है कि अमेरिका के दूसरे हिस्सों में तुम परदेसी ही बने रहते हो।'[9]

लेखिका ने बेगानेपन की प्रवृत्ति में धार्मिक को भी भिन्नता को स्पष्ट किया है। भारत से अनेक साधु संत विदेश पहुँचते हैं। इनमें से कुछ साधु ही सच्चे होते हैं। यह अपने जादू-टोनों द्वारा अंग्रेजों को आकर्षित कर लेते हैं। लेकिन अंग्रेज ही चालबाज साधुओं से बच निकलते हैं तथा समाज में इनका पर्दाफाश करते हैं। परन्तु भारतीय प्रवासी इन बात को स्वीकार नहीं करते और इस बात को नस्लवाद से जोड़ते हैं।

'इतर' उपन्यास में निकोल पहले तो बाबा रामानंद के धार्मिक कार्यों की ओर आकर्षित होती है किन्तु जब धर्म के नाम पर उससे छेड़खानी करते हैं तो वह पुलिस तक पहुँच जाती है उसकी किसी भी बात पर भारतीय प्रवासी विश्वास नहीं करते। उन्हें लगता है कि अंग्रेज हमारे साथ नस्लवाद की प्रवृत्ति अपनाकर बेगानापन साबित करना चाहते हैं।

'जरूर किसी ने जलन के मारे ये अमरीकी बड़े नस्लवादी हैं। जरूर किसी ने झूठ-मूठ की शिकायत लगा दी होगी। आचार्य रजनीश के साथ भी तो ऐसा हुआ था... स्थानीय लोगों को वे खटकते थे.... हो सकता है।'[10]

प्रवासी भारतीयों में बेगानेपन का अहसास केवल धर्म, शिक्षा और नौकरियों तक ही सीमित नहीं बल्कि कानून में भी इसका प्रभाव दिखाई देता है।

अंग्रेजों में नस्लवाद इस तरह छा गया है कि वे भारतीय को बेगाना बताने का कोई अवसर नहीं छोड़ते। अंग्रेजों का यह रंग भेदभाव व्यवहार किसी तार्किक आधार पर नहीं खड़ा बल्कि केवल मनोरथ भ्रांति का शिकार हैं और काले रंग तक उनकी पहुँच अतार्किक है।

सुषम बेदी की यादगार 'कहानियाँ' कहानी संग्रह की 'पार्क में' कहानी में पर्शियन गल्फ में हलचल की बहस मनु और अंग्रेज आदमी बिल में होती है। मनु युद्ध के विरुद्ध बात कर रहा था और बिल हक में अचानक बिल आपे से बाहर हो जाता है और मनु पर बरस पड़ता है,

'यहीं तो स्वार्थी और नीचपन है तुम्हारा। तुम्हारे जैसे गद्दारों ने ही इस देश को कमजोर बना डाला है। चले जाओ यहाँ से.... लौट जाओ अपने देश को। तुम साले हिन्दुस्तानी बस यहाँ फायदा ही उठाना जानते हो। क्या किया है तुमने इस देश के लिए। बस कमा लिया, बच्चे पढ़ा लिए, जिस थाली में खाना, उसी में छेद करना। चले जाओ अपने देश को, हमारा खाते हो हमीं को गाली देते हो।'[11]

वर्तमान पश्चिमी समाज में अंतर्नसली विवाहों की गिनती बढ़ती जा रही है। किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि भारतीयों इससे बेगानापन खत्म हो रहा है। प्रवासी के प्रति यह भाव उसी तरह बना हुआ है बल्कि बढ़ रहा है क्योंकि अंतर्नसलीय विवाह प्रवासी भारतीय बहू या

दामाद को स्वीकार नहीं करते। इसी कारण परिवार में रहते हुए भी अपने आपको बेगाना महसूस करते हैं।

'अजेलिया के फूल' कहानी की नायिका ने एक प्रोफेसर से विवाह किया है। नायिका को दु:ख इस बात का है कि उसे बेगाना समझकर रखा जाता है। अपने मन का दु:ख प्रकट करते हुए कहती है– 'अब देख लीजिए... बीस सालों से ब्याही हूँ मिक से अभी भी किसी नए आदमी से मिलती हूँ तो पहला सवाल यहीं पूछता है, 'किस देश से हैं आप?' एक बात कहूँ आपसे ..... मैं सोचती थी कि यहीं की हूँ और दरअसल यही की होकर रहना चाहती हूँ... लेकिन एक विदेशी बनकर ही... अमरीकी बनकर नहीं।' [12]

यह नस्लवाद केवल जाति तक सीमित नहीं है बल्कि रंगभेद भी उसमें समाया हुआ है। अंग्रेजों को हर उस व्यक्ति से घृणा है जिसका रंग काला है। वो चाहे भारतीय हो, पाकिस्तानी हो या फिर अफ्रीकी ही क्यों न हो। उसके हृदय में रंगभेद की नीति ने अपना स्थान बना लिया है। यही कारण है कि रंगभेद के शिकार प्रवासी चाहकर भी पश्चिमी समाज को नहीं अपना पाते। यह पराई धरती पर बेगाने होने का भाव उनके मन में विद्रोह की भावना उत्पन्न करता है।

'सरस्वती की धार' कहानी की नायिका शारदा काले हिस्पैनिक बच्चों की आबादी के स्कूल में पढ़ाती है। स्कूल का बारह साल का मैलकम अंग्रेजों से नफरत करता है। उसके मन की घृणा का भाव इस कदर बढ़ गया है कि एक दिन जब समाज विज्ञान की कक्षा में शारदा किलन्टन के बारे में पढ़ा रही थी तो वह बोला, 'बना नहीं तो क्या... बन सकता है... काले गवर्नर तो है... राष्ट्रपति भी बनेंगे तुम बड़े होकर बनना न!' [13]

निष्कर्ष:

अत: कहा जा सकता है कि सुषम बेदी ने नस्लवाद के कारण उत्पन्न बेगानेपन के भाव को अभिव्यक्त किया है। इस बढ़ते बेगानेपन के कारण प्रवासियों को संकटभरी स्थिति का सामना करना पड़ रहा है। बेगानापन वह प्रक्रिया है जो प्रवासी को पश्चिमी समाज के किनारे पर लाकर खड़ा कर देती है। जिस कारण वह उस समाज का हिस्सा नहीं बन पाता। जब तक वह इस समाज के साथ जुड़ा रहता है बेगानेपन का शिकार रहता है।

सन्दर्भ सूची –

1. गुप्त विश्वप्रसाद: मानव चिंतन का विकास, पृ0 112
2. गुप्त विश्वप्रसाद: मानव चिंतन का विकास, पृ0 10–11
3. बेदी सुषम: हवन, पृ0 70
4. बेदी सुषम: लौटना, पृ0 43
5. बेदी सुषम: हवन, पृ0 65
6. बेदी सुषम: लौटना, पृ0 132–133
7. बेदी सुषम: हवन, पृ0 55
8. बेदी सुषम: चिड़िया और चील, पृ0 117
9. बेदी सुषम: हवन, पृ0 98
10. बेदी सुषम इतर, पृ0 122
11. बेदी सुषमा: सुषम बेदी की यादगार कहानियाँपृ0 18
12. बेदी सुषम: चिड़िया और चील, पृ0 150
13. बेदी सुषम: चिड़िया और चील, पृ0 177

ISSN 2278 - 0327

श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित योग का स्वरूप : एक अध्ययन

वीना
शोधार्थी योग विभाग
महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय
पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड

डॉ. लीना झा
एसोसिएट प्रोफेसर योग, शोध निर्देशिका
महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय
पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड

शोध सारांशः

श्रीमद्भगवद्गीता की महिमा असीम है। यह भगवद्गीता ग्रंथ प्रस्थानत्रय में माना जाता है। मनुष्य मात्र के उद्धार के लिए तीन राजमार्ग 'प्रस्थानत्रय' के नाम से जाने जाते हैं- एक वैदिक प्रस्थान है जिसको उपनिषद् कहते हैं। एक दार्शनिक 'प्रस्थान' है जिसे 'ब्रह्मसूत्र' कहते हैं और एक स्मृति प्रस्थान है जिसे गीता कहते हैं। भारत विश्व वसुधा को सदैव अध्यात्म के अपूर्व प्रकाश से आलोकित करता रहा है। परमात्मा के भिन्न अवतारों, सिद्धों, साधु, सन्तों के द्वारा सदैव दिव्य प्रकाश साधारण जनमानस में फैलता रहा है। वह मानवता को बचाने के लिए वराह का रूप धारण कर सकता है तथा अधर्म का नाश करने के लिए नृसिंह का रूप ले सकता है कभी बुद्ध की वाणी से वेदों के सत्य प्रकट कर सकता है तथा भटकते प्राणी को गुरू रूप में मार्गदर्शन दे सकता है। इस धरती पर परमात्मा का अमर ज्ञान, श्रीमदभगवद्गीता भगवान श्रीकृष्ण के मुख से, भ्रमित बुद्धि अर्जुन को मिला था। गीता में साधना, ज्ञान, योग, भक्ति आदि के विभिन्न पक्षों पर बहुत स्पष्ट अपूर्व प्रकाश डाला है।

मुख्य शब्दः श्रीमद्भगवद्गीता, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग।

प्रस्तावना :

वेद भारत के ही नहीं अपितु इस सम्पूर्ण संसार के सबसे प्राचीन साहित्य माने जाते है। इन्हीं वेद में ज्ञान का अखंड भंडार भरा पड़ा है। इसी ज्ञान भंडारण में अन्य प्रकार के ज्ञान के अतिरिक्त योग का ज्ञान भी प्राप्त होता है; अर्थात् इस योग का सर्वप्रथम वर्णन वेदों से ही प्राप्त होता है। इन वेदो में प्रमुखतः तत्वज्ञान एवं ब्रह्मज्ञान ही है, अन्य समस्त प्रकार के ज्ञान जो वेदों से प्राप्त होते हैं विज्ञान परम्परा को प्रसारित करने के लिए ही जाने जाते है।

योग का काल दूसरी शताब्दी में नहीं बल्कि उससे कहीं पूर्व पुरातन एवं प्राचीन काल में ही हो गया था। जिसका वर्णन हमें वेदों में प्राप्त होता है। साथ ही अनेक विद्वानों का ऐसा मत है कि योग की उत्पत्ति सिंधु कालीन सभ्यता के समय हुई थी। निश्चित् ही सिंधु घाटी की खुदाई के दौरान कुछ ऐसे तत्व अवशेष प्राप्त हुए हैं जो इस ओर इंगित भी करते हैं, परंतु उसका यह आशय कदापि नहीं है कि योग इसी सभ्यता में जन्म लिया होगा। इस स्थान में खनन् में नरदेवता की मूर्ति प्राप्त हुई थी जो योगमुद्रा में बैठी थी। इस प्रमाण से यह पता चलता है कि योग का प्रचलन इस सभ्यता में अवश्य था।

वेद कालीन सभ्यता में जन्मोप्रांत शनैः-शनैः योग का प्रचार प्रसार होता रहा, जो धीरे-धीरे विलुप्ति को प्राप्त हो गया। शायद यही वो प्रमुख कारण था। जिसके परिणाम स्वरूप श्रीकृष्ण ने इसे पुनर्जीवित करने के लिए गीता का उपदेश प्रदान किया। गीता वास्तविकता में योग शास्त्र ही है।

योग का अर्थ :

योग विद्या भारतीय संस्कृति की सबसे प्राचीनतम विद्याओं में से एक मानी जाती है। इसका इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितनी यह धरा एवं सृष्टि का है। भारतीय संस्कृति का ज्ञान कोष अनेकानेक रत्नों से परिपूर्ण है। उन रत्नों में एक रत्न सूर्य मणि के समान है; जिसे हम योग विद्या के नाम से जानते हैं। भारतीय संस्कृति एवं शास्त्रों में योग का ज्ञान भरा पड़ा है। इसकी उपादेयता व महत्व का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि भारत के प्राचीन ग्रंथ श्रीमद्भगवद्गीता में इसका परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। गीता में कहा गया है कि-

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।। गीता- 6/46

गीता के भीष्मपर्व में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को योगशास्त्र रूप गीता का प्रवचन करते हुए बतलाया गया है कि- हे! अर्जुन योगीजन को तपस्वियों से श्रेष्ठ माना गया है और शास्त्र ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ स्वीकार किया जाता है एवं सकाम कर्म करने वालों के मध्य में भी योगी ही श्रेष्ठ होता है। अतः अर्जुन तुम योगी बनो।

इस प्रकार से श्रीकृष्ण अर्जुन को योगी बनने की प्रेरणा प्रदान करते हैं। गीता अपने आप में विराट योगशास्त्र है एवं यही गीता श्रीकृष्ण के श्री मुख से निकली परम पवित्र ग्रंथ माना जाता है। इस प्रकार से अर्जुन को योगी बनने की प्रेरणा प्रदान करना योग की श्रेष्ठता का परिचायक है। योग भारतीय संस्कृति व सभ्यता का आधार माना जाता है। भारतीय ऋषि-मुनियों, विचारकों, चिन्तकों एवं विद्वानों ने इस योग को परिभाषित किया है। सामान्यतः योग शब्द से आशय

दो या उससे अधिक संख्याओं, तत्वों, आंकड़ों इत्यादि के जोड़ को ही योग माना जाता है। योग को पूर्ण स्वरूप प्रदान करने हेतु विद्या व ज्ञान के संयोग से आत्मा का परमात्मा से मिलन ही योग है। आत्मा का परमात्मा से संयोग परम कल्याणकारी हैं। जिसे हम मोक्ष के नाम से भी जानते हैं। इस स्थिति में जीव समस्त बंधनों से मुक्त व जीवन मुक्त होकर परमपद् को प्राप्त करता है।

योग का स्वरूप :

गीता ज्ञान एवं योग बहुत कठिन प्रक्रिया नहीं है। इसे एक अनुभवी व्यक्ति से सीखना चाहिये। स्वस्थ्य और सुखी व्यावहारिक जीवन जीने के लिए मन को परमात्मा श्रीकृष्ण के रूप पर एवं उसके नाम की ध्वनि पर मन को एकाग्रित करना चाहिये। उस परम पुरुष परमात्मा में ध्यान करके ही परम प्राप्ति की जा सकती है। इस परम प्राप्ति के लिए श्रीमद्भगवद्गीता में साधन बताये गये है और वह ज्ञान के दरवाजे सभी के लिए खुले हुए हैं। सामान्यत: योग का आशय स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर अग्रसित होना है। अर्थात् जिसका स्वभाव बर्हिमुख है, उसे अंतर्मुखी करना ही योग है। वस्तुत: चित्त की वृत्तियों के प्रभाव से ही हम स्थूलता को प्राप्त करते हैं, वही बर्हिमुख अवस्था है। मानव में रज व तमोगुण की वृद्धि में बर्हिमुखता ही प्रमुख कारण है। जैसे ही यह वृत्तियाँ अंतर्मुखी होती जाएगी व्यक्ति में रजों एवं तमोगुण की मात्रा कम होकर सतोगुण के प्रकाश में वृद्धि होकर अंनन्त: चित्तवृति विहीन होकर शुद्ध परमात्मा स्वरुप को प्राप्त करती है। सामान्यत: योग के अनेक विभाग हो सकते है, परंतु उनमें से तीन अन्तर विभाग मुख्य रूप से माने जा सकते हैं–ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग।

ज्ञान योग :

ज्ञानयोग सांसारिक ज्ञान, विज्ञान एवं भौतिक पदार्थों को कदापि नहीं माना जा सकता। ब्रह्म ही मेरा स्वरूप है, यह बोध होना चाहिए। विवेक व वैराग्य से युक्त होकर साधक इसमें वस्तुओं के स्वरूप का विश्लेषण, वैराग्य द्वारा अनित्य वस्तुओं का परित्याग, विवेक द्वारा नित्यानित्य वस्तु विचार की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है और वह समाधि में ब्रह्मानुभूति प्राप्त करता है। समस्त सांसाारिक पदार्थ तीन गुणों से परिपूर्ण व अवतरित माने जाते हैं। 'इन पदार्थों से परे स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर, पंच कोष सहित सूक्ष्म व कारण जगत् अथवा अहंकार, मन, बुद्धि, इंद्रियाँ इत्यादि यह सब चित्त से परे परम् शुद्ध परमात्मतत्व गुणातीत शुद्ध है एवं इनके द्वारा ही सबमें ज्ञान और व्यवस्था का संचालन हो रहा है। इस व्यवस्था को पूर्ण रूप से जान लेना ही ज्ञान योग माना जाता है।'

राजयोग को संन्यास योग भी कहते हैं क्योंकि यह मूल रूप से सर्वत्यागियों का मार्ग है। ऐतिहासिक दृष्टि से चूंकि ज्ञानयोग निवृत्ति मार्गियों द्वारा सबसे अधिक समर्थित मार्ग रहा है, इसलिए दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। ज्ञानमार्गी अधिकांश राजयोग की साधना करते हैं और राजयोगी अधिकतर ज्ञानमार्गी होते हैं। सैद्धान्तिक दृष्टि से राजयोगी ध्यानयोगी और आत्मज्ञान योगी का लक्ष्य होता है, जबकि ब्रह्मज्ञान ज्ञानी का लक्ष्य।

भक्ति योग :

योगों में उत्तम योग भक्तियोग है जो भगवान् के साथ संबंध जोड़ने का अधिकारी बनाता है, जो सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय के रूप में भक्तजनों के लिए सरल, सुगम एवं सर्वजन प्रिय मार्ग है। जिसका अभ्यास प्रेम–भाव स्थित में स्थिर होकर किया जाता है। जिससे प्रसन्न होकर ईश्वर अपने सभी खजाने भक्त के लिए खोल देता है। इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं –

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्तमा मता:।। गीता–12/2

अर्थात् जो साधक मुझमें मन को एकाग्र करके निरंतर मेरे भजन–ध्यान में लगे हुए, जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रृद्धा से युक्त होकर मुझ सगुणरूप परमेश्वर को भजते हैं, वे मुझको योगियों में अति उत्तम योगी प्रिय है।

कर्मयोग :

कर्मयोग एक ऐसा साधन है जिसमें हम विष का प्रयोग इस प्रकार करते हैं जिससे वह प्राणघातक न होकर जीवनदान कर सकें। जो कर्म बन्धन का कारण होता है और मनुष्यों को ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा पहुंचाता है उसी कर्म का उपयोग हम इस प्रकार करते हैं जिससे वह हमें बद्ध करने के बजाय मुक्त कर दे। उदाहणार्थ किसी बैल की भाँति खेत अथवा कोल्हू में सतत् कर्मों में लगे रहना कर्म योग का परिचायक नहीं है। वरन् अपने समस्त साधनों जैसे धनसंपदा, इंद्रियों एवं शरीर आदि के कर्मों से प्राप्त फलों को परमेश्वर के चरणों में समर्पित करते हुए निष्काम भाव एवं उन कर्मों में अनासक्त हुए बिना कर्म करना ही कर्म योग कहलाता है।

मनुष्य जीवन अमूल्य है। यह न केवल मनुष्यों के लिए वरन् देवताओं के लिए भी सहजता से सुलभ नहीं है। तब इस अतिशय महत्वपूर्ण मनुष्य जन्म कि प्राप्ति का उद्देश्य कैवल्य की प्राप्ति है। जिसे योग ग्रन्थों में अनेक नामों से जाना जाता है जैसे– बौद्ध दर्शन में ''निर्वाण'', जैन दर्शन में ''मोक्ष'', सांख्यदर्शन में ''प्रकृति और पुरुष का वियोग'', योग दर्शन में ''कैवल्य'' कहा गया है तथा कैवल्य प्राप्ति हेतु विभिन्न योग साधनाओं को उल्लेखित भी किया गया है। अत: सम्पूर्ण वसुधा पर कैवल्य प्राप्ति के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक रहस्यों को उद्घाटित करने के हेतु यौगिक सिद्धांतों के दिव्य यौगिक व्यवहारिक उपदेशों का अध्ययन व अनुकरण परम आवश्यक है।

अत: योग का सबसे प्रमुख उद्देश्य आत्मा को अपने मूल स्वरूप का दर्शन प्राप्त कराना है। यह आत्मज्ञान एवं आत्म दर्शन तभी प्राप्त हो सकता है, जब चित्त की समस्त वृत्तियाँ अपने मूल स्वरूप में लीन हो जाए और उन वृत्तियों का पूर्णरूपेण निरोध हो जाए। यही योग के

स्वरूप एवं उसकी तत्वपूर्णता को प्रदर्शित एवं सार्थक बनाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में इन्हें त्रिवेणी कहा है ''जिस प्रकार से भक्त की भावराशि की सीमा अनंत है। उसी प्रकार गीता का ज्ञान भी अनंत और अगाध है। चाहे कोई किसी भी प्रकार का रसाभिलाशी क्यों न हो, तद्नुरूप रसास्वादन से उसे गीता वंचित नहीं करती। जैसे लोग पवित्र मंदाकिनी में अवगाहन कर, सुस्नान होकर अपने पात्र में उसका सुनिर्मल जल भर लेते हैं। उसी प्रकार यदि इस पुण्यमयी गीता रूप प्रवाहिनी में जो प्रवेश करते हैं, वह अवश्य ही परम लक्ष्य को प्राप्त करते है।''

निष्कर्ष :

श्रीमद्भगवद्गीता में योगाभ्यास की विस्तृत रूपरेखा प्राप्त होती है। गीता सर्वशास्त्रमयी, परम रहस्यमयी ग्रंथ है जिसमें सारे शास्त्रों का खजाना कहें तो भी अतिश्योक्ति नहीं होगी। गीता का भलीभाँति ज्ञान हो जाने पर सब शास्त्रों का तात्विक ज्ञान अपने आप हो सकता है। उसके लिए अलग परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं रहती। क्योंकि भगवान् में गुण, प्रभाव, स्वरूप, तत्व, रहस्य, उपासना, कर्म एवं ज्ञान का वर्णन जिस प्रकार गीताशास्त्र में किया है वैसा अन्य ग्रंथों में एक साथ मिलना कठिन है।

श्रीमद्भगवद्गीता को गंगा और गायत्री से भी बढ़कर माना गया हैं क्योंकि गीता घर-घर में जाकर उन्हें मुक्ति का मार्ग दिखलाती हैं। प्रायः सभी शास्त्रों में भगवान् को प्राप्त करने के तीन प्रधान मार्ग बतलाये गये है- कर्म, उपासना और ज्ञान। श्रीमद्गीता में भी कर्म, भक्ति और ज्ञान को भगवद् प्राप्ति के लिए मुख्य साधन के रूप में प्राप्त होते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, मुक्ति के चार सोपान, योग पब्लिकेशन बिहार
2. आचार्य उदयवीर शास्त्री, 2015, योगदर्शनम्, गोविन्दराम हंसानन्द प्रकाशन
3. गोयन्दका, श्री हरिकृष्णदास, योगदर्शन, गीता प्रेस गोरखपुर
4. गोयन्दका, जयदयाल, 2016, श्रीमदभगवद्गीता, तत्वविवेचनी टीका, गीता प्रेस गोरखपुर
5. गोयन्दका जयदयाल, श्रीमदभगवद्गीता, गीता प्रेस गोरखपुर, तेरहवा पुनर्मुद्रण
6. राधेश्यारवैय, योग तत्वाह कल्याण, गीता प्रेस गोरखपुर, संख्या 1-मुद्रण 1
7. गौड़ डॉ. अक्षय, 2015, श्रीमद्भगवद्गीता, ड्रोलिया पुस्तक भण्डार हरिद्वार
8. दशोरा नन्दलाल, 2018, पातंजल योगसूत्र, रणधीर प्रकाशन हरिद्वार
9. नौटियाल डॉ. विनोद प्रसाद, 2016, योगदर्शन, किताब महल दिल्ली
10. भावे विनोवा, 2019, गीता प्रवचन, सर्वसेवा संघ प्रकाशन वाराणसी

ISSN 2278 - 0327

योगग्रन्थों में वर्णित प्राण की अवधारणा : एक अध्ययन

सेतवान
शोध छात्र, योग विज्ञान विभाग
गुरु कुल कांगडी, विश्वविद्यालय, हरिद्वार

नवीन
शोध छात्र, वेद विभाग
गुरु कुल कांगडी, विश्वविद्यालय, हरिद्वार

शोध सारांश -

प्राण शब्द का सामान्य अर्थ जीवनदायिनी वायु माना गया है अर्थात् जिस वायु द्वारा हमारा जीवन सुरक्षित बना रहता है, वह प्राण कहलाता है। उपनिषदों में प्रजापति ने रयि एवं प्राण को उत्पन्न किया और सूर्य को प्राण कहा है। प्रश्नोपनिषद् में प्राण को व्रात्य कहा है, जो स्वत: शुद्ध हो। प्राण हमारे जीवित होने का प्रमाण है। प्राण की महिमा को देखते हुए इसे सबसे श्रेष्ठ व सबसे ज्येष्ठ कहकर सम्बोधित किया है। वेदों में प्राण को मित्र, वरूण, वायु, वात, रूद्र, इन्द्र, अग्निषोम, अङ्गिरस, अङ्गिरा आदि कहा गया है। मानव शरीर में प्राण को दस भागों में विभक्त किया गया है. पांच प्राण- प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान व पांच उपप्राण- नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय है। इन प्राण के नियन्त्रण का नाम प्राणायाम है। यह प्राण हमारे शरीर को पिता के समान ही देखभाल करता है, जो शरीर का कल्याण करके, उसे सुख प्रदान करता है। प्राणों के कार्यों का विभाजन करते हुए कहा गया है कि वर्णोच्चारण करना प्राण का, मल विसर्जन अपान का, भोजन का पाचन समान का, वमन व गाने में उदान का व संचरण में व्यान का ही योगदान होता है। नाग वायु द्वारा डकार, कूर्म वायु द्वारा आँखों का खुलना-बन्द होना, कृकल द्वारा छींकना, देवदत्त द्वारा जम्भाई व धनजंय द्वारा देह में मृत्यु के बाद भी स्थिर उदान का व संचरण में व्यान का ही योगदान होता है। प्राणमय कोश जो पंच कोशों में द्वितीय आवरण है, जो जीवन में व्याप्त अन्तरम् परतो में छिपी गहन जिज्ञासाओं का समाधान प्रस्तुत करना है। प्राणायाम अष्टांग योग का चौथा अंग माना है। सामान्य रूप से प्राणायाम की तीन क्रियाओं का ही वर्णन मिलता है-रेचक, पूरक, कुम्भक, पुन: रेचक। वेदों में प्राणायाम की महिमा का वर्णन है कि यह प्राणायाम औषधि का एक रूप है, प्राणायाम से आयु की वृद्धि होती है।

मुख्य शब्द : प्राण, पंच प्राण व उपप्राण, मन, प्राणायाम एवं प्राणायाम के भेद।

प्रस्तावना-

प्राणायाम साधना को अष्टांग योग के अन्तर्गत पाँचवें स्थान पर रखा गया है। प्राणायाम के स्वरूप को जानने से पहले हम प्राण शब्द के अर्थ को जानने का प्रयास करते हैं, जिससे प्राणायाम साधना को सुगमता से समझा जा सके। प्राण शब्द का सामान्य अर्थ जीवनदायिनी वायु माना गया है अर्थात् जिस वायु द्वारा हमारा जीवन सुरक्षित बना रहता है, वह प्राण कहलाता है। इसे अंग्रेजी में VITAL FORCE कहा गया है, जिसका अर्थ है जीवनशक्ति। प्राण वह बल है जो हमारे जीवन को गति प्रदान करता है। वह बल जो हमारे प्रत्येक कार्य में लगा होता है। यह वही बल है, जिससे हमारी सभी ज्ञानेन्द्रियां व मन अपना-अपना कार्य सुचारू रूप से कर पाते हैं। प्राण हमारे जीवित होने का प्रमाण है। प्राण की महिमा को देखते हुए इसे सबसे श्रेष्ठ व सबसे ज्येष्ठ कहकर सम्बोधित किया है। आयुर्वेद की दृष्टि से बात करें, तो प्राण को सबसे बड़ी औषधि कहा है। अत: प्राण है, तो हम हैं। प्राण के समाप्त होते ही, जीवन समाप्त हो जाता है। प्राण का सुरक्षित होना ही, जीवन का सुरक्षित होना है और प्राणों का नष्ट होना ही, जीवन का नष्ट होना है।

वेदों में भी प्राणों की अपार महिमा का वर्णन किया गया है। ऋग्वेद में प्राण शब्द का 9 बार प्रयोग किया है, यजुर्वेद में 49 बार, साम वेद में 6 बार तो वहीं अथर्ववेद में 119 बार प्राण शब्द का प्रयोग किया गया है।[1] वेदों में प्राण शब्द को अनेक पर्यायवाची अर्थों में प्रयोग करते हुए, प्राण को मित्र, वरुण, वायु, वात, रूद्र, इन्द्र, अग्निषोम, अङ्गिरस, अङ्गिरा आदि रूपों में प्रयोग किया है।[2] इन्हीं पर्यायवाची नामों में से एक 'रुद्रा' से शतपथ ब्रह्मण में प्राण के दस व ग्यारहवें अंग के रूप में मन का वर्णन किया है।[3] जो इस प्रकार हैं-प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्भ, कृकृल, देवदत्त, धनंजय व मन। यजुर्वेद इन सभी प्राणों को संयमित करते हुए इनके द्वारा योगयज्ञ को सम्पन्न करवाने हेतु प्रभु से प्रार्थना करता है कि हे प्रभो ! मेरे सभी प्राण बुद्धि द्वारा संयमित रहे जिसके बाद मैं इन प्राणों से योग को सिद्ध कर सकूं।

प्राणों का स्थान व कार्य व वर्ण -

- प्राण-मुख से हृदय तक बोलना, रक्त को लाल बनाएं रखना, भूख-प्यास आदि, यह नील वर्ण का है।
- अपान-नाभि से पैरों तक मल-मूत्र व रज-वीर्य विसर्जन, मलं का निष्कासन आदि। शुक्ल वर्ण का है।
- समान- हृदय से नाभि तक पाचन करना, रसों का स्त्राव, गीला

करना नाड़ी व मस्तिक को पुष्ट करना, यह धूसर वर्ण का है।

- उदान- कण्ठ से शीर्ष तक शरीर को उठाये रखना, वमन व गाने में सहयोग, यह नील मिश्रित हरा वर्ण का है।
- व्यान- सम्पूर्ण शरीर गतिशीलता प्रदान करना, रक्त संचार, धड़कन आदि, आसमानी वर्ण का है।

उप प्राणों की स्थिति व कार्य -

- नाग- मुख में डकार, हिचकी
- कूर्म-पलको का झपकाना
- कृकल-कण्ठ भूख, प्यास पैदा करना
- देवदत्त- नासिका जम्भाई तथा छींक
- धनंजय-समस्त शरीर सूजन उत्पन्न करना

प्राणों के कार्य-

प्राणों के कार्यों का विभाजन करते हुए कहा गया है कि वर्णोच्चारण करना प्राण का, मल विसर्जन अपान का, भोजन का पाचन समान का, वमन व गाने में उदान का व संचरण में व्यान का ही योगदान होता है। नाग वायु द्वारा डकार, कूर्म वायु द्वारा आँखों का खुलना-बन्द होना, कृकल द्वारा छींकना, दवे दत्त द्वारा जम्भाई व धनजंय द्वारा देह में मृत्यु के बाद भी स्थिर रहना सम्भव होता है।[4] प्राण व उपप्राणों के स्थान व कार्यों को आसानी से समझने के लिए रेखाचित्र बड़ा उपयोगी होगा।

प्राण शब्द को वायु भी कहा जाता है। लेकिन आयुर्वेद इसकी उपयोगिता के चलते वायु के स्थान पर प्राण शब्द का प्रयोग करता है। इसके साथ-साथ वायु को आयु कहकर सम्बोधित करते हुए, आयुर्वेद इस वायु को ही प्राणायाम आदि क्रियाओं का आधार मानता हैं।[5] आयुर्वेद प्राण तत्त्व को सभी क्रियाओं का आधार मानता है। तभी प्राण को 'परम औषधम्' कहकर सम्बोधित किया गया है। इसका अर्थ है कि प्राण नामक तत्त्व सबसे बड़ी औषधि है।

प्राणायाम -

प्राणायाम को आसन के बाद सबसे ज्यादा प्रचलित योग अंग माना जाता है। प्राणायाम को समझने के लिए हमें इसकी व्याख्या को जानना जरूरी है। प्राणायाम 'प्राण' और 'आयाम' इन दो शब्दों से मिलकर बना है। जिनमें प्राण का अर्थ है जीवनी शक्ति और आयाम का अर्थ है विस्तार। इस प्रकार प्राणायाम का शाब्दिक अर्थ जीवनी शक्ति का विस्तार करने वाली विधि हुआ अर्थात् ऐसी क्रिया जिसके करने से मनुष्य की जीवनी शक्ति अथवा जीवन का विस्तार किया जाता है, प्राणायाम कहलाती है। प्राणायाम का वर्णन वेदों, उपनिषदों, दर्शनों, गीता व हठयोग के सभी ग्रन्थों में व्यापकता के साथ किया गया है।

हमारे शरीर को उपनिषद् के अनुसार पाँच कोशों में बांटा गया है, जो इस प्रकार हैं-1. अन्नमय कोश, 2. प्राणमय कोश, 3. मनोमय कोश, 4. विज्ञानमय कोश, 5. आनन्दमय कोश।

इन सभी में पहले अर्थात् अन्नमय कोश को स्थूल शरीर कहते हैं, जिसमें हमारे शरीर का प्रत्यक्ष रूप से दिखने वाला भाग शामिल होता है। इसके बाद प्राणमय कोश का स्थान आता है। यह अदृश्य अर्थात् न दिखाई देने वाला होता है। इसे सूक्ष्म शरीर भी कहा जाता है। इसके बाद मनोमय कोश का स्थान आता है, जिसमें हमारी इन्द्रियां और मन का विशेष योगदान होता है। इसके बाद विज्ञानमय कोश आता है, जिसका मुख्य घटक बुद्धि होता है। अन्त में आनन्दमय कोश का स्थान आता है। आनन्दमय कोश को आत्मा के सबसे निकटतम माना जाता है और अन्नमय कोश को आत्मा से दूर का कोश माना जाता है। यहाँ पर चूंकि प्राणायाम का विषय है तो हम केवल प्राणमय कोश का ही वर्णन करेंगे।

प्राणमय कोश - प्राणमय कोश हमारे सूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत आता है। यह सूक्ष्म शरीर कुल 17 तत्त्वों के संयोग से बना है। जिसके अन्तर्गत पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रियां, पाँच सूक्ष्म भूत, एक मन और एक बुद्धि को सम्मिलित किया गया है। इस तरह कुल 17 तत्त्वों के साथ हमारा सूक्ष्म शरीर बनता है। आगे इस सूक्ष्म शरीर के भी दो भेद किये गए है - एक भौतिक और दूसरा स्वाभाविक। इनमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस व गन्ध से निर्मित को भौतिक व जीव के स्वाभाविक गुणों से निर्मित को स्वाभाविक कहते हैं। जिस प्रकार अन्नमय कोश के सिर, धड़, हाथ व पैर आदि अंगों को उसके उपाङ्ग कहा गया है। ठीक इसी प्रकार प्राण, अपान, समान, उदान व व्यान आदि प्राणों को प्राणमय कोश का उपाङ्ग कहा गया है। प्राणमय कोश को सभी प्राणों की व्याख्या के बिना नहीं जाना जा सकता। प्राण की बात करते हुए हठयोग ग्रन्थों में कथन है कि प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग कूर्म, कृकृल, देवदत्त व धनंजय नामक दस प्राणों को बताता है।[6]

प्राणायाम परिभाषा-श्वास और प्रश्वास की सामान्य गति में अवरोध करके, अपने श्वास व प्रश्वास को अपनी इच्छानुसार चलाना, प्राणायाम कहलाता है।[7]

डॉ. रामहर्ष सिंह आयुर्वेद के अनुसार प्राणायाम की परिभाषा बताते हुए कहते हैं कि प्राणवायु शरीर व शरीर के सभी अवयवों को धारण करने वाली, सभी चेष्टाओं को गति प्रदान करने वाली तथा उनका नियन्त्रण करने वाली होती है। इसी प्राणवायु की गति पर नियन्त्रण करना प्राणायाम कहलाता है।[8] आसन की सिद्धि होने के बाद अपनी श्वास-प्रश्वास की सामान्य गति को रोक देना प्राणायाम कहलाता है।

वेद कहता है कि जिस प्रकार उत्तम फसल के लिए भूमि के सुधार के लिए हल की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार अपने चित्त की भूमियों को उत्तम बनाने के लिए प्राणायाम रूपी हल की आवश्यकता है।[9]

अथर्ववेद कहता है कि इस प्राण की महिमा अपार है, यह पूरा ब्रह्माण्ड एवं पिण्ड सब इस प्राण के ही अधीन है।[10] इसके साथ ही

वेद प्राणायाम को दवे ताओं के वैद्य के रूप में भी परिभाषित करते हैं।

ऋग्वेद प्राणायाम की महिमा का वर्णन करते हुए कहता है कि यह प्राणायाम औषधि का एक रूप है, जो शरीर का कल्याण करके, उसे सुख प्रदान करता है। इसी प्राणायाम से आयु की वृद्धि होती है। ये प्राण हमारे शरीर को पिता के समान ही देखभाल करता है, यह मित्र के समान सुख प्रदान करने वाला तथा शरीर में स्थायित्व की स्थापना करता है।[11]

स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती कहते हैं कि प्राण व वीर्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है, प्राण के स्थायीत्व से वीर्य में भी स्थायीत्व आता है।[12]

प्राणायाम हेतु स्थान का चयन-

योग साधक को धार्मिक स्थान भिक्षा प्राप्ति वाले, उपद्रव रहित स्थान पर अपनी कुटिया का निर्माण करके साधना करनी चाहिए।[13]

समय-प्राणायाम का प्रात:काल, मध्यकाल, सायंकाल व अर्धरात्रि में कुल चार बार में अस्सी तक प्राणायाम करने का निर्देश किया गया है।[14] इस प्रकार प्राणायाम का नियमित रूप से अभ्यास करने पर साधक तीन वर्ष में ही योग को सिद्ध कर लेता है।

नाड़ी शुद्धि वर्णन-

प्राणायाम पूर्व के अन्तिम अभ्यास अर्थात् नाडी शुद्धि की विधि बताते हुए कहा है कि साधक को बायीं नासिका से 16 बीज मन्त्रों का जाप करते हुए प्राणवायु को अन्दर भरना चाहिए। इसके बाद अन्दर भरी हुई वायु को 64 बीज मन्त्रों का अन्दर ही रोककर रखें और फिर दायीं नासिका से उस प्राणवायु को 32 बीजमन्त्रों के साथ बाहर निकालना चाहिए। यह आधा चक्र पूरा हुआ। इसके बाद इसी प्रक्रिया को दायीं से बायीं ओर करना ही नाड़ी शुद्धि कहलाता है।[15] इस तरह नाड़ी शुद्धि प्राणायाम में प्राण की गति 1:4:2 की रहती है। इसका अभ्यास प्राणायाम के पूर्व करना चाहिए।

साधक के प्रकार- साधक के तीन प्रकारों का वर्णन करते हुए - अधम, मध्यम व उत्तम प्रकार के साधक बताये गए है ।

- अधम- इसमें साधक को शरीर में पसीना आता है।
- मध्यम- इसमें शरीर में कम्पन्न होती है।
- उत्तम-इसमें शरीर ऊपर उड़ने लगता है।[16]

प्राण की अवस्थायें - प्राण की मुख्य रूप से तीन अवस्थायें होती हैं-1. रेचक, 2. पूरक तथा, 3. कुम्भक।

- **रेचक**-शरीर से श्वास को बाहर निकालने को रेचक क्रिया कहते हैं। यह क्रिया निर्बाध गति से चलती रहती है। जब भी प्राण बाहर निकल रहा होता है तो वह रेचक क्रिया हो रही होती है।
- **पूरक**-प्राणवायु को शरीर के अन्दर भरने की क्रिया को पूरक कहते हैं। श्वास को भीतर भरने की क्रिया पूरक कहलाती हैं। जब हम श्वास को शरीर के अन्दर भर रहे होते हैं, तो पूरक क्रिया हो रही होती है।
- **कुम्भक**-श्वास को अन्दर या बाहर लेकर, वहीं पर रोक देने की क्रिया कुम्भक कहलाती है अर्थात् बाह्य या आभ्यान्तर प्राणायाम की क्रिया को कुम्भक कहते हैं। जब हम बाह्य और आभ्यान्तर वृत्ति प्राणायाम कर रहे होते हैं, तो वह कुम्भक क्रिया कहलाती है।[17]

इसे हम विज्ञान की भाषा में इस प्रकार भी कह सकते हैं कि फेफड़ों में भरी जाने वाली आक्सीजन को श्वास तथा फेफड़ों से बाहर छोड़ी जाने वाली कार्बनडाईआक्साइड को प्रश्वास कहते हैं। अत: श्वास और प्रश्वास होता है। इस प्रकार प्राणायाम से हम अपने जीवन का ही विस्तार करते हैं।

प्राणायाम के प्रकार-

प्राणायाम के विषय में विभिन्न मत प्रचलित हैं। प्राय: सभी योगियों ने अपने-अपने मत व समय की आवश्यकता के अनुसार प्राणायामों के प्रकारों का वर्णन किया है। जिससे प्राणायाम के प्रकारों अथवा भेदों में काफी भिन्नता देखने को मिलती है। इससे एक प्रश्न उठता है कि क्या सभी योगी प्राणायाम के विषय में एकमत नहीं है। इसका उत्तर केवल हाँ या ना में नहीं हो सकता, क्योंकि इस भिन्नता के पीछे बहुत से कारण हैं। सबसे बड़ा कारण सभी योगियों का अलग-अलग समय में पैदा होना तथा उस समय देश-काल की स्थिति को माना जाता है।

वेदों में प्राणायाम को अष्टांग योग के चौथे अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। वेदों में प्राण को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। प्राण को जीवन का आधार मानते हुए, इसे जीवन और मृत्यु के बीच के सेतु के रूप में परिभाषित किया है। प्राणों की अपार महिमा से वेदों में अनेक दृष्टांत व उदाहरण भरे पड़े हैं। वेद प्राण को विस्तारपूर्वक बताते हुए प्राण के ग्यारह भेदो का वर्णन करता है।[18] प्राण के ग्यारह भेद में 5 प्राण, 5 उपप्राण एवं जीव है।

उपनिषदों में प्राणायाम को अष्टांग योग का चौथा अंग माना है। प्राणायाम को परिभाषित करते हुए कहा है कि श्वास और प्रश्वास की सामान्य गति में अवरोध उत्पन्न करना ही प्राणायाम कहलाता है। हठयोग की भांति उपनिषद् भी प्राणायाम से पूर्व नाड़ी-शोधन के अभ्यास की अनिवार्यता पर बल देता है। जिसके अभ्यास से परम लक्ष्य की प्राप्त होती है।[19]

प्राण के भेद- उपनिषद् प्राण के निम्न दस भेदों का वर्णन करता है।

1.	प्राण	2.	अपान
3.	समान	4.	उदान
5.	व्यान	6.	नाग
7.	कूर्म	8.	कृकल
9.	देवदत्त	10.	धनंजय

इनमें से प्राण व अपान को प्रधान माना गया है। यहां पर प्राणायाम की चार प्रमुख क्रियाओं का वर्णन किया गया है, जिनके

द्वारा प्राणायाम की प्रक्रिया सम्पन्न होती है- रेचक, पूरक, कुम्भक, पुन: रेचक। सामान्य रूप से प्राणायाम की तीन क्रियाओं का ही वर्णन मिलता है। जिनमें रेचक, पूरक व कुम्भक को रखा गया है। लेकिन यहां पर पुन: रेचक करने पर प्राणायाम की क्रिया को पूर्ण माना गया है।

प्राणायाम के सन्दर्भ में ध्यानबिन्दू उपनिषद् कहता है कि प्राण हमारे शरीर में इन्द्रियों के माध्यम से विचरण करता है। यहां पर निम्न दस नाडियों को प्राण के विचरण का कारण माना गया है, दस नाड़ियां इसप्रकार है- 1. इड़ा 2. पिंगला 3. सुषुम्ना 4. गान्धारी 5. हस्तिजिह्वा 6. पूषा 7. यशस्विनी 8. अलम्बुसा 9. कुहू 10. शंखिनी।[20]

पुराणों में प्राणायाम को अष्टांग योग का चैथा अंग माना है। मार्कण्डेय पुराण कहता है कि प्राणायाम के द्वारा राग आदि दोषों का नाश होता है। आगे कहा गया है कि जिस प्रकार अग्नि में तपाने से स्वर्ण आदि धातुओ के दोष दूर हो जाते हैं, उसी प्रकार प्राणायाम से इन्द्रियो के दोष दूर हो जाते हैं। यहां पर प्राण व अपान वायु को रोकने को ही प्राणायाम की परिभाषा बताया गया है।

इसके निम्न तीन भेद भी किये गए हैं- 1. लघु 2. मध्य 3.उत्तरीय।

प्राणायाम का अभ्यास करने से साधक अपने प्राणों पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार प्राणायाम से सभी पापों का नाश होता है। इसके लिए मनुष्य को प्राणायाम के अभ्यास में रत रहना चाहिए। प्राणायाम से साधक मन, पांच प्राण और इन्द्रियों के विषय प्रसाद को प्राप्त हो जाते हैं, वही उसकी प्रसाद की अवस्था होती है। गीता में प्राणायाम को अष्टांग योग का चौथा व बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंग है। प्राणायाम का सामान्य अर्थ होता है, प्राणों का विस्तार करना। गीता में इस प्रकार प्राणायाम की विस्तृत विवेचना तो नहीं की गई है, लेकिन प्राणायाम की सामान्य चर्चा की गई है। गीता में प्राणायाम की संख्या को लेकर भी कोई आंकड़ा नहीं दिया गया है। बल्कि गीता में प्राणायाम की चर्चा ज्ञान व कर्मयोग के सन्दर्भ में की गई है। गीता में कथन है कि प्राणायाम के लिए आरूढ़ होकर, अपने प्राण व अपान की गति को रोककर, तो कुछ लोग प्राण को अपान में और अपान का प्राण में हवन करते है।[21]

वशिष्ठ संहिता में प्राणायाम को अष्टांग योग साधना का चौथा अंग माना गया है। वशिष्ठ संहिता में प्राणायाम से पूर्व नाड़ी शुद्धि करने का निर्देश दिया गया है। बहत्तर हजार नाड़ियो में से भी मुख्य चौदह नाड़ियां कही गई है। जिनका वर्णन इस प्रकार है-इडा, पिंगला, सुषुम्ना, सरस्वती, कुहू, वरणा, यशस्विनी, पूषा, पयस्विनी, शखिंनी, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, विश्वोदरा व अलम्बुशा। नाड़ियों के बाद महर्षि वशिष्ठ दस मुख्य प्राणों का वर्णन करते हैं जिनमें पांच मुख्य प्राण व पांच उपप्राण कहे गए हैं।[22]

स्वामी स्वात्माराम हठप्रदीपिका में योग के दूसरे अंग के रूप में प्राणायाम का वर्णन करते हैं। हठप्रदीपिका प्राणायाम विषय को कुम्भक नाम से सम्बोधित करती है। द्वितीय उपदेश में आसन की सिद्धि होने पर कुम्भक अर्थात् प्राणायाम का निर्देश करते हुए कहा है कि आसन का अभ्यास मजबूत होने पर साधक को अपनी इन्द्रियों को वश में करते हुए गुरु द्वारा बताई गई विधियों द्वारा प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।[23] प्राणवायु के शरीर में रहने को जीवन व बाहर निकल जाने को मरण कहते हुए, प्राणायाम के अभ्यास की अपील भी की गई है।[24]

हठप्रदीपिका में सूर्यभेदी, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा व प्लाविनी, नामक आठ प्रकार के प्राणायामों का उल्लेख किया गया है।[25] इन अष्ट कुम्भक को ही प्राणायाम कहा जाता है। इसके अतिरिक्त हठप्रदीपिका कुम्भकों से पहले नाड़ी शुद्धि के अभ्यास पर बल देते हुए कहता है कि जब तक शरीरस्थ नाड़ियों का मल दूर नहीं होगा, तब तक प्राणवायु का संचार नहीं हो सकता। इसलिए नाड़ियों को शुद्ध करने के लिए नाड़ी शुद्धि का अभ्यास करना चाहिए।[26]

घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड ने योग के सात अंगों का वर्णन किया है, जिसमें षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान व समाधि को रखा है।[27] इसमें प्राणायाम को प्रत्याहार के बाद वर्णन किया है। महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि साधक पहले स्थान, समय, मिताहार व नाड़ी शुद्धि का पालन करे, उसके बाद प्राणायाम साधना का अभ्यास प्रारम्भ करना चाहिए। इस हठयोग के ग्रन्थ में भी आठ प्रकार के प्राणायामों का ही वर्णन किया गया है। सहित, सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा व केवली ये आठ प्रकार के कुम्भक कहे गए हैं।[28] इस प्रकार घेरण्ड संहिता में प्राणायाम का स्वरूप बताया गया है।

योगदर्शन में महर्षि पतंजलि प्राणायाम की संख्या का वर्णन करते हैं कि बाह्यवृत्ति, आभ्यान्तर वृत्ति, स्तभवृत्ति[29] और बाह्य आभ्यान्तरविषयाक्षेपी[30], ये चार प्रकार के प्राणायाम हैं।

प्राणायाम के लाभ-

प्राणायाम करने से साधक अज्ञान के आवरण से मुक्त हो जाता है अर्थात् प्राणायाम करने से साधक के अन्दर जो अज्ञान रूपी आवरण होता है, वह दूर हो जाता है।[31] इसके अतिरिक्त प्राणायाम साधना के सिद्ध होने पर साधक के मन में धारणा करने की सामर्थ्य बढ़ती है अर्थात् साधक किसी भी प्रकार की धारणा करने में समर्थ हो जाता है।[32] उपनिषदों में प्राणायाम से हल्कापन, जठराग्नि प्रदीप्त, पतलापन होना बताया गया है। इस प्रकार प्राणायाम के सिद्ध होने पर साधक का शरीर हल्का हो जाता है, जठराग्नि प्रदीप्त और पतलापन होता है।

वहीं हठयोग आचार्यों का मानना है कि प्राणायाम करने से शरीर में लघुता आती है। साथ ही प्राणायाम के स्थिर होने पर साधक का चित्त भी स्थिर हो जाता है। इस प्रकार योग आचार्यों ने प्राणायाम

के अनेकों लाभों का वर्णन किया है। अत: प्राणायाम करने पर साधक का अज्ञान का आवरण हटता है, मन में धारणा शक्ति बढ़ती है, चित्त में स्थिरता आती है और शरीर में हल्कापन आता है। घेरण्ड संहिता में कहा गया है कि प्राणायाम करने से साधक को लघुता प्राप्त होती है।[33] अर्थात् कुम्भक का अभ्यास करने से शरीर में हल्कापन आता है।

हठप्रदीपिका में प्राणायाम सिद्धि के फल में कहा गया है कि प्राण के स्थिर होने पर चित्त भी स्थिर होता है।[34] अत: चित्त: की स्थिरता हेतु प्राण का स्थिर होना अति आवश्यक है। योगदर्शन के समाधिपाद में भी प्राणायाम का प्रतिफल बताते हुए कहा है कि प्राणायाम करने से मन में स्थिरता आती है।[35] प्राणायाम का प्रतिफल बताते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में कहते हैं कि इन चारों प्राणायामों का अभ्यास करने से चित्त निर्मल होकर उपासना में स्थिर रहता है।[36]

सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में महर्षि कहते है कि प्राण के वश में होने पर मन और इन्द्रियों पर भी नियन्त्रण होता है, जिससे बल व पुरुषार्थ बढ़ता है और बुद्धि भी तीव्र होती है। बुद्धि के तीव्र होने पर साधक कठिन से कठिन विषयों को भी आसानी से समझ लेता है तथा साधक वीर्यवान, बलशाली, पराक्रमी व जितेन्द्रिय बनता है। ऐसी योग्यता प्राप्त होने पर साधक सभी शास्त्रों को बहुत थोड़े समय में ही समझ लेता है।[37]

उपसंहार-

सारांशत: विभिन्न योगग्रन्थों के आधार पर प्राणायाम के विषय में कह सकते है कि प्राण जीवनी शक्ति और आयाम उसका विस्तार करना। इसके अनुसार प्राणायाम से जीवनी शक्ति का विस्तार करना है। योगदर्शन का समय और समाज की स्थिति और हठयोग के आचार्यों का समय और स्थिति के बीच कई सौ वर्षों का अन्तर पाया जाता है। इसके साथ ही हठयोग के आचार्यों के बीच भी कई पीढ़ियों का अन्तर होने से, इनकी शिक्षाओं में अन्तर होना स्वाभाविक है, परन्तु साधक को अपने इस स्थूल शरीर के स्वस्थ व दीर्घायु रखने के लिए नियमित रूप से प्राण और अपान का नियमित व्यापार अर्थात् प्राणायाम का अभ्यास जारी रखना चाहिए। इसके लिए प्रभु से प्रार्थना की गई है कि हे प्रभो! हमारी यह प्राणवायु सदा सन्तुलित रहे, कभी भी कुपित न हो, यह हमारे लिए सदा हितकारी हो, यह हमारे शरीर में शक्ति व ऊर्जा का संचार करने वाली हो और यह हमें सदा युवा बनाते हुए हमारे शरीर में प्रवाह करती रहे। जिससे शारीरिक दोष समाप्त होते हैं, साथ ही इन्द्रियों के दोष भी समाप्त होते हैं। ऐसा करने पर साधक अपनी बुद्धि और चित्त की भी शुद्धि कर लेता है, जिससे साधक शुभ व अशुभ कर्मों से छूटकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

सन्दर्भ सूची -

1. स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती, वेदों में योगविद्या, यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार, प्र.स. 1999, पृ.-100
2. स्वामी दिव्याननद सरस्वती, वेदों में योगविद्या, यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार, प्र.स. 1999, पृ.-100
3. कतयेरूद्रा इति ?
4. तेषामपि च पञ्चानां स्थानान्यपि च वदाम्यहम् उद्नारे नाग....
   कृकल: क्षुत्कृते ज्ञेयो दवे दत्तो विजृम्भणे।
   न जहाति.... घे.स. 5/63-64
5. स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती, यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार, प्र.स. 1999, पृ.-105
6. प्राणोऽपान: समानश्चोदानत्यानौ तथैव च।
   नाग: कूर्मश्च कृकलो दवे दत्तो धनञ्जय:।। घे.स. 5/59
7. तस्मनि सति श्वासप्रश्वास योर्गतिविच्छेद: प्राणायाम:।।
   यो.द. 2/49
8. प्रो. रामहर्ष सिंह, स्वस्थवृत्त विज्ञान, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, प्र.स. 2013, पृ.-301
9. नमस्ते लाङ्गलेभ्यो नम ईषा युगेभ्य:।
   वीस्त् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु।। अथ. 2/8/4
10. प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे। अथ. 11/4/1
11. ऋग्वेद् 10/186/1-3
12. स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती, यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार, प्र.स. 1999, पृ.-115
13. सुदेशे धार्मिके राज्ये सुभिक्षे निरूपद्रवे।
    कृत्वा कुटीरं तत्रैकं प्राचीरै: परिवेष्टितम्।। घे.स. 5/5
14. त्रिशि. 1/101
15. घेरण्ड संहिता, पंचम अध्याय, श्लोक-38 से 41 तक
16. प्रसवेदजनको यस्तु प्राणायामेषु सोऽधम:।
    मध्यम: कम्पनात् प्रोक्त उत्थानं चोत्तमाद्भवेत्।। व.स. 3/22
17. गोरक्ष संहिता, द्वितीय शतक, श्लोक - 22 से 24 तक
18. ऋग्वेद् 7/62/5
19. प्रणवोधनु: शरोह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते।। ध्यान.वि. 14
20. ध्यानबिन्दू. उ. 52-53
21. अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
    प्राणापानगती रूद्हवा प्राणायामपरायणा:।। गीता 4/29
22. वशिष्ठ संहिता द्वितीय अध्याय, श्लोक संख्या - 20 से 23
23. अथासने दृढे योगी वशी हितमिताशन:।
    गुरूपदिष्टमार्गेण प्राणायामान् समभ्यसेत।। ह.प्र. 2/1
24. यावद् वायु: स्थितो देहे तावज्जीवनमुच्यते।
    मरणं तस्य निस्कान्ति: ततो वायुं निरोधयेत्।। ह.प्र. 2/3
25. सूर्यभेदीनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा।
    भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनी त्यष्ट कुम्भका:।। ह.प्र. 2/44
26. मलाकुलासु नाड़ीषु मारूतो नैव मध्यग:।
    कथं स्यादुन्मनीभाव: कार्य सिद्धि: कथं भवेत्।। ह.प्र. 2/4

27. आदौ स्थानं तथा कालं मिताहारं तथा परम्।
 नाड़ीशुद्धिं ततः पश्चात् प्राणायायं च साधयते।। घे.स. 5/2
28. सहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी शीतली तथा।
 भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा केवली चाष्टकुम्भिकाः।। घे.स. 5/45
29. बाह्याभ्यन्तरस्तभवृत्तिर्देशकालसांख्यामिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः।। यो.द. 2/50
30. बाह्याभ्यन्तर विषयोक्षेपी चतुर्थः।। यो.द. 2/51
31. ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।। यो.द. 2/52
32. धारणासु च योग्यता मनसः।। यो. द. 2/54
33. प्राणायामाल्लाघवञ्च ध्यानात्.....घे. स. 1/11
34. चले वातं चलं चितं निश्चले निश्चलं भवेत्।
 योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्।। ह.प्र. 2/2
35. देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।। यो. द. 3/1
36. नाभिचक्रे हृदयपुण्डरीके, मूर्हिन ज्योतिषि...व्यासभाष्य 3/1
37. स्वामी सत्यपति परिव्राजक, योगदर्शन, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, प्र.स. 2012, पृ.–214

सन्दर्भ सूची

1. स्वामी रामदेव, श्रीमद्भगवद्गीता (गीतामृत) दिव्य प्रकाशन, पतंजलि योगपीठ, महर्षि दयानन्द ग्राम, बहादराबाद, हरिद्वार
2. आर्य, डा. सोमवीर, 2020, योगदर्शन, चैखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, नई दिल्ली
3. संह, डा. अमलधारी, पातंजल योगसूत्रम, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी
4. रामदेव, स्वामी, 2012, योगदर्शन, दिव्य प्रकाशन, हरिद्वार
5. सरस्वती, स्वामी दिव्यानन्द, 1999, यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार
6. सिंह, प्रो. रामहर्ष, 2013, स्वस्थवृत्त विज्ञान, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
7. महेशानन्द स्वामी, 2009, वशिष्ठ संहिता, कैवल्यधाम, श्री मनमाधव योग मन्दिर समिति, लोनावाला
8. परमहंस स्वामी अनन्त भारती, 2018, हठयोगप्रदीपिका, चौखम्भा, ओरियन्टालिया, नई दिल्ली
9. आचार्य बलदेव उपाध्याय, 2010, ''वैदिक साहित्य और संस्कृति'', शारदा संस्थान,वाराणसी
10. शास्त्री आचार्य राजवीर भाष्यकार, 2010, ''योगदर्शनम्'', आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली
11. स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती, 1999, ''वेदों में योगविद्या'', यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार
12. उपाध्याय बलदेव, 1966, ''भारतीय दर्शन'' श्रद्धा मन्दिर, वाराणसी
13. आचार्य बालकृष्ण, 2018, ''योगविज्ञानम्'', दिव्य प्रकाशन, हरिद्वार
14. स्वामी महेशानन्द एवं अन्य, 2004, ''शिव संहिता'', कैवल्यधाम, लोनावाला
15. आचार्य बालकृष्ण, 2014, ''आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य'', दिव्य प्रकाशन, हरिद्वार
16. स्वामी दिगम्बर जी, 1984, ''वशिष्ठ संहिता'', कैवल्यधाम, लोनावाला
17. दामोदर सालवलेकर, 1985, ''यजुर्वेद संहिता'', चैखम्बा, वाराणसी
18. भारती, परमहंस स्वामी अनन्त, 2015, ''योग उपनिषद् संग्रह'', चैखम्बा ओरियन्टालिया,दिल्ली
19. विद्यावाचस्पति डॉ. ओम्प्रकाश वर्मा, 2008, ''ऋग्वेद'', वैदिक प्रज्ञा प्रकाशन, उत्तरप्रदेश
20. विद्यावाचस्पति डॉ. ओम्प्रकाश वर्मा, 2008, ''अथर्ववेद'', वैदिक प्रज्ञा प्रकाशन, उत्तरप्रदेश
21. सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द, 2004, ''घेरण्ड संहिता'', योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार
22. गौतम, चमनलाल, 2015, ''गोरक्षसंहिता'', संस्कृति संस्थान, बरेली
23. शर्मा, राघवेन्द्र (राघव), 2006, ''शिवसंहिता'', चैखम्बा, ओरियन्टालिया, दिल्ली
24. शास्त्री दिगम्बर जी एवम् डॉ. पिताम्बर झा, 2001, ''हठप्रदीपिका'', कैवल्यधाम, लोनावाला
25. दशोरा, नन्दलाल, 2008, ''ध्यान बिन्दु उपनिषद्'', नादबिन्दु उपविषय, रणधीर प्रकाशन,हरिद्वार
26. सरस्वती, महर्षि दयानन्द, 2013, सत्यार्थ प्रकाश, रूपेश ठाकुर प्रसाद प्रकाशन, कचौड़ीगली, वाराणसी
27. सरस्वती, महर्षि दयानन्द,1984, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली

कबीर और यथार्थवाद

सोमिका
एम०ए० हिन्दी, नेट
हिसार।

शोध आलेख सार:-

यथार्थवाद अंग्रेजी शब्द Realism का हिन्दी रूपांतरण है। Realism दो शब्दो से मिलकर बना है Real+Ism शब्द की उत्पति ग्रीक भाषा के शब्द से मानी जाती है जिसका अर्थ 'वस्तु' तथा Ism का अर्थ-वाद। इस प्रकार Realism का शाब्दिक अर्थ है वस्तुवाद अथवा वस्तु के अस्तित्व के संबध में विचारधारा अत: यथार्थवाद वस्तु के अस्तित्व को स्वीकार करता है और वस्तु की वास्तविकता पर बल देता है यह विचारधारा भौतिकवाद पर आधारित है भौतिकवाद के अनुसार केवल भौतिक जगत ही सत्य है इस प्रकार यथार्थवाद का सिद्धांत है जो जगत को उसी रूप में स्वीकार करता है जिस रूप में वह दिखाई पड़ता है या अनुभूत किया जाता है। **जेम्स एस.रॉस.के अनुसार**-'यथार्थवाद का सिद्धांत स्वीकार करता है कि हमारे प्रत्यक्षीकरण के उद्देष्य के पीछे और उनसे मिलता-जुलता वस्तुओं का एक वास्तविक संसार है।'

यथार्थवाद कोई नई विचारधारा नहीं है सृष्टि के आरंभ से ही मानव अपने चारों और की वस्तुओं को देखकर उनमें विश्वास करता रहा है और यही यथार्थवादी विचारधारा की मूल पृष्ठभूमि है। कबीर अपने समय के क्रांतिकारी वक्ता थे कबीरदास जी कहते है कि मनुष्य जीवन तो अनमोल है इसलिए हमें अपने मानव जीवन को भोग-विलास में व्यतीत नही करना चाहिए बल्कि हमें अपने अच्छे कर्मों के द्वारा अपने जीवन को उद्देश्यमय बनाना चाहिए। आज कबीर जी जैसे युग प्रवर्तक की आवश्यकता है। कबीरदास ने वैज्ञानिक यथार्थवाद को अपनाते हुए बाह्याडम्बरों का खण्डन किया।

मुख्य शब्द:-यथार्थवाद, आध्यात्मिक, क्रांतिकारी, सौहार्द, अलख, धर्म, बाजारवाद, बाह्याडम्बर, सात्विक, भूमण्डलीकरण।

प्रस्तावना:-

कबीर की कविता को उनकी व्यक्तिगत आध्यात्मिक अनुभव की गहराई दर्शन एवं विचारों की दिव्यता महान बनाती है। कबीर आम आदमी के अत्यंत निकट के कवि है जो उन्हें उन्ही की भाषा में सहज ढंग से व्यक्त करते है। समाज सुधार के क्षेत्र में कबीरदास का योगदान अप्रतिम है। मुस्लिम शासन के युग में भी कबीर समाज की रूढियों पर प्रहार करते रहे। कबीर एक क्रांतिकारी कवि है। जाति भेद, सामाजिक असमानताएं, ब्राह्मणवाद, मुस्लिम कट्टरता पर प्रहार करते हुए उन्होने वैज्ञानिक यथार्थवाद को महत्व दिया। कबीरदास जी को लोकप्रियता प्राप्त हुई है उसका कारण यह है कि उनके काव्यों में सच्चाई अनुभूति और अभिव्यक्ति के खरे पर है। इन्हें जो अच्छा लगा उसका खुलकर समर्थन किया और इन्हें जो बुरा लगा उसका निर्भीकता से सख्त विरोध किया। कबीर की और ध्यान आकृष्ट करने वाले रवीन्द्रनाथ ने (दूसरी परंपरा की खोज) यह कहा था, 'कबीर की जीवनी और रचनाओं में यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि उन्होंने भारत की समस्त बाह्य आवर्जना का अतिक्रमण करते हुए उसके अन्त:करण की श्रेष्ठ सामग्री को ही सत्य साधना समझकर उपलब्ध किया था।..

लोकाचार, शास्त्रविधि और अभ्यास के रूद्ध द्वार पर आघात करके उन्होंने भारत को जगाने का प्रयास किया।[1] कबीर ने अपने वर्तमान को ही नहीं भोगा बल्कि भविष्य की चिंरतर समस्याओं को भी पहचाना। उन्होंने जिन सामाजिक सांस्कृतिक विषमताओं के खिलाफ आजीवन संघर्ष किया वे आज भी यथावत है। कबीरदास का वैचारिक आंदोलन आज भी वर्ग-विहीन समाज के निर्माणएमानवता की बहाली, प्रेम, हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द, आडंबरहीन भक्ति तथा नैतिकता के निर्माण के लिए नितांत आवश्यक है।

कबीर से लेकर अन्य सभी सन्त समाज के अति सामान्य समझे जाने वाले पेशे से संबध रखते थे। ये मोची, बुनकर, दर्जी, धोबी, लोहार आदि थे। समाज अनेक जातियों-उपजातियों, विभिन्न वर्गो में विभाजित था। फलस्वरूप जातिप्रथा तथा भेदभाव ने समाज को खोखला कर दिया था। मानवता कराह रही थी। कबीर मानव मात्र के समानता के पक्षधर थे। उनके अनुसार ऊँचे कुल में जन्म लेने से या ब्राह्मण होने मात्र से कोई ऊँचा या श्रेष्ठ नहीं हो जाता। मनुष्य अपने आचरण एवं सुंदर कर्मों से ऊँचा बनता है। सोने के कलश में मदिरा भरा हो तो निंदनीय हो जाता है-

ऊँचे कुल का जनमियाँ, जे करणी ऊँच न होई।
सोबन कलस सुरै भरया, साधू निंदत सोई।।[2]

कबीरदास की उपर्युक्त पंक्तियाँ वर्तमान समाज का यर्थाथ चित्र प्रस्तुत करती है। आज भी ब्राह्मणों को श्रेष्ठ समझा जाता है। सभी शुभ कार्य इन्हीं के हाथों करवाये जाते है। ऊँच-नीच, जाती-पाति का भेदभाव आज भी वही है जो कबीरदास के युग में था। मध्ययुग में कबीर और संतों वाणी ने जो अलख जगाया वह आज भी उतना ही

महत्वपूर्ण है जितना तत्कालीन युग में था। कबीर अपने युग की उपज है। युगीन परिस्थितियाँ एंव समय की मांग ने उनके व्यक्तित्व को गढ़ा। वे सारग्राही महात्मा थे। जिन्होंने अपने समय में प्रचलित सभी मत-मंतातरों के सार को ग्रहण किया। उन्हे अपने तर्क एंव अनुभव की कसौटी पर कसा, जो विश्वास, मान्यताएँ, मानवता, नैतिकता एवं भक्ति की राह में व्यर्थ बाधक थे उनका विरोध किया। सामाजिक, कुरीतियों, रूढियों-आडंबरों, दुराचार, पाखंडादि का जैसा तीव्र विरोध उनमें देखा जाता है वह अद्वितीय है।

कबीर ने मध्ययुग में एक ऐसे सामाजिक, सांस्कृतिक, वैचारिक आंदोलन का सूत्रपात किया जो वर्तमान में वर्गविहीन समाज की और अग्रसर होने के लिए नितांत आवश्यक है। उन्होंने जिन विसंगतियों, वर्जनाओं, कुरीतियों एवं कुप्रथाओं के खिलाफ आजीवन संघर्ष किया वे आज भी यथावत् है। कबीर के अनुसार आडंबर ही समाज में लड़ाई-झगड़े, संकीर्णता और असहिष्णुता के कारण बनते हैं समाज को एक सूत्र में बांधने के लिए उन्होंने धर्म एवं भक्ति के बाह्याचारों का कड़ा विरोध कर सात्विक भक्ति पर जोर दिया। आज भी स्थिति बदली नही है धर्म और भक्ति का रूप विकृत होता जा रहा है। हमारे तीर्थ स्थानों पर भक्ति नही लूट मची है। कबीरदास कहते है-

मोको कहां ढूंढत बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में।
ना तो कौनो क्रिया करम में, नहीं जोग बैराग मैं।। [3]

संत कवि कबीरदास ने हिंसा का पूरजोर विरोध किया है जो मनुष्य जीवों को खाते हैं वे मानव नही पशुओं की भाँति है। वर्तमान में भी यह प्रथा प्रचलित है जिसका विरोध मध्यकाल में कबीरदास ने किया।

मुस्लिम लोग पशुओं की हत्या कर मांस भक्षण करते है होम-हवन, पूजा-पाठ में पशुओं की बलि दी जाती है। अत: संत कवियों ने इन रूढ़ियो एवं आंडबरों का डटकर विरोध किया। इन्होंने तत्कालीन समाज में पाई जाने वाली कुरीतियों, जड़-परंपराओं का विरोध किया। मांसाहारियों को फटकारते हुए कबीरदास जी कहते है-

बकरी पाति खात है, ताकि काढ़ि खाल।
जे जन बकरी खात है, तिनको कौन हवाल।। [4]

कबीरदास की उपर्युक्त पंक्तियाँ आज के यर्थाथवादी समाज के लिए उतनी ही महत्व रखती है जितनी मध्ययुग में। आज भी यह समस्या यर्थाथ बनी हुई है।

कबीरदास ने मूर्खों का संग न करने का उपदेश दिया है। कुसंगति के अभाव में अच्छी चीज या व्यक्ति भी बुरा बन जाता है-

मूरिष संग न कीजिए, लोहा जलि न तिराइ।
कदली सीप भुंवग मुषी, एक बूँद तिहूँ भाइ।। [5]

अर्थात् मूर्खों का संग कभी नहीं करना चाहिए। क्योंकि जैसे लोहा पानी पर तैर नहीं सकता उसी भाँति मूर्ख सदविचारों को अपना नहीं सकता। स्वाति की बूँद कदली (केले) में पड़कर कर्पूर बनती है, सीप में पड़कर मोती बन जाती है और सांप के मुंह में पड़कर विष बनती है। अंत: मूर्खों और दुर्जनों का संग नहीं करना चाहिए। मनुष्य अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए किसी भी सीमा तक जा सकता है। वह अपनी कही बात से मुकर जाता है। अपनी छवि को अच्छी दिखाने के लिए वह अच्छी और नीतिपूर्ण बातें करता है, पर इनको अपने व्यावहार में नहीं लाता। वर्तमान में भी स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है। कबीरदास की वाणी आज भी प्रासंगिक है। इन विसंगतियों को दूर करने के लिए कबीरदास के दोहे अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध होते है।

वर्तमान समय अपने को जितना ही प्रगतिशील कह, वह उतना ही अंधविश्वासी, रूढ़िवादी, षडयंत्र प्रिय है। समस्त संसार विकासवाद को सम्मान देता है संसार का विकास पथ अग्रसर होगा तो मानवता का ही कल्याण होगा। लेकिन क्या हमारा विकास प्रगतिशील है? प्रगतिशील होने का अभिप्राय तो यही होना चाहिए कि इसमें किसी भी प्रकार के श्रेणी, जाति, सम्प्रदाय, धर्म हास्य रूप न हो बल्कि इन सबका विकसित रूप समाज के सम्मुख परिलक्षित होना चाहिए। कबीर ने सच्चे बनकर हमारे समाज को देखने का प्रयास किया है लेकिन उसे कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ा। वे कहते है कि-

संतो देखत जग बौराना।
साँच कहाँ मारन धावै, झूठे जग पतियाना।। [6]

संसार को हमेशा ही सत्य वचन कटु वचन लगता है। इसीलिए सम्भवत: जितने जल्दी अन्याय को अपनाता है उतने ही जल्दी सच्चाई को नहीं अपनाता। सच पर लोगों का विश्वास कम दिखाई देने लगा है। जीवन में अपना सपना पूरा करना अच्छी बात है लेकिन उसे नैतिकता के मार्ग पर चलकर पूरा करना और भी अच्छी बात है। कबीर के काव्य में विद्रोह की भावना स्पष्ट परिलक्षित होती है। उन्होंने जहां भी बुराई देखी, भेदभाव देखा उसका विरोध किया। इस संदर्भ में डॉ० वासुदेव सिंह ने भी यह माना है कि समाज में फैली अराजकता व मानवता के पतन के प्रति भक्त कबीर की पीड़ा ही उनके काव्यगत विद्रोह का कारण है। उनके शब्दों में वस्तुत: कबीर ने जिस सत्य का साक्षात्कार किया था, वह न वेदों में दिखाई पड़ा, न कुरान में, उसका समाधान न पंडित के पास था न काजी मुल्ला के पास उसका स्वरूप न योगियों में था न सहजयानियों में इसीलिए उन्होंने इन सबको अस्वीकार किया और ऐसे मार्ग का अनुसंधान किया जो मानव जीवन का उन्नायक था।'[7] अत: संत कबीर के संपूर्ण काव्य में मानव कल्याण की भावना दिखाई देती है।

आज बाजारवाद के दौर में हमें चारों और स्वार्थ ही स्वार्थ नजर आ रहा है। सारे नाते रिष्तों में सिर्फ स्वार्थ ही स्वार्थ नजर आता है। एक समय ऐसा था जब हमारे यहां मूल्यों को अत्यधिक महत्व दिया जाता था। पर आज स्वार्थ की अंधी दौड़ में हम सिर्फ भागे ही

भागे जा रहे है। इस विषय में संत कबीर कहते है –

स्वारथ को सब कोउ सगा, जग जगला ही जानि।
बिन स्वारथ आदर करे, सौ हरि की प्रीति पिछांणि।।

संसार के इस मोह माया और चकाचौंध से बचने के लिए संत कबीर कहते है–

ऐसा यह संसार है, जैसा सैंबल का फूल।
दिन दस के त्यौहार को, झूठे रंग न भूल।।

आज भी राज्यों में भेदाभेद, सांप्रदायिकता, भारत–पाक संबध आदि समस्याएँ आज भी वैसी की वैसी है जैसी मध्यकालीन समय में थी।

आज भौतिकवादी, यर्थाथवादी व भूमण्डलीकरण के युग में धार्मिक पाखण्ड बढता ही जा रहा है। लोग पत्थरों की पूजा करते हैं हवन करवाते हैं कबीरदास ने इन धार्मिक पाखण्डों का पूरजोर विरोध किया है। कबीर का मानना है कि ईश्वर तो संसार के कण–कण में समाहित है तो क्यों पत्थर की पूजा करने से ही ईश्वर की प्राप्ति होती है। अगर ऐसा है तो पहाड़ को पूज लेता। इससे अच्छा है कि घर में उपस्थित चक्की को पूज लेता जो अनाज को पीस कर लोगों का पेट भरे। वे मूर्ति पूजा का विरोध करते है। वे कहते है–

कबीर पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजू पहार।
घर की चाकी क्यों नाहिं पूजै पीसि खाय संसार।। [8]

निष्कर्षः–

अतः कहा जा सकता है कि समाज सुधार के क्षेत्र में कबीरदास का योगदान अप्रतिम है। वे जो कुछ भी कहते व्यावहारिक कसौटी पर इतना कसा हुआ होता कि जनसाधारण द्वारा सरलता से आत्मसात कर लिया जाता। उन्होंने कभी भी शास्त्र ज्ञान का विरोध नहीं किया बल्कि उन्होंने शास्त्रों की आड़ में अपना स्वार्थ साधने वाले तथाकथित पंडितों का विरोध किया। उस समय ढोंगी साधु, काजी, पीर आदि अधिक संख्या में मिलते थे। इसीलिए संत कबीर की आवश्यकता पड़ी कि वे इनके वास्तविक रूप का स्पष्टीकरण करें। वस्तुतः वे सत्य के प्रचारक थे। उनके व्यक्तित्व के बारे मे हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह कथन सर्वथा उचित है–'हिन्दी साहित्य के हजार वर्षो के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ... मस्ती, फक्कड़पना स्वभाव और सबकुछ को झाड़–फटकार कर चल देने वाले तेज ने कबीर को हिन्दी साहित्य का अद्वितीय व्यक्ति बना दिया है.... इसी व्यक्तित्व के कारण कबीर की उक्तियाँ श्रोता को बलपूर्वक आकृष्ट करती है।[9] कबीर का जीवन दर्शन सच्चे अर्थों में समाज का सच्चा दर्शन कहा जा सकता है। वर्तमान 21 वीं सदी कबीर को समाज की विकासधारा के रूप में ग्रहण कर सकता है। मनुष्य का जीवन क्षणभंगुर है वह किसी भी क्षण समाप्त हो सकता है। जीवन में आवश्यक है अच्छे विचार, अच्छे जीवन दर्शन, अच्छे ज्ञान की जो सबके लिए ग्रहण करने योग्य हो। समाज में एकता स्थापित कर पाना, आज के समय के लिए काफी जटिल हो चुका है। सभ्यता की आढ़ में समाज जितना विकसित होता हुआ दिख रहा है वह उतना ही ओधोगति की और जा रहा है। जाति के नाम पर लड़ना नहीं बल्कि हमें जाति एंव समुदायों के मध्य प्रेम, आपसी भाईचारा, बन्धुत्व आदि को और अधिक स्थापित करना है।

सन्दर्भः–

1 रवीन्द्रनाथ, दूसरी परंपरा की खोज, पृ.15

2 विजयेन्द्र स्नातक, डॉ0 रमेशचन्द्र मिश्रः कबीर वचनामृत,नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, छठा संस्करण, 2005, पृ.153

3 सुदर्शन चोपड़ाः कबीर परिचय तथा रचना, हिन्दी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली,नवीन संस्करण, 2003 पृ.35

4 माता प्रसाद, कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ 65

5 कबीर ग्रन्थावलीः–संपा0 श्यामसुन्दर दास पृ.85

6 आरोह भाग–1, कबीर(शीर्षक), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रषिक्षण परिषद (संस्करण–2006)पृ.131

7 हिन्दी संत कबीरः, क समाजशास्त्रीय अध्ययन, डॉ0 वासुदेव सिंह, पृष्ठ222

8 माता प्रसाद, कबीर ग्रन्थावली, पृ.65

9 कबीर– आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी–पृष्ठ 170–171

ISSN 2278 - 0327

गुप्त काल में सौंदर्य प्रसाधन

अमित कुमार
शोध छात्र, (इतिहास विभाग)
एम.एम. (पी.जी.) कॉलेज, मोदीनगर
गाजियाबाद (उत्तर-प्रदेश)

डॉ. आशा यादव
एसो. प्रो. विभागाध्यक्ष (इतिहास विभाग)
एम.एम. (पी.जी.) कॉलेज मोदीनगर
गाजियाबाद (उत्तर-प्रदेश)

शोध सारांश

अलंकरण, मुख व शरीर के मण्डन का प्रसाधन, सौन्दर्य के प्रस्फुटीकरण और अभिवर्धन का एक मुख्य उपाय है, बल्कि यों कहें कि सौन्दर्य की समग्रता अलंकरण से ही होती है। अलंकार शब्द का निर्वचन अथवा आशय ही यह है-हद तक पहुँचा देना। यह प्रवृत्ति नैसर्गिक है और केवल साधन मनुष्य तक ही सीमित नहीं। स्वयं प्रकृति अपने को समय-समय पर सजाती रहती है-वसन्त की वासन्ती विभा और सावन का सावनी रूप; वृक्षों को हरीतिमा देकर ही वह सन्तुष्ट नहीं होती, समय-समय पर उन्हें फूलों-फलों से भी सजा देती है। सृजन-क्रम में भी इस प्रसाधन की उपयोगिता है। भ्रमर-पुष्पों के रंगों से आकर्षित होकर उस का रस लेते हुए पराग परिवहन करते हैं और उन के गर्भाधान के निमित्त बनते हैं।

मानव में प्रसाधन की प्रवृत्ति स्वयंभू है, स्वाभाविक है। उस पर कृत्रिमता का आरोप नहीं लगाया जा सकता। प्रकृति ने मानव को अधिकार दिया है कि सर्वत्र से दोहन कर के पूर्णता प्राप्त करे और वही अधिकार प्रसाधन में भी विद्यमान है। जब हम पाते हैं कि मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र ने चित्रकूट में सीतादेवी को मन:शिला और वन्य पत्र-पुष्प से सिंगारा है, तो कौन कह सकता है कि प्रसाधन का अर्थ आदर्श से गिरावट है। लीला-पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण जब गायों को चराने के लिए वन में जाते तो अपना और अपने सखा-संघाती ग्वाल-बालों का कितना प्रसाधन करते। वे सब विभिन्न रंग-मृत्तिकाओं के तिलक और अंगराग, गुंजा पुष्प के हार, वनमाला, मोरपंखों और किसलयों से सजे गोकुल लौटते। यह गोपवेश ऐसा होता था कि महाकवि कालिदास का उपमान तो पीछे बना, पहले तो यह रूप निसदिन गोपिकाओं का ही चित्त-चोर बनता रहा। इस प्रकार हम पाते हैं कि प्रसाधन नारी का ही स्व नहीं वरन् नर का भी उस पर समान अधिकार था और अनादि काल से वे इस का प्रयोग करते आ रहे हैं।

महत्वपूर्ण शब्द: गुप्त युग में प्रसाधन, कालिदास, बाणभट्ट, ऋतु अनुकूल प्रसाधन, पुरुष एवं स्त्री प्रसाधन

गुप्त काल; जो सातवीं सदी तक रहा, देश को समृद्धि तथा वैभव का युग था। भारत के इतिहास में यह समय स्वर्ण काल था। एक छोटे राज्य को समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय और कुमारगुप्त ने बढ़ाकर भारतवर्ष के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचाया था। गुप्त राजा यद्यपि शिव और विष्णु के उपासक थे, फिर भी संकीर्ण विचार वाले नहीं थे।[1] बौद्ध और जैनधर्म भी इस समय खूब फूले फले। संस्कृत के प्रसिद्ध कवि कालिदास इसी समय हुए, रघु की दिग्विजय का वर्णन ही चन्द्रगुप्त द्वितीय की जय का वास्तविक चित्र है। अजन्ता और बाघ गुफाओं की चित्रकारी इसी समय में हुई थी।

कालिदास और बाणभट्ट ने इस समय के लोगों के जीवन का सच्चा चित्र उपस्थित किया है। इस में अमीर और गरीब दोनों का चित्रण है। दण्डी ने दशरूपक में इसी प्रकार का जीवन विस्तृत रूप में चित्रित किया है। उस समय को परम्पराओं, रीति-रिवाजों की झाँकी इनसे मिल जाती है। दैनिक जीवन की क्रियाओं के चित्रण चित्रों द्वारा अजन्ता आदि स्थानों में किया गया है। दर्पण को हाथ लेकर अपना प्रसाधन करती हुई स्त्री; वाद्यों के साथ नृत्य करती हुई नर्तकी, इस के अङ्गों का चालन, राजा का जलूस, योद्धा के वेश में सिपाही आदि विविध चित्र अजन्ता में चित्रित हैं।[2]

गुप्त साम्राज्य के समय मनुष्यों के विलास समय जीवन पर उन की प्रसाधन की रुचि, केश विन्यास आदि पर प्रकाश, इस समय की प्राप्त सामग्री से पूर्णत: पड़ता है।[3] इस काल के प्रसाधन के विषय में बहुत सामग्री प्राप्त है। केश विन्यास मूर्ति, खिलौने और रंग चित्रों से पता चलता है। वैयक्तिक स्वास्थ्य की दृष्टि से प्रसाधन, सुगन्ध, फूल आदि का उपयोग स्त्री और पुरुष दोनों करते थे। अंजन केवल आँख की ज्योति को ही नहीं बढ़ाता परन्तु इस की शोभा में भी वृद्धि करता है, आँखें बड़ी कमल या हिरणी के समान होती हैं। इस के लिए कादम्बरी और हर्षचरित में बाणभट्ट ने दैनिक जीवन का उल्लेख किया है। बाण द्वारा वर्णित जीवन के चित्र पर अजन्ता का चित्रांकन सच्चाई की मोहर का काम करता है।[4]

शूद्रक के स्नान और उस के उपरान्त के कार्यों का उल्लेख बाण ने विस्तार से किया है, नलचम्पू में भी राजा के स्नान का उल्लेख इसी प्रकार से किया है। शूद्रक के स्नान वर्णन में राजा के स्नानघर में शुभ्र चँदोवा लगा हुआ था। अनेक स्तुति पाठक चारों दिशाओं में मण्डलाकार खड़े हुये थे। मध्य भाग में सुगन्ध जल से भरी स्वर्ण द्रोणी थी।

स्फटिकमय एक स्नान पीठ संस्थापित थी। एक भाग में अति सुगन्धित जल से परिपूर्ण अनेक कलश रखे हुये थे। उस जल की सुगन्ध से भ्रमर गण बैठकर कलश समूह को अन्धकारित कर रहे थे, इससे ऐसा प्रतीत होता था कि कलश का मुख नीले वस्त्र से लपेटा हुआ है।[5] जलद्रोणी के मध्य में जब महाराज बैठे, तब वारविलासिनियों ने अपने हाथों से आमला का चूर्ण महाराज के सिरपर मला, दूसरी बारवनिताओं ने अपने आँचल से कुंचों को ठीक प्रकार से बाँधकर हाथ के कड़ों को निकाल दिया, कर्णफूल को ऊँचा कर के, कान के पास आये अलकों को पीछे हटाकर जलपूर्ण कलश से महाराज को स्नान कराने लगीं। द्रोणी में स्नान कर के राजा निर्मल एवं स्फटिकमय स्नान पीठ पर चढ़ गये।[6] जीवानन्दनम् नाटक में स्नान पीठ को कछुए की पीठ के समान बताया है; जिससे पानी बह जाये। इस के बाद वारवनिताएँ अथवा स्नानाहेतु नियुक्त युवा दासियॉ मरकत मणि के कलश से श्यामवर्ण जल से राजा को स्नान कराने लगीं। कुछ वेश्याएँ रजत के कलशों से स्नान कराने लगीं; कुछ वारविलासिनियाँ मलय पर्वत स्थित नदी के समान चन्दन मिश्रित जल से स्नान करा रही थीं, कुछ स्त्रियाँ कलश के मुख पर अंगुलियाँ रखकर उससे धारा यन्त्र के समान जल गिराकर स्नान करा रही थीं।

स्नान क्रिया सम्पादन कर चुकाने पर महाराज ने सर्पकंचुक के समान सूक्ष्म और शुभ्रवर्ण वस्त्रद्वय पहनकर श्वेत एवं बृहत् रेशमी वस्त्र से सिर को बाँधा। इस के बाद पितृ तर्पण कर के, सूर्य को अर्घ्य दिया। पीछे मन्दिर में जाकर होम किया। इस के पीछे विलेपन स्थान में जाकर कस्तूरी, केसर; कर्पूर की सुगन्ध से मिश्रित चन्दन का लेप सारे शरीरपर किया।[7] माथे पर सौरभ युक्त मालती पुष्प का शेखर धारण कर के वस्त्र बदले। आभूषणों मे केवल कर्ण कुण्डल ही धारण किया, फिर भोजन किया। भोजन करने के पीछे आचमन कर के पान खाकर सभामण्डप में चले गये। सभामण्डप की भूमि में नासिका को परितृप्त करने वाले कस्तूरी से सुगन्धित चन्दन मिश्रित जल से छिड़काव किया गया था; इससे वह बहुत ठण्डा हो गया था। गुप्त काल में स्नान के तत्काल बाद पहने जाने वाले वस्त्र बहुत भी सुन्दर बनते थे। डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल जी ने हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन पुस्तक में इन वस्त्रों का ठीक परिचय टिप्पणी में दिया है, अंग्रेजों में इन को वैट ड्रेपरो कहते हैं।[8]

राजा जब युद्ध के लिए जाते थे तब भी अपने प्रसाधन की उपेक्षा नहीं करते थे। हर्षचरित में बाण ने लिखा है कि राजा हर्ष युद्ध में भी अपने शरीर और धनुष पर चन्दन का लेप करता था।[9] सिर पर श्वेत फूलों की माला धारण करता था और कानों पर गोरोचन का लेप लगाता था। बाण जब हर्षसे मिलने चला तो उसने सारे शरीर पर अंगराग लगाया; श्वेत माला धारण की, श्वेत वस्त्र पहने, गोरोचना अर्थात् गाय के पित्त से प्राप्त सुनहरा द्रव्य जो सुगन्धि निर्माण में काम आता था, से रंगी दूर्वा में गिरीकर्णिका के फूलों से कान का आभूषण बनाया, चोटी में सरसों लगाया। बाण ने अपने पुस्तक वाचक का जो वर्णन किया है, वह उस के प्रसाधन का अच्छा रूप है, यथा–वह पुंड्र देश के बने एक दुकूलपट्ट के थान में से तैयार किये दो श्वेत वस्त्र पहने हुए थे। माथे पर गोरोचना और गंगनौटी का तिलक लगाये हुए था, सिर पर आँवले के तेल की मालिश की गई थी, चोटी में फूल–माला गुंथी हुई थी, होठों पर पान की लाली थी और आँखों में अंजन की बारीक रेखा खींची हुई थी।[10]

समृद्ध घरों की स्त्रियाँ या राज परिवार की रानियाँ ही अपने को आकर्षक बनाने के लिए प्रसाधन सामग्री का उपयोग करती थीं, ऐसी कोई बात नहीं थी। निचली श्रेणी की स्त्रियाँ भी जैसे कि दासियाँ आदि अपने को सजाती थी। हर्ष की सेवा में लगी दासियों के माथेपर अमुरु का तिलक लगा हुआ था, जो पसीने से मिलकर बह रहा था, स्तन कलश बकुल माला से परिवेष्टित थे और वे कानों के फूलों का पराग पड़ने से नेत्रों को मसल रही थी।

विवाह के समय कन्या का विशेष प्रसाधन किया जाता है। महाकवि कालिदास के अनुसार पुत्रवती और सौभाग्यवती स्त्रियों ने पार्वती का प्रसाधन इसी प्रकार किया था।[11] पहले उस के शरीर पर तेल को लोध के चूर्ण से साफकिया, पीछे से कालीयक का शरीर पर लेप किया, उस के बालों को अगुरु के धुंवे से सुवासित किया, बालों में महुए के फूलों की माला बाँधी। गालों पर लोध्र का अङ्गराग लगाया, आँखों में अंजन लगाया, इस के पीछे माता ने उस के माथे पर तिलक लगाया।

बाण ने हर्ष के जन्मोत्सव का बहुत सुन्दर वर्णन किया है, सामन्तों की स्त्रियाँ राजकुल में आकर भाँति–भाँति से नृत्य करने लगीं। उन के साथ अनेक नौकर चाकर थे; जो चौड़ी करण्डियों में स्नानीय चूर्ण से छिड़की हुई फूलों की मालायें और तश्तरियों में कर्पूर के श्वेत खण्ड लिए थे। कुमकुम से सुगन्धित अनेक प्रकार के मणिमय पात्र थे। हाथी दाँत की छोटी मंजूषाओं में चन्दन से धवलित पूगफल और आम के तैल से सिक्त खदिर के केसर थे। सुगन्धित द्रव्यों से भरी हुई लाल थैलियाँ, सिन्दूर की डिब्बियाँ, पिष्टातक, पटवासक चूर्ण से भरे पात्र लिये परिजन लोग चल रहे थे।

विलासिता इस समय इतनी बढ़ी हुई थी कि स्त्रियाँ एक प्रकार के जीवन को पसन्द नहीं करती थीं, प्रत्येक ऋतु में प्रत्येक समय वे परिवर्तन चाहती थीं।[12] उन के प्रसाधन की सामग्री, उन की सुगन्ध, उन की रुचि बराबर ऋतु के अनुसार बदलती थी। उदाहरण के लिए ग्रीष्म ऋतु में कमल और रक्त कमल मालायें, हाथ में कमलनाल के कङ्गन, शरीर पर चन्दन का लेप, वस्त्र सुगन्धित और हल्के, दिन का समय धारा गृह में बिताना होता था। रात्रि में खुली छतपर सुवासित फूल शय्या पर कर्पूर और चन्दन का लेप लगाकर सोया जाता था। महाकवि कालिदास ने ऋतुओं के अनुसार प्रसाधन के कई प्रकार बताए हैं।[13] ग्रीष्मता का अनुभव होने पर स्त्रियाँ शरीर पर चन्दन का

लेप कर लिया करती थीं। पैरों पर लाक्षारस लगाया गया था। स्तनों पर चन्दन पुता हुआ था, श्वेत हार इन पर लटक रहा था। स्त्री और पुरुष अपनी प्यास शीतल और सुगन्धित जल से बुझाते थे। पानी को ठण्डा करने के उपाय के रूप में पानी के पात्र को गीले कपड़े में लपेटकर रखना, बालू में मिट्टी के पात्र को रखना आदि का प्रयोग किया जाता था। वर्षा ऋतु में, उद्धर्षण, उद्वर्तन, स्नान, धूप, सुगन्ध, अगरु का उपयोग करना चाहिए, ऐसा कहा गया है।[14] नाना प्रकार की मालायें और वस्त्रों का धारण करना उत्तम हैं। वर्षा के दिनों में नई केसर, केतकी और कदम्ब के नये फूलों की मालायें गूंथकर स्त्रियाँ अपने जूड़ों में बाँधती हैं। कुम अथवा चंपा के फूलों के मनचाहे ढंग से बनाए हुए कर्णफूल अपने कानों में पहनती हैं। स्त्रिया अँगों पर अगरु या अगरकाष्ठ मिला चन्दन का लेप कर के बालों में महकते हुए फूलों के गुच्छों को खोंसकर बादलों की गड़गड़ाहट सुनकर अपने शय्या घरों में पहुँच जाती हैं। वर्षा काल प्रेमिका के लिए जूही की नई-नई कलियाँ तथा मालती और मौलसरी के फूलों से माला गूंथ रहा है; नये खिले कदम्ब के फूलों से कर्णफूल बना रहा है।[15]

शरद् ऋतु में हल्का, साफ़ वस्त्र एवं माला धारण करे, ठण्डी खश का लेप लगाये। कमलों से भरे तालों की कमलिनियों को हिलाता हुआ शीतल वायु युवकों के मन को झकझोर डालता है। इस ऋतु में मालती खिलती है। नई मालती के सुन्दर फूलों ने दान्तों की चमक से खिल उठने वाली स्त्रियों की मुस्कान को भी नीचा दिखा दिया है। स्त्रियाँ अपनी काली, घनी घुंघराली लटों में नये मालती के फूल गूंथ रही हैं और कानों में नीले कमल के कुण्डल पहन रही हैं। आजकल स्त्रियाँ स्तनों पर मोती का हार और चन्दन का लेप चुपड़ रही हैं।

हेमन्त ऋतु में शरीर पर केसर या अगरु का लेप करे; हल्के परन्तु गरम वस्त्रों को धूप और धूम से सुवासित कर के धारण करे। इस ऋतु में स्त्रियाँ शरीर पर चन्दन लगाती हैं; अपने मुख पर कमल जैसे नाना प्रकार के वेलबूटे बनाती हैं; काला अगुरु का धूप देकर अपने बालों को सुवासित करती हैं।[16] शिशिर ऋतु में जब शीत अधिक होता है, उस समय स्त्रियाँ फूलों का आसव पीकर कमल जैसे अपने मुख को सुवासित करती हैं; पान खाकर, इत्र-फुलेल लगाकर और मालायें पहनकर, अगरु की गन्ध से महकते अपने शय्या धर में बड़े चाव से जा रही हैं।

वसन्त ऋतु में स्नान कर के शरीर को सजाकर माला पहिन कर चन्दन और अगरु का लेप करना चाहिए। कानों में कर्णिकार का नया गुच्छा; चंचल और नीले अलकों में अशोक तथा नवमल्लिका की खिली हुई कलियाँ लगी हुई हैं। सुनहरे कमल के समान सुहावने और बेलबूटे के समान स्त्रियों के मुखपर फैली हुई पसीने की बूंदे ऐसी मालूम पड़ती हैं मानों अनेक रत्नों के बीच मोती जड़ दिये गये हों।

इन दिनों स्त्रियाँ अपने मोटे वस्त्र उतार कर महावर से रंगे हुए और काला अगुरु के धुएँ से सुगन्धित महीन वस्त्र पहनती हैं। स्त्रियाँ कालीयक और केसर के घोल में कस्तूरी मिला कर अपने गोरे-गोरे स्तनों पर चन्दन का लेप कर रही हैं। गुप्त काल के वस्त्र महीन और बेल-बूटों से शोभित होते थे। इस समय के पात्र भी सुन्दर और फूल-पत्तियों से चित्रित होते थे।

हर्ष का अर्द्धवास या अधोवस्त्र वासुकी के निर्मोक या केंचुल की तरह अत्यन्त महीन नितम्बों से सटा हुआ, श्वेतवर्णी था। अधोवस्त्र प्रतिदिन धुलता था, इसी से इसे धौत कहते थे; यही फिर धोती में बदला। बाण ने राजा तारापीड़ के भोग-विलास का वर्णन करते हुए उसके सुवर्ण पिचकारियों से होली खेलने का चित्रण किया है। राजा सुवर्ण की पिचकारियों से प्रिय युवतियों के साथ बहुत देर तक क्रीड़ा करता था, उस समय किसी युवती के हाथ के आकर्षण में पिचकारियों से निःस्तृत कामदेव के सुवर्णमय बाणों की पंक्ति के समान केसरिया जल की धाराओं से राजा का शरीर पीला हो जाता था; किसी युवती की पिचकारी से निकली लाक्षारस की जल की धारा के प्रवाह से राजा का वस्त्र लाल बन जाता था; किसी युवती की सोने की पिचकारी से निकली कस्तूरी युक्त जल की बूंदों से राजा के शरीर में लाल चन्दन का लेप चितकबरा हो जाता था।

भारतीय प्रसाधन में स्नान का भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्नान के लिए पृथक् स्थान स्नान भूमि होता था। गर्मियों में धारा स्नान होता था। स्नान के लिए पानी को सुगन्धित करने के नुस्खे वराहमिहिर ने भी दिये हैं; सुश्रुत में पानी को सुवासित करने के लिए नागचम्पा को उपयोगी बताया है। स्नान के बाद स्त्री और पुरुष दोनों शरीर पर विलेपन लगाते थे। स्त्रियाँ मुख पर विशेष रूप से प्रसाधन करती थीं। ओठों पर लाख का लाल रंग लगाती थीं। चेहरे पर और कपोलों पर सुन्दर-सुन्दर चित्र बनाती थी; माथे पर तिलक लगाती थीं, आँखों में अंजन या काजल लगाती थीं। चित्र बनाने के लिए चन्दन या अगरु का लेप अथवा कस्तूरी का प्रयोग प्रायः होता था। पहले शरीर पर चन्दन का सफेद लेप कर लिया जाता था, फिर अगरु या कस्तूरी से इस पर काला नमूना बनाया जाता था। कई बार यह नमूना गोरोचना या श्वेत चन्दन से बनाते थे। नमूना बनाने के लिए कृष्ण अगुरु, केसर और सिन्दूर का उपयोग होता था। ये नमूने बाहु, शंखप्रदेश, कनपटी, स्तन और कपोलों पर भी बनाये जाते थे। मकरिका शब्द प्रायः नमूने के लिए आता है। हर्षचरित में मकरिका अर्थात् नमूना बनाने का उल्लेख है।[18] अमरकोश में मुख और स्तनों पर नमूने बनाने के दो भेद बताये हैं, प्रथम पत्र लेखा और द्वितीय पत्रांगुली। पत्रलेखा से अभिप्राय सम्भवतः कपोल या स्तनों पर वश की सहायता से फूल-पत्ते बनाने से है। पत्रांगुली से अभिप्राय अँगुली या चित्रशला का से चित्र बनाने का है। माथे पर चित्र बनाने के चार नमूने थे-तमाल पत्र, तिलक, चित्रक और वैशेषिक। तमाल पत्र से अभिप्राय सम्भवतः तमाल पत्र के रस से नमूना बनाना अथवा तमालपत्र में नमूना काटकर उस को माथे पर

चिपका देना था। पत्ते में नमूना काटकर लगाने की प्रथा राजपूताना और मथुरा में आज भी है, सुन्दरता का अर्थ इससे बहुत अंशों में पूरा हो जाता है। तिलक से अभिप्राय चन्दन के लेप से गोल बिन्दी बनाना है। यह बिन्दी कस्तूरी या सिन्दूर से भी बनाई जाती थी। चित्रक से अभिप्राय सम्भवत: एक से अधिक रंगों द्वारा माथे पर चित्र बनाना है। वैशेषिक से अभिप्राय सामान्य प्रसाधन से है, जो कि माथे पर विशेष रूप में किया जाता था। गोरोचन और अगरु से भी नमूने बनाये जाते थे। इन चित्रों में लता-बेल के नमूने अधिक पसन्द किये जाते थे। इस के सिवाय हिरण आदि का चित्र भी पसन्द किया जाता था। पुण्डरीक के शरीर को आकाश में ले जाने वाले पुरुष का कंधा सुन्दरियों के स्तनों की कुंकुम पत्रलता से चिह्नित था। स्तनों पर चन्दन का लेप होता था। पुण्डरीक के शरीर पर चन्दन का लेप था, चन्दन की मोटी रेखा भी भुजाओं पर बनाई जाती थी। स्त्रियों के कपोलों पर आकर्षक चित्र बनाये जाते थे।

संदर्भ सूची

1. बंदोपाध्याय,राखलदास, गुप्तयुग, हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी, 1970, पेज 216
2. वही, पेज 161
3. बंदोपाध्याय,राखालदास, वही, पेज 138
4. बाणभट्ट, हर्षचरित, उच्छ्वास 07/21-29
5. शूद्रक, मृच्छकटिकम्, अंक 02/33
6. वही, /02/34,
7. वही,02/37,
8. अग्रवाल, डॉ. वासुदेवशरण, हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1972, पेज 327
9. बाणभट्ट, हर्षचरित, उच्छ्वास 02/06
10. वही, 02/11
11. कालिदास,कुमारसंभवम् 3/32, निर्णय सागर प्रेस, बंबई, 1957
12. बाणभट्ट, हर्षचरित, उच्छ्वास 04/19
13. कालिदास, अभिज्ञान शाकुंतलम्, अंक 03/16निर्णय सागर प्रेस, बंबई, 1957
14. कालिदास, ऋतुसंहारम् 02/41, निर्णय सागर प्रेस, बंबई, 1957
15. वही, 02/46
16. कालिदास, कुमारसंभवम्, 04/16
17. बाणभट्ट, हर्षचरित, उच्छ्वास 03/23
18. वही, 03/28

ISSN 2278 - 0327

हठरत्नावली में वर्णित अष्टकर्मो का स्वरूप

ज्योति शर्मा
(शोधार्थी) योग शिक्षा विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

सचिन भारद्वाज
(शोधार्थी) योग शिक्षा विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

सारांशः- आधुनिक समय में हर मनुष्य किसी ना किसी रूप में मानसिक अस्थिरता से ग्रस्त है, जिसका एक मुख्य कारण है उसके दोषों का असंतुलित होना। हमारा शरीर पञ्चतत्त्वों से बना है। जिसकी मूल प्रकृति त्रिगुणात्मक होने से प्राणी मात्र के शरीर में वात, पित्त, कफ इन दोषों का मिश्रण होता है। हमारे शरीर में इन तीन दोषों का असन्तुलन या कुपित होना ही रोग का कारण है। इन त्रिदोषों को संतुलित करने के लिये आयुर्वेद के प्राचीन आचार्य ने स्नेहपान, स्वेदन, वमन, विरेचन और बस्ति ये पञ्चकर्म कहे है। इसी प्रकार हठयोग सम्प्रदाय के योगियों ने भी अपने ग्रन्थों में योग साधकों के त्रिदोषों को संतुलित करने के लिए व शरीर को शुद्ध रखने के लिए कुछ प्रमुख शोधन कर्मों की चर्चा की है, इन्हीं प्रमुख हठयौगिक ग्रन्थों में से एक हठरत्नावली में अष्टकर्मों का वर्णन प्राप्त होता है। योग साधक को योग साधना शुरू करने से पहले इन कर्मों के अभ्यास द्वारा त्रिदोषों को संतुलित कर शरीर को स्वच्छ व स्वस्थ रखना चाहिए। इन्ही यौगिक शुद्धि क्रियाओं को जानने हेतु हम हठयोग के ग्रंथ हठरत्नावली में अष्टकर्मों के स्वरूप का अध्ययन करेंगे।

मूल शब्दः- अष्टकर्म, हठरत्नावली, त्रिदोष, स्वास्थ्य, रोग

प्रस्तावनाः - हठयोग के प्रमुख ग्रंथ हठप्रदीपिका तथा घेरंड संहिता में प्रमुख रूप से शरीर को शुद्ध करने वाले षट्कर्मों का भिन्न-2 रूप सें उल्लेख किया है। हठरत्नावली में इन्हीं को अष्टकर्मों में रूप में वर्णित किया गया है, जिनका आधुनिक समय में अनुसरण अत्यन्त आवश्यक हैं। हठयोग के ग्रन्थों में षट्कर्म के अभ्यास पर गभीरता से विचार किया गया है। हठयोग के षट्कर्म से जो लाभ होते हैं, वे लाभ प्राणायाम से भी प्राप्त होते हैं। अन्तर केवल समय का है। परन्तु जिस घर में गंदगी इतनी फैल जायें, कि साधारण शोधन क्रियाकलापों से दूर न हो सकें, उसके लिये अधिक प्रभावी साधनों की आवश्यकता पड़ती है, इसी प्रकार शरीर में एकत्रित मल को शीघ्र हटाने के लिये षट्कर्म की आवश्यकता है।

मेदः श्लेष्माधिकः पूर्वं षट्कर्माणि समाचरेत्।
अन्यस्तु नाचरेत्तानि दोषाणां समभावतः।।[1]

अर्थात्- स्वात्माराम योगी जिनका समय 14वीं शताब्दी माना जाता है। अपने ग्रंथ हठप्रदीपिका में कहते है जिस साधक में अधिक स्थूलता और कफ हो, उन्हें सबसे पहले छः शोधन क्रियाएँ करने की आवश्यकता है जिससे साधक के त्रिदोषों में संतुलन आ जाए। तत्पश्चात् साधक को साधना का अभ्यास करना चाहिए। घेरण्ड मुनि ने अपने ग्रंथ घेरण्ड संहिता में शोधन क्रिया के माध्यम से घटशुद्धि (शरीर शुद्धि) की बात की है।

हठरत्नावली के रचनाकारः - हठरत्नावली हठयोग का एक श्रेष्ठ ग्रंथ है, जो श्रीनिवास योगी के द्वारा लिखा गया ग्रंथ है। हठरत्नावली के रचनाकार श्रीनिवास योगी वेद, वेदान्त, योग तन्त्र, सांख्य, तत्त्वचिन्तामणि आदि में पारंगत है। श्रीनिवास भट्ट के द्वारा लिखित 'हठरत्नावली' का सर्वथम प्रकाशन 80 के दशक में श्री एम वेंकटरेडी द्वारा किया गया था। यह ग्रंथ हठप्रदिपिका के बाद का प्रतीत होता है। जिसका कार्यकाल 1700 ई.स. माना गया है। हठरत्नावली ग्रंथ 4 अध्यायों में विभाजित होकर 305 श्लोकों में वर्णित है। इस ग्रंथ के प्रथम अध्याय में अष्टकर्मों का वर्णन दिया गया है।

अष्टकर्मों का स्वरूपः -अष्ट का अर्थ है -'आठः और कर्म का अर्थ है -'क्रिया' जिनके माध्यम से शरीर और चित्त की शुद्धि की जाती है। इन अष्टकर्मों के माध्यम से हम अपने शरीर और चित्त को पूर्ण रूप से निरोगी रख सकते है। हठप्रदीपिका में भी षट्कर्म के संदर्भ में कहा गया है कि ये हमारे त्रिदोष संबधी विकारों का निवारण करने वाले है। जिन्हें अत्यंत गोपनीय रखने की जरूरत है इनके अभ्यास से साधक को उत्तम गुणों की उपलब्धि होती है।[2] धौती, बस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक और कपालभाति यह मुख्य षट्कर्म है।[3] हठरत्नावली के रचनाकार श्री निवास योगी कहते है कि अभ्यासकाल में सबसे पहले कफ शोधन क्रियायें करना अति आवश्यक है अगर साधक अष्टकर्मों का अनुसरण नहीं करेगा, तो उसका शरीर एवं मन नाना प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जायेगा। इसलिए श्री निवास योगी अपने ग्रन्थ के प्रथम अध्याय के अर्न्तगत अष्टकर्मों को रखते है। जो इस प्रकार है- चक्री, नौलि, धौति, नेति, वस्ति, गजकरणी, त्राटक, व मस्तकभाति ये अष्टकर्म शरीर एवं मन की शुद्धि में प्रमुख रूप से सहायक है।[4]

1. चक्री-कर्म- श्रीनिवास योगी अष्टकर्मो में सबसे पहले चक्री क्रिया का वर्णन करते है, जिसको साधक को आज के समय में

जानना अति आवश्यक है क्योंकि आज के समय में मनुष्य गुदा से सम्बंधित रोगों से ग्रसित होता जा रहा है अगर वह इस शास्त्र में बताए गए चक्री कर्म को समझे और अभ्यास करें, तो वह इस समस्या से कुछ हद तक निजात पा सकता है। इसको करने के लिए गुदा नली में आधी अंगुली डाल कर उसे घुमाना चाहिए। जिससे गुदा- द्वार बड़ा हो जाता है इसे ही श्रीनिवास योगी चक्री-कर्म कहते है।[5] जिसके अभ्यास से मूलव्याधि, गुल्म रोग व महोदर का नाश होता है। चक्री कर्म के अभ्यास से मल-शुद्धि होती है। जिससे जठराग्नि बढ़ती है। इसका वर्णन हमें श्रीरूद्रयामलतंत्रम्-उत्तर खण्ड में भी प्राप्त होता है। साथ ही साथ षट्कर्मसग्रंहः में उर्ध्वचक्री, मध्यचक्री, व अधश्चक्री का भी वर्णन है। हठतत्वकौमुदी के आठवें अध्याय में वर्णित चक्री क्रिया के समान वर्णन हठरत्नावली में भी प्राप्त होता है। अन्यत्र इसका वर्णन नहीं मिलता हैं।

2. नौली कर्म - हठप्रदीपिका में वर्णित सभी शोधन क्रियाओं में नौली को श्रेष्ठ माना गया है। श्रीनिवास योगी अपने ग्रंथ में दूसरे नम्बर पर नौलि कर्म का वर्णन करते हुए नौलि के दो प्रकार बताते हैं। बाह्य नौलि और आंतर नौलि।[6] बाह्य नौलि के अर्न्तगत साधक को आगे झुक कर वेगपूर्वक उदर को दाएं से बाएं व बाएं से दाएं घुमाए जिसके माध्यम से समस्त दोषों का शमन होता है। उदराग्नि बढ़ती है व आनंद की प्राप्ति होती है। इसके पश्चात् श्रीनिवास योगी आंतर नौलि की क्रिया का वर्णन करते हुए कहते है, इडा व पिंगला से वेग पूर्वक वायु- संचालन करना आंतर नौलि है। इसका वर्णन उन्होंने विस्तार से नहीं किया है। षट्कर्मसंग्रह में तीन प्रकार की नौली का वर्णन है। बाह्य नौलि, मध्य नौलि, व आंतर नौलि।

3. धौति कर्म - श्रीनिवास योगी ने तीसरा कर्म पर धौति को रखा है, जो कायिक शुद्धि के साथ- साथ मानसिक शुद्धि के लिए भी अति आवश्यक है। जो एक वस्त्र के माध्यम से की जाती है, जो बीस हाथ लंबा व चार अंगुल चौड़ा एक गीला वस्त्र होता है, जिसे शनैः शनै निगलना चाहिए। इस प्रकार करने से साधक के कफ दोषो का निवारण होता है, इसलिए इसे धौति कहते है। जो हमारे पेट के अंदर उपस्थित कफ पित्त को धौति के माध्यम से शरीर से बाहर निकालते हैं। साथ ही साथ साधक के अनेक रोगो का भी निवारण होता है। जैसे खांसी, श्वास, प्लीहा, कुष्ठ, एवं कफसंबंधी बीस रोग धौति के अभ्यास से निःसन्देह दूर हो जाते है।[7] इसके साथ अन्य मुख्य हठयोगिक ग्रंथों में धौति कर्म के अन्य भेद बताए गए है। घेरण्ड संहिता में घेरण्ड मुनि ने धौति कर्म के चार प्रकार बताए हैं। जिसके माध्यम से हम अपने देह को शुद्ध स्वस्थ, व निरोगी बना सकते है। 1. अर्न्तधौति 2. दन्तधौति 3. हृदधौति और 4. मूलशोधन आदि है। उपरोक्त के भी कुछ उपप्रकार आते हैं, जिसमें अर्न्तधौति के चार उपप्रकार है, जैसे- वातसार, वारिसार, अग्निसार अन्त धौति, बहिष्कृत अर्न्तधौति है। यह भी शरीर को स्वच्छ एवं शुद्ध करने के लिए महत्त्वपूर्ण है। दन्तधौति के भी पांच उपप्रकार बताए गए हैं। क. दन्तमूल धौति ख. जिह्वामूल धौति ग. कर्णरन्ध्र धौति घ. कपालरन्ध्र धौति, यह चार प्रकार की धौति है। इनमें दो कान होने के कारण कर्णरन्ध्र भी दो धौति मानी गई है। इसीलिए पांच दन्त धौति बताई गई है। हृद् धौति कर्म में भी तीन प्रकार बताए है। इसमें हृदय की सफाई कर हृदय शुद्ध होता है। जिसमें 1.दण्ड धौति 2.वमन धौति 3. वस्त्र धौति तथा 4. मूलशोधन है। यह अपान वायु की क्रूरता को नष्ट करता है, तथा जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

4. नेति कर्म - श्रीनिवास योगी ने नेति कर्म को चतुर्थ स्थान पर रखा है जिसे आधुनिक समय में इ. एन. टी. के नाम से भी जाना जाता है। जो कान, गले, नासिका से संम्बंधित रोगों में लाभदायक है। जिसमें एक सूत्र का प्रयोग किया जाता है जिसकी लम्बाई श्रीनिवास योगी ने छह बित्ते बताया है जिसे नासा रन्ध्र में डाल कर मुख से निकाला जाता है। पहले एक नासिका से किया जाता है, फिर दूसरी नासिका सें। जब साधक इसका अभ्यास करता है तो साधक के नेत्र रोग, कपाल में उपस्थित रोग, कंधों के ऊपर के समस्त रोगों का नाश होता है।[8] घेरण्ड संहिता और हठप्रदीपिका ग्रंथ में सूत्र को नासिका रन्ध्र में डालने का वर्णन मिलता है। लेकिन हठरत्नावली ग्रंथ में सूत्र का नासिका में मंथन करने को बताया गया है।[9]

5. वस्ति कर्म - वस्ति कर्म को श्रीनिवास योगी पंचम स्थान पर रखते हैं। जिसे आधुनिक समय में ऐनिमा के नाम से जाना जाता हैं, जो छोटी आंत और बडी आंत से सम्बंधित है। हठरत्नावली रचनाकार ने दो प्रकार की वस्ति का वर्णन किया है। वायु वस्ति और जल वस्ति। जिसे चक्री क्रिया के बाद करना चाहिए। चक्री करने से गुदा द्वार बड़ा हो जाता है। जिससे वस्ति करने में सुविधा होती है। जल वस्ति को जल में नाभि तक खड़े होकर चक्री क्रिया द्वारा अंगुली डाल कर गुदा मार्ग में जल भरा जाता हैं। फिर साधक को जल को कुछ समय तक रोककर रखना चाहिए। तत्पश्चात् जल का रेचन करें। इसके उपरांत तीन घड़ी तक भोजन नहीं करना चाहिए। जमीन पर बैठना चाहिए व फिर हल्का भोजन करना चाहिए। इसके अभ्यास से साधक के गुल्म, मोटापा, व त्रिदोष का निवारण होता है।[10] घेरण्ड संहिता में भी इसके दो प्रकार बताएं है। 1. जल बस्ति और 2. स्थल बस्ति। इस बस्ति को आज एनिमा के नाम से जाना जाता है। यह क्रिया करने से रोगों का नाश होना संभव है। इस क्रिया में हम गुदाद्वार के द्वारा पानी को बड़ी आंत में भेज कर रुके हुए मल को पानी द्वारा बाहर निकालना होता है, इसे जल बस्ती कहते है। पुराने समय में आधुनिक सुविधा न होने के कारण छह अंगुली लंबी बांस की नली को अंदर से छेद कर चार अंगुली गुदा में प्रविष्ट कर दो अंगुली बाहर रख कर नाभि तक पानी में जाकर अपान वायु द्वारा पानी पेट में (बड़ी आंत में खींचकर फिर नौली आदि क्रिया करने के पश्चात् जल को बाहर निकाल देते है। यह जल बस्ति है। जल बस्ति के प्रभाव से

गुल्म, प्लीहा, उदर (जलोदर) और वात, पित, व कफ इनकी असमानता से उत्पन्न हुए संपूर्ण रोग नष्ट होते हैं। इसके अभ्यास से साधक के सप्त धातुओं, दस इंद्रियों और अंत:करण को प्रसन्न करता है। मुख पर सात्विक कान्ति छा जाती है, जठराग्नि प्रदीप होती है। वात, पित्त, व कफ आदि दोषों की असमानता को नष्ट कर आरोग्यता प्राप्त होती है।

6. गजकरणी: – गजकरणी को श्रीनिवास योगी ने छठे स्थान पर रखा हैं। जिसके अर्न्तगत वायु मार्ग पर नियंत्रण कर उदरगत कर अन्न को अपना वायु द्वारा कण्ठ तक लाकर वमन करें। इस क्रिया को हठयोग के जानकार गजकरणी कहते है। साथ ही साथ एक अन्य विधि भी बताई गई है। जिसमें गुड़ का रस अथवा नारियल पानी अथवा जल मिश्रित दुग्ध का पान कर वायु व रस का कंठ नाल से रेचन करें।[11] गजकरणी का वर्णन हठयोगप्रदीपिका ग्रंथ में मिलता हैं। लेकिन उसका वर्णन छ: शोधन क्रियाओं में नहीं किया गया है बल्कि बस्ति क्रिया से पूर्व इसका वर्णन मिलता है।

7. त्राटक कर्म – आज के समय में हमें त्राटक का अभ्यास देखने को अधिक मिलता है जिससे साधक अपने चित्त को एकाग्र करने का प्रयास करता है श्रीनिवास योगी ने त्राटक को सातवें स्थान पर रखा है। जिसमें साधक एकाग्र चित्त होकर सूक्ष्म विषय पर अपनी दृष्टि केन्द्रित रखता है, जब तक उसकी आँखों में आँसू ना आ जाए। इसे ही त्राटक कहते है।[12] अर्थात्–आँसू नीचे गिरने तक एक बहुत ही सूक्ष्म वस्तु पर एक टक देखा जाता है। यह नेत्र रोगों और सुस्ती को ठीक करता है। इसे रत्न–पात्र के समान गुप्त रखना चाहिए। कुछ विद्वानों ने त्राटक के तीन भेद बताए गए है। क) निकट त्राटक ख) दूर त्राटक ग) अंतर त्राटक

8. कपालभाति कर्म – कपालभाति सबसे ज्यादा प्रचलित अभ्यास के रूप में हमें देखने को मिलता है, आधुनिक समय में चाहे बच्चा हो, युवा हो, बुढ़ा हो सब कपालभाति से परिचित है, जिसे श्रीनिवास योगी ने अपने अष्टकर्म का अंतिम कर्म माना है, कपालभाति के संदर्भ में कहते है, कि इसके अभ्यास में त्वरित गति से लौहार की धौंकनी के समान क्रमिक रेचक व पूरक करना होता हैं। यही अभ्यास सर्वरोग नाशणी कपालभाति के नाम से विख्यात हैं। बारी – बारी दाएं व बाएं नासिका से पूरक रेचक करने को कहा गया है। इसको एक अन्य नाम भी दिया गया है, जिसे भस्त्रकाभाति के नाम से जाना जाता है।[13] जिसे करने की एक अन्य विधि भी है, त्वरित गति से कपाल को दाएं फिर बाएं घुमाते हुए रेचक व पूरक करने को भी कपालभाति के नाम से जाना जाता है। श्री निवास योगी ने दो प्रकार की कपालभाति का वर्णन किया है। जिनके अभ्यास से कफदोष, व जल से उत्पन्न रोग, पित्त दोष, कपाल व ब्रह्मचक्र सम्बधी दोषों का शोधन होता है। इसका वर्णन हमें हठप्रदीपिका, घेरण्ड संहिता व हठतत्वकौमुदी में भी मिलता है। घेरण्ड संहिता में तीन प्रकार की कपालभाति का वर्णन मिलता है, जिनका वर्णन अन्य हठयौगिक ग्रथों में नहीं किया गया है।

निष्कर्ष–

हठरत्नावली नामक इस ग्रंथ में वर्णित अष्टकर्मों का अध्ययन करने से हमें समझ में आता है, कि हठप्रदीपिका, घेरंड संहिता आदि हठयोग के प्रमुख ग्रंथों का सार इस ग्रंथ में श्रीनिवास जी ने दिया है। इस ग्रंथ में उन्होंने अष्टकर्मों का उल्लेख करते हुए बताया है, कि ये सारे कर्म हमारे शरीर व मन को स्वस्थ्य, व निरोगी, रखने के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। सम्यक मार्गदर्शन में ये क्रियायें अगर सामान्य जनों को सिखायी जायें तो उनके समग्र स्वास्थ्य के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकती है, प्रस्तुत ग्रन्थ में अष्टकर्मों का विस्तृत वर्णन शोध के क्षेत्र में मानवीय कल्याण के लिये अपार संभावनाए रखता है।

सन्दर्भ सूची –

1. हठप्रदीपिका 1/21
2. हठप्रदीपिका 2/22
3. हठप्रदीपिका 2/23
4. हठरत्नावली 1/26
5. हठरत्नावली 1/29
6. हठरत्नावली 1/33
7. हठरत्नावली 1/39
8. हठरत्नावली 1/42
9. हठरत्नावली 1/38
10. हठरत्नावली 1/48
11. हठरत्नावली 1/52
12. हठरत्नावली 1/55
13. हठरत्नावली 1/58

संदर्भ सूची:

1. सुन्दरदेव. घरोटे, डॉ. एम. एल. (2007). हठतत्त्वकौमुदी. लोणावाला: कैवल्यधाम योग संस्थान.
2. मिश्रा, गिरीरत्न. (2017). हठरत्नावली. चौखम्बा सुरभारती.
3. दिगम्बरजी, स्वामी. झा, डॉ. पिताम्बर. (1998). हठप्रदीपिका. लोणावाला: कैवल्यधाम योग संस्थान.
4. सरस्वती, स्वामी निरंजनान्द. (2011).घेरण्ड् संहिता. बिहार स्कुल आंफयोगा.
5. शर्मा, डा. अनन्त राम. (2015). सुश्रुत सांहिता. चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन.
6. दिगम्बरजी, स्वामी. घरोटे, डॉ. एम. एल. (1997). घेरण्ड् सांहिता. लोणावाला: कैवल्यधाम योग संस्थान.
7. परिमल, देवनाथ. घरोटे, डॉ. एम. एल. (2007). हठरत्नावली. मोतीलाल बनारसीदास.
8. अग्रवाल, डा. सर्वेश कुमार. (2019). स्वास्थ्य वृत विज्ञान. चौखम्बा ओरियन्टल.

स्त्री विमर्श की दशा-दिशा : अतीत से अद्यतन

जितेंद्र शर्मा
शोधार्थी
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

कविता
शोधार्थी
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

भूमिका- विमर्श का अर्थ हुआ- जीवंत बहस। किसी भी समस्या या स्थिति को एक कोण से न देखकर भिन्न मानसिकताओं, दृष्टियों, संस्कारों और वैचारिक प्रतिबद्धताओं का समाहार करते हुए उलट-पुलट कर देखना, उसे समग्रता में समझने की कोशिश करना। हिन्दी में 'विमर्श' शब्द अंग्रेजी के 'डिसकोर्स' शब्द से आया जिसका अर्थ है- वर्ण्य विषय पर सुदीर्घ एवं गम्भीर चिंतन-मनन। स्त्री विमर्श के बारे में वीरेन्द्र सिंह यादव लिखते हैं कि 'स्त्री द्वारा दुनिया को देखने-समझने का दृष्टिकोण पुरुष की अपेक्षा भिन्न होता है। अपने से निम्न को दोयम की स्थिति में ठेलना पितृ समाज की विशेषता रही है। स्वामित्व की यह भावना अपने से भिन्न को स्वीकारना नहीं चाहती, जबकि स्त्री विमर्श मानवीय संबंधों, दृष्टिकोणों और अनुभव के क्षेत्र में विकल्प देने की चेष्टा करता हैं।' [1]

स्त्री-विमर्श का अर्थ प्रो. रोहिणी अग्रवाल के अनुसार- 'स्त्री को केन्द्र में रखकर समाज, संस्कृति, परम्परा एवं इतिहास का पुनरीक्षण करते हुए स्त्री की स्थिति पर मानवीय दृष्टि से विचार करने की अनवरत प्रक्रिया। स्पष्ट है कि स्त्री-विमर्श के अन्तर्गत अतीत या समकालीनता प्रमुख नहीं रहती वरन् भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों में एक दूसरे की अन्विति एवं संगति में विश्लेषण करने का भाव प्रधान रहता है। अत: स्त्री-विमर्श चेतना के प्रसार का आख्यान है।'[2]

स्त्री विमर्श स्त्री के शोषण, दमन को समाप्त करके उसके वास्तविक अधिकार को स्थापित करने का वकालत करता है। 'स्त्री विमर्श स्त्री के जीवन के अनछुए अनजाने पीड़ा जगत के उद्घाटन के अवसर उपलब्ध कराता है परन्तु उसका उद्देश्य साहित्य एवं जीवन में स्त्री के दोयम दर्जे की स्थिति पर आँसू बहाने और यथास्थिति बनाए रखने के स्थान पर उन कारकों की खोज से है जो स्त्री की इस स्थिति के लिए जिम्मेदार है। वह स्त्री के प्रति होने वाले शोषण के खिलाफ संघर्ष है।'[3]

भारत में स्त्री का अतीत गौरवपूर्ण रहा है। जहाँ शची, लोपामुद्रा, अपाला, घोषा, विश्ववारा आदि मन्त्र द्रष्टाएँ हैं वहीं मैत्रेयी, गार्गी जैसी विदुषियाँ, विश्पला, मुद्गलानी जैसी वीरांगनाएं भी हैं। इसे परिस्थितियों की मार कहें या स्त्री का दुर्भाग्य कि वह अपने सौभाग्यपूर्ण ज़िन्दगी से इस कदर खदेड़ दी गई कि उसकी रेंगती ज़िन्दगी को देख रोम-रोम काँप उठता। उसका संघर्ष पुरुष के विरोध में न था और न ही उसने एक लब्ज तक पुरुष के खिलाफ कहा, 'प्राचीन काल से लेकर पूरे मध्यकाल तक, पूर्व आधुनिक काल तक भी हमारे यहाँ निजी अधिकारों के लिए अपने पतियों, भाइयों से लड़ने की मिसालें नहीं के बराबर हैं। अपने ही पुरुषों के खिलाफ स्त्रियों की सामूहिक लड़ाइयाँ या आन्दोलन हैं। देश-समाज के लिए, धर्म-रक्षा के लिए, अपनी आन-बान, अस्मिता की रक्षा के लिए।' [4]

भारत में वैदिक काल में स्त्री की स्थिति अन्य देशों एवं अन्य कालों की अपेक्षा बेहतर थी। वैदिक काल में धार्मिक अनुष्ठानों, सामाजिक एवं राजनीतिक गतिविधियों में स्त्रियों की शिरकत देखी जा सकती है। स्त्रियाँ वेद और शास्त्रों में पारंगत होने के अतिरिक्त ऋचाओं की रचना भी करती थीं। शिक्षा काल में लड़कियाँ भी लडकों की तरह ब्रह्मचर्य का पालन करती थीं। उनका भी 'उपनयन संस्कार' होता था। वैदिक शिक्षा के साथ-साथ यज्ञ आदि का संपादन करने का अधिकार उन्हें प्राप्त था। 'विद्याध्ययन की दृष्टि से स्त्रियों के दो वर्ग थे। ब्रह्मवादिनी जो आजीवन अविवाहित रहकर ब्रह्मविद्या में अधिकाधिक योग्यता प्राप्त करती थी। दूसरी थी सद्योदवाह: जो एक सीमा तक शिक्षा के उपरान्त गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होकर गृहिणी का कर्तव्य निभाती थी। सत्रह से अठारह वर्ष की आयु से पूर्व लड़कियों के विवाह नहीं होते थे। लड़की-लड़के दोनों को ही अपना जीवन साथी चुनने की आजादी थी। स्त्रियों को लौकिक व आध्यात्मिक दोनों शिक्षाएँ दी जाती।'[5]

वैदिककाल में स्त्री का कार्यक्षेत्र गृह से युद्ध भूमि तक फैला हुआ था। विश्पला का युद्ध में जाना या मुद्गलानी का शत्रुओं से युद्ध करके सौ गौवें छीन लाना यही साबित करता है। वेश्यावृत्ति एक संगठित एवं संस्थापित ढंग से व्यवसाय के रूप में था। नाच, संगीत और रूप प्रदर्शन के अलावा पर्व तथा धार्मिक अनुष्ठानों में उनकी उपस्थिति शुभ मानी जाती थी। बालविवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा का चलन नहीं था। बहुपत्नी प्रथा का उल्लेख मिलता है। विधवा विवाह पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था, उन्हें 'नियोग' का भी अधिकार था। संबंधविच्छेद का भी अधिकार था। इस तरह समाज में स्त्री आदर एवं सम्मान की हकदार रही है। लेकिन साधारण स्त्री का कोई महत्व नहीं था।

वैदिककाल के बाद स्त्री की स्थिति में उत्तरोत्तर ह्रास होता गया। उत्तर वैदिककाल में स्त्री शिक्षा का महत्व था। सह शिक्षा बुरा नहीं माना जाता था। शिक्षा के दौरान ब्रह्मचर्य का पालन दोनों केलिए ज़रूरी था। अब शिक्षा ग्रहण करने केलिए उन्हें गुरुकुलों में न

भेजकर योग्य संबंधियों के घर भेजा जाता। ऊँची जाति में पुरुषों के समान ही स्त्रियों का उपनयन संस्कार होता था। केवल शिक्षित स्त्रियाँ ही धार्मिक कार्य करने योग्य मानी जाती थी, उनके शारीरिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक विकास की ओर ध्यान दिया जाता था। वे संगीत,नृत्य व गान विद्या में भी निष्णात होती थी। '*असतो मा सद् गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मा अमृतं गमय*' प्रार्थना मैत्रेयी की है जो इसी काल की है। विद्वत सभा में याज्ञवल्क्य को चकित कर देने वाली गार्गी, उद्दालिका, आर्तभागा, विदग्धा, आदि विदुषियाँ भी इसी काल की देन हैं।

स्त्री-धन का प्राय: अभाव था। समाज और धर्म के क्षेत्र में उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। बौद्धिकता में स्त्रियाँ पुरुषों से हीन नहीं थी। वर्ण व्यवस्था के नियमों में सख्ती बरतने के साथ ही स्त्रियों के पद में क्रमिक ह्रास होने लगा था। 'बहु पत्नी' प्रथा और 'अनुलोम' विवाह प्रथा के कारण स्त्री की स्थिति गिरती चली गई। भारतीय स्त्री की स्थिति में गिरावट उत्तर वैदिककाल से ही माना जाता है।

रामायण एवं महाभारत काल में स्त्री का चित्रण विदुषी के रूप में कम और तप, त्याग, नम्रता, पतिसेवा आदि गुणों से लैस गृहस्वामिनी के रूप में अधिक मिलता है। प्रत्येक लड़की के लिए विवाह अनिवार्य माना जाने लगा था। पति-सेवा और पातिव्रत्य उसके परम धर्म मान लिये गये। पतिव्रत्य की मूल भावना यानी कि एक बार किसी पुरुष से विवाह होने के बाद उसमें कमियाँ होने पर भी उसके प्रति संपूर्ण समर्पण करना है। स्त्री को दूसरे पुरुष का विचार करना भी मना है। बहु-पत्नी प्रथा को और भी बढ़ावा मिला। विधवा-विवाह पर प्रतिबंध लगाए गए। स्वयंवर प्रथा बरकरार थो। अधिकांश स्वयंवर प्रतियोगिता प्रधान थे। इसलिए ये भी पूर्णत: स्त्री के पक्ष में नहीं गये, 'एक तरह से ये वीर्य शुल्क की अदायगी के समारोह थे, जो भी पुरुष प्रण को पूर्ण करता, उसी को कन्या प्राप्त होती। इस तरह सीता और द्रौपदी केलिए अपने युग के सर्वश्रेष्ठ वरों का चयन उनके पिताओं की योजना के प्रतिफल थे, न कि उनकी अपनी इच्छाओं के प्रतिबिम्ब।'[6]

आर्यों की दक्षिण-विजय के साथ ही सती प्रथा प्रचलित हो गई थी। आर्यों में सती प्रथा के कायम होने के प्रमाण मिलते हैं। अब स्त्री सहयोगिनी से पुरुष की व्यक्तिगत संपत्ति बन गई, जिसका जैसा चाहा वैसा इस्तेमाल पुरुष करने लगा। इसके प्रमाण रामायण और महाभारत में भी देखने को मिलते हैं। महज एक धोबी द्वारा सन्देह व्यक्त करने पर राम द्वारा सीता को वनवास दे देना, पांडवों द्वारा अपनी पत्नी द्रौपदी को जुए के दांव पर लगा देना यही दर्शाता है कि पत्नी पति की मिल्कियत है। आर्यों के अनार्य स्त्रियों से विवाह संबंध स्थापित हुए, संस्कृत न जानने के कारण उनके धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने पर प्रतिबन्ध लगाये गए। कालान्तर में सभी स्त्रियों से वेदाध्ययन और अनुष्ठानों में भाग लेने का अधिकार छीन लिया गया। उच्चारण की कठिनाई, यज्ञों, कर्मकाण्डों की जटिलता के कारण वेदों का अध्ययन कठिन कार्य बन गया। अब कर्मकाण्डों के अध्ययन के लिए बाईस से चौबीस वर्ष की अवस्था तक अविवाहित रहना पड़ता। जबकि वैदिककाल के सरल कर्मकाण्डों का अध्ययन सोलह से सत्रह वर्ष की अवस्था तक समाप्त हो जाता। कालान्तर में उपनयन संस्कार की अवस्था ही विवाह की अवस्था समझी जाने लगी। स्त्री वैदिक शिक्षा से वंचित हो गई। धर्मगुरुओं में स्त्री के विवाह की आयु घटा दी। शिक्षा से वंचित स्त्रियों का धार्मिक तथा सामाजिक स्तर गिरता चला गया।

स्त्री मध्यकाल में आकर पूरी तरह से अबला बन चुकी थी। स्त्री संबंधी यह धारणा समाज में पुख्ता हो चुकी थी कि विपत्ति आने पर वह किसी की सहायता के बिना कुछ नहीं कर सकती यानी वह कमज़ोर है। इससे समाज में कन्या बोझ मानी जाने लगी। धड़ल्ले से कन्या शिशु हत्या की जाने लगी। कन्या जन्म सामाजिक अप्रतिष्ठा का विषय बन गया। ब्राह्मणों ने रक्त की शुद्धता, स्त्री सतीत्व की रक्षा और हिन्दू धर्म की रक्षा के नाम पर स्त्रियों को बंधनों में कस दिया। समाज में स्त्री की स्वतन्त्र पहचान पर प्रश्न चिह्न लग गए। उसके पातिव्रत्य पर बल दिया जाने लगा, 'कभी सामाजिक समस्याओं-यौन कारणों से होने वाले संघर्षों से बचने केलिए पति-पत्नी के बीच एकनिष्ठा की जो नीति अपनाई गई थी, उसे अब पूरी तरह धार्मिक एवं अनिवार्य बना दिया गया। समय-समय पर नारी की पवित्रता को दैहिक पवित्रता-पति के प्रति एकनिष्ठ रहने को ही दिव्य पातिव्रत के रूप में अधिष्ठित कर दिया गया। सिर्फ स्त्री धन पर स्त्री का अधिकार था। स्त्री के बचे कुचे धन से उसे बेदखल करने के इरादे से सती प्रथा को महिमामंडित किया गया जबकि इसका प्रारंभिक मकसद कुछ और ही था। सती प्रथा ने सामाजिक बुराई का रूप ले लिया। सतीत्व की धारणा इतनी बलवती हो चुकी थी कि पति के बिना स्त्री का कोई अस्तित्व ही नहीं माना जाता। अब सती प्रथा चरम सीमा तक पहुँच गई।

मुसलमानों के आक्रमण और मुगलों के राज्यकाल में लड़कियों के अपहरण की घटनाएँ बढी तो छोटी आयु में ही उनका विवाह किया जाने लगा। कौमार्य के मिथक ने बाल विवाह को बढ़ावा दिया। कन्या विवाह की आयु छह से सात वर्ष तक सीमित हो गई। अब कन्या के लिए समुचित विकास के अवसर समाप्त हो गए। दहेज प्रथा प्रारंभ हो चुकी थी।

आर्थिक जीवन में स्त्री की महस्वपूर्ण भूमिका नहीं थी। जहाँ निम्न वर्ग की स्त्री खेतों और अन्य धन्धों में पति का साथ देती वहीं उच्चवर्ग की स्त्री केलिए जीविकोपार्जन का कोई साधन न था और न ही वह इसे ज़रूरी समझती। अब पुत्र जन्म पर ही स्त्री समाज में आदर और सम्मान की अधिकारी मानी जाती। पर्दा भारत में पहले भी प्रचलित था। लेकिन एक प्रथा के रूप में पर्दे की शुरुआत मुसलमानों के शासन काल में हुई, प्राचीनकाल में भारत पर विदेशी बर्बर जातियों के आक्रमण होते रहे हैं और उन्हीं से रक्षा करने के लिए पर्दे की

घृणित परन्तु तत्कालीन परिस्थिति को देखते हुए आवश्यक प्रथा का अवलंबन करना पड़ा। पर्दा अब हिन्दू व मुस्लिम दोनो स्त्रियों केलिए अनिवार्य था। स्त्री को अब वर चुनाव की आजादी न थी। निम्न वर्ग और मुसलमानों में विधवा विवाह सामान्य था। व्यवसाय के रूप में संगीत केवल वेश्याएँ ही सीखती थीं। वेश्याओं के संपर्क में रहना प्रतिष्ठा का विषय माना जाता। नगरवधुओं की स्थिति कुल वधुओं से भिन्न थी। नगरवधुएँ कुछ हद तक स्वतन्त्र स्त्रियाँ थीं।।

स्त्री की खोई हुई मानवीय प्रतिष्ठा को पुन: प्राप्त करने के अथक प्रयासों का शुभारंभ नवजागरण काल में हुआ। अठारहवीं शताब्दी के आरंभ तक 'स्त्री मुक्ति' का प्रश्न समाज का अहम मुद्दा बनकर उभरा। भारतीय समाज में आधुनिक शिक्षा प्राप्त एक मध्यवर्ग का उदय हुआ। सती प्रथा, बाल विवाह, बहु विवाह, पर्दा प्रथा, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, बाल विधवा व विधवा समस्या, जैसे कुरीतियों पर इनके द्वारा गहन विचार कर उसे जड़ से उखाड़ फेंकने के कार्य किये गये जो जन-जागरण को अवरुद्ध किए हुए हैं एवं स्त्री की यथास्थिति को पुख्ता करते हैं। राजाराम मोहन राय, महर्षि कर्वे, दयानंद सरस्वती, ज्योतिबा फुले, अम्बेडकर, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महादेव गोविन्द रानाडे, स्वामी विवेकानंद आदि समाज सुधारकों ने इस ओर कदम उठाकर स्त्री जागरण की दिशा में सराहनीय कार्य किये, 'पुरुष द्वारा भारतीय स्त्री चेतना का यह उद्घोष विश्व महिला आन्दोलन की एक अनुपम विशिष्टता है यहाँ स्त्रियों को दुर्दशा से उबारने का बीड़ा पुरुष जाति ने आगे बढ़कर उठाया। आगे चलकर यही नारी कल्याण और प्रगति का आधार बना।'[8]

भारत में नवजागरण की प्रकृति एक सी नहीं रही। बंगाल का नवनागरण जहाँ उच्चवर्ग के हितों को व्यक्त करता है वहीं महाराष्ट्र के नवजागरण के केन्द्र में दलित रहा। मृणाल पाण्डे के अनुसार-'नारीवाद पुरुषों का नहीं उनकी मानवीयता घटाने वाले उस छद्म मुखौटे का प्रतिकार करता रहा है। जो मर्दानगी के नाम पर गढ़ा गया है, और जिसके पीछे झूठी अहम्मन्यता और उत्पीड़क प्रवृत्ति के अलावा कुछ नहीं है।'[9] इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्त्री-विमर्श अपने अधिकारों, अपने हक के लिए पैरवी है। वह पुरुषों का विरोध नहीं करता, बल्कि उसकी पशुता की बढ़ी सीमा का विरोध करती है। आज स्त्री-विमर्श ने स्त्री की हालत में कुछ सुधार भी किए हैं। परिवार एवं समाज में स्त्री-विमर्श के आंदोलनों को चलाने के लिए पूर्वाग्रहों और दुराग्रहों को तिलांजलि देनी होगी और आन्तरिक विरोधों को छोड़कर स्त्री की दशा में सुधार के लिए संगठित रूप में कार्य करना होगा।

उपसंहार-

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय वाङ्मय में स्त्री-विमर्श की एक समृद्ध एवं विविध आयामी परम्परा रही है। वैदिक काल से लेकर समकालीन युग तक की इस लम्बी यात्रा के दौरान स्त्री-सरोकार सन्दर्भी दृष्टिकोणों में कई उतार चढ़ाव आए। वैदिक काल में उदात्त आदर्श की प्रतीक नारी न केवल उच्च पद पर आसीन थी, बल्कि विदुषी होने के साथ-साथ विविध सामाजिक सन्दर्भों में वैचारिक स्तर पर संवादपरायण भी रही। सामाजिक गतिविधियों में बराबरी की भागीदारी करती, सहयोगी, सहचरी की प्रबल भूमिका में रही। भारत में मुगल शासन के आते ही सर्वप्रथम स्त्री का वह स्थान छीना जिसकी भारतीय परम्परा में स्वीकृति थी, जिसकी वह अधिकारिणी भी थी। इस्लामी मान्यता के प्रभावी होते ही एक-एक कर स्त्रियों के अधिकार समाप्त हुए फिर उनका सम्मान और अन्त तक आते-आते उसके हिस्से गुलामी, विवशता ही आयी। इस्लामी मान्यता के कुचक्र में फंसी स्त्री जाति की इसी विवशता ने उसे उच्च पद से उतारकर एक गुलाम एक वस्तु के रूप में समाज में स्थापित कर दिया।

ब्रिटिश काल में भी उनकी स्थिति में कोई विशेष सुधार नही हुए यद्यपि उनकी स्थिति में सुधार के लिए राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रवीन्द्र नाथ ठाकुर, बंकिम चन्द्र चटर्जी आदि ने नारी जागरण के पुरजोर प्रयास किये। उनकी स्थिति पर पुनर्विचार किये। कई तरह की नारी विकासवादी संस्थाएँ (स्कूल, कॉलेज, अनाथालय आदि) स्थापित भी की। ब्रिटिश काल में उठी नारी जागरण की लहर ने स्वतन्त्र भारत में जोर पकड़ा। नारी विकासवादी चिन्तकों के स्वप्न चरित्रार्थ हुए, पर फिर भी उसमें पर्याप्त गुंजाइश रह गई जो अद्यावधि बनी हुई है। स्त्री विमर्श पितृसत्ता के विरोध में स्त्री के व्यक्तिगत अनुभवों को उजागर करने की पहल करता हुआ स्त्री की मानवीय पहचान के साथ-साथ उसकी मुक्ति के लिए भी गुहार लगाता है। स्त्री विमर्श का मूल स्वर प्रतिशोधात्मक नहीं, प्रतिरोधात्मक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. वीरेन्द्र यादव, पराधीनता के खिलाफ विद्रोह, पृष्ठ संख्या 83
2. स.लालचंद गुप्तमगल, हिन्दी साहित्य-वैचारिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ संख्या 229
3. डॉ. मधु संधु, नारी विमर्श लघु कथाओं के सन्दर्भ में, पृष्ठ संख्या 79
4. चन्द्रकान्ता, स्त्री विमर्श की अवधारणा और हिन्दी साहित्य, पृष्ठ संख्या 18
5. ममता कालिया, स्त्री विमर्श के संतुलन बिन्दु, पृष्ठ संख्या 8
6. रेखा कस्तवार, स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ, पृष्ठ संख्या 25
7. रीतेश कुमार सिंह, स्त्री विमर्श एवं भूमंडलीकरण, पृष्ठ संख्या 92
8. राजेन्द्र यादव, अर्चना वर्मा (सं) औरत उत्तरकथा, पृष्ठ संख्या 121
9. मृणाल पाण्डेय, परिधि पर स्त्री, पृष्ठ संख्या 9

भासकालीन समाज में राष्ट्रीय भावना

(नारी चेतना के संदर्भ में)

डॉ. नीमा जोशी
संविदा शिक्षक, संस्कृत विभाग
राजकीय महाविद्यालय मुवानी
(जनपद-पिथौरागढ़) उत्तराखण्ड।

किसी भी देश की सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण तथा विकास में नारी का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। यही कारण है कि किसी भी युग अथवा राष्ट्र से सामाजिक व्यवस्था एवं तत्सम्बन्धी दृष्टिकोण का वास्तविक मूल्यांकन नारियों का ही किया जाता है। सृष्टि की निर्मात्री होने के कारण नारी के योगदान के बिना अच्छे राष्ट्र की स्थापना नहीं हो सकती। नारी त्याग, दया, कोमलता आदि गुणों को अपने में समाहित किये हुए राष्ट्र की मर्यादा को अक्षुण्ण रखती है। राष्ट्र में नारी का हमेशा से ही सम्मानित स्थान रहा है, क्योंकि नारी ने अपने सद्व्यवहार, आचरण, त्याग और निर्माण शक्ति से समाज एवं परिवार को प्रभावित कर उचित सन्मार्ग दिखलाया है। अत: प्राचीनकाल से ही नारी मनुष्य के लिए पथ-प्रदर्शिका रही है। सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आज तक नारी को विभिन्न क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है, वह नारी शक्ति के रूप में, दुष्टों के संहार के रूप में, पत्नी के रूप में, पतिव्रता के रूप में, अपने आदर्शों को राष्ट्र में प्रतिष्ठापित किये हुए है। इस प्रकार नारी ही राष्ट्र का अभिन्न अंग है। नारी के बिना घर-परिवार, समाज, यहाँ तक कि सृष्टि की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

भासकालीन समाज में नारी को सम्माननीय स्थान प्रदान किया गया है। नारी जननी है, भगिनी है, पत्नी है, प्रेयसी है, पुत्री है तथा अपने इन समस्त स्वरूपों में वह मानव-मात्र को आनन्द देने वाली तथा उसके सर्वविध कल्याण का चिन्तन करने वाली है। महाकवि भास ने नारी के इसी स्वरूप के अन्तर्गत राष्ट्रीयता की भावना को उजागर करने का प्रयास किया है।

साहित्य का मनुष्य से शाश्वत सम्बन्ध है। साहित्य सामुदायिक विकास में सहायक होता है। और सामुदायिक भावना राष्ट्रीय चेतना का अंग है। समाज का राष्ट्र से बहुत गहरा और सीधा सम्बन्ध है। संस्कारित समाज की अपनी एक विशिष्ट जीवनशैली होती है। जिसका सीधा सम्बन्ध राष्ट्र से होता है। भारत में स्वदेश अनुराग तथा राष्ट्रीयता की भावना संस्कृत साहित्य में प्रारम्भ से ही विद्यमान है। भारतीय संस्कृति का वैशिष्ट्य शान्ति तथा मानवता के पवित्र संदेश में निहित माना जाता है। प्रत्येक प्राणी के कल्याण की भावना '*वसुधैव कुटुम्बकम्*' सरीखे संदेशों के साथ संस्कृत साहित्य की मूल भावना है।

प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना का व्यापक दिग्दर्शन मिलता है। वेदों को भारतीय साहित्य का सबसे प्राचीनतम् ग्रन्थ माना जाता है। भारतीय वाङ्मय में राष्ट्र शब्द का प्रयोग वैदिक काल से ही होता रहा है। यजुर्वेद के 'राष्ट्र मे देहि' और अथर्ववेद के 'त्वा राष्ट्र भृत्याय' में राष्ट्र शब्द समाज के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद काल में भारतीय राष्ट्र की आर्य जाति ने आध्यात्मिक क्षेत्र में ही नहीं अपितु आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में भी अत्यन्त उन्नित प्राप्त की थी। भारतीयों के पवित्र ग्रंथ वेदों में भी राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति मिलती है। ऋग्वेद में अग्नि, इन्द्र, मरूत का केवल गायन ही नहीं किया गया अपितु तत्कालीन समाज के चित्र भी उपस्थित किये गये है।

आर्यों की भूमि आर्यावर्त में केवल बाह्य एकता के ही नहीं अपितु वैचारिक एकता के भी प्रमाण मिलते हैं। आर्यों की परस्पर सहायोग तथा संस्कारित सहानुभूति की भावना राष्ट्रीय संचेतना का प्रतिफल है। आधुनिक युग में भारत माता की कल्पना अथर्ववेद के सूक्तकार की देन है वह स्वयं को धरतीपुत्र मानता हुआ कहता है -

'माता भूमि: पुत्रो ऽहं पृथिव्या:।'[1]

इसी बात को रामायणकार वाल्मीकि राम के मुख से कुछ इस तरह कहलवाते है-

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'

अपनी जन्मभूमि या भूखण्ड के प्रति प्रेम की इसी अभिव्यक्ति से 'राष्ट्र' की अवधारणा ने जन्म लिया। 'राष्ट्र' की अवधारणा में भूमि, जन और उनकी संस्कृति सम्मिलित समझे जाते है। यजुर्वेद इसी राष्ट्र के प्रति जागरूक होने का आह्वान करता है-

'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहित:।'

स्थानीयता के आग्रहों के बावजूद भारतीय जनमानस में 'आसेतु हिमालय' जैसे विस्तृत भूभाग के प्रति गहरा प्रेम सहस्राब्दियों से विद्यमान रहा है। यज्ञ तथा अनुष्ठानों में *'जन्बूदीपे भरतखण्डे आर्यावर्तदेशान्तर्गते'* कहकर अपनी भूमि के प्रति अनुराग की अभिव्यक्ति कई शताब्दियों से जारी है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त का

प्रत्येक मंत्र राष्ट्र भक्ति का पाठ पढ़ाता है। वेदों में राष्ट्रीयता की भावना की अभिव्यक्ति देवताओं के कीर्तिगान तथा मातृभूमि के स्तवन में समृद्ध सामूहिक जीवन की कामना के द्वारा प्रकट होती है।

राष्ट्रीयता की भावना को विकसित करने में पुराणों का भी अप्रतिम योगदान माना जाता है क्योंकि पुराणों से ं भारतीय संस्कृति के क्रमिक विकास का पता चलता है। राष्ट्र में एकानुभूति और देशभक्ति का स्वर पुराणों में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इनमें जहाँ एक ओर जन्म भूमि की वन्दना के रूप में तद्युगीन राष्ट्रीयता की भावना प्राप्त होती है। वहीं दूसरी ओर इस भूमि की रमणीयता, सरस–सुहानी ऋतुएँ, सघन वन सम्पत्ति तथा पवित्र नदियों के गुणगान एवं शस्य श्यामला भूमि की देवभूमि, स्वर्गभूमि आदि संज्ञाओं में देखा जा सकता है। विविध गुणों से भरपूर ऐसी धरती पर जन्म लेने के लिये देवताओं का लालायित होना स्वाभाविक ही है –

गायन्ति देवा: किल गीतकानि धन्यास्तु मे भारतभूमि भागे।
स्वर्गापमस्दि मार्ग भवन्ति भूय पुरुषा: सुरत्वात्।।[2]

अर्थात भारतभूमि में जन्म लेने वाले धन्य है, देवता भी उनका गुणगान करते हैं। भारत ऐसी भूमि है जहाँ जन्म लेने से स्वर्ग एवं मोक्ष दोनों की प्राप्ति हो जाती है। भारतवासी स्वर्ग के देवताओं से भी अधिक भाग्यशाली हैं। भारतीयों के लिए यह भूमि जन्मभूमि, पुण्यभूमि, मातृभूमि तथा स्वर्गभूमि सभी कुछ है। उपनिषदों व ब्राह्मण ग्रन्थों में भी राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति अनेक स्थलों पर मिलती है। उपनिषदों में जीवन के उत्थान का संदेश देती निम्न पंक्ति को विस्मृत नहीं किया जा सकता है–

'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।'[3]

अर्थात् उठो! जागो! और अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये सदा संघर्षशील रहो।

राष्ट्र की अच्छाइयाँ, बुराईयाँ, रीति–रिवाज, परिवार आदि विविध विशेषताएँ किसी भी कवि के साहित्य में सहजता से स्थान प्राप्त कर लेती है।

महाकवि भास ने नारी के राष्ट्रीय स्वरूप का वर्णन अपने रूपकों में प्रस्तुत किया है। मानव की जन्मदात्री व निर्मात्री दोनों ही कार्य नारी में निहित है। नारी के रूप में माता को पृथ्वी कहा गया है क्योंकि माता पृथ्वी के समान ही धैर्यवान व कर्त्तव्यों का पालन सुचारू रूप से करती है। कवि ने प्रतिज्ञायौगन्धरायण नाटक में माता के रूप में नारी के स्थान को प्रदर्शित किया है। जिस प्रकार वर्तमान समाज में माताएँ अपनी कन्याओं के विवाह हेतु चिन्तित रहती है, उसी प्रकार भासकालीन समाज में भी माताएँ अपनी कन्या के विवाह हेतु चिन्तित दिखलाई पड़ती है। राजा प्रद्योत कन्या के विवाह के विषय में रानी से वार्तालाप करते है तो रानी कहती है कि धर्म व स्नेह माताओं के लिए कष्टदायी होता है–

अदत्ते त्यागता लज्जा दत्तेति व्यथितं मन:।
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता दु:खिता खलु मातर:।।[4]

आज की ही भाँति भासकालीन समाज में भी कन्यादान करने से पूर्व माताएँ वर के विषय में समग्र जानकारियाँ प्राप्त करती थी। रानी राजा प्रद्योत से कहती है–

अभिप्रेतं में प्रदानम्। वियोगो मां सन्तापयति। अथ कस्मै पुनर्दता।[5]

अर्थात् कन्या का विवाह तो मुझे भी अभीष्ट है। विवाह हो जाने पर इसका वियोग मुझमें संताप उत्पन्न कर रहा है। आपने इसे किसे देने का निश्चय किया है। इस प्रकार भासकालीन समाज में माताएँ कन्याओं का विवाह ऐसे वर के साथ करती थी जहाँ देकर उनको पश्चाताप् नहीं करना पड़ता था।

माता का पुत्र के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति को भास ने प्रतिमानाटक में वर्णित किया है। श्रीराम के वन जाने तथा पिता की मृत्यु से दु:खी होकर भरत अपनी माता कैकेयी को दोषी मानकर प्रणाम नहीं करते तो माता कौशल्या अपने मातृत्व की निष्ठा का पालन करते हुए भरत को प्रणाम करने के लिए कहती है–

जात! सर्वसमुदाचारमध्यस्थ: किं न वन्दसे मातरम्।[6]

कोई भी माता अपने पुत्र का सम्यक प्रकारेण लालन–पालन करती है तथा उसे राजा बनते हुए देखकर प्रसन्न होती है तथा स्वयं को धन्य मानती है। इसी का वर्णन महाकवि भास ने प्रतिमानाटक में कैकेयी के माध्यम से वर्णित किया है। माता कैकेयी राम को वन से वापस बुलाने के लिए भरत के साथ वन जाती है और श्री राम से कहती है–

धन्या खल्वास्मि। इममभ्युदयमयोध्यायां प्रेक्षितुमिच्छामि।[7]

अर्थात् मैं धन्य हो गयी । इस अभ्युदय को अब मैं अयोध्या में भी देखना चाहती हूँ।

भासकालीन समाज में नारी के रूप में पत्नी सुख व दु:ख दोनों में अपने पति का अनुसरण करती थी। प्रतिमानाटक में राम के वनगमन के समय सीता भी उनके साथ जाना चाहती है, परन्तु उनके कष्टों का स्मरण करते हुए राम लक्ष्मण से उन्हें रोकने के लिए कहते है। लक्ष्मण कहते है कि इस प्रशंसनीय अवसर पर आर्या को रोकने का साहस नहीं हो रहा है क्योंकि–

''स्त्रियों के लिए पति ही सर्वस्व है''।[8]

तत्कालीन समाज में पति के लिए विजयश्री की कामना करना तथा पति की आज्ञा का पालन करना नारी का परम धर्म माना जाता था। इसी का वर्णन महाकवि भास ने अभिषेकनाटक में किया है। सीता जब रावण की लंका में हनुमान द्वारा राम के आक्रमण की बात सुनती है तो मन ही मन राम के विजयी होने की प्रार्थना करती है–

ईश्वरा:! आत्मना कुलसदृशेन चारित्रेण यद्यहमनुसराम्मार्यपुत्रम्।
आर्यपुत्रस्य विजयो भवतु।[9]

महाकवि भास ने सीता का पत्नीत्व स्वरूप अग्नि– परीक्षा के माध्यम से प्रदर्शित किया है। राम के द्वारा स्वयं को दूषित मानना

जानकर सीता अपने सतीत्व की परीक्षा हेतु अग्नि–परीक्षा देने को तैयार हो जाती है किन्तु एक आदर्श पत्नी होने के कारण प्रत्येक कार्य से पहले पति की आज्ञा लेना अपना धर्म समझकर लक्ष्मण से आज्ञा लाने के लिए कहती है।[10]

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि भासकालीन समाज की नारियाँ राष्ट्रीयता की भावना को प्रतिष्ठापित करते हुए अपने शुद्ध आचरण तथा कर्त्तव्य पालन द्वारा अपने पितृकुल एवं पतिकुल दोनों वंशों को पवित्र एवं उज्ज्वल करती थी।

श्रीमद्भागवत मे भी व्यक्तिगत स्वार्थ को त्यागकर *'सर्वे भवन्तु सुखिन:'* की अवधारणा को पुष्ट किया गया है। इससे भी जननी जन्मभूमि की स्तुति सर्वत्र विद्यमान है।

समग्रत: यह कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना, देश भक्ति, देशोन्नति एवं देश प्रेम के रूप में मुखरित हुई है। संस्कृत साहित्य का उद्देश्य जन्मभूमि का गौरवगान, उदारता एवं विश्वबन्धुत्व की भावना का प्रचार तथा संकीर्ण राष्ट्रीयता से ऊपर उठकर अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार था।

संदर्भ -

1. अथर्ववेद – 12/1/12
2. विष्णुपुराण – 2/3/25
3. कठोपनिषद् – 1/3/12
4. प्रतिज्ञायौगन्धरायण– 2/7
5. प्रतिज्ञायौगन्धरायण– 2/पृ0सं0–52
6. प्रतिमानाटक – 3/पृ0सं0–112
7. प्रतिमानाटक – 7/पृ0सं0–223
8. प्रतिमानाटक – 1/25
9. अभिषेकनाटक – 5/पृ0सं0–102
10. अभिषेकनाटक – 6/पृ0सं0–117

बुजुर्गों के मौन संघर्ष की गाथा : एक बड़ी घटना

डॉ. पूनम शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, माता सुंदरी कॉलेज, हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

कथाकार राजी सेठ आठवें दशक की उन चर्चित लेखिकाओं में से एक हैं, जिन्होनें अपने लेखन से साहित्यजगत को एक नया आकाश दिया। स्वयं लेखिका का जीवन अनेक उतार-चढ़ावों से गुज़रा, जिसकी प्रत्यक्ष झलक उनकी कहानियों में दिखाई देती है। उनकी कहानियों में उनके अनुभवों की माला है, जो अपनी विशिष्ट अर्थछवि बिखेरती दिखाई देती है। उनकी कहानियों में झाँकने पर जीवन के अनेक चित्र अपने रंगों के साथ हमें आकर्षित करते हैं। प्रत्येक कहानी जीवन के जटिलतम प्रश्नों को उठाती दिखाई देती है, जिनके उत्तर हमें खोजने हैं, कहीं मौन का संघर्षमय वातावरण है तो कहीं यान्त्रिक जीवन की गलघोटू स्वार्थमयता, कहीं लील लेने वाला अकेलापन है तो कहीं सहजता से चल रहे जीवन की असहज स्थितियाँ जो व्यक्ति को स्वार्थी बना देती हैं। जीवन का कोई पक्ष ऐसा नहीं जिस पर राजी जी ने लेखनी न चलाई हो। हर उस पक्ष, हर उस स्थिति, हर उस परिस्थिति, हर उस मन के भाव को उन्होनें उघाड़ कर रख दिया जो जाने-अनजाने शब्दमय होने से बच गए हैं। राजी सेठ यथार्थ जीवन की साहित्यकार है जिन्हें खोखले आदर्शों और मृतप्राय नैतिकता में कोई विश्वास नहीं क्योंकि वे जानती हैं, इन आदर्शो और बदलती नैतिकताओं से जो परिणाम निकलते हैं, वे मात्र सिफर (शून्य) हैं क्योंकि इस अत्याधुनिक समाज में रिश्तों की मान्यताएँ घट चुकी हैं, वे बस घर के एक कोने में निभाए जाने की प्रतीक्षा करते रहते हैं। अर्थहीन जीवन उनकी दिनचर्या बन जाता है और साथ रहता है अकेलापन जो निस्त्बध, दिशाहीन सा टटोलता रहता है, वह दिशा जहाँ उसे कोई पहचानकर दो मिनट का समय दे, अपनापन दे,कुछ पूरापन दे।

आधुनिकता को केवल समय के अनुसार हुए परिवर्तन के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए बल्कि वह एक मूल्य भी है। आज के युग में जीवन जीने का तरीका बदल गया है, सोच बदल गई है। स्त्री अपने अधिकारों से परिचित है इसलिए वह भी पुरुष के समान बाहर निकलकर अपनी जिन्दगी को अपने अनुसार जीना चाहती है। पुरुष एक स्त्री के साथ संतुष्ट दिखाई नहीं देता, वह अपने साथ काम करने वाली सहकर्मी पर कुदृष्टि रखता है। अधिकारी और कर्मचारी वर्ग के बीच की खाई बढ़ती जा रही है। ये सभी बातें आज के युगीन सत्य हैं, जहाँ आम व्यक्ति घड़ी के पेंडुलम की तरह हिलता दिखाई दे रहा है। राजी सेठ ने बहुत सी कहानियाँ लिखी जो पाँच कहानी संग्रहों में बँधी उनकी चेतना से हमारा साक्षात्कार करवाती हैं। वे स्वयं लिखती हैं ''हर जगह यही लगता रहा कि जो - जो कुछ जैसा-जैसा दीखता है, भीतर से कुछ और अलग है या विपरीत है। उस 'भीतरी' को छुआ जा सकता है, समझा जा सकता है। मोड़ा-तोड़ा जा सकता है किसी दूसरे अर्थ में काता जा सकता है। कोई भी चीज़ इकहरी नहीं होती। वह ऐकानेक रेशों का पुंज होती है।''[1] लेखिका ने जो कुछ देखा, महसूस किया उसे कहीं भीतर तक जानने और छूने की इच्छा उनकी बनी रही, जिससे अनेक कहानियों को शब्दबद्ध किया जा सका। इसी क्रम की एक कहानी है''एक बड़ी घटना''। कहानी का आरम्भ'' नसों में घबकारा बढ़ता है। होंठों के कोनों में तनाव त्वचा पर ज़रदियां फैलने लगती हैं। सारा चेहरा विकृत होकर जटिल हो गई मांसपेशियों के जाल में क़ैद-सा होने लगता है। हाथ-पैरों में एक नामुराद ऐंठन, सांसों के उखड़ते हुए पांव ज़ोर की आहट देने लगते हैं। चारपाई को घेरकर खड़ी आँखें आगे को झुक आती हैं। कांपती हुई आशंका कि न जाने किस श्वास के साथ जीवन का ताना-बाना टूट जाए ......''[2] से होता है यह शुरूआत कहीं-न-कहीं पाठक को उस सूत्र के साथ बाँध देती है जो उसे कहानी के अंत तक हिलने नहीं देता। विकृत होता चेहरा, हाथ पैरों की ऐंठन, चारपाई को घेरे लोग, एक ऐसा सजीव चित्र पाठक की आँखों के सामने आने लगता है कि घटना साक्षात् हमारे सामने घटने लगती है। लेखिका के शब्दों का चयन और उनका क्रम, घटना के प्रति सजगता और उसकी यथार्थता के साथ होने वाली सपाटब्यानी की ओर इशारा करता है। लेखिका द्वारा प्रयुक्त वाक्य ''जाने किस श्वास के साथ जीवन का ताना बाना टूट जाए........''[3] जीवन की उस सच्चाई को ब्यान करता है जहाँ मृत्यु निश्चित है। जीवन का प्रतिपल घटता क्षण हमें मृत्यु की ओर ठेलता है परन्तु हम मृत्यु की आशंका मात्र से घबराने लगते हैं और चाहे-अनचाहे ईश्वर की स्तुति हमारी जिह्वा पर अपना घर बना लेती है और मात्र पल दो पल के ईश्वर स्मरण से हम यमराज को पीछे धकेलने की शक्ति एकत्र करने लगते है परन्तु जीवन का वो समय जिसे हम वृद्धावस्था कहते हैं, उस स्थिति में आकर वृद्ध को अनेक रोगों से ग्रसित, उस पर होने वाला खर्च, उसको दिया जाने वाला समय सभी कुछ युवा वर्ग के लिए बेमानी सा हो जाता है और वृद्ध की कराह उसे मृत्यु के और निकट ले जाती है और युवाओं की आशा को संबंल मिलने लगता है कि अब यमराज इन्हें ले ही जाए तो अच्छा है। ऐसी ही निश्चित होती नियति 'एक बड़ी घटना' की मुख्य पात्र उस स्त्री अम्मा (लाजो) की है जो कभी तेरह वर्ष की किशोरी थी और इस घर में ब्याह के पश्चात् आई थी। वर्तमान और भूत में चलती कहानी अम्मा की वर्तमान अवस्था को ब्यान करती है, जब उसका शरीर लकवे का शिकार हो चुका है और लकवे का सबसे अधिक प्रहार जिह्वा पर हुआ इसलिए अब बोल नहीं पाती है, अब अम्मा हमेशा बेहोशी की हालत में ही रहती है और उसे

हर-वक्त सेवा का आवश्यकता होती है इसलिए घर की बहुओं की एक-एक कर उसके पास सोने की ड्यूटी लग जाती है इसलिए उसके लेटने की जगह बदल दी गई है और अब उसकी खाट बिछ गई है हॉल में। बहुओं का कर्त्तव्य है अम्मा के साथ सोना और वृद्ध पति की नियति है उसके बिना छोटे से सन्नाटे वाले कमरे में अकेले पड़े रहना। ये अकेलापन इससे पहले शायद इतना खला नहीं क्योंकि वह खड़ी रहती थी सदैव उसके साथ। वृद्ध पिता फ्लैशबैक में जाकर सोचने लगता है उन दिनों के बारे में जब उसे समय ही नहीं था। वह आधुनिक युग की पैसा कमाने की दौड़ में अंधाधुध शामिल था। दुकान बढ़नी चाहिएँ, मकान बड़ा होना चाहिए। काम करने के लिए बहुत कुछ था। मित्र थे उनकी सजाई महफिल थी। बच्चे, उनकी पढ़ाई, उनकी ट्युशन, उनका कॉलेज, उनकी नौकरी और फिर ब्याह-सगाई। कितना कुछ था करने के लिए, सांस लेने की फुर्सत ही कहाँ थी, नहीं था तो अकेलापन , नहीं था तो वो समय जहाँ अपने भीतर झाँककर पूछने का कि मेरा कौन है? कौन मेरे सबसे करीब है? और उस सबसे करीब के लिए मैं कितना समय निकाल पाता हूँ। जवानी का रक्त मनुष्य को गर्व से भर देता है पिताजी को भी गर्व था केवल सभी को देने पर परन्तु समय का चक्र घूमा और जवान पिता वृद्ध हो गया और उसे कारखाने की कुर्सी से उठाकर घर में एक कुर्सी दे दी गई क्योंकि पिताजी बहुत काम कर चुके हैं। यदि देखा जाए तो किसी भी व्यक्ति के जीवन की यह घटना उसे एक नए रास्ते पर खड़ा कर देती है, आधुनिक समाज की यह नई व्यवस्था, अपने जीवन की उन परतों को खोलने का अवसर देती है जो कहीं धूल की मोटी परत के साथ दब गई हैं। पिताजी के साथ भी कुछ ऐसा ही होता है वृद्धावस्था के कारण जब उन्हें रातों को नींद नहीं आती तब वे उसकी तलाश करते है जो इन अकेली रातों में उनका साथी बनें और ऐसे में उनकी जीवन संगिनी सदा की तरह थकी होने के बावजूद भी उठ बैठती है और पति के पैर दबाते-दबाते इधर-उधर की बातें करने लगती है ताकि पति के बेचैन मन को कहीं स्थायित्व मिले, वही एक है जो पति की इस अवस्था में उसे अकेला नहीं होने देती। ऐसे में, अपने इस जीवन में जहाँ वह सहधर्मिणी को भूल ही गया था, एक संकटमोचन की तरह उसकी रक्षा करती है, पति को कहीं-न-कहीं यह अहसास होने लगता है कि यदि यह न हो तो इस भरे-पूरे घर की एकांतता उसे लील ले। वृद्ध पत्नी की पूरी दिनचर्या पति के लिए कुछ-न-कुछ करने में व्यस्त रहती है चाहे दूध गर्म करके देना हो या फिर परिवार में सबसे पहले अखबार लाकर उसे देने में और ये सभी कार्य पूरी तन्मयता के साथ, अपनी इच्छा से प्रेमी हृदय के साथ करती रहती है। पत्नी की ये सभी बातें पुरुष को उस अहसास से भर देती हैं जो कभी उसने सोचे ही नहीं थे-''एक पुरुष सुलभ गर्व से आज तक वह यही समझता रहा था कि यह स्त्री हर तरह से उस पर आश्रित है। अब सोचता है कि कितना गलत समझ रहा था। वह ही उस पर ज्यादा आश्रित है छोटी-छोटी जरूरतों के लिए अखबार के लिए, दूध के लिए, दवा के लिए और उस सर्वग्रासी एकांत के लिए जो उसकी सारी चेतना पर कुंडली मारकर बैठा है।''[4] जीवन के अंतिम समय का अकेलापन कहीं-न-कहीं वृद्ध को साल रहा है, इस अकेलेपन में जो ध्वनि रह-रहकर उठती है और उसे जीने का अहसास कराती है, वह उसकी पत्नी की है। आज वह अपनी सभी जरूरतों के लिए उस पर निर्भर है किन्तु पहले काम की इतनी व्यस्तता थी कि उस पर ध्यान ही नहीं दे पाया, किसी को अपनी कुछ कह ही नहीं पाया। आज कहने के लिए बहुत कुछ है और समय भी बहुत हैं किंतु सुनने वाले नहीं, उनकी समय की माँग ने उन्हें आगे बढ़ने की दौड़ में शामिल कर लिया है। समय का चक्र ही तो है 'जो' सदैव लोगों और कामों से घिरा रहता था, आज उसके पास न लोग हैं और न कोई काम। आधुनिक जीवन की यही व्यवस्था है जो मनुष्य को नितांत अकेला किए जा रही है। अकेलेपन के तहत जीवन निस्सार लगने लगता है। अब पिताजी को भी केवल माँ का ही सहारा है वे यह समझ चुके हैं, उसने अपने जीवन में जो भी कमाया उसे बेटे-बेटियों में बाँट दिया और बाँटने का यह भाव उसे कहीं-न-कहीं गौरवान्वित करता था। आज बेटे-बेटियाँ भी कमा रहे है और बाँट रहे हैं, उनके इस बाँटने के क्रम में वृद्ध पिता के हिस्से आया-एक छोटा-सा कमरा, जिसमें केवल दो चारपाई आ सकती थीं और आ सकती थीं कुछ जरूरी वस्तुए, अब वह और उसकी वृद्ध पत्नी लाजो अपनी रूग्णता के साथ इस कमरे में निष्क्रिय से पड़े रहते लेकिन फिर उनके पास था एक-दूसरे का साथ, जिसके साथ वे जीए जा रहे थे। किन्तु समय के दुष्चक्र ने वह साथ भी छीन लिया। लाजो के लकवे का शिकार हो जाने के कारण उसकी खाट-उस छोटे से कमरे से हटकर हॉल में स्थान पाने लगी किन्तु वह समय वृद्ध के लिए ऐसा था जहाँ उससे सब कुछ छूट रहा था। जो पत्नी के लिए आत्मीय और अपनेपन का भाव था, वह केवल श्वासों की गर्म हवाओं के साथ भाप बनकर एक धुंध का रूप ले रहा था। ऐसा नहीं है वह पहले अकेला नहीं था, उस छोटे कमरे में भी अकेलापन घेरे था किन्तु वह अकेलापन लाजो के साथ बँट गया था किन्तु लाजो के उस कमरे से चले जाने पर तो वह एकांत अब बिखर गया है उस पूरे कमरे में। आयु की इस अवस्था में शरीर की भूख समाप्त हो चुकी है और लाजो के साथ जो प्रेम संबंध पनप रहा है वह कहीं-न-कहीं वास्तविक है जिसे अब उसने पहचान लिया है। आज का वास्तविक प्रेम-सूत्र पहले से कहीं अलग है, जिसमें तरलता है, सरसता है, अपनापन है, छूट जाने का भय है। आज भूत को चिन्हित कर वह सोच में डूबा है कि संघर्ष, और-और पाने की लालसा में कहीं लाजों के साथ यह रिश्ता पहले पनप ही नहीं पाया ''भूख और हवस, कर्म और संधर्ष, ज्ञान और अनुभव की होड़ में क्या कभी वह उसे पूरा पा सका या अपने-आपको सम्पूर्ण दे सका,''[5] इस उधेड़बुन में बैठा वह हिसाब लगा रहा है उन अमूल्य क्षणों का जो कहीं अतीत के गर्त में जा पड़े है। आज तो समुद्र के पास बैठे होने पर भी लहरें कहीं दूर हैं और केवल रेत ही रेत हाथ लग रही है। आज उसका जीवन केवल नदी के उस किनारे की तरह दिखाई दे रहा है, जहाँ पैरों के नीचे की जमीन कभी भी धस सकती है। वह बैठा-बैठा केवल देख पा रहा है उसकी उन वस्तुओं को जिनका प्रयोग वह करती थी। उसका कंघा, उसका तेल, उसकी चप्पलें, इन सभी वस्तुओं का इस छोटे कमरे में अब कोई काम नहीं क्योंकि लाजो इस कमरे को छोड़ चुकी है। उसकी इन वस्तुओं का, कमरे का, कमरे को

छोड़ कर जाना वृद्ध को भीतर तक तोड़ देता है, उस टूटन को वह महसूस कर रहा है क्योंकि इन वस्तुओं का इस कमरे से जाना केवल इनका जाना नहीं है, लाजो के 'साथ' का जाना भी है, लाजो जितना, इस कमरे से पति से दूर जा रही है, वृद्ध उतना ही अकेला, असहाय, टूटा-हुआ महसूस कर रहा है। उसकी इस टूटन, अकेलेपन और बेचैनी को परिवार के सदस्य नहीं देख पा रहे इसलिए ''पिताजी को अम्मां से क्या सरोकार.......... अम्मां जिएं या मरें............ सारी उमर तो साथ कटी, अब बुढ़ापे में किस काम.........। वह मुंह दबा लेती है। खी-खी की रूद्ध ध्वनि में कै़द जुगुप्सा के स्वर उन कानों की लौ के साथ टकराते हैं।''[6] बहुओं की खी-खी की ध्वनि वृद्ध के हृदय पर चोट कर रही है और साथ ही अपनेपन से दूर उन अमानवीय रिश्तों को कड़ीबद्ध कर रही है, जहाँ वृद्ध का दु:ख केवल उपहास मात्र बनकर रह गया है। युवावर्ग की यह हंसी कही-न-कहीं समाप्त होती उन संवेदनाओं की ओर इशारा करती है जहाँ रिश्तों का कोई मूल्य नहीं। आज का दृश्य जब लाजो खाट पर लेटी जीवन के अंतिम क्षणों को जी रही है वह उससे दूर बैठा केवल उसे देख रहा है परिवार के किसी सदस्य का ध्यान उसकी ओर नहीं जाता सभी टकटकी लगाए, लाजो की उखड़ती साँसों को देख रहे हैं। नित्य होते इस क्रम में जहाँ लाजो की साँसे उखड़ने लगती हैं, वह भय ग्रस्त, निष्चल आशंकित सा बैठ जाता है जहाँ बराबर, उसे लाजो के खोने का डर सताता है लेकिन साँसो का फिर जुड़ जाना कहीं-न-कहीं उसे सांत्वना देता है। लेकिन परिवार के सदस्य उसके हृदय के दु:ख से परिपूरित सागर में कभी गोते नहीं लगाते, वे नहीं देख पाते उसकी उस कातर दृष्टि को जो लगातार लाजो की उखड़ती, क्रमबद्ध होती साँसों पर टिकी है, वे नहीं सुन पाते उसके कानों में जाने वाली उस ध्वनि को, जो लाजो की साँसो के उखड़ने से पैदा होती है- ''इस हड़बड़ी में किसी की दृष्टि उस कोने में नहीं जाती, जहाँ कोई पुरानी भूरी शॉल ओढ़े गुड़ी-मुड़ी बैठा है, और बैठा रहता है। नसों के इस तनाव के साथ न कातर होता है, न अपनी जगह से हिलता है। सामने रखी अंगीठी में अंगारे धीर-धीरे ठंडे हो जाते है। फीकी राख हवा में उड़ने लगती है पर वह उसी तरह निश्चल घुटनों में सिर दिए बैठा रहता है।''[7] घुटनों में सिर दिए बैठे रहना कहीं-न-कहीं उसकी उस असमर्थता का घोतक है जहाँ समय चक्र हावी हो, उसे महत्वहीन घोषित कर देता है। यह सूचक है अपनेपन में व्यस्त उस युवा पीढ़ी का जो परिवार के वरिष्ठ सदस्य को, वो सम्मान नहीं दे रही जिसका वह अधिकारी है। यह सूचक है जीवन के उस मोड़ का जहाँ सभी इन्द्रियाँ उसका साथ छोड़ उसे उसके भरोसे पर छोड़ देती हैं। यह सूचक है उस अपमान और अकेलेपन का जहाँ जीवन भर की कमाई उपलब्ध्यिों का कोई महत्व नहीं। वह समझ गया है कि जीवन के वे क्षण जो कभी बहुत महत्वपूर्ण थे उन पर उसकी पकड़ अब छूट चुकी है। वह समझ गया है कि दिन-प्रतिदिन बनते-टूटते साँसों का क्रम एक-दिन क्रियाविहीन हो जाएगा और वह अधिक भयग्रस्त हो जाता है- ''दौरों की आवृत्ति में जितनी बार घर का वातावरण भय और चिन्ता से गहराता है, उतनी ही बार वह अपने को एक ऐसे खड्ड की ढलान पर खड़ा पाता है, जिसके नीचे वह भयाकुल ऐकान्तिकता है और अभेद्य अंधेरा''[8] उस वृद्ध के लिए वह समय भयानक दबावभरा हो जाता है जब परिवार के सदस्यों की भागदौड़ी लाजो की खाट के चारों ओर दिखाई देती है, वह उसकी खाट के पास नहीं जाता इसलिए नहीं कि वह उसके पास जाकर क्या ही कर लेगा ? बल्कि इसलिए कि वह उसकी साँसों के टूटते तारों को नहीं देख सकता। यह घटना रोज़ उसके भीतर घटती है और वह शंकित, भयग्रस्त सा बैठा उस असहनीय दबाव को सहन करता रहता है। इस बड़ी घटना ने समाज और जीवन के उस सत्य को तार-तार कर दिया है जहाँ व्यक्ति अपने अकेलेपन के साथ जीने के लिए अभिशप्त है। अभिशप्त है उन रिश्तों को निबाहने के लिए जो समय के साथ गैरजरूरी हो जाते हैं। लेखिका ने कहानी का अंत करते हुए कहा ''वह किसी को समझा नहीं पाता कि यह घटना इतनी ही नहीं है - श्वासों के तार टूट जाने की नहीं है। यह घटना मात्र एक व्यक्ति के इस संसार से उठ जाने की भी नहीं है। यह घटना एक विशाल जन-समूह में, एक अंधेरे सर्द और खामोश कमरे में, एक जीवित व्यक्ति के नितांत अकेले छूट जाने की है।''[9] सत्य और सत्य को उकेरता यह जीवन संघर्ष एक-समय और स्थान पर आकर मृतप्राय हो जाता है। संघर्षमय जीवन जीने वाले, परिवार के प्रत्येक सदस्य की इच्छा को पूरा करने वाले माता-पिता को भी आज परिवार के स्नेह और उनके समय की आवश्यकता है। युवा पीढ़ी, बुजुर्गों की आवश्यकता को भूल अपने में व्यस्त किसी अंधीदौड़ में शामिल हो चुकी है जहाँ उन्होनें माता-पिता को उनके भाग्य के भरोसे छोड़ दिया है। वे भूल चुके है या फिर जानते हुए भी सोचना नहीं चाहते कि यही समय चक्र लौटकर उनकी तरफ भी बढ़ने वाला है। जहाँ किसी के पास उनके लिए भी समय नहीं होगा। बुजुर्गों, परिवार के बड़े सदस्यों को सहयोग और साथ की भूख है जो बेटे-बेटियों, पोते-पोतियों, सगे-सम्बन्धियों के साथ बैठने और प्रेम रूपी तरलता से शान्त होगी। समाज के उस बड़े हिस्से को जिन्होनें परिवार और समाज को बनाने में एक बड़ा योगदान दिया है उसे इस कदर नज़रअंदाज करना उन्हें उनके अकेलेपन के साथ छोड़ देना हमारी बहुत-बड़ी भूल होगी। लेखिका मिरगणे अनुराधा लिखती हैं- ''राजी जी बाहरी घटना-व्यापारों की नहीं मनुष्य की अन्तर्मन की लेखिका है।''[10] राजी जी ने प्रस्तुत कहानी में वृद्धों के अन्तर्मन की परतों को उघाड़ कर रख दिया है जो एक बार फिर हमें सोचने के लिए कुछ नया दे देती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. राजी सेठ की यादगारी कहानियाँ: राजी सेठ, (कथा-यात्रा) भाग पृष्ठ 3 से
2. राजी सेठ की यादगारी कहानियाँ: राजी सेठ, कहानी एक बड़ी घटना, पृष्ठ 100
3. वही, पृष्ठ 100
4. वही, पृष्ठ 103
5. वही, पृष्ठ 105
6. वही, पृष्ठ 100 - 101
7. वही, पृष्ठ 100
8. वही, पृष्ठ 106
9. वही, पृष्ठ 106
10. कथाकार राजी सेठ: डॉ. मिरगणे अनुराधा जनार्दन, पृष्ठ 97

ISSN 2278 - 0327

श्रीमद्भगवत् गीता में 'कर्म' की अवधारणा

डॉ. सुमन रानी
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
भारती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सम्पूर्ण चराचर जगत् में सर्वश्रेष्ठ, कर्मठ, बुद्धिमान प्राणी मानव नित नवीन आयामों पर विश्व में अपनी कर्मठता का लोहा मनवा रहा है, परन्तु आज मानव अनेकों आधुनिक सुविधाओं से सम्पन्न होते हुए भी अशान्त व दु:खी रहता है। वह कर्म करते हुए अनेकों संसाधनों की प्राप्ति के बाद भी शान्त सुखारी जीवन जीने में अपने को असमर्थ पाता है। इसका कारण मानव की कर्महीनता नहीं है अपितु कर्मों के साथ भावशून्यता, लोभ, अपेक्षा, असंयम, समभावहीनता, दयाशून्यता इत्यादि अनेकों नैतिक गुणों के अभाव या अज्ञान के कारण है आधुनिक समय में मानवता को धर्म अर्थात् कर्तव्यनिष्ठता, संयम से दृढ़ सुख-दु:ख में समभाव विश्व कल्याण भाव तथा अनासक्त कर्म की शिक्षा 'श्रीमद्भगवद्गीता' से ही प्राप्त हो सकती है। वस्तुत: भारतीय समाज के मानस पटल पर ऐसा ग्रन्थ जो वैश्विक स्तर पर अत्यन्त लोकप्रिय रहा हो और जिसमें धर्म, संस्कृति, जीवन दर्शन, आचार-विचार, कर्तव्य-अकर्तव्य, ऐहिक-पारलौकिक जीवन को उत्कृष्ट प्रकार से जीने तथा सामाजिक उन्नति के केन्द्र मानवीय विकास और सृजन के उन गूढ़ रहस्यात्मक प्रश्नों पर सूक्ष्म, हृदयग्राही एवं मानवीय संवेदनाओं को झकझोर देने वाले समस्याओं का समाधान सरल एवं स्पष्ट भाषा में प्रस्तुत किया है। श्रीमद्भगवतगीता में श्रीकृष्ण ने सभी प्रकार के कर्म रहस्यों के उद्घाटन के बाद '*यथोच्छसि तथा कुरु*' कहकर मानवीय समक्षताओं की अपार सम्भावनाओं की विशालतम स्वरूप की ओर ध्यान इंगित करते हुए कर्मों पर वैयक्तिक गुणों एवं भिन्नताओं के प्रभाव को भी स्पष्ट परिलक्षित किया है। गीता का ज्ञान किसी वर्ग-विशेष या समूह, सम्प्रदाय के लिए न होकर सृष्टि के कण-कण के समायोजन, विकास, स्थिति-परिस्थिति का एक प्रायोगिक ग्रन्थ है। वस्तुत: गीता में सभी शास्त्रों के सारभूत तत्त्व निहित है। कहा भी गया है - '*सर्वशास्त्रमयी सा*' यद्यपि गीता की रचना किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में नहीं हुई है, महर्षि व्यास द्वारा उपदिष्ट महाभारत के भीष्मपर्व के 25वें अध्याय से लेकर 42वें अध्याय तक 700 श्लोक रूप में निबद्ध है। गीता का कोई विशिष्ट नाम या दर्शन का प्रतिपादन न होते हुए भी यह ग्रन्थ समस्त दर्शन एवं उपनिषदों के साररूप में उपस्थित है। यही कारण है कि श्रीमद्भगवद्गीता का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। गीता का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए उचित ही कहा गया है -

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दन: ।
पार्थो वत्स: सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ।।

जीवन में कर्मों की निरन्तरता जीवनपर्यन्त रहती है। मनुष्य एक क्षण भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता है जब दृष्ट भाव में मानव कोई कार्य नहीं करता है, तत् क्षण भी वह श्वसन इत्यादि क्रिया कर रहा होता है - '*करोतीति क्रियते वा तत् इति कर्म*' कर्म शब्द का अर्थ कार्य, प्रवृत्ति या क्रिया है। कर्म करने की सामर्थ्य शक्ति समाप्त होने पर जीव को मृत मान लिया जाता है। यह सम्पूर्ण सृष्टि प्रकृति के गुणों के अनुरूप कर्म करने पर विवश है। स्वयं श्रीकृष्ण भी कर्म की सार्वभौमिकता एवं सत्यता को बतलाते हुए इस प्रकार कहते हैं -

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत।
कार्यते ह्यवश: कर्म सर्व: प्रकृतिजैर्गुणै: ।। (श्रीमद्भगवद्गीता 3/5)

कर्म जीवन की अनिवार्यता है। कर्मों की सार्थकता देश, काल, समाज, परिस्थिति पर निर्भर करती है। इसीलिए कहा गया है -

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मण: ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मण: । (श्रीमद्भगवद्गीता 3/8)

जब तक आत्मा की उपस्थिति होती है, जीव सदैव सक्रिय रहता है। माया के संसर्ग में आकर आत्मा भौतिक गुणों को प्राप्त कर लेता है। इसीलिए आत्मा की शुद्धि हेतु जीव को सदैव शास्त्रसम्मत कर्मों के संलग्न होना चाहिये। यदि जीवात्मा कृष्णभावनामृत के अपने स्वाभाविक कर्म के रहते हुए जिस भी कार्य को करता है, वह सर्वदा कल्याणप्रद ही होता है। श्रीमद्भगवत् द्वारा इसकी पुष्टि की गयी है -

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरेभजन्नपक्कोऽथ पतेत्ततो यदि।
यत्र क्व वाभद्रमभूदयमुण्य किं को वार्थ आप्तोभजतां स्वधर्मता: ।।

सांसारिक पदार्थों के लिप्त होने का कारण त्रिविध गुण अर्थात् सत्व, रजस् और तमस् इन गुणों के कारण ही मनुष्य क्रियाशील रहता है। कर्मों की सिद्धि में स्थान, कर्ता, अनेक प्रकार के सहायक साधन, कर्ता के कार्य-सम्बन्धित चेष्टाएँ और भाग्य ये पाँच कारण होते हैं -

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ।। (श्रीमद्भगवद्गीता 18/14)

कार्य की सम्पन्नता का प्रमुख और अन्तिम कारण 'दैव' अथवा भाग्य है। वस्तुत: यहाँ इन पूर्वोक्त उक्त चार कारण भाग्य या दैव पर ही आधारित है। मनुष्य के शुभाशुभ कर्मों के पूर्व संस्कारों को ही %दैव% शब्द से अभिहित किया है -

'*पूर्वजन्मकृतं कर्म तदैवमिति कथ्यते।*' (हितोपदेश मित्रलाभ 33)

प्रत्येक कर्म की सिद्धि में दैव अथवा भाग्य के साथ अन्य सभी

चार कारणों के भी सम्मिलित रूप से कार्य निष्पन्न होता है। कर्मों की सिद्धि में अधिष्ठान इत्यादि पाँचों कारणों की भूमिका होने पर भी जो मनुष्य केवल अपने आप को कार्य का कर्ता समझता है, उसे श्रीकृष्ण ने मलिनबुद्धि वाला कहा है। अत: कर्म की सिद्धि में मनुष्य स्वयं को कारण न जानते हुए इन पाँचों को कारण मानकर निष्काम भाव से कर्म करना चाहिए –

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु य: ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मति: ।। (श्रीमद्भगवद्गीता 18/16)

इन जगत् में ईश्वरार्पण भाव से कर्म करता हुआ मनुष्य कर्म बन्धन से मुक्त रहता है –

अनादित्वान्निर्गुणत्वात् परमात्मायमव्यय: ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ।। (श्रीमद्भगवद्गीता 13/31)

अब यहाँ अर्जुन की जिज्ञासा होती है कि कर्म करता हुआ मनुष्य कर्मों में लिप्त हुए बिना कर्म कैसे सम्भव है? इसके समाधान स्वरूप श्रीकृष्ण कहते हैं –

यथा सर्वगतं सौक्ष्मादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते।। (श्रीमद्भगवद्गीता 13/32)

अर्थात् जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त नभ, तेज, जल, पृथ्वी आदि को व्यापक आकाश, रूप, रस, गन्ध इत्यादि द्वारा लिप्त नहीं होता है। उसी प्रकार देह में सभी जगह विद्यमान आत्मा निर्गुण, निराकारी होने के कारण देह या प्रकृति के गुणों से लिप्त नहीं होते हैं। कठोपनिषद् में सूर्य के लौकिक दृष्टान्त के द्वारा समझाया है, जिस प्रकार सूर्य सभी लोगों का नेत्र है उसके बिना दृश्य ज्ञान सम्भव नहीं है। परन्तु सूर्य कभी भी रतौंधी आदि दोषों से ग्रस्त नहीं दिखाई देता है। इसी प्रकार प्राणिमात्र में व्याप्त एक ही परमपिता ब्राह्य या लौकिक दु:खों से कभी भी ग्रस्त नहीं होता है बल्कि सदैव निर्लिप्त रहता है –

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्नलिप्यते चाक्षुषै: बाह्यदोषै:।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोक दु:खेन बाह्य:।।
(कठोपनिषद्-5/11)

परमपिता परमात्मा में जो पूर्ण रूप से निष्ठा रखते हुए निष्काम भाव से निरन्तर कार्य करते हुए उपासना करते हैं, परमात्मा उन उपासकों के योग व क्षेम का स्वयं वहन करते हैं –

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना: पर्युपासते।
तमेषां नित्यभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। (श्रीमद्भगवत गीता 9/22)

शांकरभाष्य में योग व क्षेम को स्पष्ट करते हुए कहा है–

'योगोऽप्राप्तस्य प्रापणं क्षेमस्तद्रक्षणम्'

अर्थात् अप्राप्य वस्तुओं की प्राप्ति हेतु क्रियायें या चेष्टायें योग हैं और प्राप्त पदार्थों की रक्षा करना ही क्षेम कहा गया है। भगवान के ही परायण होकर समस्त विषयों में वैराग्य को प्राप्त कर प्रेमपूर्वक सदैव ईश्वर की अनन्यभक्ति भाव में लीन रहते हुए कर्मों को करते हैं, ऐसे मनुष्य के जीवन का निर्वाह भगवान् स्वयं वहन करते हैं। कहा भी गया है –

मनीषिणो हि ये केचित् यततो मोक्षधर्मिण:।
तेषां विच्छिन्नतृष्णानां योगक्षेमवहो हरि:।। (महा.शा. 348/72)

श्रीमद्भगवत् गीता निष्काम भाव के कर्मों की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करते हुए अभ्यास अर्थात् बार-बार कार्य को करने की प्रवृत्ति की अपेक्षा ज्ञान को श्रेष्ठ कहा है और ज्ञान की अपेक्षा ध्यान को श्रेष्ठ कहा है। ध्यान की अपेक्षा कर्मों के फल का परित्याग अधिक श्रेष्ठ है और इस प्रकार से कर्मों के फल के परित्याग से तुरन्त ही परम शान्ति प्राप्त हो जाती है –

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छन्तिरनन्तरम् । (श्रीमद्भगवद्गीता 12/21)

वस्तुत: कर्मों के फल का त्याग करने से ही जीव को शान्ति प्राप्त हो जाती है। क्योंकि कर्मफल या विषयों के प्रति आसक्ति ही उसे संसार के चक्र से मुक्त नहीं होने देती है –

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदिश्रिता: ।
अथ मोऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ।। (कठोपनिषद् 6/4)

मनुष्य को कर्मफल की आसक्ति ही उसके बन्धन का कारण है। इसीलिए स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने भारतीय संस्कृति के आधारभूत निष्काम कर्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए मनुष्य का केवल कर्म पर अधिकार कहा गया है। कर्म के फल पर मनुष्य का कोई अधिकार नहीं है। अत: कर्म-फल की चिन्ता न करते हुए जीव को निष्काम कर्म का उपदेश दिया गया है –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽत्वकर्मणि।। (श्रीमद्भगवत् गीता 12/47)

भगवान् श्रीकृष्ण ने किसी भी परिस्थिति में कर्म त्याग को स्वीकार्य नहीं माना है। इसीलिए श्रीकृष्ण बार-बार अर्जुन को कर्मों का महत्त्व बताते हुए युद्ध के लिए उपदेश देते हैं। कर्म अपने आप में नहीं अपितु कर्मों में अन्तर्निहित राग-द्वेष ही मनुष्य को लक्ष्य से विचलित करता है। सृष्टि में एक नियम सभी पर कार्य नहीं करता है, स्वभाव, काल और परिस्थिति के अनुरूप किया गया कार्य ही यज्ञ है। फल की प्राप्ति के लिए आत्मसंयम को भी एक प्रकार का यज्ञ माना गया है। आत्मसंयम कर्मयोग का ही प्रतिफल है। कर्म की सिद्धि के हेतु श्रद्धा अत्यन्त आवश्यक है और जीव जिस प्रकार की श्रद्धा से युक्त होकर कार्य करता है। ईश्वर उसको उसी के अनुरूप फल प्रदान करते हैं –

यो यो यां यां तनुं भक्त: श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विद्धाम्यहम् ।
(श्रीमद्भगवद्गीता 17/21)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीमद्भगवत् गीता
2. कठोपनिषद्
3. सांख्यकारिका
4. हितोपदेश मित्रलाभ
5. शांकरभाष्य

ISSN 2278 - 0327

भारत में महिला सशक्तिकरण : एक संक्षिप्त चर्चा

मनदीप
एम.ए. (NET), राजनीति विज्ञान विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

सार- महिला सशक्तिकरण एक बहस का विषय है। पहले के समय में उन्हें पुरुषों के समान दर्जा प्राप्त था। लेकिन उत्तर-वैदिक और महाकाव्य काल के दौरान उन्हें कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। कई बार उनके साथ गुलाम जैसा व्यवहार किया जाता था। बीसवीं सदी की शुरुआत (राष्ट्रीय आंदोलन) से उनकी स्थिति धीरे-धीरे और धीरे-धीरे बदल गई है। इस संबंध में, हमने ब्रिटिश लोगों के नाम का उल्लेख किया। उसके बाद, भारत की स्वतंत्रता, संवैधानिक निर्माताओं और राष्ट्रीय नेताओं ने दृढ़ता से पुरुषों के साथ महिलाओं की समान सामाजिक स्थिति की मांग की। आज हमने देखा है कि महिलाओं ने सभी क्षेत्रों में सम्मानजनक पदों पर कब्जा कर लिया है। फिर भी, उन्होंने समाज के कुछ भेदभाव और उत्पीड़न से पूरी तरह मुक्त नहीं किया है। कई महिलाएं अपनी क्षमताएं स्थापित करने में सफल रही हैं। इसलिए प्रत्येक को नारी की स्थिति को बढ़ावा देने के लिए सावधान रहना चाहिए।

मुख्य शब्द: महिला सशक्तिकरण, उत्पीड़न, संविधान, स्वतन्त्रता।

परिचय - महिलाएं दुनिया की आबादी का लगभग 50 प्रतिशत हिस्सा हैं, लेकिन भारत ने अनुपातहीन लिंग अनुपात दिखाया है जिससे महिलाओं की आबादी पुरुषों की तुलना में कम रही है। जहां तक उनकी सामाजिक स्थिति का सवाल है, उन्हें सभी जगहों पर पुरुषों के बराबर नहीं माना जाता है। पश्चिमी समाजों में, महिलाओं को जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुषों के समान अधिकार और दर्जा प्राप्त है। लेकिन भारत में आज भी लैंगिक अक्षमता और भेदभाव पाए जाते हैं। विरोधाभासी स्थिति यह है कि वह कभी देवी के रूप में और कभी केवल दास के रूप में चिंतित थी।

भारत में महिलाएं- अब भारत में महिलाओं को संवैधानिक और कानूनी प्रावधान के अनुसार पुरुषों के साथ समानता का एक अनूठा दर्जा प्राप्त है। लेकिन भारतीय महिलाओं ने वर्तमान स्थिति हासिल करने के लिए एक लंबा सफर तय किया है। सबसे पहले, भारत में लैंगिक असमानता का पता महाभारत के ऐतिहासिक दिनों में लगाया जा सकता है जब द्रौपदी को उसके पति ने एक वस्तु के रूप में पासे पर रखा था। इतिहास गवाह है कि पुरुषों को खुश करने के लिए महिलाओं को निजी और सार्वजनिक दोनों जगहों पर नृत्य कराया जाता था। दूसरे, भारतीय समाज में, पिछले कुछ साल पहले भी एक महिला हमेशा परिवार के पुरुष सदस्यों पर निर्भर थी। तीसरा, एक महिला को अपने ससुराल वालों के बड़े सदस्यों की उपस्थिति में तेज आवाज में बोलने की अनुमति नहीं थी। आगे, एक विधवा के रूप में परिवार के पुरुष सदस्यों पर उसकी निर्भरता और भी अधिक बढ़ जाती है। कई सामाजिक गतिविधियों में उसे परिवार के अन्य सदस्यों के साथ घुलने-मिलने की अनुमति नहीं है। दूसरी ओर, समाज के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन में उसका बहुत कम हिस्सा है।

बीसवीं सदी की शुरुआत में महात्मा गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन का उदय हुआ, जो महिलाओं की सभी अक्षमताओं को दूर करने के पक्ष में थे। इसी समय, राजा राम मोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर और कई अन्य समाज सुधारकों ने महिलाओं की शिक्षा, बाल विवाह की रोकथाम, सती प्रथा को वापस लेने, बहुविवाह को हटाने आदि पर जोर दिया। राष्ट्रीय आंदोलन और विभिन्न सुधार आंदोलनों ने देश को मार्ग प्रशस्त किया। सामाजिक बुराइयों और धार्मिक वर्जनाओं से उनकी मुक्ति का मार्ग। इस सन्दर्भ में हम सती अधिनियम 1829, हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856, बाल प्रतिबंध अधिनियम 1929, महिला संपत्ति अधिकार अधिनियम 1937 आदि के बारे में लिख सकते हैं।

भारत की स्वतंत्रता के बाद, संविधान निर्माताओं और राष्ट्रीय नेताओं ने पुरुषों के साथ महिलाओं की समान सामाजिक स्थिति को मान्यता दी। हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 ने विवाह के लिए आयु निर्धारित की है, जिसमें एक विवाह और मां की संरक्षकता प्रदान की गई है और विशिष्ट परिस्थितियों में विवाह के विघटन की अनुमति दी गई है। हिंदू दत्तक ग्रहण और भरण-पोषण अधिनियम, 1956 के तहत अविवाहित महिला, विधवा या स्वस्थ मन से तलाकशुदा महिला भी बच्चे को गोद ले सकती है। इसी तरह, 1961 का दहेज निषेध अधिनियम कहता है कि कोई भी व्यक्ति जो दहेज देता है, लेता है या दहेज लेने के लिए उकसाता है, उसे छह महीने तक की कैद या 5000 रुपये तक का जुर्माना या दोनों से दंडित किया जा सकता है। भारत का संविधान लिंगों की समानता की गारंटी देता है और वास्तव में महिलाओं को विशेष उपकार देता है। इन्हें संविधान के तीन अनुच्छेदों में पाया जा सकता है। अनुच्छेद 14 कहता है कि सरकार किसी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता या कानून के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगी। अनुच्छेद 15 घोषित करता है कि सरकार किसी भी नागरिक के साथ लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं करेगी। अनुच्छेद 15 (3) राज्य को महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव करने में सक्षम बनाने के लिए एक विशेष प्रावधान करता है। अनुच्छेद 42 राज्य को काम की न्यायसंगत और मानवीय स्थिति और मातृत्व राहत सुनिश्चित

करने के लिए प्रावधान करने का निर्देश देता है। इन सबसे ऊपर, संविधान अनुच्छेद 15 (ए), (ई) के माध्यम से महिलाओं की गरिमा के लिए अपमानजनक प्रथाओं को त्यागने के लिए प्रत्येक नागरिक पर एक मौलिक कर्तव्य मानता है।

भारत में महिलाओं का सशक्तिकरण– सशक्तिकरण की अवधारणा शक्ति से बहती है। यह निहित है जहां यह मौजूद नहीं है या अपर्याप्त रूप से मौजूद है। महिलाओं के सशक्तिकरण का अर्थ होगा महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वतंत्र, आत्मनिर्भर बनाना, किसी भी कठिन परिस्थिति का सामना करने के लिए सकारात्मक सम्मान देना और उन्हें विकास गतिविधियों में भाग लेने में सक्षम होना चाहिए। महिलाओं को निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने में सक्षम होना चाहिए। भारत में, मानव संसाधन विकास मंत्रालय और राष्ट्रीय महिला आयोग ने महिलाओं के अधिकारों और कानूनी अधिकारों की रक्षा के लिए काम किया है। भारत के संविधान में 73वें और 74वें संशोधन (1993) ने महिलाओं को सीटों के आरक्षण (33 प्रतिशत) के लिए कुछ विशेष शक्तियां प्रदान की हैं, जबकि मार्च 2002 की रिपोर्ट एचआरडी से पता चलता है कि विश्व में महिलाओं के उच्चतम प्रतिशत वाले विधानमंडल हैं, स्वीडन 42.7 प्रतिशत, डेनमार्क 38प्रतिशत, फाइंडलैंड 36 प्रतिशत और आइसलैंड 34.9 प्रतिशत। भारत में 'न्यू पंचायती राज' में कम से कम ग्रामीण स्तर पर महिलाओं को सशक्त बनाने के प्रयास किया गया है।

भारत सरकार ने महिलाओं के समान अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए प्रतिबद्ध विभिन्न अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों और मानवाधिकार उपकरणों की पुष्टि की है। ये मैक्सिको प्लान ऑफ एक्शन (1975), नैरोबी फॉरवर्ड लुकिंग स्ट्रैटेजीज (1985), बीजिंग डिक्लेरेशन के साथ-साथ प्लेटफॉर्म फॉर एक्शन (1995) और ऐसे अन्य उपकरण हैं। 2001 का वर्ष महिला सशक्तिकरण के वर्ष के रूप में मनाया गया। वर्ष के दौरान, एक ऐतिहासिक दस्तावेज, 'महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए राष्ट्रीय नीति' को अपनाया गया है। महिलाओं के लाभ देने के लिए, सरकार ने विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों को अपनाया है, अर्थात महिलाओं के लिए राष्ट्रीय ऋष्ण कोष (1993), खाद्य और पोषण बोर्ड, सूचना और जन शिक्षा आदि।

पिछले कुछ वर्षों में सबसे सकारात्मक विकास पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी रही है। ग्राम परिषद स्तर पर कई निर्वाचित महिला प्रतिनिधि हैं। वर्तमान में पूरे भारत में कुल 20,56,882 ग्राम पंचायत सदस्य हैं, इनमें से 8,38,244 (40.48 प्रतिशत) महिला सदस्य हैं, जबकि कुल अंचलिक पंचायत सदस्य 1,09,324 हैं, इसमें से महिला सदस्य 47,455, (40.41प्रतिशत) और कुल जिला पोरिसोड सदस्य 11,708 हैं, इनमें से 4,923 (42.05प्रतिशत) महिला सदस्य हैं। केंद्र और राज्य स्तर पर भी महिलाएं उत्तरोत्तर बदलाव ला रही हैं। आज हमने महिला मुख्यमंत्रियों, महिला अध्यक्षों, विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं, अच्छी तरह से स्थापित व्यवसायियों आदि को देखा है। इनमें से सबसे उल्लेखनीय श्रीमती प्रतिभा देवी सिंह पाटिल, शीला दीक्षित, मायावती, सोनिया गांधी, बिंदा करात, नजमा हेपतुल्ला, इंदिरा नुये हैं। भाजपा नेता सुषमा स्वराज, ममता बेनर्जी, 'नर्मदा बचााव' नेता मेधापाटेकर, इंडियन आयरन वुमन, पूर्व प्रधानमंत्री इदिरा गांधी आदि। महिलाएं बाल पालन, शिक्षा, स्वास्थ्य के मानव विकास के मुद्दों में भी शामिल हैं। महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण को इन दिनों देश के लिए प्रगति की अनिवार्यता के रूप में माना जा रहा है। इसलिए, महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण का मुद्दा राजनीतिक विचारकों, सामाजिक विचारकों और सुधारकों के लिए सर्वोपरि है।

महिला सशक्तिकरण के कारण – आज हमने भारत की महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए केंद्र सरकार के साथ-साथ राज्य सरकार के विभिन्न अधिनियमों और योजनाओं पर ध्यान दिया है। लेकिन भारत में महिलाओं को समाज के हर स्तर पर भेदभाव और हाशिए पर रखा जाता है चाहे वह सामाजिक भागीदारी हो, राजनीतिक भागीदारी हो, आर्थिक भागीदारी हो, शिक्षा तक पहुंच हो और प्रजनन स्वास्थ्य सेवा भी हो। पूरे भारत में महिलाएं आर्थिक रूप से बहुत गरीब पाई जाती हैं। कुछ महिलाएं सेवाओं और अन्य गतिविधियों में लगी हुई हैं। इसलिए, उन्हें पुरुषों के साथ अपने पैरों पर खड़े होने के लिए आर्थिक शक्ति की आवश्यकता है। दूसरी ओर, यह जनगणना रही है, भारत में पुरुषों में साक्षरता दर 76 प्रतिशत पाई जाती है जबकि महिलाओं में यह केवल 54 प्रतिशत है। इस प्रकार, महिलाओं के बीच शिक्षा को बढ़ाना उन्हें सशक्त बनाने में बहुत महत्वपूर्ण है। यह भी देखा गया है कि कुछ महिलाएं काम करने के लिए बहुत कमजोर हैं। वे खाना कम खाती हैं लेकिन काम ज्यादा करते हैं। इसलिए स्वास्थ्य की दृष्टि से जो महिलाएं कमजोर है उन्हें मजबूत बनाना है। एक अन्य समस्या यह है कि कार्यस्थल पर महिलाओं का उत्पीड़न, बलात्कार, लड़की के अपहरण, दहेज प्रताड़ना आदि के कई मामले सामने आए हैं। इन कारणों से, उन्हें अपनी रक्षा के लिए और अपनी पवित्रता और गरिमा को सुरक्षित रखने के लिए सभी प्रकार के सशक्तिकरण की आवश्यकता होती है। संक्षेप में, महिला सशक्तिकरण तब तक संभव नहीं हो सकता जब तक कि महिलाएं स्वयं को सशक्त बनाने में मदद न करें। नारीकृत गरीबी को कम करने, महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा देने और महिलाओं के खिलाफ हिंसा की रोकथाम और उन्मूलन को तैयार करने की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. ब्राइट, प्रीतम सिंह (संपादन), प्रतियोगिता पुनश्चर्या, अगस्त, 2010, नई दिल्ली।
2. हसनैन, नदीम, इंडियन सोसाइटी एंड कल्चर, जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2004, नई दिल्ली।
3. कर, पी. के, इंडियन सोसाइटी, कल्याणी पब्लिशर्स, 2000, कटक।
4. किदवई, ए.आर., (मकज)उच्च शिक्षा, मुद्दे और चुनौतियां, चिरायु पुस्तकें, 2010, नई दिल्ली),
5. राव शंकर, सी.एन., इंडियन सोसाइटी, एस.चंद एंड कंपनी लिमिटेड, 2005, नई दिल्ली।

नयी कविता का भाषिक सौन्दर्य

डॉ. संदीप यादव
सहायक प्रोफेसर(तदर्थ), हिंदी विभाग
गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय) हरिद्वार, उत्तराखंड।

डॉ. वीणा गाँधी
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
श्री अरबिन्द महाविद्यालय (सांध्य)दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

नयी कविता का सृजन सरोकार मानवीय चिन्तन से जुड़ा हुआ है। नयी कविता के कवियों ने जीवन की वस्तु स्थिति से टकराते हुए अनुभूति का भाषिक वितान रचा है। इनकी काव्य भाषा का फलक शब्द से चित्र तक के संयोजन का रूपांतरण है। ये कवि कृत्रिमता के बन्धन के राही नहीं हैं अपितु नैसर्गिक जीवंत छवि गढ़ने को प्रयासरत हैं। आधुनिकता के बढ़ते प्रभाव को उन्होंने खुली आँखों से देखा, परखा और भाषा का नया सौन्दर्यशास्त्र गढ़ा। कविता की वस्तु और रूप दोनों ही धारणाओं को समकालीन समाज के परिप्रेक्ष्य में पहचानकर जीवन-मूल्य को उपस्थित किया है। समाज के मूल्यों को जन तक पहुँचाने में नयी कविता की भाषा महत्वपूर्ण कड़ी की भूमिका निभाती है। इन कवियों ने समाज के मूल्य को साफगोई से ग्रहण करते हुए भाषिक सौन्दर्य का फलक चित्रात्मक शैली में रचा है। मुक्तिबोध के शब्दों में, 'जिस समाज में हम रहते हैं उसके द्वारा प्रदत्त अथवा उत्सर्जित भाव परम्परा तथा मूल्यों से विछिन्न होकर सृजन प्रक्रिया के अंगभूत मूल्यों का अस्तित्व ही नहीं है। सौन्दर्य प्रतीति की डुग्गी पीटने वाले लोग सामाजिक दृष्टि को भले ही ऊपर से थोपी हुई समझें वह वस्तुत: यदि दृष्टि है तो कभी भी थोपी हुई नहीं रहती वरन हमारे अंदर का एक निज-चेतस आलोक बनकर सामने आती है।'[1] कविता का सौन्दर्य वस्तु की प्रतीति कराने का समर्थ माध्यम है। वस्तुत: इन कवियों की दृष्टि साफ और व्यापक है। नयी कविता के कवियों ने सत्य के अनुभव का यथार्थ बिम्ब खींचा है। ये अपनी अनुभूति को बिना हिचकिचाहट के कह देने की कला में पारंगत हैं। अनुभूति का भाषिक सौन्दर्य कवियों की गहरी मानवीय दृष्टि का परिणाम है।

मैं नया कवि हूँ
इसी से जानता हूँ
सत्य की चोट कितनी गहरी होती है
चश्मे में तले की दृष्टि बाहरी होती है
इसी से सच्ची चोटें बाँटता हूँ
झूठी मुसकाने नहीं बेचता हूँ।[2]

नयी कविता का स्वर जीवन की वस्तुनिष्ठता से है। समाज की विद्रूपताओं का भाषिक सौन्दर्य जन के बहुत करीब का है। जीवन की प्रत्याशा और अप्रत्याशा को नयी कविता के कवियों ने पूर्ण तन्मयता से उठाया है। मुक्तिबोध नयी कविता के सन्दर्भ में कहते हैं कि, 'लेखक या तो इन मूर्त संवेदनात्मक प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करता है अथवा हृदय में संचित इन संवेदनात्मक प्रतिक्रियाओं से उत्तेजित स्वप्नों को अथवा इन संवेदनात्मक प्रतिक्रियाओं द्वारा प्रेरित अन्य भावों एवं विचारों को काव्य में व्यक्त करता है।'[3] नयी कविता का कवि फैंटेसी और मिथक का प्रयोग जीवन की समस्याओं को उजागर करने के लिए करता है। कविता में बिम्ब का सौन्दर्य प्रभाव उत्पन्न करता है। 'नयी कविता के बिम्बों को समझने के लिए उन्हें एक संदर्भ के साथ जोड़कर देखने की आवश्यकता है, यदि उन्हें संदर्भ से अलग कर दिया जाये, तो बिम्ब की प्रभावात्मकता भी नष्ट हो जाती है।'[4] नयी कविता के भाषिक सौन्दर्य को समझने के लिए कविता के संदर्भ पर ध्यान देना आवश्यक है। अन्यथा कविता की वस्तुस्थिति से पाठक भूला हुआ महसूस करने लगता है।

नयी कविता में चाँदनी सदृश जीवन को चित्रित करने की अपेक्षा जीवन की समस्याओं की तरफ ध्यान केन्द्रित किया गया है। भाषा का सौन्दर्य बिम्बों की नवीनता में है। रूढ़ हो गयी भाषा से काव्य की व्यंजना शक्ति क्षीण हो जाती है। इस शैली को नयी कविता के कवियों ने नकार दिया है।

चाँदनी चंदन सदृश हम क्यों लिखें
मुख हमें कमलों सरीखें क्यों दिखें
हम लिखेंगे
चाँदनी उस रूपये सी है कि जिसमें
चमक है पर खनक गायब है।[5]

नयी कविता का कोई शास्त्रीय विधान नहीं है। उसमें सहज वस्तु चित्र एवं भावों का तीव्र वेग है। यहाँ पर कोई खोखला आवरण नहीं है बल्कि जीवन के प्रतीकीकरण का एक सौन्दर्य चित्र उपस्थित हुआ है। ये कवि एक सफल चित्रकार भी हैं। शब्द चित्रों का इतना मनोहर रूप कम ही देखने को मिलता है। शमशेर बहादुर सिंह की 'पीली शाम' कविता में एक शब्द चित्र उपस्थित हुआ है, जहाँ पाठक अपने को भूलकर उस फलक पर पहुँच जाता है जहाँ पर वह कवि की अनुभूति की प्रगाढ़ता को अनुभव करता है। शब्द चयन को लेकर नये

कवि जागरूक है। शब्दों का संदर्भानुसार प्रयोग इनकी प्रमुख विशेषता है। शब्द सामंजस्य बैठाने के लिए कवियों ने तत्सम्, तद्भव, अंग्रेजी एवं देशज शब्दों का प्रयोग कर काव्य के सौन्दर्य को प्रगाढ़ता प्रदान की है।

मनुष्य की जीवन दशा-षडयंत्र, अकेलापन आदि प्रभावों का चित्रण नयी कविता में प्रमुखता से हुआ है। समाज एक नई दिशा की तरफ अग्रसर हो रहा है। इन परिवर्तनों को नयी कविता के कवियों ने महसूस किया और नये प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया है। ये प्रतीक बने-बनाये प्रतीक नहीं हैं बल्कि स्वयं गढ़े प्रतीक हैं जो कविता के सौन्दर्य को गति देते हैं। नयी कविता में कथ्य की व्यापकता समाहित है। इनकी शैली बातचीत की शैली है। व्यापक मानवीय भाव को बातचीत की मुद्रा में कह देना कविता की भाषा के एक नए सौन्दर्य की तरफ इशारा करता है। यह एक तरह से अपने भावों को बिना अवरुद्ध किये, उसी रूप में कह देना है जिस रूप में व्यक्ति के मानसिक पटल पर, जिस रूप में यह स्वर उभरा है। ये कवि किसी एक बिन्दु पर खड़े नहीं रहे बल्कि जीवन के विविध रूपों को अपनी रचना का आधार बनाया है। डॉ. रामदरश मिश्र के शब्दों में, 'कविता की सबसे बड़ी विशेषता है- कथ्य की व्यापकता। यह कोई वाद नहीं है। यह व्यापक जीवन दृष्टि है। कथ्य कहाँ नहीं है? प्रयोगवाद एवं प्रगतिवाद ने कथ्य को बाँट लिया था किन्तु नयी कविता ने मानव को उसके समग्र परिवेश में सही रूप में अंकित करना चाहा है। नयी कविता की दृष्टि मानवतावादी है।'[6] कथ्य की व्यापकता एवं मानवतावादी संवेदना को सहज एवं मुहावरे युक्त भाषा में कह देना नयी कविता को लीक से अलग करता है। काव्य भाषा में मुहावरा सौन्दर्य प्रतीति का सशक्त माध्यम होता है। इन कवियों ने हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में प्रचलित मुहावरों को अपनी कविता में प्रयुक्त किया है। शमशेर बहादुर सिंह ने तो हिन्दी एवं उर्दू के मुहावरों को एक ही माना है। 'हर भाषा की जान होता है मुहावरा और मुहावरे हिन्दी-उर्दू दोनों के बिलकुल एक हैं। मुहावरे ही क्यों, दोनों का काफी शब्द-समूह और व्याकरण भी एक है। इसलिए बोलचाल में दोनों प्राय: एक हैं।'[7]

नयी कविता का एक सशक्त पक्ष व्यंग्य है, जो पाठक के मन पर एक विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करता है। यह व्यंग्य कोई साधारण व्यंग्य नहीं है। सामाजिक चिन्तन को समर्थ भाषिक रूप में व्यक्त कर देना कला का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में, 'व्यंग्य के माध्यम से कविता इतनी प्रभावपूर्ण बन सकती है, यह सर्वेश्वर के कृतित्व से ही जाना जा सकता है। जहाँ तक विषय का सम्बन्ध है, यह रचना नयी कविता के अंतर्राष्ट्रीय स्वर की द्योतक है।'[8] रघुवीर सहाय का कविता संग्रह 'लोग भूल गये हैं' का मूल स्वर व्यंग्य और विडम्बना ही है। नयी कविता में भोगे हुए क्षणों को एक नये शिल्प सौन्दर्य से सजाकर पाठक के सामने प्रस्तुत किया गया हैं। वैसे सुन्दर, असुन्दर तो व्यक्ति की दृष्टि से निर्मित होता है। परन्तु नये कवियों ने दोनों को जीवन की सार्थकता के परिप्रेक्ष्य में नाटकीय एवं सपाटबयानी से चित्रित किया है। 'नयी कविता का सौन्दर्य सुन्दर के साथ असुंदर, शिव के साथ अशिव हितकर के साथ अहितकर को भी स्वीकार करता है, क्योंकि उसकी दृष्टि में दोनों सत्य यथार्थ और जीवन से सम्पृक्त है।'[9] नयी कविता ने क्षणवाद को महत्त्व दिया है। भविष्य के प्रति दृष्टिकोण रखते हुए क्षणवादी जीवन दृष्टि को स्वीकार किया है। क्षणवादी जीवन दृष्टि और भाषिक रूप विधान का चयन सौन्दर्य से संपृक्त होकर कविता में आता है और अनुभूति का मनोरम चित्र उपस्थित करता है।

नयी कविता में भाषा की दुरूहता के बजाय भाषा की सरलता से काव्य के सौन्दर्य के सिद्धान्त गढ़े गए हैं, जहाँ हर रूप में एक नयेपन का भाव है तो काव्य का सौन्दर्य कैसे एक रूप हो सकता है? भाषा का सौन्दर्य जन-जीवन के निकट है। शब्दों के चयन-संयोजन पर विशेष ध्यान दिया गया है।

नयी कविता के भाषिक सौन्दर्य की उपलब्धि शब्द चयन को उस परिवेश से जोड़ देना है जिस परिवेश की भावानुभूति को व्यक्त किया जा रहा है। 'नया कवि उपेक्षित शब्द का आदर करता है और किसी भी भाषा का चालू शब्द उसकी रूचि का समर्थक बन जाता है। इसी से नयी कविता का शब्द विधान डेमोक्रेटिक है।'[10] नयी कविता का संस्कार सिर्फ अभिजात्यवादी भाषा का संस्कार नहीं है। वह तो जीवन मर्म को व्यक्त करने के लिए देशज एवं नये शब्द भी गढ़ लेता है या शब्द को आधुनिकता के रंग में सजाकर नया अर्थ भी प्रदान करता है। नयी कविता में लय की बात करें तो इसमें भी शास्त्रीय विधान को नहीं बल्कि अनुभूति के अनुसार भाव अभिव्यक्ति का ध्यान रखा गया है। आधुनिक मुक्त छन्द की कविता में जहां छन्द विधान नहीं के बराबर है वहाँ लय के रूप को कवियों ने स्वीकार किया है। नयी कविता का भाषिक सौन्दर्य जीवन की गहराइयों को प्रकट करने में सक्षम है। इन कवियों ने जीवन के उतार-चढ़ाव और बुनियादी सरोकारों को व्यक्त करने के लिए लय का प्रयोग किया है। जो जीवन की लय है वही कविता में संपृक्त होकर भाषिक सौन्दर्य को प्रस्तुत करती है। कविता के भाषिक सौन्दर्य के लिए लय तो जरूरी है ही इसका प्रभाव शब्द सौन्दर्य तक ही सीमित नहीं है बल्कि अर्थ की लय को भी नयी कविता के सन्दर्भ में उठाया गया है। डॉ जगदीश गुप्त के शब्दों में, 'कविता के लिए मैं लय को अनिवार्य मानता हूँ। लय से ही संगीतात्मकता उत्पन्न होती है और छन्द की भी सृष्टि होती है। किन्तु लय शब्द की ही नहीं अर्थ की भी हो सकती है। आज जब कविता इस अर्थ की लय को पकड़कर चलती है तो छन्द का स्थूल रूप पीछे छूट जाता है।'[11] अर्थ की लय में शब्द से अर्थ तक की संरचना का एक क्रमिक विन्यास रहता है। जब शब्द और जीवन मूल्य अलग रहते हैं तो कवि इन दोनों को कविता के भाषिक

पटल पर एकाकार करता है। इस तरह से कविता को एक नई दीप्ति और भाषा का नया सौन्दर्य मिलता है।

नयी कविता के संदर्भ में साधारणीकरण की समस्या पर भी बात करना प्रासंगिक है। अज्ञेय ने आधुनिक कविता में सम्प्रेषण की समस्या पर चर्चा की है। आधुनिक मुक्त छन्द की कविता में सम्प्रेषण लेखक और पाठक के मध्य मधुर सम्बन्धों की खोज है। जब तक रचना पाठक के मन में संदर्भयुक्त रूप से उतर नहीं जाती तब तक सम्प्रेषण की प्रक्रिया पूर्ण नहीं हो पाती है। नयी कविता का स्वर बौद्धिक चेतना का स्वर है। भाषा का रूप इसमें सरल तो है किन्तु कविता की वस्तु एवं रूप सौन्दर्य को आत्मसात् करने के लिए संदर्भ की जानकारी आवश्यक हो जाती है। इसलिए यह लेखन संवादात्मक रूप में बदल गया है। नन्द किशोर आचार्य इसे वाक् की लय कहते हैं। 'वाक् लय कविता के लिए अधिक उपयुक्त इसलिए भी है कि आम जीवन में भी हमारी मन:स्थिति के अनुकूल ही इसका स्वरूप निर्मित होता है। क्रोध की मन:स्थिति में जो गति हमारी भाषा में आती है, वह माँ के आशीर्वाद या बेटे की तुतलाती बातचीत से अलग होती है। अनुभूति के मौलिक स्वरूप को बनाये रखने के लिए उसी के अनुरूप लय भी उतना ही अनिवार्य है। अत: इसमें संगीत का बन्धन जहाँ बाधा उपस्थित कर सकता है वहाँ वाक् लय सदा सहायक होती है।' [12] वस्तुत: वाक् लय में गम्भीर बात को आसानी से कह देने की सुविधा रहती है। यह वाक् लय जीवन के बहुत करीब के भाव सौन्दर्य को व्यक्त कर देती है। नयी कविता का एक बड़ा स्वर वाक् लय या संवाद की मुद्रा में कविता में समाहित है। कविता के भाषिक सौन्दर्य में यह रूप सहजता की तरफ इशारा करता है। इस तरह से यह साधारण शब्द से जीवन की गंभीर मुद्रा को सरल रूप में प्रस्तुत करने की कला है।

नयी कविता में एक प्रमुख स्वर गीतों का भी है। काव्य के भाषिक सौन्दर्य में गीतों की महत्ता स्वयंसिद्ध है। अज्ञेय, भवानी प्रसाद मिश्र एवं केदारनाथ सिंह आदि कवियों ने गीतों के लोकसम्पृक्त भाव को व्यक्त किया है।

जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ,
मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूँ,
मैं किसिम किसिम के गीत बेचता हूँ। [13]

नयी कविता में गीत विधा आगे चलकर नवगीत में परिणत हो जाती है। गीतों के भाषिक सौन्दर्य में चयन एवं शब्द चित्र की प्रतिक्रिया गहरी चेतनायुक्त सामाजिक परिदृश्य का रूपांतरण है। व्यक्तिनिष्ठता के साथ-साथ सामाजिक जीवन मूल्य का वैश्विक परिदृश्य यहाँ दिखाई देता है। वस्तुत: नयी कविता के भाषिक सौन्दर्य में बिम्ब, प्रतीक एवं शब्द से लेकर अर्थ की सत्ता का प्रबल स्वर है। जीवन के विविध अनुभवों को सहजता से प्रस्तुत करना नयी कविता के भाषिक सौन्दर्य की प्रमुख विशेषता है। यहाँ कोई बनी-बनाई परम्परा नहीं दिखाई देती है बल्कि इन कवियों ने अपना रास्ता खुद तय किया है और मनुष्य के बिखरे हुए मूल्य, जीवन की विडम्बना एवं मोहभंग के भाव का सहज चित्रण कर भाषा का नया सौन्दर्यशास्त्र गढ़ा है।

सन्दर्भ सूची :

1. जैन, नेमिचन्द – मुक्तिबोध रचनावली-5, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 186
2. सं. अज्ञेय : तीसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ-362
3. जैन, नेमिचन्द : मुक्तिबोध रचनावली-5, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ,143
4. सहगल, शशि : नयी कविता में मूल्य बोध, अभिनव प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, पृष्ठ 58
5. कुमार, अजीत :अकेले कंठ की पुकार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-37
6. डॉ. अमरनाथ : हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 191
7. चतुर्वेदी, रामस्वरूप : हिन्दी साहित्य एवं संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ 207
8. चतुर्वेदी, रामस्वरूप : हिन्दी नवलेखन, ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला हिन्दी ग्रन्थांक-129, पृष्ठ 51
9. सहगल, शशि : नयी कविता में मूल्य बोध, अभिनव प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 177
10. मिश्र, डॉ. सत्यदेव : भाषा और समीक्षा के बिन्दु, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 157
11. गुप्त, जगदीश : नई कविता स्वरूप एवं समस्याएँ, पृष्ठ 148
12. आचार्य , नन्दकिशोर : अज्ञेय की काल्प तितिर्षा, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर
13. सं. आचार्य, नन्दकिशोर : एक मन मैली कमीज, वाग्देवी प्रकाशन, संस्करण 1998, पृष्ठ 13

ISSN 2278 - 0327

जनपद बागेश्वर में मनरेगा का क्रियान्वयन : एक अध्ययन

डॉ. रवि जोशी
संविदा शिक्षक, राजनीति शास्त्र विभाग
स्व० डॉ० आर० एस० टोलिया
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय मुनस्यारी
(जनपद–पिथौरागढ़), उत्तराखण्ड, पिन– 262554

भारतवर्ष में ग्रामीण परिवारों को अकुशल रोजगार प्रदान करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी अधिनियम 2005 लोकसभा में 23 अगस्त 2005 को ध्वनिमत से पारित किया गया। प्रारम्भ में इसे देश के चुनिन्दा 200 जिलों में लागू किया गया। तत्पश्चात 1 अप्रैल 2007 से 130 अतिरिक्त जिलों में भी नरेगा को लागू किया गया। नरेगा के प्रति बढ़ते जनसमर्थन के चलते 1 अप्रैल 2008 से देश के अन्य जिलों में भी इसे लागू करने के साथ ही यह भारतवर्ष के संपूर्ण ग्रामीण क्षेत्रों में लागू हो गया। 2 अक्टूबर 2009 को बापू की 140 वीं जयंती के अवसर पर प्रधानमंत्री डॉ० मनमोहन सिंह ने नरेगा का नाम बदलकर महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी अधिनियम किये जाने की घोषणा की। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी अधिनियम 2005 के तहत सभी ग्रामीण वयस्कों को 15 दिनों के अंदर अकुशल रोजगार पाने का अधिकार है जो न्यूनतम मजदूरी पर काम करना चाहते हैं।

वर्ष 2005 में नरेगा लागू करने के कुछ प्रमुख उद्देश्य एवं अपेक्षाएं निम्न प्रकार थे–

1. ग्रामीण परिवारों को प्रतिवर्ष 100 दिनों का अकुशल रोजगार उपलब्ध कराना।
2. टिकाऊ परिसंपत्तियों का निर्माण कर ग्रामीण व्यक्तियों को आजीविका का सुदृढ़ आधार प्रदान करना।
3. मजदूरों की क्षमता अभिवृद्धि हेतु विशेष प्रयास करना।
4. ग्रामीण मजदूरों द्वारा मांग किये जाने पर पन्द्रह दिनों के भीतर अकुशल रोजगार उपलब्ध कराना।
5. ग्रामीण मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी का संदाय सुनिश्चित करना।
6. त्वरित मजदूरी भुगतान को सुनिश्चित करना।
7. ग्रामीण गरीबों को उनके निवास के नजदीक (5 किमी0 की परिधि के भीतर रोजगार उपलब्ध कराना। उससे अधिक दूरी होने पर 10 प्रतिशत अतिरिक्त मजदूरी देय) अकुशल रोजगार उपलब्ध कराना।
8. महिलाओं एवं पुरुषों हेतु समान मजदूरी की व्यवस्था सुनिश्चित करना।
9. कार्यस्थल पर न्यूनतम बुनियादी सुविधाओं की व्यवस्था करना ताकि कार्य करने की अनुकूल परिस्थितियां बनें और ग्रामीण मजदूर पूरी क्षमता से कार्य कर सकें।
10. ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य आबंटन में महिलाओं एवं समाज के पिछड़े वर्गों तथा सर्वाधिक आवश्यकता वाले वर्गों को प्राथमिकता देना।

भारतवर्ष में नरेगा लागू करने तथा उसके वित्त पोषण के संदर्भ में यह प्रावधान किया गया कि केन्द्र सरकार अकुशल शारीरिक मजदूरी का पूर्ण भुगतान करेगी एवं सामग्री की लागत का तीन चौथाई खर्च वहन करेगी, जिसमें कुशल एवं अर्द्धकुशल मजदूरी खर्च भी सम्मिलित है। इसी तरह राज्य सरकारें सामग्री अंश की लागत का एक चौथाई खर्च वहन करेगी। इसके अतिरिक्त राज्य सरकारों को बेरोजगारी भत्ते के पूर्ण संदाय के लिये उत्तरदायी बनाया गया है क्योंकि अंततोगत्वा मनरेगा को राज्य में भली प्रकार से कार्यान्वित करने की पूर्ण जिम्मेदारी राज्य सरकारों की ही है। इसीलिये मनरेगा के अंतर्गत मांग किये जाने के पन्द्रह दिनों के भीतर रोजगार उपलब्ध न करा पाने की दशा में बेरोजगारी भत्ते का भुगतान किये जाने के प्रावधान किये गये हैं। इस तरह राज्य सरकार को मनरेगा का कार्यान्वयन सही तरीके से न किये जाने की दशा में बेरोजगारी भत्ते का भुगतान करना होगा जो उस पर अतिरिक्त आर्थिक बोझ सिद्ध होगा।

उत्तराखण्ड में विषम भौगोलिक परिस्थितियों वाले एवं पिछड़े जनपदों में से एक बागेश्वर जनपद में वर्ष 2008.09 में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी योजना से जनपद के तीन विकासखण्डों कपकोट, बागेश्वर एवं गरूड़ को आच्छादित करने का निर्णय लिया गया। 35 न्याय पंचायतों में विभाजित इस जनपद में कुल ग्राम पंचायतों की संख्या 407 है। जनपद की 2.5 लाख से अधिक आबादी के लिये, जिसमें अधिकांश ग्रामीण आबादी है, यह योजना आशा की एक बड़ी किरण है।

तालिका: 1

मनरेगा के अंतर्गत बनाये गये कुल जॉब कार्डों की संख्या

वित्तीय वर्ष	विकास खण्ड कपकोट	विकास खण्ड बागेश्वर	विकास खण्ड गरुड	जनपद बागेश्वर
2013-14	16991	16667	11711	45369
2014-15	16884	18257	12014	47155
2015-16	17248	19322	12076	48646
2016-17	16010	18476	11475	45961
2017-18	15885	18385	11380	45650
2018-19	15458	18580	11739	45777
2019-20	15763	17228	12112	45103
2020-21	16403	18350	12954	47707
2021-22	16638	18457	13328	48423

तालिका: 2

मनरेगा के अंतर्गत सक्रिय जॉब कार्ड

वित्तीय वर्ष	विकास खण्ड कपकोट	विकास खण्ड बागेश्वर	विकास खण्ड गरुड	जनपद बागेश्वर	कुल जॉब कार्डों से प्रतिशत
2013-14	9794	9350	8568	27712	61.08
2014-15	9616	9996	7442	27054	57.37
2015-16	10446	12510	8201	31157	64.04
2016-17	11181	13460	8755	33396	72.66
2017-18	11224	13629	8714	33567	73.53
2018-19	11672	13703	8852	34227	74.76
2019-20	11585	12459	8994	33038	73.25
2020-21	12568	13547	9887	36002	75.46
2021-22	12729	13329	9927	35985	74.31

स्रोत : इम्प्लायमेंट जनरेशन प्रोग्रेस रिपोर्ट, 2013.2014 से 2021.22 तक, www.nrega.nic.in

जनपद बागेश्वर में मनरेगा के अंतर्गत बनाये गये जॉब कार्डों की कुल संख्या एवं सक्रिय जॉब कार्डों की संख्या का तालिका 1 एवं तालिका 2 के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि जनपद बागेश्वर में मनरेगा के अंतर्गत बने कुल जॉब कार्डों में से लगभग 70 फीसदी जॉब कार्ड ही सक्रिय अवस्था में हैं। सक्रिय जॉब कार्ड ऐसे जॉब कार्डों को कहा जाता है जिन्होंने विगत तीन वित्तीय वर्षो में एक दिन भी मनरेगा के अंतर्गत कार्य किया हो। यद्यपि सक्रिय जॉब कार्ड धारकों की संख्या वर्ष 2013.14 के 61.08 प्रतिशत की अपेक्षा वर्ष 2021.22 तक बढ़कर 74.31 प्रतिशत हो चुकी है, तथापि लगभग एक चौथाई जॉब कार्ड धारक आज भी मनरेगा के अंतर्गत जॉब कार्ड बनने के बावजूद लाभान्वित नहीं हो पा रहे हैं।

तालिका: 3

मनरेगा के अंतर्गत कुल पंजीकृत श्रमिक

वित्तीय वर्ष	विकास खण्ड कपकोट			विकास खण्ड बागेश्वर			विकास खण्ड गरुड़			जनपद बागेश्वर		
	महिला	पुरुष	योग	महिला	पुरुष	योग	महिला	पुरुष	योग	महिला	पुरुष	योग
2013-14	17391	17289	34680	17702	20554	38256	14771	10417	25188	49864	48260	98124
2014-15	16744	16764	33508	17702	20554	38256	14771	10417	25188	49217	47735	96952
2015-16	16744	16764	33508	17702	20554	38256	14771	10417	25188	49217	47735	96952
2016-17	16744	16764	33508	17702	20554	38256	14771	10417	25188	49217	47735	96952
2017-18	16744	16764	33508	17702	20554	38256	14771	10417	25188	49217	47735	96952
2018-19	16744	16764	33508	17702	20554	38256	14771	10417	25188	49217	47735	96952
2019-20	16744	16764	33508	15856	18797	34653	14771	10417	25188	47371	45978	93349
2020-21	16744	16764	33508	15856	18797	34653	14771	10417	25188	47371	45978	93349
2021-22	17034	17087	34121	16055	18931	34986	15026	10638	25664	48115	46656	94771

स्रोत : इम्प्लायमेंट जनरेशन प्रोग्रेस रिपोर्ट, 2013.2014 से 2021.22 तक, www.nrega.nic.in

ISSN 2278 - 0327

तालिकाः 4
मनरेगा के अंतर्गत पंजीकृत सक्रिय श्रमिक

वित्तीय वर्ष	विकास खण्ड कपकोट			विकास खण्ड बागेश्वर			विकास खण्ड गरुड़			जनपद बागेश्वर			
	महिला	पुरुष	योग	महिला	पुरुष	योग	महिला	पुरुष	योग	महिला	पुरुष	योग	कुल पंजीकृत श्रमिकों से प्रतिशत
2013-14	9948	10470	20418	9324	11107	20431	9033	5406	14439	28305	26983	55288	56.34
2014-15	9932	10461	20393	9324	11107	20431	9033	5406	14439	28289	26974	55263	57
2015-16	9932	10461	20393	9324	11107	20431	9033	5406	14439	28289	26974	55263	57
2016-17	9932	10461	20393	9324	11107	20431	9033	5406	14439	28289	26974	55263	57
2017-18	9932	10461	20393	9324	11107	20431	9033	5406	14439	28289	26974	55263	57
2018-19	9932	10461	20393	9324	11107	20431	9033	5406	14439	28289	26974	55263	57
2019-20	9932	10461	20393	9055	10845	19900	9033	5406	14439	28020	26712	54732	58.63
2020-21	9932	10461	20393	9055	10845	19900	9033	5406	14439	28020	26712	54732	58.63
2021-22	9703	10368	20071	8803	10549	19352	9023	5482	14505	27529	26399	53928	56.90

स्रोत : इम्प्लायमेंट जनरेशन प्रोग्रेस रिपोर्ट, 2013.2014 से 2021.22 तक, www.nrega.nic.in

जनपद बागेश्वर में मनरेगा के अंतर्गत पंजीकृत श्रमिकों की कुल संख्या एवं सक्रिय श्रमिकों की संख्या का तालिका 3 एवं तालिका 4 के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि जनपद में मनरेगा के अंतर्गत पंजीकृत कुल श्रमिकों में से केवल 56.90 फीसदी श्रमिक ही सक्रिय तौर पर मनरेगा के अंतर्गत कार्य कर रहे हैं। 43 फीसदी से भी अधिक श्रमिक आज भी मनरेगा के अंतर्गत कार्य नहीं कर रहे हैं। यह प्रवृत्ति मनरेगा के कार्यान्वयन पर गंभीर प्रश्न चिन्ह लगा रही है।

तालिकाः 5
मनरेगा के अंतर्गत रोजगार की मांग

वित्तीय वर्ष	विकास खण्ड कपकोट		विकास खण्ड बागेश्वर		विकास खण्ड गरुड		जनपद बागेश्वर		
	परिवार	व्यक्ति	परिवार	व्यक्ति	परिवार	व्यक्ति	परिवार	व्यक्ति	कुल पंजीकृत जॉब कार्ड धारकों से प्रतिशत
2013-14	5651	6646	6459	7697	5305	5966	17415	20309	38.38
2014-15	5058	5926	6281	7351	4689	5580	16028	18857	33.99
2015-16	8041	10052	11131	14623	6017	7643	25189	32318	51.78
2016-17	8845	12125	11245	15764	6357	8432	26447	36321	57.54
2017-18	7621	10703	9269	12905	5797	7616	22687	31224	49.69
2018-19	7595	10968	7727	10778	5367	7026	20691	28772	45.19
2019-20	7052	10117	7573	10354	5791	7725	20416	28196	45.26
2020-21	9852	15278	10358	15369	7775	11648	27985	42295	58.66
2021-22	8659	13317	8141	11830	6720	9693	23520	34842	48.57

स्रोतः इम्प्लायमेंट जनरेशन प्रोग्रेस रिपोर्ट, 2013.2014 से 2020.21 तक, www.nrega.nic.in

तालिका: 6

मनरेगा के अंतर्गत प्रदान किया गया रोजगार

वित्तीय वर्ष	विकास खण्ड कपकोट		विकास खण्ड बागेश्वर		विकास खण्ड गरुड		जनपद बागेश्वर		
	परिवार	व्यक्ति	परिवार	व्यक्ति	परिवार	व्यक्ति	परिवार	व्यक्ति	कुल पंजीकृत जॉब कार्ड धारकों से प्रतिशत
2013-14	5647	6640	6441	7670	5235	5882	17323	20192	38.18
2014-15	4825	5613	5987	6961	4252	5019	15064	17593	31.94
2015-16	7657	9415	10223	12949	5679	7086	23559	29450	48.42
2016-17	8329	11117	10269	13827	5853	7691	24451	32635	53.19
2017-18	6837	9332	8367	11283	5375	6939	20579	27554	45.07
2018-19	6767	9408	6854	9224	4836	6201	18457	24883	40.31
2019-20	6207	8645	6912	9224	5370	7032	18489	24901	40.99
2020-21	9231	13907	9844	14198	7219	10467	26294	38572	55.11
2021-22	7810	11548	7659	10882	6315	8868	21784	31298	44.98

स्रोत : इम्प्लायमेंट जनरेशन प्रोग्रेस रिपोर्ट, 2013.2014 से 2020.21 तक, www.nrega.nic.in

जनपद बागेश्वर में मनरेगा के अंतर्गत पंजीकृत परिवारों द्वारा रोजगार की मांग एवं उन्हें प्रदान किये गये रोजगार का तालिका 5 एवं तालिका 6 के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि जनपद में मनरेगा के अंतर्गत पंजीकृत कुल जॉब कार्ड धारकों में से विगत नौ वर्षों में औसतन केवल 47.67 फीसदी जॉब कार्ड धारकों द्वारा रोजगार की मांग की जा रही है तथा औसतन 44.24 फीसदी जॉब कार्ड धारकों को मनरेगा के अंतर्गत रोजगार प्रदान किया जा रहा है। जनपद बागेश्वर में मनरेगा कार्यान्वयन का यह ट्रेंड दिखाता है कि यहाँ के आधे से अधिक मनरेगा जॉब कार्ड धारक अभी भी मनरेगा के लाभों से पूरी तरह से वंचित हैं।

मनरेगा के अन्तर्गत ग्रामीणजनों को व्यापक संख्या में रोजगार न मिल पाने का कारण सामान्य तौर पर यह माना जाता है कि उनके द्वारा रोजगार की मांग ही नहीं की जाती है क्योंकि मनरेगा एक मांग आधारित कार्यक्रम है और इसके अंतर्गत रोजगार मांग किये जाने पर ही मिलेगा, बिना मांगे नहीं। जबकि वास्तविकता यह है कि मनरेगा का जमीनी प्रचार-प्रसार जनपद में इसे लागू होने के डेढ़ दशक बाद भी नहीं हो पाया है। आज भी मनरेगा को ग्रामीण व्यक्तियों के कानूनी अधिकार के रूप में प्रतिवर्ष 100 दिन के रोजगार को प्राप्त करने के लिये प्रेरित नहीं किया जा सका है। यही कारण है कि जनपद में मनरेगा में ग्रामीणजनों की प्रतिभागिता भी नहीं बढ़ पायी है।

जनपद बागेश्वर में मनरेगा के अन्तर्गत महिलाओं को प्राप्त औसत रोजगार का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि जनपद में महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा कम दिनों का औसत रोजगार प्राप्त हुआ है। इसका एक कारण यह भी है कि उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में ग्रामीण कृषि, पशुपालन एवं घरेलू कार्यों का प्रमुख दायित्व सामान्य रूप से महिलाओं के ही जिम्मे है जिस वजह से भी वे मजदूरी रोजगार सम्बन्धी कार्यों में कम प्रतिभाग कर पाती हैं। दूसरी तरफ मनरेगा का जमीनी स्तर पर व्यापक प्रचार-प्रसार न हो पाने के कारण भी उन्हें मनरेगा में समुचित रोजगार नहीं मिल पा रहा है।

तालिका: 7

मनरेगा के अंतर्गत सृजित मानव दिवस

वित्तीय वर्ष	विकास खण्ड कपकोट	विकास खण्ड बागेश्वर	विकास खण्ड गरुड़	जनपद बागेश्वर	वर्ष भर में प्रदान किया गया औसत रोजगार (प्रति परिवार – मानव दिवस)
2013-14	236956	361138	206736	804830	46.46
2014-15	140560	224849	140358	505767	33.57
2015-16	283756	492244	221148	997148	42.32
2016-17	331299	540598	239486	1111383	45.45
2017-18	268577	382681	217678	868936	42.22
2018-19	301410	315902	193072	810384	43.90
2019-20	266584	327726	212645	806955	43.64
2020-21	417943	475837	327061	1220841	46.43
2020-21	329038	336979	278288	944305	43.35

स्रोत : इम्प्लायमेंट जनरेशन प्रोग्रेस रिपोर्ट, 2013.2014 से 2020.21 तक,www.nrega.nic.in

जनपद बागेश्वर में मनरेगा के अंतर्गत पंजीकृत परिवारों द्वारा रोजगार की मांग एवं उन्हें प्रदान किये गये रोजगार तथा मनरेगा के अंतर्गत सृजित मानव दिवसों का तालिका 7 के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि जनपद में मनरेगा के अंतर्गत पंजीकृत कुल जॉब कार्ड धारकों को विगत नौ वर्षों में औसतन प्रतिवर्ष 43.03 दिवसों का ही रोजगार प्रदान किया जा सका है। जनपद बागेश्वर में मनरेगा कार्यान्वयन की यह प्रवृत्ति प्रदर्शित करती है कि यहाँ मनरेगा का कार्यान्वयन बेहद सुस्त गति से किया जा रहा है, परिणामस्वरूप यहाँ के जॉब कार्ड धारकों को भी मनरेगा का समुचित लाभ भी नहीं मिल पा रहा है।

तालिका: 8

मनरेगा के अंतर्गत प्रदान किया गया 100 दिनों का रोजगार

वित्तीय वर्ष	विकास खण्ड कपकोट	विकास खण्ड बागेश्वर	विकास खण्ड गरुड	जनपद बागेश्वर	कुल रोजगार प्राप्तकर्ताओं में से प्रतिशत
2013-14	271	1043	326	1640	8.12
2014-15	42	221	99	362	2.05
2015-16	276	656	276	1208	4.10
2016-17	460	1332	371	2163	6.62
2017-18	221	253	57	531	1.92
2018-19	478	306	120	904	3.64
2019-20	516	428	173	1117	4.48
2020-21	681	714	541	1936	5.01
2021-22	467	510	518	1495	4.77

स्रोत : इम्प्लायमेंट जनरेशन प्रोग्रेस रिपोर्ट, 2013.2014 से 2020.21 तक, www.nrega.nic.in

जनपद बागेश्वर में मनरेगा के अंतर्गत पंजीकृत परिवारों को प्रदान किये गये 100 दिनों के रोजगार का तालिका 8 के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि जनपद में विगत आठ वर्षों में मनरेगा के अंतर्गत कुल रोजगार प्राप्तकर्ताओं में से औसतन प्रतिवर्ष 4.49 प्रतिशत रोजगार प्राप्तकर्ताओं को ही पूरे 100 दिवसों का रोजगार प्रदान किया जा सका है। मनरेगा कार्यान्वयन का प्रमुख ध्येय इसके अंतर्गत पंजीकृत जॉब कार्ड धारकों को प्रतिवर्ष 100 दिवसों का रोजगार प्रदान करना है, किन्तु जनपद बागेश्वर में मनरेगा के कार्यान्वयन का व्यावहारिक अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि यहाँ औसतन मात्र 4.5 फीसदी जॉब कार्ड धारकों को ही मनरेगा का पूर्णरूपेण लाभ मिल पा रहा है, स्पष्ट है कि जनपद में मनरेगा का कार्यान्वयन बेहद शिथिल गति से ही किया जा रहा है।

तालिका: 9

मनरेगा के अंतर्गत लैण्ड रिफ़ॉर्म / इंदिरा आवास योजना के लाभार्थियों को प्रदान किया गया रोजगार

वित्तीय वर्ष	विकास खण्ड कपकोट	विकास खण्ड बागेश्वर	विकास खण्ड गरुड	जनपद बागेश्वर
2013-14	04	16	01	21
2014-15	01	14	01	16
2015-16	02	25	02	29
2016-17	03	20	0	23
2017-18	02	17	01	20
2018-19	0	14	0	14
2019-20	0	0	0	0
2020-21	0	0	0	0
2021-22	0	0	0	0

स्रोत : इम्प्लायमेंट जनरेशन प्रोग्रेस रिपोर्ट, 2013.2014 से 2020.21 तक, www.nrega.nic.in

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि जनपद बागेश्वर में ग्रामीणजनों को 100 दिनों के रोजगार के कानूनी अधिकार का कारगर लाभ नहीं मिल पा रहा है क्योंकि जनपद बागेश्वर में मनरेगा लागू होने के तीन वर्ष बाद भी सभी जॉबकार्डधारकों को पूरे 100 दिनों का रोजगार उपलब्ध कराना सरकार, प्रशासन तथा पंचायत की प्राथमिकताओं में शामिल नहीं है जिस कारण 100 दिनों का रोजगार बहुत ही कम व्यक्तियों को प्राप्त हो रहा है। मनरेगा के अन्तर्गत कार्य चाहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिवर्ष 100 दिनों का रोजगार उपलब्ध कराना मनरेगा का प्रमुख उद्देश्य है किन्तु जनपद बागेश्वर में मनरेगा के कार्यान्वयन के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि जनपद में मनरेगा अब तक इस उद्देश्य में पूरी तरह से सफल नहीं हो पायी है।

जनपद बागेश्वर में ग्रामीणजनों को प्रतिवर्ष पूरे 100 दिनों का रोजगार उपलब्ध कराने में भी उदासीनता से कार्य किया गया है जिस कारण आज भी जनपद बागेश्वर में मनरेगा का पूरा लाभ यहां के अधिकांश ग्रामीणजनों तक नहीं पहुंच पा रहा है। यही कारण है कि आज भी जनपद बागेश्वर के 95 फीसदी से अधिक ग्रामीणजनों को मनरेगा के अंतर्गत पूरे 100 दिनों का रोजगार नहीं मिल पा रहा है। इसलिये मनरेगा में कार्य करने के इच्छुक प्रत्येक ग्रामीणजन को पूरे 100 दिनों का रोजगार उपलब्ध कराने के लिये मनरेगा प्रशासन तथा पंचायतों को और अधिक दुरूस्त किया जाना तथा जवाबदेही सुनिश्चित किया जाना अति आवश्यक है।

जनपद बागेश्वर में ग्रामीणजनों को मनरेगा के अंतर्गत प्राप्त 100 दिनों के रोजगार का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकारें जनदबाव में विभिन्न कल्याणकारी कार्यक्रम लागू तो कर देती हैं लेकिन उनके व्यावहारिक कार्यान्वयन में रुचि नहीं लेती तथा योजनाओं की सफलता अथवा असफलता को आधे-अधूरे प्रशासनिक

तंत्र तथा अपर्याप्त इंतजामों के भरोसे ही छोड़ दिया जाता है। वरना क्या कारण है कि जनपद बागेश्वर में वर्ष 2013-14 में 45369 ग्रामीणजनों का नाम जॉब कार्डों में दर्ज होने के बावजूद इस वर्ष केवल 1640 ग्रामीणजनों को ही पूरे 100 दिनों का रोजगार मिल पाता है। इसी तरह वर्ष 2021-22 में 48423 ग्रामीणजनों का नाम रोजगार कार्ड में दर्ज होता है किंतु इस वर्ष भी केवल 1495 ग्रामीणजनों को ही 100 दिनों का रोजगार इस जनपद में प्राप्त हो पाता है।

एक ऐसे समय में जब रोजगार तथा ग्रामीण अवसंरचना विकास से सम्बंधित अधिकांश कार्यों का निजीकरण किया जा रहा है तथा रोजगार के अवसरों में लगातार कमी हो रही है, मनरेगा सरीखे कार्यक्रम ग्रामीण भारत के लिये एक उम्मीद की किरण की तरह हैं। यद्यपि मनरेगा के क्रियान्वयन की तमाम विसंगतियां अभी भी बनी हुई हैं, तथापि इसने ग्रामीण भारत में रोजगार सृजन की दिशा में व्यापक राहत प्रदान की है। इसीलिए कहा जाता है कि मनरेगा ग्रामीण भारत के नवनिर्माण की महत्वपूर्ण योजना है तथा यह भारतवर्ष के पर्यावरण को संरक्षित करने वाली एवं टिकाऊ तथा स्थाई परिसंपत्तियों के सृजन की संवाहक भी है।

जनपद बागेश्वर में मनरेगा कार्यान्वयन के विगत चौदह वर्षों के कार्यान्वयन के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि जनपद में मजदूरी रोजगार चाहने वालों के जीवन स्तर में बदलाव की प्रक्रिया बेहद धीमी ही बनी हुई है। अभी भी मनरेगा के अंतर्गत ग्रामीणों को उनके अधिकारों का पूर्ण ज्ञान नहीं है, जिस कारण वे मनरेगा जैसी मांग आधारित योजना का पूर्ण लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। मनरेगा के अंतर्गत अभी भी परम्परागत रूप से संचालित चाल-खाल निर्माण, रास्तों का निर्माण, भूमि सुधार, वनीकरण इत्यादि रूटीन कार्य ही अधिक हो रहे हैं, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों हेतु टिकाऊ एवं आय उत्पादक परिसंपत्तियों के सृजन की ओर अधिकांशतया ध्यान नहीं दिया जाता है।

इसके बावजूद भी निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि मनरेगा ग्रामीण जनों के लिये एक सुरक्षा जाल की तरह है तथा इसकी प्रासंगिकता पहले से भी और अधिक बढ़ गयी है। कोरोना काल ने यह दिखाया है कि संकट के कारण घरों की ओर वापसी का रूख करने वाले प्रवासी मजदूरों के लिये भी मनरेगा जैसी योजना बेहद महत्वपूर्ण है। मनरेगा का डेढ़ दशक का सफर इस अधिनियम की व्यापकता तथा प्रासंगिकता को सिद्ध करता है। अत: अब वक्त की मांग है कि मनरेगा के द्वितीय संस्करण की शुरुआत की जाय जिसमें शहरी गरीबों एवं उनकी जरूरतों की पूर्ति हेतु भी प्रावधान किये जायं ताकि मनरेगा की व्यापक सफलता को सुनिश्चित किया जा सके।

सुझाव:

जनपद बागेश्वर में मनरेगा को प्रभावी रूप से लागू करने के लिये सशक्त एवं जवाबदेह प्रशासनिक ढांचे का गठन बेहद आवश्यक है। पर्याप्त संख्या में तथा समुचित पारिश्रमिक पाने वाले प्रशिक्षित एवं जवाबदेह तकनीकी तथा प्रशासनिक कार्मिकों की नियुक्ति किये जाने की आवश्यकता है। जनपद की ग्रामीण जनता के व्यापक हित में दीर्घकालीन, जन उपयोगी एवं आय उत्पादक परिसंपत्तियों के सृजन हेतु मनरेगा में आम जनता की प्रतिभागिता बढ़ाने की फौरी आवश्यकता है। क्योंकि जनपद में मनरेगा लागू होने के चौदह वर्ष बाद भी गांव के विकास के साथ-साथ आय बढ़ाने वाली गतिविधियों तथा परिसंपत्तियों के सृजन की ओर किसी का ध्यान नहीं है जिससे अधिकांश गांवों में अनुपयोगी एवं अनुत्पादक कार्य ज्यादा हो रहे हैं जिनकी वजह से गांवों को कोई दीर्घकालीन लाभ नहीं मिल पा रहा है।

जनपद बागेश्वर में मनरेगा के अंतर्गत लगभग सभी कार्ययोजनाओं में मजदूरी का तयशुदा समय पर भुगतान न होना इसके कार्यान्वयन पर एक गम्भीर प्रश्न चिन्ह बना हुआ है। मनरेगा हेतु बजट की कमी तथा इसके अन्तर्गत दी जाने वाली मजदूरी दर के बेहद कम होने से भी ग्रामीण जनों में इसके प्रति आक्रोश है। इसलिये जनपद बागेश्वर में मनरेगा की सफलता को बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि इसके अन्तर्गत मजदूरी भुगतान तयशुदा समय के भीतर हर हाल में किया जाय तथा मनरेगा हेतु जनपद के लिए वार्षिक बजट आबंटन बढ़ाकर लगभग 50 करोड़ रूपया कर दिया जाय। मजदूरी दर को बढ़ाकर 500 रूपया प्रति कार्यदिवस किया जाय।

संदर्भ सूची:

1. उत्तराखण्ड राज्य ग्रामीण रोजगार गांरटी योजना 2006, संख्या: 67/यू0ओ0/xı/ 2006, देहरादून, 27 सितम्बर 2006।
2. नरेगा एलर्ट एण्ड एनालिसिस रिपोर्ट, मार्च 2009, मार्च 2010, मार्च 2011।
3. मधुकर पाण्डेय- टुवर्डस सोशियल डेवलपमेंट, कांसेप्ट, इश्यूज एण्ड प्रैक्टिस-स्वास्तिक पब्लिकेशन्स, दिल्ली- 2010
4. नरेगा इम्प्लीमेंटेशन स्टेटस रिपोर्ट मार्च 2009, मार्च 2010, मार्च 2011।
5. मासिक प्रगति रिपोर्ट, मनरेगा, मार्च 2009, मार्च 2010, मार्च 2011।
6. एल0एन0 दहिया- डायनामिक्स ऑफ इकोनोमिक लाइफ इन रूरल इण्डिया- ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1991
7. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी अधिनियम 2005 (2005 का अधिनियम संख्यांक 42)।
8. एच0के0 सिन्हा, चैलेन्जेज आफ रूरल डेवलपमेंट- डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1998।
9. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी अधिनियम 2005 (एन. आर. ई. जी.ए.) दिशा निर्देश 2006, ग्रामीण विकास मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली।

ISSN 2278 - 0327

‘आपका बंटी’ उपन्यास में विवाह-विच्छेद के कारण बाल-त्रासदी

बिन्दु छिम्पा
एम०ए० हिन्दी, नेट०जे०आर०एफ०

शोध सार -

‘आपका बंटी’ मन्नू भंडारी द्वारा विरचित मनोवैज्ञानिक व संवेदनशील उपन्यास है जिसमें विवाह-विच्छेद के परिणामस्वरूप होने वाली बाल-त्रासदी का चित्रांकन मनोविश्लेषणात्मक आधार पर किया गया है। उपन्यास का ताना-बाना बंटी के इर्द-गिर्द बुना गया है जो तलाकशुदा दम्पत्ति शकुन व अजय की इकलौती संतान है। शकुन व अजय विवाह के कुछ समय बाद ही अपने-अपने निजी स्वार्थ, स्वतंत्र विचारधारा व अहम् को लेकर आपस में समझौता नहीं कर पाते और बिना तलाक के ही अलग-अलग रहने लगते हैं तथा बंटी अपनी माँ शकुन के पास रहता है। बंटी से मिलने के लिए अजय कलकत्ता से दिल्ली वर्ष में तीन-चार बार आता है लेकिन उनके घर आने के बजाय किसी होटल में ही रूकता है। माता-पिता द्वारा विवाह-विच्छेद करने व नए संबंध स्थापित करने के उपरान्त बेगुनाह बंटी कुंठाओं व मनोग्रंथियों का शिकार होने लगता है व दोनों ही परिस्थितियों में समझौता नहीं कर पाता और त्रासदी को भोगता है।

मुख्य शब्द - मनोविश्लेषणात्मक, मनोग्रंथियाँ, अनुभूतियुक्त, असमंजस, हताशा, आक्रोश, वेदना, आक्रामक, वात्सल्य, अवांछनीय, एकाधिकार, अंतर्मन, निरपराध

त्रासदी अर्थ एवं परिभाषा

त्रासदी शब्द दो पदों के योग से निर्मित है - ‘त्रासद’ और ‘ई’। ‘त्रासद’ शब्द में ‘ई’ प्रत्यय लगने से त्रासदी बना है। किसी व्यक्ति के साथ घटने वाली अरूचिकर एवं दुखद घटना जो करूणा व त्रास के भावों को जाग्रत करती है, त्रासदी कहलाती है। अरस्तु के अनुसार ‘‘त्रासदी किसी गम्भीर, स्वत: पूर्ण तथा निश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति का नाम है जिसका माध्यम नाटक के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न भिन्न रूप से प्रयुक्त सभी प्रकार के आभरणों से अंलकृत भाषा होती है, जो समाख्यान रूप में न होकर कार्य व्यापार रूप में होती है और जिसमें करूणा तथा त्रास के उद्रेक द्वारा इन मनोविकारों का उचित विरेचन किया जाता है’’[1]

आपका बंटी भावप्रवण व अनुभूतियुक्त उपन्यास है जिसमें विवाह-विच्छेद और बाल-त्रासदी की कथा को उन्मीलित किया गया है। लेखिका को बाल-मनोविज्ञान की गहरी समझ-बूझ थी, उन्होंने बालक के मनोविज्ञान की प्रत्येक दशा व अनुभूति को निपुणता से प्रस्तुत किया है। इसमें संबंध विच्छेद के फलस्वरूप बालक की घायल होती संवेदना का मार्मिक, कारुणिक व यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास के आरम्भ में परिवार-बिखराव के बावजूद बंटी का व्यवहार सामान्य बालक की भांति है क्योंकि उसके पास अपनी मम्मी है, अपना बगीचा है, पापा उसके पास नहीं रहते पर पापा का बेहद प्यार है। उसे कहानियाँ सुनने व बागवानी का बहुत शौक है, वह पौधों को सुबह-सुबह उसी तरह धो देता है जिस तरह माँ उसका मुंह धोती है, ‘‘बस, हो गए साफ। चलो, अब हवा में झूलो।’’[2] हर एक पौधे के बारे में उसके पास पूरा हिसाब-किताब है, किसमें कितनी पत्तियाँ है और कौन-कौन सी पत्तियाँ व कलियाँ नई खिली है। बंटी के मन में उस समय एक सैलाब उमड़ पड़ता है जब टीटू से यह पता चलता है कि उसके मम्मी पापा का तलाक हो गया है, लेकिन उसे तो यह मालूम ही नहीं कि तलाक का मतलब क्या होता है, ‘‘तू नहीं जानता ? बुद्धू कहीं का। मम्मी-पापा की जो लड़ाई होती है न, उसे तलाक कहते है।’’[3] पति-पत्नी के बिगड़ते संबंधों से दाम्पत्य जीवन में कड़वाहट, पारिवारिक संबंधो में टूटन व इनके अस्वस्थ संबंधों के दरमियान पलते बच्चे की दयनीय व कारूणिक स्थिति हो जाती है। वकील चाचा जब भी उनसे मिलने आते है, पापा उनके साथ उसके लिए कुछ न कुछ जरूर भेजते हैं लेकिन इस बार जब से आए है, चुपचाप ही बैठे है वह चाचा और मम्मी की बातों में कोई अनुरूक्ति नहीं दिखाता था लेकिन जैसे-जैसे वह बड़ा हो रहा है, उन तमाम जिज्ञासाओं और सवालों की बलि चढ़ता जा रहा है जिनके जवाब जानने-समझने की इच्छा में वह आतुर रहता है और उनकी बाते सुन-सुनकर असमंजस में पड़कर धीरे-धीरे अति-संवेदनशील होता चला जाता है। ‘‘क्या बताएँ कुछ भी समझ में नहीं आता। लगता है, जब एक बार धुरी गड़बड़ा जाती है तो फिर जिन्दगी लड़खड़ा ही जाती है..... फिर कुछ नहीं होता..... कुछ भी नही...’’[4] बच्चे की पहली पाठशाला परिवार होती है जहाँ वह उचित-अनुचित के बारे में सीखता है। इन परिवारों के बिखरने से बच्चे का मानसिक विकास बाधित हो जाता है व उसमें अत्यधिक अहम, कुंठा व निराशा उत्पन्न हो जाती है। अजय को लेकर शकुन के मन में जो थोड़ी बहुत उम्मीद

थी वह भी खत्म हो जाती है क्योंकि अजय की जिन्दगी में शकुन की जगह मीरा ले लेती है। ''अगर अजय अपनी जिंदगी की नई शुरूआत कर सकता है तो तुम क्यों नहीं कर सकती? क्यों अपने को इतना बाँध-बाँधकर रखती हो? आख़िर प्रिंसिपल होने के नाते यहाँ के भद्र समाज में तुम्हारा उठना-बैठना होगा ही, इस दृष्टि से कभी ....''[5]

दस वर्ष के वैवाहिक जीवन की हताशा व विवशता के बाद उसका अंतर्मन पुनर्विवाह के बारे में सोचने पर मजबूर हो जाता है। बंटी अपने मम्मी-पापा की दोस्ती करवाने की सोच रहा था ताकि उनकी कुट्टी खत्म हो जाए और वो सब साथ-साथ रहने लगे लेकिन जब मम्मी अकेली ही पापा से मिलने कोर्ट चली जाती है तो उसका गुस्सा धीरे-धीरे आक्रोश में बदल जाता है। ''हैंऽ सुना देंगे! बड़ी आई है सुनाने वाली! कोई मत बताओ मुझे कि क्या बात है।''[6] बंटी की अतिरिक्त संवेदनशीलता धीरे-धीरे एक गहरी वेदना का रूप धारण करने लगती है। मम्मी पापा की अब कभी दोस्ती नहीं हो सकती क्योंकि उनका तलाक हो गया है जो उसकी मम्मी ने खुद बताया जैसे बड़े व्यक्तियों को बताते हैं। बंटी के पास जो पाँच-छः चेहरे हैं, वही उसकी दुनिया है, जिनके हाव-भाव से जाने-अनजाने वह प्रभावित होता है, अपनी मम्मी को रोता देखकर वह एकाएक समझदार बन जाता है। ''अरे, तुम इतने समझदार कइसे हो गए, बंटी भय्या! आजकल न जिद करते, न झगड़ा करते, न रोते। कहाँ से आ गई इतनी अक्किल तुम में?''[7] विषम परिस्थितियों के आगे विवश होकर कई बच्चे इस तरह समय से पहले समझदार बनने की कोशिश करते हैं जिससे उनका बचपन दब जाता है और वे मनोग्रंथियों का शिकार हो जाते हैं। डॉक्टर जोशी की ओर आकर्षित होने पर शकुन धीरे-धीरे अपने मातृत्व को कहीं न कहीं नजर अंदाज कर बंटी की उपेक्षा करने लगती है व उनके प्रति मम्मी का आकर्षण उसे पीड़ा देता है। बंटी को अनुभव होने लगता है कि उस की मम्मी पहले जैसी नहीं रही वह तो बिल्कुल ही बदल गई है। जिसको वह सहन नहीं कर पाता और उसका आक्रोश फुफकार उठता है। ''तुम्हें मेरी बिल्कुल परवाह नहीं रह गई है। मत करो मेरा कोई भी काम। बस, डॉक्टर साहब के पास बैठकर चाय पियो। तुम्हारा क्या है, सजा तो मुझे मिलेगी। मैं अब स्कूल ही नहीं जाऊँगा, कभी नहीं जाऊँगा, कभी भी ......''[8] मम्मी किसी के साथ ऐसे सटकर नहीं बैठती फिर डॉक्टर जोशी के पास ऐसे क्यों बैठती है, उसे बहुत अजीब लगने पर वह बहुत व्याकुल रहने लगता है। अपनी मम्मी से बेहद प्यार करने वाले बंटी में उनके प्रति प्रतिकार, ईर्ष्या व द्वेष का भाव आने लगता है क्योंकि उनका हर काम पहले तो उसके लिए होता था लेकिन अब डॉक्टर जोशी के लिए होता है। डॉक्टर जोशी अपने बच्चों के साथ जब उनके घर आते हैं तो वह उनके साथ घुलता-मिलता नहीं है और आक्रामक व विद्रोही व्यवहार करता है। ''देखो शकुन बंटी थोड़ा प्रॉब्लम बच्चा है, तो उसकी प्रॉब्लम को तो झेलना ही होगा।''[9] जिस अतिरिक्त वात्सल्य की अभिलाषा बंटी शकुन से करता है, वह उसे नहीं दे पाती है तो वह आक्रामक व विद्रोहात्मक व्यवहार करने लगता है। डॉक्टर जोशी बंटी का ऐसा व्यवहार देखकर उसे बहुत अधिक पजेशिव समझकर उसे सामान्य बालक नहीं मानते हैं। शकुन जब डॉक्टर जोशी से शादी करने का निर्णय लेती है तो बंटी को बिल्कुल अच्छा नहीं लगता है और वह उखड़ा-उखड़ा रहने लगता है, फुफी को भी बच्चे का इस तरह रहना बहुत बुरा लगता है। ''देना ही है तो एक वचन दे दो कि हमारे बंटी भय्या को जैसा आपने बिसरा दिया है आजकल, वैसा और मत करना। बाप के रहते यह बिना बाप का हो रहा, अब माँ के रहते यह बिना माँ का न हो जाए ......''[10] इससे फुफी का बंटी के प्रति अगाध ममत्व झलकता है। शकुन व डॉक्टर जोशी के पुनर्विवाहोपरांत बंटी को उस नए घर में उपेक्षित और तिरस्कृत महसूस होने लगता है, वह न तो डॉक्टर जोशी को अपना पापा मानता है और न ही उनके बच्चो को अपने भाई-बहिन की तरह स्वीकार कर पाता है। डॉक्टर जोशी के घर आकर बंटी को लगता है कि एक मम्मी ही तो उसकी अपनी थी परन्तु वह भी उसकी नहीं रही, पल-पल कुचलते हुए बंटी में हीन भावना उत्पन्न होने लगती है और धीरे-धीरे वो एक पुंज के रूप में परिवर्तित हो जाती है। ''नहीं चाहिए हमें ऐसी अलमारी! घर का सारा आलतू-फालतू सामान मेरे लिए! अपने लिए कैसा बढ़िया कमरा, कैसी बढ़िया अलमारी ......''[11] शकुन व अजय की अहम की टकराहट से आहत बंटी परिवार में एक फालतू व अवांछनीय बच्चा बनकर रह जाता है। अपने घर से दूर होने पर बंटी उखड़कर रहने लगता है अगर वह क्लास में होता है तो घर के बारे में सोचता रहता है, वह वहां होने पर भी जैसे वहां उपस्थित ही न हो। अम्मी व बंटी में मेज को लेकर घर में बहुत बड़ा हंगामा होने पर डॉक्टर जोशी उस अकेले को लम्बी ड्राईव पर घुमाने को कहते हैं लेकिन वो उसे लेकर नहीं जा पाते है और अपने आपको उपेक्षित और तिरस्कृत महसूस करने वाला बंटी उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए विविध प्रकार का आचरण करने लगता है। ''किसने कहा था कि उसे ले जाओ ड्राईव पर ..... वह क्या जानता नहीं कि यह घर उसका नहीं है, यहाँ का कोई आदमी उसका नहीं है।''[12] मम्मी के लिए समझदार बनने वाले बंटी को अब उसें दुख व पीड़ा देकर बहुत आनंद व सुख का अनुभव होने लगता है। बंटी के बाहर और भीतर सबकुछ थमने लगता है और वह सहमा हुआ तथा गुमसुम रहने लगता है। पापा के लेने आने पर वह सोचता है कि मम्मी उसे रो-रोकर रोक लेंगी और कहेगी कि मैं तेरे बिना नहीं रह सकती लेकिन अपनी सोच के बिल्कुल विपरीत व्यवहार पाकर तथा मम्मी पर एकाधिकार खत्म होता देख प्रतिकार स्वरूप हमेशा पापा के साथ चले जाने को विवश हो जाता है। ''मैं फिर कभी तुम्हारे पास आऊँगा भी नहीं। पापा के पास ही रहूँगा, हमेशा ......''[13] पारिवारिक विसंगति में पल रहे यातनाग्रस्त बंटी का अंतर्मन इस बात से परेशान है कि उसकी मम्मी

आखिर उसें रोक क्यों नहीं रही है और वह सोचता है कि ओर लोगों की तरह मम्मी भी संभवत: यही चाहती है कि मैं यहाँ से चला जाऊँ। बंटी को कलकता आकर पता चलता है कि उसकी मम्मी की तरह पापा ने भी मीरा नाम की महिला से दूसरी शादी कर ली है तथा उन्हें प्यार करने के लिए एक पुत्र चिनु भी है, ये सब बातें उससे अब तक छुपाकर रखी गयी थी। बंटी के मन में था कि पापा उसे रोड़ घुमाने लेकर जाएंगे लेकिन पापा तो सुबह उठते ही उसे घर पर छोड़कर ऑफिस चले जाते हैं। ''पापा क्या रोड़ इसी तरह छोड़कर चले जाया करेंगे? वह तो सोचता था, वह होगा, पापा होंगे और रोड़ घूमना होगा।''[14] जिस एकाधिकार के लिए वह मम्मी को छोड़कर पापा के पास आया है, वह उसे यहाँ भी नहीं मिलता। परिस्थितियों से लाचार होकर बंटी भीतर ही भीतर टूटता चला जाता है और वह स्कूल में दाखिले के लिए टेस्ट पास नहीं कर पाता क्योंकि बहुत अधिक तनाव से ग्रसित होने के कारण कुछ कर ही नहीं पाता है। ''और फिर बातों के टुकड़े-टुकड़े-एबनॉर्मल ..... महीना कैसे चलेगा ..... तुम्हारी जिद .... मेरा तो कुछ कहना ही गलत .... ''[15] बंटी को यहां भी एक असामान्य बच्चा मान लिया जाता है। माता पिता के संबंधों की टकराहट में बंटी रूपी पादप धराशायी हो जाता है और उसकी जिंदगी नासूर बन जाती है। हॉस्टल भेजने की बात सुनने पर पारिवारिक विसंगति में पल रहे यातनाग्रस्त बंटी का अन्तर्मन चाहता है कि वह कह दे कि उसे हॉस्टल नहीं बल्कि मम्मी के पास जाना है लेकिन घुटता हुआ और मायूसी की चादर में लिपटा हुआ उसका मन कुछ कह नहीं पाता है। ''आँसू-भरी आँखों के सामने डिब्बे की हर चीज, बैठे हुए अजनबी लोगों के चेहरे पहले धुँधले हुए, और धुँधले हुए और फिर एक-दूसरे में मिल गए। पापा का चेहरा भी उन्हीं में मिल गया और फिर धीरे-धीरे सारे चेहरे एक दूसरे में गड्डमड्ड हो गए।''[16] आज के आधुनिक जीवन की कृत्रिमता और खोखलेपन में अपना व्यैक्तिक जीवन जीने की आंकाक्षा में माता-पिता विवाह-विच्छेद करके बंटी जैसे बच्चे को अपने से तोड़कर आपका-आपका कहकर एक दूसरे की तरफ धकेलकर हॉस्टल भेज देते हैं और वह माँ-बाप के होते हुए भी अनाथ बच्चा बनकर अकेलेपन की त्रासदी को भोगता है।

निष्कर्ष

मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी' बाल-त्रासदी पर आधारित कालजयी उपन्यास है। शकुन व अजय के तलाक लेने व पुनर्विवाह के कारण बालक बंटी की मानसिकता, अनिश्चितता व उसकी त्रासदी को बड़े मर्मस्पर्शी ढंग से चित्रित किया गया है। इसमें तलाक का मुद्दा उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना उस अभिशाप से मानसिक कष्ट भोगते हुए बच्चे का जो निरपराध होते हुए भी सर्वाधिक यातना व त्रास से गुजरता है।

संदर्भ -

1. डॉ. नगेन्द्र, अरस्तू का काव्य-शास्त्र, हिन्दी अनुसंधान परिषद, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2014 वि0, पृष्ठ 87
2. मन्नू भंडारी, आपका बंटी, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2019 ई0, पृष्ठ 13
3. वही, पृष्ठ 17
4. वही, पृष्ठ 32
5. वही, पृष्ठ 44
6. वही, पृष्ठ 64
7. वही, पृष्ठ 76
8. वही, पृष्ठ 90
9. वही, पृष्ठ 114
10. वही, पृष्ठ 122
11. वही, पृष्ठ 145
12. वही, पृष्ठ 157
13. वही, पृष्ठ 171
14. वही, पृष्ठ 199
15. वही, पृष्ठ 204
16. वही, पृष्ठ 208

व्यक्तित्व विकास : योग मार्ग द्वारा मानव जीवन में श्रेष्ठतम गुणों की प्राप्ति

कोमल
वरिष्ठ शोधार्थी (एस.आर.एफ.)
योग शिक्षा विभाग
डॉक्टर हरी सिंह गौर विश्वविद्यालय सागर, मध्य प्रदेश

रुद्रेश कुमार सिंह
एम. ए. योगाचार्य, योग विज्ञान विभाग
उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार

संदर्भ– योग दुनियाभर में प्रचिलित एवं प्रख्यात है परंतु इसका एक घर है 'भारत' इसका जन्मस्थान और जन्मस्थान के विशेषज्ञ ही योग के वास्तविक सार के बारे में मार्गदर्शन कर सकते हैं। योग ज्ञान के विशाल महासागर की तरह है और हम 'योग मार्ग' का अनुपालन करते हुए एक आदर्श और संतुलित व्यक्तित्व विकसित करने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ योग के विशिष्ट आयामों पर कार्य कर सकते हैं। योग की दृष्टि से व्यक्ति के व्यक्तित्व में 'रोग मुक्त शरीर, लयबद्ध श्वास, तनाव मुक्त मन, पूर्वाग्रह मुक्त बुद्धि, नकारात्मकता से मुक्त स्मृति, अहंकार जो हम सभी को एक साथ जोड़ता है और स्वयं जो दु:ख से मुक्त है' इन सभी आयामों का समन्वय होना चाहिए। व्यक्तित्व के विकास के लिए हमें इन सभी विभिन्न पहलुओं पर मिलकर काम करना चाहिए। इसलिए मूल रूप से जब आप इसके दूसरे आयाम का पता लगाते हैं तो ये सभी लोग जिनके पास अपने क्षेत्र में उत्कृष्टता है, निश्चित रूप से अपने अस्तित्व के एक स्तर पर पूरी तरह से विकसित होते हैं, परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि अस्तित्व के अन्य स्तरों पर भी उनका पूर्ण संतुलन है। जैसा कि हम वैश्विक आंकड़ों पर गौर करते हैं, कुछ चिकित्सीय जटिलताओं या आत्महत्या, हत्या या अपराध और तनाव के कारण दवाओं पर बहुत अधिक निर्भरता के कारण दुनिया भर में हर साल कई लोगों की जान चली जाती है। तो क्या योग और इसका वैज्ञानिक हस्तक्षेप एक ऐसा तरीका है जो स्वस्थ, सुखी और समृद्ध समाज के विकास के साथ–साथ एक आदर्श व्यक्तित्व विकसित करने में सहायक हो सकता है जिसके परिणामस्वरूप शांति और सद्भाव को बढ़ावा मिलता है और समाज में उचित सामंजस्य स्थापित होता है जो वर्तमान परिस्थितियों में नितांत आवश्यक है।

संकेत शब्द – योग, अस्तित्व के विभिन्न स्तर, संतुलित व्यक्तित्व, वैज्ञानिक हस्तक्षेप, स्वयं के आयाम।

उद्देश्य – एक आदर्श व्यक्तित्व क्या है और इसे विकसित करने के लिए योग तरीका क्या है।

हमारी प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में योग का ज्ञान कहां से आता है।

एक विशेष क्षेत्र में प्रतिभा और जीवन के प्रति संतुलन के दृष्टिकोण के बीच अंतर को परिभाषित करने के लिए।

वर्तमान समाज में समस्याएं और चुनौतियां।

हठ योग और अष्टांग योग के ज्ञान को लागू करके व्यक्तित्व को योग मार्ग विकसित करना।

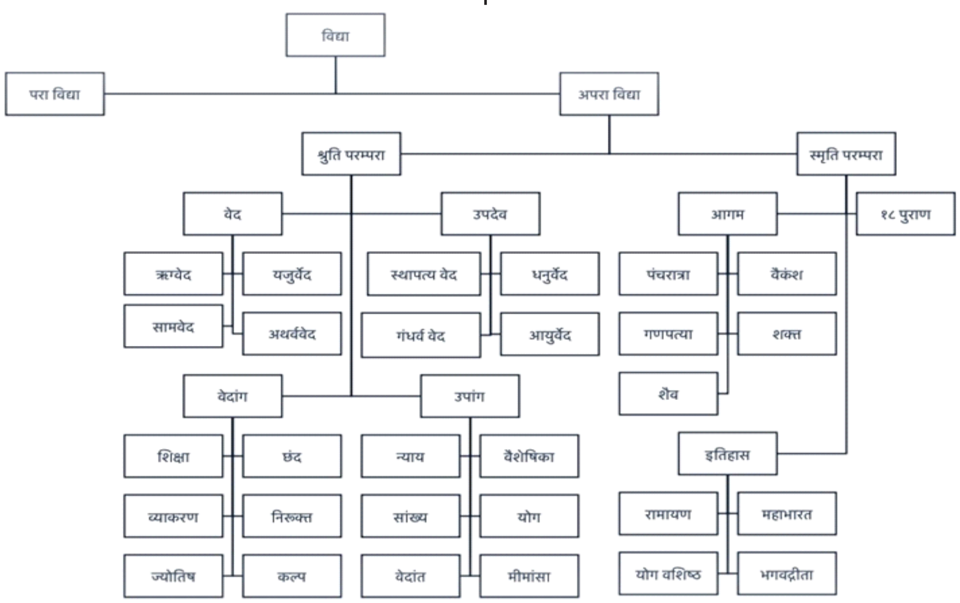

परिचय-

चित्र- हमारी वैदिक परंपरा में योग का ज्ञान हमें षडदर्शन में मिलता है।

तदा द्रष्टु: स्वरुपेस्वस्थानम् ।

संस्मरण जानकारी प्राप्त करने और उसे बनाए रखने की मानसिक प्रक्रिया है और मानसिक भंडार प्रणाली को सक्षम बनाती है। पतंजलि योग सूत्र अध्याय.1(3) यदि हम अपने शरीर, श्वास, मन, बुद्धि, स्मृति, अहंकार और स्वयं को एक सामंजस्य में रखना सीख सकें तो हम जीवन में सहजता से उत्कृष्टता प्राप्त कर सकते हैं और एक उत्कृष्ट व्यक्तित्व के साथ एक मजबूत इंसान के रूप में सक्रिय रूप से समाज में योगदान दे सकते हैं।

व्यक्तित्व एक महत्वपूर्ण विषय है। आधुनिक मनोविज्ञान में इसे समझने के लिए अनेक उपागमों को अपनाया गया है। हालांकि, योग की दृष्टि से व्यक्तित्व को एक अलग नजरिए से भी समझा जा सकता है। एक समग्र व्यक्तित्व में शारीरिक, भावनात्मक, बौद्धिक, सामाजिक और आध्यात्मिक आयाम सम्मिलित होते हैं। (नाजिया, 2017)।

एकाग्रता का अर्थ है संपूर्णता एकता, संतुलन। यह किसी विशेष वस्तु पर ध्यान केंद्रित करना है। ध्यान और स्मृति की एकाग्रता की प्रक्रियाएं सीखने में मुख्य कारक हैं। अध्ययनों से पता चला है कि योगाभ्यास दोनों अवधारणाओं को लाभ पहुंचाता है। (डॉ. राम 2015)। योग अभ्यासियों को एक अद्वितीय अनुभव प्रदान करने के लिए शारीरिक मुद्राओं, लयबद्ध श्वास और ध्यान अभ्यास की प्रक्रिया है जबकि शारीरिक व्यायाम का लाभ अच्छी तरह से स्थापित हैं, हाल के वर्षों में, श्वास और ध्यान अभ्यास के लाभ ने न्यूरोसाइंटिस्टों के बीच रुचि पैदा की है। (नेहा पी गोठे 2019)

अध्ययन से पता चलता है कि योग का अभ्यास करने के बाद ध्यान, एकाग्रता और याददाश्त में उल्लेखनीय सुधार हुआ। ये परिवर्तन योग प्रशिक्षण के कारण व्यक्तित्व विकास, उच्च एकाग्रता और विकर्षण विचारों (मन भटकने) में कमी के कारण हो सकते हैं। (शीला जोस 2018)

योग शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के सभी आयामों को एकीकृत करने के लिए श्वास, शरीर, मन और ध्वनि का एक साथ उपयोग करता है। जब योग सांस और गति को एकीकृत करता है और अन्य व्यायाम जैसे कि जप करना मन अधिक केंद्रित हो जाता है और भावनाएं अधिक संतुलित हो जाती हैं और न्यूरोमस्कुलर कार्यप्रणाली में सुधार होता है। योग विषय की अवधारणा की स्पष्टता के माध्यम से स्मृति विकास में मदद करता है। कई योग तकनीकों का अभ्यास स्मृति और एकाग्रता में सुधार के लिए मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र को उत्तेजित करता है। (डॉ शिखा 2017)

अध्ययन से पता चलता है कि एकीकृत योग प्रारूप के परिणामस्वरूप छात्रों में ध्यान और आत्मसम्मान में सुधार हो सकता है और इस तरह उनके मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि हो सकती है और उनकी शैक्षणिक उपलब्धि में सुधार करने में मदद मिल सकती है। (जसपाल कौर सेठी 2013)

स्वयं के आयामों को समझना-

कैसे योग के ज्ञान को विकसित और कार्यान्वित करके व्यक्तित्व का विकास किया जा सकता है, यहां हम इसके बारे में कुछ नए आयामों की खोज करेंगे। जब भी कोई आपसे आपका परिचय पूछेगा, हम आमतौर पर अपना परिचय देते हैं कि मैं एक इंजीनियर, वैज्ञानिक, डॉक्टर, प्रोफेसर, संगीतकार, कलाकार, अभिनेता, दार्शनिक, राजनीतिक नेता, लेखक, व्यवसायी, खिलाड़ी आदि हूं। तो इस परिचय में हम आमतौर पर जो भी जीवन में उपलब्धि अपने पुरुषार्थ से समाज में प्राप्त करते हैं उसका का उल्लेख करते हैं। यह तो अपने पुरुषार्थ या उपलब्धियों का परिचय समाज से है लेकिन स्वयं का स्वयं से परिचय योग के मार्ग पर ही हो सकता है। हमारी प्राचीन ज्ञान प्रणाली इस परिपेक्ष्य में विशिष्ट रूप से समृद्ध रही है एवं इसमें गुरुकुल परम्परा, संत समाज एवं ऋषि मणियों का विशेष योगदान रहा है।

ज्ञान परंपरा और प्राचीन भारत के आदर्श व्यक्तित्वों का संदर्भ

योग वशिष्ठ- महर्षि वशिष्ठ द्वारा मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम जी को दिया गया योग का ज्ञान lलगभग सात हज़ार वर्ष पूर्व सनातन परम्परा में रघुकुल वंश में जन्मे एक व्यक्ति ने ऐसा जीवन निर्वहन किया, समाज में सबके प्रति कैसा उत्तम आचरण हो ऐसा आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किया जिसके लिए आज भी दुनिया उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के नाम से जानती है। आदर्श व्यक्तित्त्व का श्रेष्ठतम उदाहरण भगवान श्रीराम जी का त्रेता युग में मिलता है जो महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण ग्रंथ एवं गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस में मिल जाएगा। भगवदगीता में भगवान कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया योग का ज्ञान। व्यक्ति के जीवन में जब भी संघर्ष हो तो कैसे एक मज़बूत व्यक्तित्त्व के साथ जीवन पथ पर आगे बढ़े ऐसा गूढ़ ज्ञान भगवान श्री कृष्ण ने अपने परम मित्र अर्जुन को दिया जो आज भी व्यावहारिक जीवन में अनुपालन हेतु उपयुक्त एवं सर्वकालिक सत्य है। पतंजलि योग सूत्र में पतंजलि में महर्षि पतंजलि द्वारा योग का ज्ञान जो वर्तमान समय में योग़मार्ग पर चलने वाले साधकों को आदर्श व्यक्तित्त्व निर्माण हेतु सर्वाधिक उपयुक्त साधन है, योग का ज्ञान जो भगवान शिव द्वारा मां पार्वती को साझा किया गया था, जिसे आगे नाथ परम्परा योगी द्वारा अनुपालन एवं आगे के पीढ़ियों में स्थानांतरित गया था। योग का ज्ञान महर्षि घेरंड ने राजा चंडकपाली को साझा किया। गौतम बुद्ध, महावीर जैन जैसे सभी महापुरुषों ने योग का ज्ञान का अनुपालन एवं प्रचार-प्रसार किया। स्वामी विवेकानंद ने राजयोग का अनुपालन किया। अपने इतिहास में योग के ज्ञान का अनुपालन महापुरुषों के आदर्श व्यक्तित्व के अनेकों

उदाहरण मिल जाएँगें।

आदि शंकराचार्य जी द्वारा दिया गया स्वयं का परिचय जिसमें समग्र जीवन का सार निहित है–

यौगिक परंपरा ज्ञान का एक अनुपम उदाहरण है कि हमारे प्राचीन संत कितने उत्कृष्ट ज्ञानी रहे हैं, जब आत्म गोविंदपादाचार्य जी ने आदि शंकराचार्य का परिचय पूछा तो उन्होंने निर्वाणषट्कम् गाया। यह आत्मबोध या स्वयं के परिचय सुंदर उदाहरण है। आदि शंकराचार्य जी ने साझा किया– न मैं शरीर, श्वास, मन बुद्धि, न पंचकोश, पंच प्राण, पंच वायु, सप्तधातु, न धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, न पुण्य, पाप, वेद, यज्ञ, अधोलोक पिता, माता, भाई, बहन, गुरु या शिष्य, मेरा कोई रूप नहीं है, मैं जन्म या मृत्यु नहीं हूं। मैं वह शुद्ध चैतन्य आनंद हूं। अर्थात स्वयं सब कुछ से रहित है और उस स्वयं को एक शिष्य ने अपने गुरु को खूबसूरती से समझाया था। यही थी हमारी प्राचीन ज्ञान प्रणाली की समृद्धि ।

आत्मा और मानव अस्तित्व के छह अन्य स्तरों और व्यक्तित्व विकास में इसकी प्रासंगिकता को समझना

शरीर– हमारे अस्तित्व का पहला स्तर जिसे हम आँखों से देख सकते हैं और महसूस कर सकते हैं।

सांस– हमारे अस्तित्व का दूसरा स्तर। हम सांस नहीं देख सकते हैं लेकिन हम इसे महसूस कर सकते हैं।

मन– हमारे अस्तित्व का तीसरा स्तर जिसमें या तो अतीत या भविष्य में जाने की प्रवृत्ति होती है।

बुद्धि– हमारे अस्तित्व का चौथा स्तर जो अक्सर किसी भी चीज को लेकर पूर्वाग्रह पैदा करता है या नई चीजें सीखने के लिए हमेशा तैयार रहता है। इसे पढ़कर भी आपकी बुद्धि शायद इस समय मौसम का निर्णय कर रही होगी कि मैं सही बोल रहा हूं या गलत।

स्मृति– हमारे अस्तित्व का पाँचवाँ स्तर। स्मृति या तो यह कई अतीत के छापों या नकारात्मकता से भरी जा सकती है या यह नई चीजें सीखने के लिए अति–कुशल हो सकती है।

अहंकार– हमारे अस्तित्व का छठा स्तर जो समाज में एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से अलग करता है।

स्वयं – हमारे अस्तित्व का सातवां स्तर।

अब आप ध्यान दें कि जब भी हमारा जीवन काम नहीं कर रहा हो तो आप अस्तित्व के किसी विशेष स्तर पर बाधित हो सकते हैं। हो सकता है कि आप शारीरिक रूप से स्वस्थ नहीं हैं या मानसिक रूप से शांत नहीं हैं या अतीत में कुछ अप्रिय होने के कारण उदास महसूस कर रहे हैं या भावनात्मक रूप से स्थिर नहीं हैं, फिर आदर्श स्वास्थ्य की परिभाषा क्या है। 'रोगमुक्त शरीर, लयबद्ध श्वास, तनाव मुक्त मन, पूर्वाग्रह मुक्त बुद्धि, नकारात्मकता से मुक्त चित्त, अहंकार जो हम सभी को एक सूत्र में बांधता है और आत्मा जो दु:ख से मुक्त रहे, यह आदर्श व्यक्तित्व का महत्त्वपूर्ण अंग है और इसे हम योग से प्राप्त कर सकते हैं। हमारा प्रयास हमारे अस्तित्व के इन सभी सात स्तरों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए होना चाहिए ।हम अपने जीवन के सभी आयामों में अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने की क्षमता रखते हैं, चाहे वह कार्यस्थल पर हो या परिवार का प्रबंधन हो या जीवन का कोई भी अन्य पहलू हो। उसके लिए हमें शारीरिक रूप से स्वस्थ, मानसिक रूप से शांत और भावनात्मक रूप से स्थिर होना चाहिए। हम अपने जीवन में जो कुछ भी करते हैं उसके लिए अपना सर्वश्रेष्ठ देने के साथ–साथ किसी व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति से हमारा तादात्म ना जुड़े, तब हमारा व्यक्तित्व पूर्ण रूप से खिला हुआ होता है और जीवन में सामंजस्य होता है। अत: योग का अनुपालन आपको पूर्ण बनाता है।

जीवन के विशिष्ट क्षेत्रों में शीर्ष पर पहुँचे व्यक्तियों का अस्तित्व के विभिन्न स्तरों पर पूरी तरह से खिले हुए व्यक्तित्व का उदाहरण– आपने ऐसे लोगों को देखा होगा या मिले होंगे जिन्होंने अपने क्षेत्र में लगातार काम करके अपने क्षेत्र में प्रतिभा हासिल बहुचर्चित हस्तियां बन जाते हैं और वे अपने ज्ञान और कौशल के साथ समाज में सक्रिय रूप से योगदान देते रहते हैं। इसलिए मूल रूप से जब आप इसके दूसरे आयाम का पता लगाते हैं तो ये सभी लोग जिनके पास अपने क्षेत्र में उत्कृष्टता है, निश्चित रूप से अपने अस्तित्व के एक स्तर पर पूरी तरह से खिले हुए हैं, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अस्तित्व के अन्य स्तरों पर भी उनका पूर्ण संतुलन है। उदाहरण के लिए, आपके सामने ऐसे उदाहरण आ सकते हैं जहां मशहूर हस्तियां, इतनी समृद्धि प्राप्त करने के बाद भी जीवन में भावनात्मक स्थिरता न होना। लोभ समाज में सभी घोटालों का सबसे बड़ा कारण है। आप अक्सर विभिन्न प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा किए गए घोटालों के बारे में जानते हैं, वित्तीय अपराध करने और पैसे लूटने के बाद वे देश से भाग जाते हैं। राजनेताओं या नौकरशाहों द्वारा किए गए घोटालों के कई उदाहरण हैं, जिसका अर्थ है कि उत्कृष्ट बुद्धि वाले व्यक्ति में उत्कृष्ट चरित्र भी हो ये सर्वकालिक सत्य नहीं है। तो सवाल यह है कि जीवन में इतना कुछ हासिल करने के बाद भी कोई संतोष नहीं होने के कारण वे कुछ गलत करते हैं और फिर भुगतते हैं। तो क्या योग एक संतुलित व्यक्तित्व विकसित करने का एक उचित साधन है ?

आइए एक–एक करके विभिन्न स्तरों पर पूर्ण विकसित व्यक्तित्व को समझते हैं

शरीर के स्तर पर– सभी खेल हस्तियां, एथलीट, जिमनास्ट, सशस्त्र बल के लोग, बॉडी बिल्डर वे अपने शरीर पर अधिक गुणवत्ता वाले समय और कड़ी मेहनत का निवेश करते हैं और इस प्रकार शरीर के स्तर पर पूरी तरह से खिल जाते हैं लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उन सभी के पास अस्तित्व के अन्य सभी स्तरों में भी सामंजस्य है जैसे कि भावनात्मक स्थिरता, मानसिक शांति, शानदार स्मृति आदि है।

श्वास या प्राण के स्तर पर- तो यदि आप आध्यात्मिक संगठनों से जुड़े लोगों को, योग के मार्ग का अनुसरण करते हुए लोगों को देखते हैं, और जो लोग प्राणायाम के अभ्यास में हैं वे भावनात्मक रूप से अधिक स्थिर रहते हैं।

मन के स्तर पर- अवस्था व्यक्ति के अंदर सृजनात्मक गुण शांत मन से विकसित होता है। यदि आप ध्यान दें कि सभी रचनात्मक क्षेत्र जैसे संगीत, कला और संस्कृति, शिल्प, डिजाइनिंग, गायन, लेखन, पेंटिंग आदि से संबंधित लोग मन के स्तर पर खिले हुए हैं।

बुद्धि के स्तर पर- विभिन्न संस्थाओं के अनुसंधान और विकास विभाग के व्यक्ति , विज्ञान और प्रौद्योगिकी इंजीनियरिंग, अंतरिक्ष विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान , न्यायपालिका आदि से संबंधित लोगों को देखें, ये सभी लोग बुद्धि के स्तर पर खिले हुए होते हैं ।

स्मृति के स्तर पर- क्या आप किसी गुरुकुल में गए हैं? यदि नहीं, तो आपको भारत के किसी भी पारंपरिक गुरुकुल में जाना चाहिए और उनकी सीखने की पद्धति को समझना चाहिए। गुरुकुल के विद्यार्थियों में स्मरण करने की अद्भुत क्षमता होती है। वे 25-30 हजार श्लोक याद करते हैं और जो चीज उन्हें विशिष्ट बनाती है वह है उनके अनुष्ठान जिनका वे पालन करते हैं। वे गायत्री जप अंत: त्राटक एवं संध्या का अभ्यास करते हैं, छंदों का पाठ और पठन पाठन में निरंतर पुनरावृत्ति करना उन्हें स्मृति के स्तर पर कुशल बनाती है।

अहंकार के स्तर पर- देशों के बीच सभी संघर्ष, भू-राजनीतिक मुद्दे, व्यापार से संबंधित मुद्दे, द्विपक्षीय मुद्दे, या धर्म, जाति और संस्कृति के बीच संघर्ष सिर्फ अहंकार के कारण होते हैं। क्या आप अपनों के खिलाफ भ्रष्टाचार और अपराध कर सकते हैं? नहीं, लेकिन अक्सर हमारे सामने ऐसे मामले आते हैं। इसलिए समुदाय का कोई भी व्यक्ति अगर अपराध करता है या हिंसा में शामिल होता है तो वह सिर्फ अपने अहंकार को संतुष्ट करने के लिए होता है और विवेक की कमी के कारण वे सही क्या है और क्या गलत में भेद नहीं कर पाते हैं। इसके विपरीत बस उन सभी आध्यात्मिक संगठनों को देखें जो धर्म, जाति, जाति, संस्कृति या देशों के आधार पर सीमा निर्धारित नहीं करते हैं। उनके लिए पूरा विश्व एक विश्व परिवार है।

आत्म के स्तर पर- एक बार जब आप मानव अस्तित्व के सभी छह अन्य स्तरों के बीच सामंजस्य और संतुलन रखना सीख जाते हैं तो आप उस सच्चे आत्म का अनुभव कर सकते हैं जो दुख से रहित रहता है। आत्मा जो एक निरंतर अपरिवर्तनीय इकाई के रूप में बनी रहती है और आंतरिक और बाहरी दुनिया में होने वाले सभी परिवर्तनों को देखती है। उदाहरण- भारत में गुरु शिष्य परंपरा से किसी प्रबुद्ध महापुरुष या आत्मज्ञानी गुरु के जीवन का अध्ययन करें।

हठ योग और अष्टांग योग के ज्ञान को व्यावहारिक रूप से लागू करके एक संतुलित व्यक्तित्व का विकास किया जा सकता है।

शरीर से सभी त्रिदोषों को दूर करने के लिए व्यावहारिक रूप से षट्कर्म के ज्ञान को अनुपालन करके और फिर शरीर में शक्ति और लचीलेपन के विकास के लिए सूक्ष्म आसन/ आसन का अभ्यास करना, प्राणायाम, बंध और मुद्रा का अभ्यास करना जो व्यक्ति को भावनात्मक रूप से अधिक स्थिर बनाता है एवं जीवन में दृष्टिकोण बड़ा करता है। इन सभी प्रकार के अभ्यास को किसी विद्वान विशेषज्ञ की देखरेख में पूरे सम्मान और कृतज्ञता के साथ लंबे समय तक निरंतर अभ्यास करना चाहिए। एक बार जब आप इस अभ्यास को कर लेते हैं तो आप अष्टांग योग के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए तैयार होते हैं। आसन, प्राणायाम के बाद यम और नियम का कार्यान्वयन सहजता से होगा और आप अपनी इंद्रियों को उसकी इच्छा की वस्तु अति प्रयोग से रोक पाएंगे। ऐसा करने के बाद शरीर सहजता से समाधि एवं ध्यान का अनुभव करने के लिए तैयार होता है। फलस्वरूप आप एक श्रेष्ठतम व्यक्तित्व के साथ समाज से सक्रिय रूप से योगदान दे पाएँगे।

निष्कर्ष-

इस कोविड-19 महामारी के दौरान जब दुनिया भर में बड़े पैमाने पर समुदाय सामूहिक रूप से शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्तर पर विभिन्न चुनौतियों का सामना कर किया इस महामारी ने पूरी दुनिया के करोड़ लोगों के जन जीवन को प्रभावित किया है, कई लोगों ने अपनी जान गंवाई और अपनी नौकरी खो दी, ऐसी कठिन परिस्थिति में कैसे योग का ज्ञान से सभी चुनौतियों पर विजय प्राप्ति तथा एक मजबूत व्यक्तित्व निर्माण में अधिक प्रभावी हो सकता है। इस विषय अधिक वैज्ञानिक अध्ययन किए जाने की आवश्यकता है।अत: हम यह कह सकते हैं कि जीवन के सभी क्षेत्रों में योग के ज्ञान का उपयुक्त प्रचार- प्रसार एवं अनुपालन आदर्श व्यक्तित्व के निर्माण में अत्यंत सहयोगी साधन होगा।

उल्लेख -

1. https://www.artofliving.org/ved-vignan-maha-vidya-peeth
2. Nazia Tabssum, Personality Development through Yoga; International Journal of Reflective Research in Social Science; Vol.1 Sep 2017 pp. 14-15.
3. Dr. Ram Kalap Tiwari, Benefits of Yoga practices on High School students memory and concentration in relation to examination stress; International Journal of Yoga and Allied Sciences; Volume 2(4) July-Dec 2015.
4. Neha P Gothe et al, Yoga Effects on Brain Health: A Systematic Review of Current Literature; Brain Plasticity; Vol. 5 2019 pp. 105-122.

5. Sheela Joice et al, Role of yoga in attention, concentration and memory of medical students; National Journal of Physiology, Pharmacy and Pharmacology; July- Aug 2018. Pp. 1526-1528.
6. Dr Shika Banerjee; Effect of Yoga on Concentration Recognition, Retention and Mental Balance of School Students; International Education and Research Journal; Vol. 3(2) 2017. pp 103-105.
7. Agniesjka Golec de Zavala et al; Yoga poses increase subjective energy and self esteem in comparison to power poses; Frontiers in Psychology; May 2017. Vol. 8.
8. Jaspal Kaur Sethi et al; Yoga improves attention and self-esteem in under privileged girl student; Journal of Education and Health Promotion; August 2013. Vol. 2.
9. Charney DS, Southwick SM. Resilience: the Science of Mastering Life's Greatest Challenges. Cambridge: Cambridge University Press; 2012.
10. McCarroll P, O'Connor TJ, Meakes E. Assessing plurality in spirituality definitions. In: Meier A, O'Connor TJ, Van Katwyk PL, editors. Spirituality and health: multidisciplinary explorations. Waterloo: Wilfrid Laurier University Press; 2005. p. 43–61.
11. Benson PL, Roehlkepartain EC, Rude SP. Spiritual development in childhood and adolescence: toward a field of inquiry. Appl Dev Sci. 2003;7:205–13.
12. 6. Piedmont RL. Does spirituality represent the sixth factor of personality? Spiritual transcendence and the five-factor model. J Pers. 1999;67:986–1013.
13. Koenig HG, McCullough ME, Larson DB. Handbook of religion and health. New York: Oxford University Press; 2001.
14. Kumar K, Phenomenon of Consciousness and its approach to Meditation, International Journal of Science and Consciousness, Vol: 1, Issue 1, July-Sep. 2015, pp7-12.
15. Kumar K, Vedic Mantras: an influential factor for Spiritual Health, International Journal of Science and Consciousness, Vol: 1, Issue 2 Oct- Dec 2015 pp 9-14.
16. Kumar K; Importance of Healthy Life Style in Healthy living; Juniper Online Journal of Public Health. 2017; 2(5): 555596. ISSN: 2573-2153 DOI: 10.19080/JOJPH.2017.02555596.
17. Kumar K; A study of the improvement of physical mental health through Yoga nidra; Dev Sanskriti Inter-disciplinary Research Journal, Vol. 4, Issue 4; (2006) 39-46.
18. Kumar K; Current issues in Science of Consciousness and Yoga; International Journal of Yoga and Allied Sciences, Vol. 3, No. 2, 2014. pp 93 - 97. ISSN:
19. Kumar K; Introduction to Patanjali Yoga; Nature & Wealth, Vol. X, no. 2; Apr- June 2011 pp 9-10.
20. Kumar K; Just Breath: Improve Your Respiration through Yogic Breathings ; Yoga Magazine (Body Mind Spirit); Published from York Street, London; Issue 53 June 2007 pp: 66-68.
21. Sripriya Krishnan; Personality development through yoga practices ; Indian Journal of traditional knowledge Vol. 5(4), October 2006, pp 445-449.
22. Prof. Raviraj A. Vatne; Role of yoga in personality development ; Scholarity Research Journal for Humanity Science and English Language; Feb-March 2017 Vol. 4/20 pp 4592-4595.
23. Kumar K; Prayaschitta Sadhna: A Psychospiritual Approach; International Journal of Yoga Allied Sciences; Vol. 9 Issue 1; Jan-June 2020. Pp 89-94.
24. Mensvoort M.V; Hands constellation in aggregable personalities; Multi perspective hand reading; March 2017.

ISSN 2278 - 0327

हाईस्कूल स्तर के विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर पारिवारिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन

चंदन कुमार सिंह
शोधार्थी, शिक्षा संकाय
मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

डॉ. प्रीति शर्मा
विभागाध्यक्ष (एम.एड.),
मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

प्रस्तुत शोधपत्र में म.प्र. राज्य के भोपाल जिले में स्थित हाईस्कूलों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर उनके पारिवारिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। न्यादर्श के रूप में 200 विद्यार्थियों (100 छात्र एवं 100 छात्राएं) का चयन साधारण यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा करके उन पर डॉ. मीनु अग्रवाल की 'पारिवारिक वातावरण मापनी' का प्रशासन किया गया तथा हाईस्कूल के विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि के मापन के लिए माध्यमिक शिक्षा मंडल म.प्र., भोपाल द्वारा आयोजित कक्षा 10वीं की वार्षिक परीक्षा में विद्यार्थियों द्वारा गणित विषय में प्राप्त अंकों का उपयोग किया गया। संकलित प्रदत्तों का विश्लेषण 'क्रांतिक अनुपात' परीक्षण के द्वारा किया गया। प्राप्त परिणामों के अनुसार हाईस्कूल में अध्ययनरत छात्र/विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर पारिवारिक वातावरण (उच्च व निम्न) का सार्थक प्रभाव पाया गया जबकि छात्राओं की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर पारिवारिक वातावरण (उच्च व निम्न) का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया। हाईस्कूल में अध्ययनरत उच्च/निम्न पारिवारिक वातावरण वाले छात्र व छात्राओं की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि में लिंग भिन्नता नहीं पाई गयी।

मुख्य शब्दः हाईस्कूल स्तर, गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि, पारिवारिक वातावरण

मानव व्यक्तित्व निर्माण के लिये शिक्षा एक ऐसा सशक्त माध्यम है जो समाज के विकास के लिए नियमित प्रक्रिया है। जीवन में सफलता का आधार वास्तव में शिक्षा में ही निहित है। शिक्षा विद्यालय की चार दीवारी तक ही सीमित नहीं है, अपितु बालक के विद्यालय में प्रविष्ट होने से लेकर विद्यालयीन शिक्षा पूर्ण करने तक की अवधि में जो ज्ञान प्रदान किया जाता है उसी को संकीर्ण अर्थ के अनुसार शिक्षा के रूप में स्वीकार किया जाता है। यह एक गतिशील प्रक्रिया है तथा इसका प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति का शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास करना है। शिक्षा आयोग (1964-66) ने अपने प्राक्कथन में लिखा है ''भारत के भाग्य का निर्माण इस समय उसके कक्षा कक्ष में हो रहा है''

विद्यालय में शिक्षक हो या विद्यार्थी तथा घर में अभिभावक, सबके मन मस्तिष्क के सामने 'गणित' शब्द का नाम आते ही नीरसता के साथ भय बड़ी तेजी से आता है और इस शब्द को वे अपने मन मस्तिष्क से निकाल फेंकना चाहते हैं। अधिकतर लोगों के मन में यहीं विचार आता है कि गणित एक नीरस, बोझिल तथा कठिन विषय है संभवतः इसी कारण से विद्यार्थी तथा उनके अभिभावक गणित विषय की असफलता से भयभीत रहते हैं, फलस्वरूप संभवतः इसी डर से उनकी गणितीय उपलब्धि भी प्रभावित होती है।

विद्यार्थी की सम्पूर्ण शिक्षा जिसमें गणित विषय की शिक्षा भी शामिल है इसके माध्यम से ही सम्पूर्ण राष्ट्र प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकता है। आज देष का विकास इन विद्यार्थियों पर निर्भर है। देश की प्रतिष्ठा, आर्थिक विकास, राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक विकास का संरक्षण एवं उत्थान, लोक कल्याण की भावना, अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना एवं देश की सुरक्षा का दायित्व इन्हीं भावी कर्णधारों के कंधों पर निर्भर है, परन्तु इसके लिए हमें इन भावी कर्णधारों विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करना है, जिसमें उनका मानसिक विकास भी शामिल है। बालक के संपूर्ण व्यक्तित्व एवं शैक्षिक विकास में पारिवारिक वातावरण की सर्वप्रमुख भूमिका है। अतः इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु शोधार्थी ने हाईस्कूल में अध्ययनरत विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर उनके पारिवारिक वातावरण के प्रभाव ज्ञात करने का प्रयास इस अध्ययन द्वारा किया है।

प्रस्तुत शोध से संबंधित पूर्व में भी कुछ शोध किये गये हैं जैसे- **वर्मा, शरत एवं शर्मा, लालसा** (2000) के इस अध्ययन के निष्कर्षतः ज्ञात हुआ कि एकल एवं संयुक्त परिवार के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया व एकल परिवार के छात्रों के परिवार छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि संयुक्त परिवार के छात्रों की अपेक्षा अधिक पाई गई। **ज्ञानानी, टी.सी. एवं देवगन, प्रवीन** (2005) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षतः पाया कि माता-पिता द्वारा प्रदत्त प्रोत्साहन एवं पाल्यों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक सह संबंध पाया गया तथा छात्रों की अपेक्षा छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि पर माता-पिता द्वारा प्रदत्त प्रोत्साहन का अधिक प्रभाव पाया गया। **शैली** (2008) के अध्ययन के निष्कर्षतः ज्ञात हुआ कि माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों के पारिवारिक वातावरण का शैक्षिक उपलब्धि से

सार्थक संबंध नहीं पाया गया। **देशमुख, अमृता; वर्मा, उर्मिला एवं निगम, भूपेन्द्र** (2009) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि उच्च व निम्न पारिवारिक संबंध वाले छात्र/छात्रा/ विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा उच्च पारिवारिक संबंध वाले छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि निम्न पारिवारिक संबंध वाले छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों से अधिक पायी गयी। उच्च पारिवारिक संबंध वाले छात्र–छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि छात्रों से अधिक पायी गयी, जबकि निम्न पारिवारिक संबंध वाले छात्र–छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नही पाया गया। **पटेल, विशाखा, निगम, भूपेन्द्र एवं अन्य** (2009) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि बालकों एवं बालिकाओं की शैक्षणिक उपलब्धि पर अभिभावक की शिक्षा का सार्थक प्रभाव पड़ता है। विभिन्न शैक्षणिक स्तर के अभिभावकों के बालकों एवं बालिकाओं की शैक्षणिक उपलब्धि में अंतर पाया गया। **फैलोज, अंजना** (2011) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि अभिभावकों द्वारा स्वीकृत बच्चों की शैक्षणिक उपलब्धि व अभिभावक पाल्य संबंध के क्षेत्र–स्वीकृती के मध्य उच्च व धनात्मक सहसंबंध पाया गया तथा साथ ही स्वीकृत छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि भी उच्च पायी गयी। अभिभावकों द्वारा संरक्षित बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि भी उच्च तथा अभिभावक पाल्य संबंध के क्षेत्र–संरक्षण से धनात्मक रूप से सहसंबंधित पायी गयी। अभिभावकों द्वारा उपेक्षित बच्चों की शैक्षणिक उपलब्धि का स्तर निम्न तथा प्रभावित पाया गया। **शर्मा, शरद; जायसवाल, राजेश कुमार एवं परसाई, दीपा** (2013) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि शासकीय/अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर पारिवारिक वातावरण का सार्थक प्रभाव पाया गया तथा उच्च पारिवारिक वातावरण वाले छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि, निम्न पारिवारिक वातावरण वाले छात्रों की तुलना में उच्च पायी गयी। **शुक्ला, एच.जी.** (2013) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की गणित विषय में उपलब्धि पर बौद्धिक स्तर का सार्थक प्रभाव पाया गया। **शुक्ला, विनीता एवं सक्सेना, सीमा** (2014) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि शासकीय/अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर परिवार के शैक्षिक वातावरण का सार्थक प्रभाव पाया गया तथा उच्च शैक्षिक पारिवारिक वातावरण वाले विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि, निम्न शैक्षिक पारिवारिक वातावरण वाले विद्यार्थियों की तुलना में उच्च पायी गयी। **भौमिक, मनोरंजन** (2017) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि निम्न, मध्यम व उच्च चिंता स्तर वाले विद्यार्थयों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया। विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि एवं चिंता के मध्य सार्थक ऋणात्मक सहसंबंध पाया गया जबकि गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि एवं अभिप्रेरणा के मध्य सार्थक धनात्मक सहसंबंध पाया गया। **कलासिया, प्रीति** (2017) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि एवं शैक्षणिक चिंता के मध्य सार्थक ऋणात्मक सहसंबंध पाया गया, अर्थात् जैसे–जैसे विद्यार्थयों की शैक्षणिक चिंता में वृद्धि होती है उनकी गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि में कमी आती है या शैक्षणिक चिंता में कमी होने पर उनकी गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि में वृद्धि होती है। **पाण्डेय, भैरव दत्त एवं नयाल, जी. एस.** (2018) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि बागेश्वर जिले के शासकीय/अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र व छात्राओं की गणित विषय में शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा छात्रों की गणित विषय में शैक्षिक उपलब्धि, छात्राओं से बेहतर पाई गयी।

उद्देश्य:–

1. हाईस्कूल में अध्ययनरत छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर उनके पारिवारिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन करना।
2. हाईस्कूल में अध्ययनरत उच्च/निम्न पारिवारिक वातावरण वाले छात्र व छात्राओं की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना:–

1. हाईस्कूल में अध्ययनरत छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर उनके पारिवारिक वातावरण का सार्थक प्रभाव नहीं पाया जाएगा।
2. हाईस्कूल में अध्ययनरत उच्च/निम्न पारिवारिक वातावरण वाले छात्र व छात्राओं की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

प्रतिदर्श –

भोपाल जिले में स्थित हाईस्कूलों में अध्ययनरत 200 विद्यार्थियों (100 छात्र एवं 100 छात्राएं) का चयन साधारण यादृच्छिक न्यादर्ष विधि द्वारा किया गया है।

उपकरण:–

डॉ. मीनु अग्रवाल की 'पारिवारिक वातावरण मापनी' का उपयोग हाईस्कूल में अध्ययनरत विद्यार्थियों के पारिवारिक वातावरण के मापन के लिए किया गया तथा गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि के मापन के लिए माध्यमिक शिक्षा मंडल म.प्र., भोपाल द्वारा आयोजित कक्षा 10वीं की वार्षिक परीक्षा में गणित विषय में इन विद्यार्थियों को प्राप्त अंकों का उपयोग किया गया।

विधि:–

सर्वप्रथम भोपाल जिले में स्थित हाईस्कूल स्तर के विद्यालयों

की कक्षा दसवीं में अध्ययनरत् 200 विद्यार्थियों (100 छात्र एवं 100 छात्राएं) का चयन साधारण यादृच्छिक न्यादर्श विधि से करके उन पर डॉ. मीनु अग्रवाल की 'पारिवारिक वातावरण मापनी' का प्रशासन किया गया तथा विद्यार्थियों को उच्च व निम्न पारिवारिक वातावरण समूह में विभाजित किया गया साथ ही माध्यमिक शिक्षा मंडल म.प्र., भोपाल द्वारा आयोजित कक्षा 10वीं की वार्षिक परीक्षा में गणित विषय में इन विद्यार्थियों को प्राप्त अंकों का उपयोग इनकी गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि के मापन के लिए किया गया। मध्यमान, मानक विचलन व क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया। प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष निकाले गये।

परिणामों का विश्लेषण:-

परिकल्पना - 1: हाईस्कूल में अध्ययनरत छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर उनके पारिवारिक वातावरण का सार्थक प्रभाव नहीं पाया जाएगा।

सारणी क्रमांक 01

हाईस्कूल में अध्ययनरत छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर उनके पारिवारिक वातावरण के प्रभाव संबंधी तुलनात्मक परिणाम

समूह	पारिवारिक वातावरण	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	सार्थकता
छात्र	उच्च	56	68.96	20.70	2.16	0.05 स्तर पर सार्थक
	निम्न	44	59.91	20.87		
छात्रा	उच्च	57	71.33	17.14	1.39	0.05 स्तर पर असार्थक
	निम्न	43	66.16	19.29		
विद्यार्थी	उच्च	113	70.16	19.02	2.53	0.05 स्तर पर सार्थक
	निम्न	87	63.03	20.34		

स्वतंत्रता के अंश - 98, 198

0.05 स्तर के लिये निधार्रित न्यूनतम मान - 1.98, 1.97

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि हाईस्कूल में अध्ययनरत उच्च व निम्न पारिवारिक वातावरण वाले छात्र/विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर है, क्योंकि इनके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमश: 2.16, 2.53 स्वतंत्रता के अंश 98, 198 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान क्रमश: 1.98, 1.97 की अपेक्षाकृत अधिक हैं जबकि हाईस्कूल में अध्ययनरत उच्च व निम्न पारिवारिक वातावरण वाली छात्राओं की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि इसके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 1.39 स्वतंत्रता के अंश 98 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान क्रमश: 1.98 की अपेक्षाकृत कम है।

अत: इन परिणामों के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि हाईस्कूल में अध्ययनरत उच्च व निम्न पारिवारिक वातावरण वाले छात्र/विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा उच्च पारिवारिक वातावरण वाले छात्र/विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि, निम्न पारिवारिक वातावरण वाले छात्र/विद्यार्थियों की तुलना में बेहतर पाई गयी। हाईस्कूल में अध्ययनरत उच्च व निम्न पारिवारिक वातावरण वाली छात्राओं की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया, अर्थात् हाईस्कूल में अध्ययनरत छात्र/विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर पारिवारिक वातावरण (उच्च व निम्न) का सार्थक प्रभाव पाया गया जबकि छात्राओं की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर पारिवारिक वातावरण (उच्च व निम्न) का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

अत: उपरोक्त परिणामों के परिप्रेक्ष्य में पूर्व में ली गई परिकल्पना 'हाईस्कूल में अध्ययनरत छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर उनके पारिवारिक वातावरण का सार्थक प्रभाव नहीं पाया जाएगा', हाईस्कूल के छात्र/विद्यार्थियों के लिए अस्वीकृत जबकि छात्राओं के लिए स्वीकृत की जाती है। समग्र रूप में उपरोक्त परिकल्पना आंशिकत: अस्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना - 2: हाईस्कूल में अध्ययनरत उच्च/निम्न पारिवारिक वातावरण वाले छात्र व छात्राओं की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

सारणी क्रमांक 02

हाईस्कूल में अध्ययनरत उच्च/निम्न पारिवारिक वातावरण वाले छात्र व छात्राओं की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि संबंधी तुलनात्मक परिणाम

पारिवारिक वातावरण	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	सार्थकता
उच्च	छात्र	56	68.96	20.70	0.66	0.05 स्तर पर असार्थक
	छात्रा	57	71.33	17.14		
निम्न	उच्च	44	59.91	20.87	1.45	0.05 स्तर पर असार्थक
	निम्न	43	66.16	19.29		

स्वतंत्रता के अंश - 98

0.05 स्तर के लिये निधार्रित न्यूनतम मान - 1.98

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि हाईस्कूल में अध्ययनरत उच्च/निम्न पारिवारिक वातावरण वाले छात्र व छात्राओं की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से

सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि इनके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमश: 0.66, 1.45 स्वतंत्रता के अंश 98 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान 1.98 की अपेक्षाकृत कम है।

अत: इन परिणामों के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि हाईस्कूल में अध्ययनरत उच्च/निम्न पारिवारिक वातावरण वाले छात्र व छात्राओं की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया अर्थात् उच्च/निम्न पारिवारिक वातावरण वाले छात्र व छात्राओं की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि में लिंग भिन्नता नहीं पाई गयी।

अत: उपरोक्त परिणामों के परिप्रेक्ष्य में पूर्व में ली गई परिकल्पना 'हाईस्कूल में अध्ययनरत उच्च/निम्न पारिवारिक वातावरण वाले छात्र व छात्राओं की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा' अस्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष -

1. हाईस्कूल में अध्ययनरत छात्र/विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर पारिवारिक वातावरण (उच्च व निम्न) का सार्थक प्रभाव पाया गया तथा उच्च पारिवारिक वातावरण वाले छात्र/विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि, निम्न पारिवारिक वातावरण वाले छात्र/विद्यार्थियों की तुलना में बेहतर पाई गयी। हाईस्कूल में अध्ययनरत छात्राओं की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर पारिवारिक वातावरण (उच्च व निम्न) का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।
2. हाईस्कूल में अध्ययनरत उच्च/निम्न पारिवारिक वातावरण वाले छात्र व छात्राओं की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया, अर्थात् उच्च/निम्न पारिवारिक वातावरण वाले छात्र व छात्राओं की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि में लिंग भिन्नता नहीं पाई गयी।

// संदर्भ ग्रंथ सूची//

1. चौबे, सरयू प्रसाद (1966) ''मनोविज्ञान एवं शिक्षा'', लक्ष्मीनारायण अस्पताल मार्ग, आगरा। आठवां संस्करण।
2. दुबे, एल.एन. एवं बरोदे, बी.आर. (2009) ''शिक्षा मनोविज्ञान'', आरोही प्रकाशन, साउथ सिविल लाइन्स, जबलपुर। प्रथम संस्करण।
3. गैरैट, ई. हेनरी (1995) ''शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकीय प्रयोग'', ऊषा राजकुमार कल्याणी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
4. गुप्ता, मधु (2000) ''शिक्षा संस्कार एवं उपलब्धि'', क्लासिक पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली।
5. गुप्ता, एस.पी. (2007) ''आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन'', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
6. गुप्ता, एस. पी. (2005) ''सांख्किीय विधियां'', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
7. सिंह, अरूण कुमार (2005) ''शिक्षा मनोविज्ञान'', भारती भवन पब्लिशर्स, पटना
8. वालिया, जे.एस. (2005) ''शिक्षा मनोविज्ञान की बुनियादें'', पाल पब्लिशर्स, जालंधर
9. देशमुख, अमृता; वर्मा, उर्मिला एवं निगम, भूपेन्द्र (2009) ''उच्चतर माध्यमिक शालाओं में पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं के पारिवारिक संबंधों का उनकी शैक्षणिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन'', रिसर्च लिंक, 62, वाल्यूम, *VIII* (3), मई 2009, पृष्ठ क्रमांक 116-118
10. ज्ञानानी, टी.सी. एवं देवगन, प्रवीन (2005) ''माता-पिता द्वारा प्रदत्त प्रोत्साहन एवं पाल्यों की शैक्षिक उपलब्धि'', भारतीय आधुनिक शिक्षा, जुलाई 2005, एन.सी.ई.आर.टी, नई दिल्ली, पृष्ठ क्रमांक 60-65
11. पटेल, विशाखा; निगम भूपेन्द्र एवं अन्य (2009) ''प्राथमिक स्तर के बालक एवं बालिकाओं की शैक्षणिक उपलब्धि पर अभिभावक की शिक्षा के प्रभाव का अध्ययन'' *Research Hunt, Vol - IV, Issue II, March - April 2009, Pg. No. 189-193*
12. शैली (2008) ''माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों के अध्ययन की आदतों और पारिवारिक वातावरण का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन'', जर्नल ऑफ रिसर्च एण्ड एक्सप्लोरेशन इन टीचर एजूकेशन (एजूक्रेश्ट), वाल्यूम (1), अप्रैल 2008, पृष्ठ क्रमांक 49-54
13. शुक्ला, हरगोविन्द (2013) ''हाईस्कूल के विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर बुद्धि, पारिवारिक एवं विद्यालयीन वातावरण तथा शिक्षण प्रभावशीलता के प्रभाव का अध्ययन'', अप्रकाशित शोध प्रबंध, म.प्र. भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय, भोपाल
14. शुक्ला, विनीता एवं सक्सेना, सीमा (2014) ''माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर परिवार के शैक्षिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन'', सामाजिक शोध योजना, वॉल्यूम 2, अंक 3, वर्ष 2, जुलाई 2014, पेज नं. 38-39
15. शर्मा, शरद कुमार; जायसवाल, राजेश कुमार एवं परसाई, दीपा (2013) ''हाईस्कूल स्तर के विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर पारिवारिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन'', सामाजिक शोध योजना, वॉल्यूम 1, अंक 2, वर्ष 1, जनवरी 2013, पेज नं. 84-87
16. वर्मा, शरत एवं शर्मा, लालसा, (2000) ''उच्च माध्यमिक स्तर पर एकल एवं संयुक्त परिवार के विद्यार्थियों की आकांक्षा स्तर एवं शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन'', भारतीय आधुनिक शिक्षा, जुलाई 2000, पृष्ठ क्रमांक 54-58
17. **Bhowmik, Manoranjan (2017)** "Correlation Study on Xth Grade Students in Mathematics Achievement with Motivation and Mathematics Anxiety", *International Journal of Research in all Subjects in Multi Languages, Vol. 5, Issue: 10, October: 2017, Page No. 7-12*
18. **Fellows, Anjana (2011)** "To Study the academic achievement & parent child relationship of adolescent boys", *Research Hunt, Vol - VI, Issue - IV, Dec 2011, Pg. No. 12-14*
19. **Kalsia, Priti (2017)** "Mathematical Achievement of Senior Secondary School Students in Relation to Academic Anxiety". *American International Journal of Research in Humanities, Arts and Social Sciences, Volume 18(2), March-May 2017, Page No. 128-132*
20. **Pandey, Bhairab Datt and Nayl, G.S. (2018)** "A study of Mathematical Achievement of Secondary School students", *PARIPEX - INDIAN JOURNAL OF RESEARCH, Volume-7 , Issue-1 , January-2018, Page No. 38-39.*

स्त्री विमर्श : आदिवासी समुदाय के परिप्रेक्ष्य में

सरिता पारीक
शोधार्थी - पी-एच.डी., हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांश

स्त्री विमर्श महिलाओं द्वारा पुरानी मान्यताओं परंपराओं और रीति-रिवाजों के विरोध में उठाया गया एक आजादी का स्वर है ताकि महिलाएं इन बंधनों से आजाद हो सके स्वतंत्र जीवन जी सके कोई अपने विचार उनपर थोपे नहीं महिलाओं का आंदोलन पुरुषों के बराबर अधिकार पाने का है, यह अधिकार परिवार समाज व एवं व्यावसायिक स्थान चाहे कहीं भी क्यों ना हो आधुनिक समाज में महिला के उत्पीड़न भेदभाव के दोहरे मापदंडों से बाहर आना चाहती है। महिलाएं भी पुरुषों के समान समाज में अपना अस्तित्व, अपनी पहचान बनाना चाहती है। इस कार्य मे महिलाएँ सफल भी हुई हैं कोई भी एसा क्षेत्र नहीं है,जहां महिलाएं पुरुषों के बराबर कार्यरत नहीं है, लेकिन दु:ख की बात ये है कि आज भी पुरुष समाज महिलाओं को अपने से कमज़ोर समझता है। पहले से ही सभी स्थानों पर महिला एवं पुरुषों मे भेदभाव किया जाता है और जो अब तक निरन्तर चल रहा है। महिलाओं पर परिवार की सभी नियमों और आदेशों का पालन करने वाली बहू या अनुशासित बेटी अथवा बच्चों को पालने वाली मां के आदर्श रूप का दबाव बना हुआ है। अब महिला इन सभी रिश्तों के बंधनों के अलावा अपने बारे में भी सोचने लगी है। वह उससे बाहर निकलना चाहती है। पुरुषों के बराबर हक चाहती हैं। महिला आंदोलन और साहित्यकारों ने इसमें बहुत योगदान दिया है महिलाओं को अपने अधिकारों के बारे में जागरूक करने में इन संगठनों ने बखूबी भूमिका निभाई है।

स्त्री विमर्श और स्त्री संघर्ष दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं, लेकिन स्त्री संघर्ष से स्त्री विमर्श को अलग-अलग देखकर ही हम महिलाओं की आजादी की पीड़ा को प्रस्तुत कर सकते हैं। प्रत्येक स्त्री संघर्ष समय, देश और समाज के अनुसार बदलता रहता है। खास परिस्थिति स्थान अथवा समय पर किया गया संघर्ष का प्रत्येक महिला और प्रत्येक समाज के लिए प्रेरणादायी तो हो सकता है लेकिन सभी परिस्थितियों में सही साबित नहीं होता क्योंकि अलग अलग समाज की महिलाओं की परेशानी में अन्तर होता है। ग्रामीण क्षेत्र और शहरी क्षेत्र की महिला के संघर्ष और तकलीफ अलग अलग होती हैं क्योंकि गाँव और शहरी क्षेत्र का सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण अलग अलग होता है। गाँव की महिला का संघर्ष प्राय: परिवार के लोगों के साथ होता है लेकिन शहरों मे ये संघर्ष परिवार के साथ-साथ व्यावसायिक स्तर पर भी होता है। अधिकतर गाँव मे महिलायें कामकाजी नहीं होती इसलिए उनका संघर्ष परिवार में सीमित रहता है। कामकाजी महिलाओं का संघर्ष दुगुना हो जाता है क्योंकि उसे बाहर काम करने के पश्चात् घर में भी परिवार एवं बच्चों का भी ध्यान रखना पड़ता है जहां पहले वह केवल घर संभालती थी अब उसे बाहर काम करके आने के पश्चात् गृहकार्य भी संभालना पड़ता है अभी तक पुरुषों की सोच महिलाओं के लिए पूर्ण रूप से बदली नहीं है। पुरुषों ने घर के काम महिलाओं को ही सोंप रखे हैं यदि महिला पुरुष के समान बाहर काम करके पैसा कमा सकती है तो पुरुष का भी फर्ज बनता है कि स्त्री की घर के कामों में सहयोग करे लेकिन ये पुरुष के स्वाभिमान को मंजूर नहीं। आज के समय में पुरुष को अपनी मानसिकता में बदलाव लाने की आवश्यकता है ताकि महिलाओं को इस पीड़ा और तकलीफ से मुक्ति मिल सके।

मुख्य बिंदु- स्त्री विमर्श,स्त्री शिक्षा आदिवासी समाज में महिलाओ की स्थिति

प्रस्तावना-

स्त्रियों की समस्या के बारे में निवारण हेतु गहन सोच-विचार तथा विवेचन का नाम है स्त्री विमर्श। यह एक विचारधारा है जो स्त्री और पुरुष को बराबरी का हक देती हैं। आज प्रत्येक क्षेत्र में सर्वाधिक चर्चा स्त्री अधिकारों की हो रही है वर्षों से हो रहे उत्पीड़न दर्द भेदभाव और अन्याय के प्रति महिलाओं में चेतना जागरूकता एवं अपने अधिकारों के प्रति सजगता ने ही स्त्री-विमर्श को जन्म दिया है। स्त्री-मुक्ति भी स्त्री विमर्श का विषय रहा है। महिलाओं ने घरेलू हिंसा शारीरिक, मानसिक, यौन उत्पीड़न एवं लैंगिक भेदभाव के विरुद्ध आवाज उठानी शुरू कर दी है। पुरुष को सभी अधिकार समाज ने वरदान में दिए है और स्त्री को उनका कर्त्तव्य पालन करना सिखाया जाता है। महिला को पुरुष प्रधान समाज में सभी आदेशों का पालन चुपचाप करना पड़ता है। यदि स्त्री इसके विरुद्ध आवाज उठाती है तो पुरुष के अहम् को ठेस पहुंच जाती हैं। लेकिन अब नारी ने इन अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठानी शुरू कर दी है। महिलाएं समाज द्वारा बनाएँ गए इन नियमों को तोड़ देना चाहती है जो इनकी स्वतंत्रता में बाधक है। नारी का अधिकार है अपनी इच्छा से अपना

जीवन बिताए। महिला का जीने का अपना नजरिया हो जिसके लिए उसे आवाज उठानी चाहिए। आधुनिक समय में महिलाओं ने अपने अधिकारों के प्रति आवाज उठानी शुरू कर दी क्योंकि अब स्त्रियां भी पुरुषों के बराबर शिक्षित व कामकाजी हो गई हैं इसलिए वह पुरुषों के बनाए कानूनों में बंधना नहीं चाहती, उससे बाहर निकलना चाहती है। यह पुरुष एवं समाज को मंजूर नहीं। महिलाओं ने अपने अधिकारों के लिए समय-समय पर कई आंदोलन चलाए गए जिसके फलस्वरूप महिलाओं में जागरूकता फैली और स्त्री अपने अधिकारों को पहचानने लगी। लेकिन पश्चिम के स्त्री आंदोलन और भारतीय आंदोलन की तुलना करना भी ठीक नहीं है क्योंकि प्रत्येक देश की स्त्रियों का संघर्ष उनके समाज सापेक्ष है पश्चिमी देशों की स्त्रियों के संघर्ष और भारतीय स्त्रियों के संघर्ष में अंतर है इसको थोड़ा अलग रखकर देखने की आवश्यकता है। किसी भी देश में चलने वाले संघर्ष सभी देशों की स्त्रियों के संघर्ष पर लागू नहीं होते जैसे पश्चिमी देशों में सती प्रथा पर्दा प्रथा अथवा बाहर काम करने के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ता लेकिन भारतीय स्त्रियों को पर्दा प्रथा पुरुषों के समान समाज में मान सम्मान एवं घर से बाहर काम करने के लिए निरंतर संघर्ष करना पड़ा प्रत्येक देश का सामाजिक ढांचा अलग-अलग है कोई भी आंदोलन दूसरे देश के आंदोलन में सहायक हो सकता है लेकिन वहां का आंदोलन किसी सिद्धांत का आधार बने ऐसा जरूरी नहीं है, जैसे पश्चिम में महिलाओं को मताधिकार के लिए संघर्ष करना पड़ा लेकिन भारत में स्त्रियों को कभी भी मताधिकार के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ा भारत की आजादी के पश्चात् संविधान बनने के साथ ही महिलाओं को पुरुषों के समान ही अपना मत देने का अधिकार दिया गया। कोई भी आंदोलन जब तक सफल नहीं होता तब तक वह गहराई तक ना पहुंचे भारत में भी ऐसे समाज की स्त्रियों का संघर्ष एक जैसा नहीं है। प्रत्येक स्तर के संघर्ष को अलग अलग रखकर ही सुलझाया जा सकता है। उनके अधिकारों की लड़ाई भी अलग-अलग है कोई भी आंदोलन जब तक स्त्री को अंदर तक नहीं हिलाता तब तक वह सफल नहीं हो सकता। स्त्रियों में जब तक अपने अधिकारों के प्रति चेतना नहीं जागती वह अपने अधिकारों के लिए आवाज नहीं उठाती। अब स्त्रियां अपनी स्वतंत्रता और अस्मिता को समझने लगी हैं, वो अपने को एक वस्तु के रूप में नहीं देखना चाहती बल्कि पुरुष के बराबर अधिकार चाहती है। समय के साथ उन्हें पूरी आजादी भी मिली है उन्हें बोलने, काम करने पुरुषों के बराबरी का अधिकार भी मिला है। महिलायें आज स्वतन्त्र है, शिक्षित है राजनीतिक एवं सामाजिक स्तर पर उन अधिकारों के साथ जीवन जीती है लेकिन समाज में कई वर्ग आज भी उनके अधिकारों का हनन करते हैं। आज भी समाज का एक तबका पुराने रीति रिवाजों से बंधा है, वह शिक्षित महिला से भी अपेक्षा करता है कि वह परिवार में वह सभी कार्य करें जो एक पुरुष चाहता है वह महिला को आजादी से नाखुश है।

आरंभ में स्त्रियों के अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाली महिलाओं तथा आज की नारीवादियों में मुख्य अंतर दिखाई देता है। पहले स्त्रियाँ लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही थीं, जिसमें शिक्षा, रोजगार, संपत्ति का मालिकाना अधिकार, राजनीति में प्रवेश पाने व तलाक का अधिकार जैसे प्रमुख मुद्दे थे। उनका संघर्ष घर और परिवार के दायरे से बाहर था वहीं आज देखा जाए तो स्त्रियों का यह संघर्ष कानूनी सुधारों से कही आगे का संघर्ष बन गया है। आज के नारीवाद का केन्द्र घर के भीतर स्त्री पर पुरुष के वर्चस्व और अधिकार, परिवार द्वारा शोषण, जेंडरविभेदीकरण, समाज, संस्कृति और धर्म के आधार पर शोषण के विरुद्ध संघर्ष है।

यह सच है कि पिछले दो दशकों में स्त्रियों ने बहुत से क्षेत्रों में काफी तरक्की की है। कुछ औरतों के लिए कुछ सामाजिक बंधन भी कम हुए हैं। कुछ कानून भी बदले काफी हद तक औरतों को बराबरी का दर्जा भी दिया है। इन सबके बावजूद आज भी लगभग हर देश में स्त्रियों को न समान अधिकार मिला और ना ही पुरुषों के बराबर अधिकार।

समय के साथ-साथ स्त्री भी मूलभूत मानाधिकारों के प्रति सचेत हो गई। सदियों से हो रहे शोषण के खिलाफ आवाज उठाने लगी। यदि महादेवी वर्मा के शब्दों में कहें तो 'स्त्री न घर का अलंकार मात्र बनकर जीवित रहना चाहती है, न देवता की मूर्ति बनकर प्राण-प्रतिष्ठा चाहती है। कारण वह जान गई है कि एक का अर्थ अन्य की शोभा बढ़ाना तथा उपयोग न रहने पर फेंक दिया जाना है। आज उसने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष को चुनौती देकर अपनी शक्ति की परीक्षा देने का प्रण किया है और उसी में उत्तीर्ण होने को जीवन की चरम सफलता समझती है।'

शोषण के प्रति स्त्री अपनी आवाज उठाने लगी है। परिणामस्वरूप स्त्री विमर्श की अवधारणा सामने आई। भारतीय समाज में जो लोग ये सार्वजनिक तौर पर ये दिखाते है कि वो महिलाओं को बराबर समझते है लेकिन वास्तविकता कुछ और है ये बराबरी केवल समाज में दिखाने के लिये है लेकिन यथार्थ में उनका पुरुषत्व भी महिलाओं की बराबरी और स्वावलंबन को स्वीकार नहीं कर सकता।

स्त्रियों को पुरुषों ने हमेशा उपेक्षित हो समझा है। पुरुषों ने महिलाओं की स्वतंत्रता एवं स्वतंत्र व्यक्तिव के विकास में कोई योगदान नहीं दिया समाज में आज भी सारे नियम पुरुषों द्वारा ही बनाए जाते है। क्षमा शर्मा के अनुसार 'पुरुष पचास औरतों के साथ संबंध रखकर अच्छा कहला सकता है, अपने घर लौट सकता है। स्त्री एक प्रेम करके चरित्रहीन कही जा सकती है और अफसोस यह है स्त्री की उस छवि को बनाने में न धर्मशास्त्र पक्ष है न ही साहित्य।

स्त्री-चिंतन आज विश्व चिंतन की बहस में सबसे सशक्त चिंतन इसलिए है कि इस में अरबों, करोडों स्त्रियों का दमन, अन्याय एवं उत्पीड़न से मुक्ति की सोच निहित है। महिला संबंधित कानून के

विशेषज्ञ और लेखक अरविंद जैन कहते है कि 'आज के समय में औरतें बदलीं, पुरुष नहीं बदले। परिवार संस्था और विवाह संस्था यथातथ है। परिवार में बहु की स्थिति बहुत ज्यादा नहीं बदली है।'

जो लोग ये दिखाते है कि हमारे यहां बहू को पूरी आजादी है वो भी लोगों को देखकर कोरा दिखावा करते हैं। समस्याओं के बीच ही स्त्रियों का सफर शुरु होता है और अंत भी। आज के बदलते दौर में जीवन मूल्य बदल रहे हैं। भारतीय समाज में स्त्रियों के जीवन में आये दिन सामाजिक व्यवस्था के कारण नित नई समस्यायों का सामना करना पड़ता है जो उनके स्त्री होने के कारण है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था होने के कारण स्त्रियों के प्रति परिवार और समाज कर दृष्टिकोण बड़ा ही संकीर्ण है। महिलाओं की समस्या तभी बदलेगी जब सामाजिक दृष्टीकोण बदलेगा।

स्त्री विमर्श अथवा स्त्रीवाद को अंग्रेजी में 'feminism' कहा जाता है। इस शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन शब्द 'फेमिना' से मानी जाती है जिसका अर्थ है 'स्त्री'। इसे स्त्रियों के अधिकारों के लिए किए जाने वाले संघर्ष के रूप में देखा जाने लगा है। स्त्री विमर्शकार सम्पूर्ण भारतीय स्त्री के प्रतिनिधित्व का दावा करती है किन्तु यह पूर्णत: सत्य नहीं है। आज भी हिंदी स्त्री विमर्श की परिधि से समाज का बड़ा तबक़ा बाहर है। विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक बाधाओं के कारण समाज की मुख्यधारा से कटे हुए असंख्य स्त्री समूह साहित्य व सत्ता के गलियारों से कोसों दूर हैं, आदिवासी स्त्री भी उनमें से एक है। आदिवासी स्त्री समाज जाति से हीन और ग़रीब होने के कारण सामाजिक और आर्थिक जीवन स्थितियों के साथ उनका इतिहास और उनकी जीवन-शैली एक आम भारतीय स्त्री से भिन्न है। अत: स्त्री-मुक्ति की चर्चा करते ही उनके प्रतिनिधित्व से संबंधित सवाल उठ खड़े होते हैं। स्त्री साहित्य में दलित, आदिवासी और मुस्लिम स्त्रियों पर बहुत कम लिखा गया है जबकि सही मायने में ये स्त्रियाँ समाज के दोहरे शोषण से जूझ रही हैं। हिंदी साहित्य के क्षेत्र में बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में परम्परागत रचना प्रक्रिया से अलग विमर्शों और हस्तक्षेपों का दौर शुरू हुआ, जिसमें समाज के उन वर्गों की आवाज़ को स्थान मिला जिनको अभी तक अपनी पीड़ा एवं दर्द व्यक्त करने का मौक़ा नहीं मिला था जबकि उनकी अनुभूति दर्दनाक थी; यही कारण है कि वह दलित, आदिवासी व स्त्री समाज के द्वारा आत्मकथात्मक साहित्य के रूप में आक्रोश के साथ व्यक्त की गई। विभिन्न लेखिकाओं ने आदिवासी समाज और दलित समाज को केंद्र में रखकर आत्मकथा लिखी है जो आदिवासी महिलाओं की दर्द और तकलीफ को बखूबी बया करता हैं। साहित्य में इन शोषित वर्गों द्वारा एक आन्दोलन के रूप में कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, संस्मरण जैसी विधाओं में रचना कर्म शुरू किया गया जो साहित्यिक न्याय के लिए ज़रूरी भी था क्योंकि इससे साहित्य में जो वर्ग हाशिये पर था उसकी भागीदारी शुरू होने लगी।

अस्मितावादी साहित्यकार रचना में प्रामाणिकता को सर्वोपरि मानते हैं इसीलिए उनकी कृति में 'देखे गये यथार्थ' की तुलना में 'भोगे गए यथार्थ' को तथा शिल्प की बजाय संवेदनात्मक पक्ष को अधिक महत्त्व मिला। आदिवासी साहित्य में स्त्री विमर्श गैर-आदिवासियों द्वारा चलाए गए स्त्री विमर्श से इस मायने में अलग है। कि वे समन्वय की नहीं संघर्ष की बात करते हैं, क्योंकि उनके साथ अन्याय हुआ है। इसलिए ये उस संघर्ष की बात करते हैं जो उनको वर्ण व्यवस्था से मुक्ति देगा, उनको ज्ञान और सत्ता की प्रक्रिया से जोड़ेगा तथा एक बेहतर समाज के निर्माण में मदद करेगा। यह एक महत्त्वपूर्ण बात है, जो पारम्परिक स्त्री साहित्य से आदिवासी साहित्य को अलग करती है। अस्मितावादी साहित्य समाज के ठोस यथार्थ को अभिव्यक्त करता है इसीलिए इस साहित्य में संवेदना की अथाह गहराई है, किंतु व्यापकता कम है। स्वानुभूति की अडिगता से 'आत्म' केंद्र में रहता है, इसीलिए इस तरह के साहित्य में संवेदना की संकीर्णता आनुषंगिक परिणाम के रूप में अनचाहे ही आ जाती है। यह बात हिंदी साहित्य जगत में लगभग पिछले तीन दशकों से चर्चा के केंद्र में रहे स्त्रीवादी साहित्य पर भी लागू होती है। आज स्त्री हर विषय पर लिख रही है- स्त्री विषयक शोधकार्यों की कमी नहीं है। औरत की कहानी का अंत नहीं है और औरत पर लिखे गए हज़ारों विमर्श हैं। दुनिया के हर देश में, हर कोने में औरत अपने बारे में बोल रही है।

आदिवासी विमर्श आज़ादी के बाद प्रकाश में आए दलित और स्त्री विमर्श के बाद का विमर्श है। हिंदी में आदिवासी विमर्श सबसे नया और उभरता हुआ विमर्श है। आदिवासी विमर्श पर बहुत कम लिखा गया है। ऐसे में आदिवासी स्त्री पर साहित्य की क्या स्थिति है? इसका अंदाज़ा हम लगा सकते हैं। आदिवासी स्त्री संघर्ष के समर्थ संताली कथाकार के.सी. टुडू लिखते हैं- 'हिन्दी साहित्य में आदिवासी समाज और उनका जीवन अब तक उपेक्षित है। हमारे हिन्दी साहित्यकारों का ध्यान भारतीय समाज के इस सबसे उत्पीड़ित समुदायों की ओर लगभग नहीं के बराबर है।

जब भी आदिवासी स्त्री को केन्द्र में रखकर साहित्य की रचना हुई है, वहाँ हम आदिवासी स्त्री को मात्र यौन उत्पीड़न की शिकार, लुटी-पिटी और घायल अवस्था में चित्रित किया हुआ ही देखते हैं। अस्मिता, स्वशासन और आत्मनिर्णय के अधिकार के लिए संघर्ष करती हुई आदिवासी स्त्रियाँ साहित्य और सिनेमा से ग़ायब हैं। दलित साहित्य में भी स्त्री के अस्मिता केंद्रित सवालों को पीछे छोड़ा गया है इसी कारण अलग से दलित स्त्री विमर्श की आवश्यकता महसूस हुई और यही स्थिति वर्तमान में आदिवासी साहित्य में स्त्री की है। आज जब सम्पूर्ण विश्व में स्त्री पूर्ण मनुष्य का दर्जा प्राप्त करने की जद्दोजेहद में लगी हुई है।

भारतीय संविधान में आदिवासियों के लिए 'अनुसूचित जनजाति पद का उपयोग किया गया है। भारत के प्रमुख आदिवासी समुदायों में

आंध, गोंड, खरवार, मुण्डा, खड़िया, बोडो, कोल, भील, कोली, सहरिया, संथाल, मीणा, भूमिज, उरांव, लोहरा, बिरहोर, पारधी, असुर, टाकणकार आदि हैं। गोंड जनजाति अन्य जनजातियों से सबसे बड़ी जनजाति है।' ये जनजाति पूरे जिले में पाई जाती हैं। गोड़ जनजाति में भगेली-विवाह प्रथा में विवाह लड़के और लड़की रजामंदी से होता है। इस प्रथा में कन्या अपने प्रेमी के घर भाग कर आ जाती हैं और एक निश्चित सामाजिक रीति रिवाज से के तहत यह विवाह संपन्न होता है। गोंड जनजाति में विवाह के अवसर पर अब लड़की वाले बारात लेकर लड़के वाले के घर आते है तब ऐसे विवाह को पठौनी-विवाह कहते है। ये भी स्त्री अस्मिता का अच्छा उदाहरण है जिसमें लड़की को अहमियत दी जाती है। लड़की वाले लड़के वालों के यहां बाराती बन कर जाते है।

आदिवासी समुदाय में विवाह के पश्चात् कई जातियों में पुरुष अपने ससुराल में आ कर रहने लगता है। इस जनजाति में विधवा विवाह एवं पुनर्विवाह को मान्यता है। भुंजिया जनजाति में पर्दा प्रथा नहीं पाई जाती लेकिन बहू अपने ससुर व जेठ से सीधे बात न कर किसी प्रतीक या आड़ से बात करते है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि समाज व्यवस्था के इस कमज़ोर तबके़ से संबंधित साहित्य का विश्लेषण करके जाना जा सके कि इस वर्ग का वास्तविक जीवन कैसा है? जैसा है, वैसा ही क्यों है? सामाजिक भागीदारी कम होने के कारण आदिवासी स्त्री भारतीय समाज की मुख्यधारा से कम जुड़ पायी है इसीलिए इस वर्ग को लेकर समाज में अनेक भ्रांतियाँ भी है, जिनका आधार काल्पनिक व अप्रामाणिक है लेकिन आदिवासी स्त्री संबंधित लेखन से ऐसी भ्रांतियाँ प्रामाणिकता के साथ दूर हो रही हैं। वर्तमान दौर में भी आदिवासी समाज बाकी समाजों से कटा हुआ हैं। इस समाज में अभी भी शिक्षा एवं अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता की कमी है। शिक्षा की कमी कारण इस समाज में अन्धविश्वास अधिक व्याप्त है। आदिवासी समाज में महिलाओं को शिक्षित करने की जरूरत है ताकि सभी कुरीतियों का अंत हो सके। पहले की तुलना में सभी कुप्रथाओं में कमी अवश्य आयी हैं। लेकिन आज भी ये समाज तंत्र विद्या में विश्वास रखता है। आदिवासी स्त्रियों पर उनकी समस्याओं उनकी पीड़ा दर्द इच्छा को साहित्य में वो जगह नहीं मिली जो दलित समाज कि स्त्री की दर्द और पीड़ा को मिली है हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श और दलित विमर्श जिस तरह से सामने आया आदिवासी समाज उससे अछूता रह गया। अधिकतर आदिवासी साहित्य लिखित रूप में नहीं है इसे गाकर या कविताओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है। आदिवासी स्त्री जीवन के संघर्ष को लेकर रमणिका गुप्ता, महाश्वेता देवी, निर्मला पुतुल, डॉ. मंजू ज्योत्स्ना, सरिता बड़ाइक, वन्दना टेटे, रोज केरकेट्टा, इरोम शर्मिला,सभी लेखिकाओं ने कविताओं के द्वारा अपना भोगा हुआ यथार्थ दिखाया हैं अपने आसपास आदिवासी स्त्री एवं समाज का जो दर्द उन्होंने देखा उसे अपने साहित्य में दिखाया। आदिवासी कविताओं में विभिन्न सामाजिक विद्रोह, नारी का जीवन-संघर्ष, विस्थापन, अस्तित्व की समस्या और शिक्षा जैसी समस्याएँ प्रमुख रूप से देखी जाती हैं। आदिवासी स्त्रियों ने पहले तो अपने हक़ और अधिकार के लिए पुरुष के साथ मिलकर समाज और शासकों का सामना किया और अब अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए न केवल समाज में बल्कि अपने घर में ही संघर्ष करने को मजबूर हैं। एक साहित्यकार अपनी नजर से समाज में हो रहे बदलाव और संवेदनशीलता को पहचान जाता है एक साहित्यकार ही समकालीन समाज के मुद्दे, महिलाओं के संघर्ष, पीड़ा को यथार्थ रूप में अपने साहित्य में भलीभाँति दिखा सकता है। आज आदिवासी समाज और उनकी स्त्रियों को जागरूक करने की आवश्कता है ताकि वो बाकी समाज की स्त्रियों की भांति आगे आ सके और बेहतर जीवन यापन कर सके इसके लिए इस समाज को बाकी समाज से जोड़ना होगा इन्हें शिक्षित करना होगा तभी ये समाज बेहतर जीवन जी सकता है। आज भी इस समाज की स्त्रियां पितृसत्तात्मक दायरे से बाहर नहीं निकलने में अक्षम है।

आदिवासी संप्रदाय को अपने अधिकारों के बारे में बिल्कुल भी जानकारी नही है यह संप्रदाय बाहरी दुनिया से बेखबर है। आदिवासी समुदाय की दर्द पीड़ा बाकी समुदाय से अलग है जिसे इनके बीच जाकर ही सुना और महसूस किया जा सकता है। इसके लिए जरूरी है कि महिला संगठन और समाज सुधारक आदिवासियों के बीच में जाकर उनके यथार्थ को समझें और साहित्यकार उनके दर्द को अपने साहित्य में जगह दे। अंतराष्ट्रीय सामाजिक कार्यकर्ता कमला भसीन ने मीडिया को संबोधित करते हुए कहा कि विश्व के परिदृश्य में सबसे ज्यादा पुरुष और महिलाओं में समानता आदिवासी समाज में है। वर्ष 1901 से लगातार महिलाओं की प्रतिशत में कमी आई है, परंतु आदिवासी समाज की स्थिति अच्छी है। आदिवासी समाज में दहेज प्रथा, परदा प्रथा नहीं है साथ ही उन्हें समाज में बराबरी का दर्जा भी प्राप्त है। आदिवासी समाज में बेटियों को बोझ नहीं समझा जाता है। आज परिवारों में महिलाओं का जितना शोषण होता है और कही नहीं। महिलाओं को आज तक अंतिम संस्कार का अधिकार प्राप्त नहीं है। महिलाओं को अपवित्र समझा जाता है उन्हें धार्मिक स्थलों पर जाने पर रोक है जो गलत है।

लेकिन आदिवासी महिलाओं को पुरुषों के बराबर कार्य में भागीदारी होने पर भी शिक्षा के क्षेत्र में वो पिछड़ी हुई है। पहले के मुकाबले इसमें परिवर्तन आया है। लेकिन वो आशा के अनुसार नहीं है। आदिवासी महिलाओं को शिक्षित करने के लिए सरकारों को आगे आना चाहिए। इसके लिए शिक्षा जागरूकता अभियान चलाया जाना चाहिए। एक शिक्षित महिला पूरे परिवार को शिक्षित कर सकती है। शिक्षित होने पर ही वो आत्मनिर्भर बन सकती है। समाज

के अभिजात्य वर्गों के बराबर शिक्षा द्वारा ही महिलाओं को आगे लाया जा सकता है। शिक्षित महिला ही आपने अधिकारों के बारे में जागरूक हो सकती है और बाकी महिलाओं को भी शिक्षित कर सकती है इसके द्वारा ही आदिवासी महिलाओं का विकास सम्भव है। वर्तमान समय में आदिवासी लोगों की सोच में परिवर्तन आया है आदिवासी समाज में लड़कियों की शिक्षा के महत्व को समझा जा रहा है। लड़कियों को परिवार वाले स्कूल भेजने लगे हैं। महिलाओं की स्थिति में सुधार दिखने लगा है। महिलाए चुनाव प्रक्रिया में भी भागीदारी दिखने लगी है। वोट के अधिकार को समझने लगी है। लेकिन अभी ये शुरुआती दौर में है। अभी इसमें बहुत कार्य करने की आवश्कता है। आदिवासी समाज महिलाओं के पुनर्विवाह को भी सही मानने लगे है। पहले विधवा स्त्री का पुनर्विवाह नहीं कराया जाता था लेकिन अब आदिवासी महिलाओं में पुनर्विवाह कराया जाने लगा है। शरीर को ढंकने के लिए अब आदिवासी पत्तों के इस्तेमाल की जगह कपड़ों का इस्तेमाल करने लगे हैं। लेकिन अभी भी आदिवासी मादक पदार्थों का सेवन करते है जिसे उन्होंने अपनी संस्कृति का हिस्सा बना लिया है। मादक पदार्थों के दुष्परिणामों से इन्हें जागरूक करने की आवश्यकता है।

आदिवासी महिलाएं अपने को बाकी समाज के बराबर खड़ा करने के लिए एवं समाज की महिलाओं की भांति अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही हैं। साहित्यकारों को भी अपने साहित्य में इनकी परेशानियां और उससे किस प्रकार उभरा जा सकता है इसके बारे में जानकारी देनी चाहिए। कोई भी रचना शब्दों के रूप में तब आती है जब वो अन्दर ही अन्दर संघर्ष कर चुकी होती है आदिवासी साहित्य बिना लाग-लपेट का साहित्य है ये साहित्य आदिवासी स्त्री द्वारा भोगी गई पीड़ा का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। इन्होंने आदिवासी साहित्य को उसी रूप में दिखाया जिस रूप में देखा आदिवासी साहित्य आदिवासी लोगों का यथार्थ रूप चित्रित करता है।

आदिवासी समाज में महिलाएँ पुरुषों के बराबर काम करती है समाज में इनकी स्थिति बाकी समाज की महिलाओं से कई कारणों से बेहतर है जैसे इस समाज में लिंग भेद नहीं पाया जाता महिलाओ को पर्दा प्रथा या बूंघट जैसी कुरीतियों का सामना नहीं करना पड़ता। आदिवासी महिलाओं को शिक्षित करके मुख्यधारा से जोड़ने की आवश्कता है ताकि वो अपने अधिकारों के बारे में जागरुक हो सके। शिक्षा के अभाव के कारण ही आज तक संथाली आदिवासी जाति ने jaherthan जो वहाँ का मंदिर है उसमे महिलाओं द्वारा पूजा अर्चना वर्जित है उसके खिलाफ कोई आवाज नहीं उठाई गई। महिलाओं को केवल साल में एक बार मंदिर पूजा में शामिल होने का अधिकार है । जिन महिलाओं के पुत्र होता है प्रसाद की भागीदार भी वही महिला होती है जिस स्त्री के लड़की पैदा होती है वो तो प्रसाद की भागीदार भी नहीं मानी जाती।

ये सब शिक्षा के अभाव के कारण ही है कि महिलाएं अपने ऊपर हो रहे इस भेदभाव के खिलाफ चुप है। पूजा का अधिकार सबको बराबर मिलना चाहिए, चाहे वो पुरुष हो या महिला लेकिन जब कानूनों कर बारे में जानकारी होगी तभी आदिवासी महिलाएं इसके खिलाफ आवाज उठा सकेगी। पहले सबरीमाला मंदिर में महिलाओं को पूजा करने की इजाज़त नहीं थी केवल पुरुष का मंदिर में प्रवेश मान्य था लेकिन सुप्रीम कोर्ट के फैसले के महिलाओं को सबरीमाला मंदिर में पूजा अर्चना करने का अधिकार मिल गया। ये सब रूढ़िवादी परंपरा है जिन्हें हम सभी को मिलकर तोड़ना होगा। संथाली समाज की महिलाओ को भी इसके खिलाफ आवाज उठाने की जरूरत है ताकि समाज के इन दकियानूसी परंपराओं को खत्म कर सके। एक सबसे बड़ी समस्या जो आदिवासी समाज में देखी गई है वो है विस्थापन की। जंगलों की कटाई का दुष्परिणाम ही है कि आदिवासी समाज एक जगह से दूसरी जगह पलायन कर रहा है क्योंकि इनका रोजगार जंगलों पर निर्भर है। ये ताड़ी, शराब भंग आदि मादक पदार्थों के साथ लकड़ी की बनी सामाग्री का व्यवसाय करके अपना घर चलाते है वही इनकी आमदनी का प्रमुख साधन है। सरकारों को चाहिए कि इनको सही जगह देकर उचित रोजगार की वयवस्था करें।

पहले आदिवासी समाज में बच्चों का जन्म घर में ही होता था जिसमें स्त्रियों की दशा अत्यंत दयनीय होती उनकी मृत्युदर भी उच्च होती थी, परन्तु आज ये चिकित्सालय जाकर इलाज करवाने लगे है। शिक्षित होने से परिवार-नियोजन का महत्व भी समझने लगे है। धार्मिक कट्टरता में परिवर्तन आया है पूर्व मे बलिप्रथा का प्रचलन एवं पुरुष वर्ग बाल नहीं कटवाना आदि अपने धर्म व प्रथाओं को छोड़कर धीर-धीरे छत्तीसगढ़ की संस्कृति को अपनाने लगे है। अपनी मूल भाषा को ना बोलकर आज का युवा पीढ़ी हिन्दी/छत्तीसगढ़ी का प्रयोग करने लगे है।

निष्कर्ष

आदिवासी जनजाति एक जगह से दूसरी जगह पलायन करते रहते हैं इसलिए ना तो ये लोग एक जगह रहकर अपना रोजगार कर सकते है और नहीं अपने बच्चों की शिक्षा का ध्यान रख सकते हैं। वर्तमान समय में नई पीढ़ी शिक्षित नहीं होगी तो ये विस्थापन की समस्या को निवारण मुश्किल है। आदिवासी समाज को शिक्षा और रोजगार की व्यवस्था करना सरकारों का कर्तव्य है। शिक्षित होने पर ही ये समाज नई तकनीक को सीख कर अपने और अपने समाज का विकास कर सकता है। जनजातीय समाज में मद्यपान सेवन परंपरा व संस्कृति में ही है वे स्वयं ही महुआ व अन्य पदार्थो शराब पर ही बनाते है तथा बेचते भी है यह उनकी आमदनी का एक जरिया है परन्तु वर्तमान समय में नशे की समस्या बढ़ती जा रही है। इनके

अलावा जनजातियों में भी गुटखा, तम्बाखू, शराब आदि का सेवन बढ़ता जा रहा है। जनजातीय संस्कृति में मद्यपान की प्रकृति इस व्यसन को और अधिक बढ़ावा दे रही है। तथा इन महिलाओं की कम आमदनी में भी इन व्यसनों के प्रयोग करने के कारण इनकी दरिद्रता व निर्धनता बढ़ती जा रही है। जंगलों की कटाई के फलस्वरूप इस जाति के लोग एक जगह से दूसरी जगह विस्थापित हो रहे हैं। विस्थापन के कारण ये लोग एक जगह अपना घर नहीं बना सकते। खानाबदोश लोगों की तरह अपना जीवनयापन करते है। आदिवासी जाति को समाज की मुख्यधारा के साथ जोड़कर ही इनका सर्वांगीण विकास सम्भव हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. अग्रवाल, रोहिणी : समकालीन हिन्दी उपन्यास और दिकू समाज का आदिवासी चिंतन, कथाक्रम, अक्तूबर-दिसम्बर 2011
2. टेटे, वंदना :आदिवासी साहित्य परम्परा और प्रयोजन, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, रांची (झारखंड), संस्करण : 2013,
3. गुप्ता, रमणिका : आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2008
4. मीणा, गंगा सहाय : आदिवासी साहित्य, आदिवासी दर्शन और समकालीन साहित्य सृजन त्रैमासिकी, अप्रेल-जून 2015,
5. स्त्री विमर्श का आइना Written by जनसत्ता March 8, सागरिका : स्त्री विमर्श आलेख : स्त्री विमर्श का स्वरूप/ भावना संथाली महिलाओं को 'जाहेरथान' में जाने की मनाही क्यों
6. रवि प्रकाश, रांची से, बीबीसी हिंदी के लिए 10 अक्टूबर 2018
7. वर्तमान समाज में दलित स्त्री का दोहरा शोषण कुमार झा पूनम लखानी महिला अध्ययन एवं विकास केंद्र काशी हिन्दू विश्वविद्यालय 8 दुबे लीला, 19992 - महिलाए और विकास म.प्र.हि.ग्र.अकादमी का प्रकाशन, भारत की सांस्कृतिक विरसत, भोपाल
9. सच्चिदानंद सर्वे आफ सोशियोलाजी एण्ड सोशल एन्थ्रोपोलाजी
10. दुबे श्यामाचरण-1992 विकास का समाज शास्त्र वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. तिवारी शिवकुमार: म.प्र.की जनजातियाँ, म.प्र.हिन्दी एवं ग्रंथ अकादमी, भोपाल 19751
12. वार्षिक प्रतिवेदन : आदिमजाति एवं अनु.जाति क्षेत्रीय विकास प्राधिकरण बिलासपुर।
13. भारत में स्त्री विमर्श और स्त्री संघर्ष: इतिहास के झरोखे से Deepshikha Banaras February 2, 2017
14. आदिवासी स्वर और नई शताब्दी : रमणिका गुप्ता
15. आदिवासी विमर्श : चुनौतियाँ और संभावनाएं : गंगा सहाय मीणा
16. राजनीतिक नक्शे में गायब होता उपन्यास : चंदन श्रीवास्तव
17. आदिवासी अस्मिता और समकालीन हिन्दी कविता : गंगा सहाय मीणा
18. आदिवासी कविताओं में विद्रोही स्वर : गणेश dk

ISSN 2278 - 0327

माध्यमिक स्तर के छात्रों की व्यावसायिक रूचि पर उनके बौद्धिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन

श्वेता कुमारी
शोधार्थी, शिक्षा संकाय
मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

डॉ. प्रीति शर्मा
विभागाध्यक्ष (एम.एड.),
मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

प्रस्तुत शोध पत्र में माध्यमिक स्तर के छात्रों की व्यावसायिक रुचि पर उनके बौद्धिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। न्यादर्श के रूप में 100 छात्रों का चयन कर उन पर डॉ. एस. पी. कुलश्रेष्ठ के 'व्यावसायिक रुचि प्रपत्र' तथा डॉ. पी. एन. मेहरोत्रा के 'मिक्सड ग्रुप टेस्ट ऑफ इंटेलीलेन्स' का प्रशासन किया गया तथा मिक्सड ग्रुप टेस्ट ऑफ इंटेलीलेन्स के प्राप्तांकों के आधार पर छात्रों को उच्च तथा निम्न बौद्धिक स्तर वर्गों में विभाजित करके छात्रों की विभिन्न क्षेत्रों में व्यावसायिक रुचि पर उनके बौद्धिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन किया गया। प्राप्त परिणामों के अनुसार माध्यमिक स्तर के छात्रों की व्यावसायिक रुचि के साहित्यिक, वाणिज्यिक, कला, सामाजिक तथा गृह संबंधी क्षेत्रों पर बौद्धिक स्तर (उच्च व निम्न) का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया जबकि वैज्ञानिक, प्रशासनिक, निर्माण संबंधी, कृषि तथा प्रभुत्वशाली क्षेत्रों पर बौद्धिक स्तर (उच्च व निम्न) का सार्थक प्रभाव पाया गया गया।

मुख्य शब्दः माध्यमिक स्तर, व्यावसायिक रुचि, बौद्धिक स्तर

मनुष्य इक्कीसवीं सदी में पदार्पण कर इस सदी के दो दशक से अधिक का समय तय कर चुका है। सूचना तकनीकी, औद्योगिकीकरण तथा वैश्वीकरण के इस युग में प्रत्येक देश विकसित देशों की श्रेणी में आने हेतु कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए अपने शिक्षा तंत्र को चहुँमुखी ओर से सशक्त, समर्थ तथा गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए अपरिहार्य रूप से प्रयासरत है। कम्प्यूटर एवं सूचना तकनीकी के क्षेत्र में क्रांति होने के कारण भारत में 4000 से भी अधिक राष्ट्रीय तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियां कार्यरत हैं। कम लागत वाले घरेलू व कुटीर उद्योग धंधे, जिनको कि गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा का आधारभूत अंग माना है, वह अलग हैं, वर्तमान में प्रौद्यौगिकी व तकनीकी के माध्यम से कुटीर उद्योगों के जाल को फैलाने व इन व्यवसायों के प्रति रुचि, रूझान, ज्ञान देने की आवष्यकता है। इन सब कार्यों के लिए कुषल मानव शक्ति की आवश्यकता होती है, इसलिए शिक्षा के व्यावसायीकरण की आवश्यकता महसूस की गई, क्योंकि हाईस्कूल स्तर पर ही बालक की योग्यतायें व रुचियां स्पष्ट होने लगती है। उपरोक्त उद्देष्यों की पूर्ति हेतु वर्तमान समय में विद्यार्थियों के लिए उचित मार्गदर्शन प्रदान करने की आवश्यकता है, जिससे वह सही व अपनी रूचि अनुसार व्यवसाय का चुनाव कर सके। विभिन्न शोधों से ज्ञात हुआ है, कि बच्चे प्रायः ऐसे व्यवसाय को चयनित कर लेते हैं, जिनमें उनकी कोई रूचि नहीं होती और असफलता का मुँह देखना पड़ता है, अतः इस दिशा में अनुसंधान आवश्यक है। विद्यार्थियों की व्यावसायिक रूचि उनके परिवार व उनके बौद्धिक स्तर से प्रभावित होती है, इस तथ्य की वैज्ञानिक ढंग से जानकारी के लिए शोध की आवश्यकता है। जिससे ज्ञात हो सके कि वर्तमान औद्योगिकीकरण के युग में अधिकांशतः विद्यार्थियों द्वारा कौन से व्यावसायिक क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जा रही है, जिससे उन वरिष्ठता प्राप्त व्यावसायिक क्षेत्रों में अधिक कुशल विशेषज्ञ व सुविधाएं प्रदान कर, छात्रों का उपर्युक्त मार्गदर्शन किया जा सके। साथ ही यह भी आवश्यक है कि छात्र अपनी रुचि के अनुसार व्यवसाय या विषयों का चयन करें, जिससे भविष्य में उन्हें सफलता प्राप्त हो सके। इसी सभी बातों को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की व्यावसायिक क्षेत्रों से सम्बन्धित रूचियों पर उनके बौद्धिक स्तर का प्रभाव ज्ञात करने का प्रयास, इस अध्ययन द्वारा किया है।

प्रस्तुत शोध से संबंधित पूर्व में भी कुछ शोध कार्य किये गये हैं जैसे – **साहेब, एस. जे.** (1980) ने अपने अध्ययन में पाया कि छात्रों की शैक्षिक क्षेत्र में शैक्षिक योग्यता बेहतर थी, उनमें नेतृत्व, लेखन, विज्ञान योग्यता, एवं शारीरिक कार्य क्षमता भी प्रदर्शित हुई। छात्रों की व्यावसायिक रूचि एवं व्यावसायिक पसंद पर सामाजिक–आर्थिक स्तर का प्रभाव नहीं था। **मैरी, जॉन** (1981) के अध्ययन के निष्कर्षतः ज्ञात हुआ कि मध्यम एवं उच्च आय समूह के किशोरों की तुलना में निम्न आय समूह एवं संस्थागत किशोर भविष्य की दृष्टि से कम सोचते है। किशोरों की व्यावसायिक रूचि का प्रत्यक्ष सम्बन्ध उनके सामाजिक–आर्थिक स्तर के साथ पाया गया। **तोमर,** (1985) के अध्ययन के निष्कषर्तः ज्ञात हुआ कि किशोरों की व्यावसायिक रूचि में उनकी समाजिक–आर्थिक स्थिति के आधर पर अंतर देखा गया। किशोरों की व्यावसायिक पसंद एवं व्यावसायिक सम्मान में समानता पाई गई। **आफशान** (1991) के अध्ययन के निष्कर्षतः

ज्ञात हुआ कि शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं के चारित्रिक विशेषताओं में उनके माता-पिता की शिक्षा या व्यवसाय के आधार पर कोई भिन्नता नहीं पाई गई। प्रतिभाशाली शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं की व्यावसायिक रूचियां लगभग समान पाई गई है। **मोहपात्रा, मंजरी मंजुला** (2004) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान तथा गणना के क्षेत्र में छात्राओं की रूचि छात्रों से सार्थक रूप से उच्च पाई गई, व्यापार के क्षेत्र में छात्र व छात्राओं की रूचि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि कला के क्षेत्र में छात्रों की रूचि छात्राओं से सार्थक रूप से उच्च पाई गई। **गनावा, निवेदिता** (2006) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि उच्च पारिवारिक वातावरण व उच्च आय वर्ग वाले किशोरों की व्यवसायिक रूचि वाणिज्यक संबंधि कार्यों में सर्वाधिक पाई गई तथा कृषि संबंधी व्यवसायों में सबसे कम पाई गई। उच्च पारिवारिक वातावरण व निम्न आय वर्ग वाले किशोरों की सबसे अधिक रूचि साहित्यक गतिविधियों में पाई गई जबकि किशोरियों की रूचि गृह संबंधी कार्यों में पाई गई। निम्न पारिवारिक वातावरण व निम्न आय वर्ग के किशोर एवं किशोरियों की रूचि गृह कार्य संबंधी कार्यों में पाई गई। अभिभावाकों की शिक्षा का किशोरों की शैक्षणिक योग्यता पर सार्थक प्रभाव पाया गया। व्यापारों में संलग्न परिवार के किशोर व किशोरियों की शैक्षणिक रूचि निम्न स्तर की पाई गई। उच्च एवं निम्न आर्थिक स्तर का सार्थक प्रभाव व्यावसायिक रूचि के निर्धारण पर पाया गया। निम्न पारिवारिक वातावरण का किशोरों की शैक्षणिक स्थिति पर नकारात्मक प्रभाव पाया गया। **त्रिवेदी, दिव्या** (2009) ने अपने अध्ययन में पाया कि लड़के एवं लड़कियों की व्यावसायिक रूचियों में भिन्नता पाई जाती है। शिक्षित परिवार के लड़के-लड़कियों की व्यवसायिक रूचियां लगभग समान पाई गई। परिवार की सामाजिक एवं आर्थिक स्तर का व्यावसायिक रूचि पर कोई प्रभाव नहीं पाया गया। **बघेल, हेमलता एवं चतुर्वेदी, वंदना** (2013) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की व्यवसायिक रूचि का व्यक्तित्व घटक, सामाजिक-आर्थिक स्तर से सार्थक धनात्मक सहसंबंध पाया गया। **पंवार, मोहन सिंह एवं पाण्डे, सीमा** (2017) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि माध्यमिक स्तर की उच्च एवं निम्न पारिवारिक वातावरण वाली छात्राओं के मध्य व्यावसायिक रुचि के साहित्यिक, वाणिज्यिक, निर्माण संबंधी, कला, कृषि, सामाजिक क्षेत्रों में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि वैज्ञानिक, प्रशासनिक, प्रभुत्वशाली, गृह संबंधी क्षेत्रों में सार्थक अंतर पाया गया तथा उच्च पारिवारिक वातावरण वाली छात्राओं में वैज्ञानिक, प्रशासनिक, प्रभुत्वशाली क्षेत्रों में रुचि निम्न पारिवारिक वातावरण वाली छात्राओं की तुलना में बेहतर पाई गई परंतु निम्न पारिवारिक वातावरण वाली छात्राओं में गृह संबंधी क्षेत्र में रुचि उच्च पारिवारिक वातावरण वाली छात्राओं की तुलना में बेहतर पाई गई। **पठारिया नीतु** (2021) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि माध्यमिक स्तर के छात्र व छात्राओं के मध्य साहित्यिक, वाणिज्यिक, निर्माण संबंधी, कला क्षेत्र क्षेत्र में रूचि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। माध्यमिक स्तर के छात्र व छात्राओं के मध्य वैज्ञानिक, प्रशासनिक, कृषि, प्रभुत्वशाली, सामाजिक, गृह संबंधी क्षेत्र में रूचि में सार्थक अंतर पाया गया तथा माध्यमिक स्तर के छात्रों में, माध्यमिक स्तर की छात्राओं की तुलना में वैज्ञानिक, कृषि, सामाजिक क्षेत्र में बेहतर रूचि पाई गयी जबकि माध्यमिक स्तर की छात्राओं में, माध्यमिक स्तर के छात्रों की तुलना में प्रशासनिक, प्रभुत्वशाली, गृह संबंधी क्षेत्र में बेहतर रूचि पाई गयी। व्यावसायिक रूचि पर किये गए विभिन्न शोध कार्यों के परिणाम यह प्रदर्शित कर रहे हैं, कि व्यावसायिक रुचि के निर्धारण में बुद्धि की भूमिका किस हद तक होती है, इस विषय पर बहुत अधिक अनुसंधान कार्य नहीं हुए हैं, अत: शोधकर्ता ने इस विषय पर शोध करने का निश्चय किया और अपने शोधकार्य के लिए शोध समस्या के लिए निम्न विषय का चयन किया है - ''माध्यमिक स्तर के छात्रों की व्यावसायिक रुचि पर उनके बौद्धिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन।''

अध्ययन के उद्देश्य:-

माध्यमिक स्तर के छात्रों की व्यावसायिक रुचि पर उनके बौद्धिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पना:-

माध्यमिक स्तर के छात्रों की व्यावसायिक रुचि पर उनके बौद्धिक स्तर का सार्थक प्रभाव नहीं पाया जायेगा।

उपकरण:-

1. व्यावसायिक रूचि प्रपत्र - डॉ. एस. पी. कुलश्रेष्ठ
2. बौद्धिक स्तर मापनी (मिक्सड ग्रुप टेस्ट ऑफ इंटेलीलेन्स) - डॉ. पी. एन. मेहरोत्रा

विधि:-

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु होशंगाबाद जिले के माध्यमिक विद्यालयों की कक्षा दसवीं में अध्ययनरत् 100 छात्रों का चयन यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा कर उन पर डॉ. एस. पी. कुलश्रेष्ठ के 'व्यावसायिक रूचि प्रपत्र' तथा डॉ. पी. एन. मेहरोत्रा के 'मिक्सड ग्रुप टेस्ट ऑफ इंटेलीलेन्स' का प्रशासन किया गया तथा बौद्धिक स्तर मापनी के प्राप्तांकों के आधार पर छात्रों को उच्च तथा निम्न बौद्धिक स्तर वर्गों में विभाजित करके छात्रों की विभिन्न क्षेत्रों में व्यावसायिक रूचि पर बुद्धि के प्रभाव का अध्ययन करने हेतु मॉस्टर शीट तैयार की गई। मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया एवं प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त किये गये।

परिणामों का विश्लेषण:-

परिकल्पना : माध्यमिक स्तर के छात्रों की व्यावसायिक रुचि पर उनके बौद्धिक स्तर का सार्थक प्रभाव नहीं पाया जायेगा।

तालिका

माध्यमिक स्तर के छात्रों की व्यावसायिक रुचि के विभिन्न क्षेत्रों पर उनके बौद्धिक स्तर के प्रभाव संबंधी तुलनात्मक परिणाम

व्यावसायिक रुचि के क्षेत्र	बौद्धिक स्तर	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
साहित्यिक	उच्च	59	8.83	3.27	0.47	> 0.05
	निम्न	41	9.15	3.39		
वैज्ञानिक	उच्च	59	11.53	3.89	2.92	< 0.01
	निम्न	41	9.46	3.23		
प्रशासनिक	उच्च	59	12.34	4.17	3.52	< 0.01
	निम्न	41	9.56	3.67		
वाणिज्यिक	उच्च	59	8.47	3.11	0.83	> 0.05
	निम्न	41	7.95	3.05		
निर्माण संबंधी	उच्च	59	8.19	3.27	2.17	< 0.05
	निम्न	41	9.56	2.95		
कला	उच्च	59	8.76	3.61	0.72	> 0.05
	निम्न	41	9.27	3.38		
कृषि	उच्च	59	8.29	3.46	2.34	< 0.05
	निम्न	41	9.88	3.25		
प्रभुत्वशाली	उच्च	59	12.37	3.95	3.54	< 0.01
	निम्न	41	9.68	3.58		
सामाजिक	उच्च	59	9.86	3.97	0.48	> 0.05
	निम्न	41	10.22	3.49		
गृह संबंधी	उच्च	59	8.97	3.61	1.42	> 0.05
	निम्न	41	10.05	3.84		

स्वतंत्रता के अंश – 98

0.05 स्तर के लिये निधार्रित न्यूनतम मान – 1.98

0.01 स्तर के लिये निधार्रित न्यूनतम मान – 2.63

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के उच्च एवं निम्न बौद्धिक स्तर वाले छात्रों के मध्य व्यावसायिक रुचि के साहित्यिक, वाणिज्यिक, कला, सामाजिक तथा गृह संबंधी क्षेत्रों में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि इनके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमशः 0.47, 0.83, 0.72, 0.48, 1.42 स्वतंत्रता के अंश 98 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान 1.98 से कम हैं जबकि वैज्ञानिक, प्रशासनिक, निर्माण संबंधी, कृषि तथा प्रभुत्वशाली क्षेत्रों में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर है, क्योंकि इन क्षेत्रों के लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमशः 2.92, 3.52, 2.17, 2.34, 3.54 स्वतंत्रता के अंश 98 पर सार्थकता के 0.05, 0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान क्रमशः 2.63, 2.63, 1.98, 1.98, 2.63 से अधिक हैं। अतः इन परिणामों के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है माध्यमिक स्तर के उच्च एवं निम्न बौद्धिक स्तर वाले छात्रों के मध्य व्यावसायिक रुचि के साहित्यिक, वाणिज्यिक, कला, सामाजिक तथा गृह संबंधी क्षेत्रों में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि व्यावसायिक रुचि के वैज्ञानिक, प्रशासनिक, निर्माण संबंधी, कृषि तथा प्रभुत्वशाली क्षेत्रों में सार्थक अंतर पाया गया तथा उच्च बौद्धिक स्तर वाले छात्रों में वैज्ञानिक, प्रशासनिक, प्रभुत्वशाली क्षेत्रों में रुचि निम्न बौद्धिक स्तर वाले छात्रों की तुलना में अधिक पाई गई परंतु निम्न बौद्धिक स्तर वाले छात्रों में निर्माण संबंधी तथा कृषि क्षेत्रों में रुचि उच्च बौद्धिक स्तर वाले छात्रों की तुलना में अधिक पाई गई, अर्थात् व्यावसायिक रुचि के साहित्यिक, वाणिज्यिक, कला, सामाजिक तथा गृह संबंधी क्षेत्रों पर बौद्धिक स्तर का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया जबकि वैज्ञानिक, प्रशासनिक, निर्माण संबंधी, कृषि तथा प्रभुत्वशाली क्षेत्रों

पर बौद्धिक स्तर का सार्थक प्रभाव पाया गया।

निष्कर्ष-

माध्यमिक स्तर के छात्रों की व्यावसायिक रुचि के साहित्यिक, वाणिज्यिक, कला, सामाजिक तथा गृह संबंधी क्षेत्रों पर बौद्धिक स्तर (उच्च व निम्न) का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया जबकि वैज्ञानिक, प्रशासनिक, निर्माण संबंधी, कृषि तथा प्रभुत्वशाली क्षेत्रों पर बौद्धिक स्तर (उच्च व निम्न) का सार्थक प्रभाव पाया गया तथा उच्च बौद्धिक स्तर वाले छात्रों में वैज्ञानिक, प्रशासनिक, प्रभुत्वशाली क्षेत्रों में रुचि निम्न बौद्धिक स्तर वाले छात्रों की तुलना में अधिक पाई गई परंतु निम्न बौद्धिक स्तर वाले छात्रों में निर्माण संबंधी तथा कृषि क्षेत्रों में रुचि उच्च बौद्धिक स्तर वाले छात्रों की तुलना में अधिक पाई गई।

// **संदर्भ ग्रंथ सूची**//

1. भटनागर, आर.पी. (2001): गाइडेन्स एण्ड काउंसलिंग इन एजुकेशन एण्ड साइकोलॉजी, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
2. चौबे, सरयू प्रसाद (1966): मनोविज्ञान एवं शिक्षा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, अस्पताल मार्ग, आगरा, आठवां संस्करण
3. भटनागर, सुरेश (2007): शिक्षा मनोविज्ञान, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
4. भटनागर, आर.पी. (2001): गाइडेन्स एण्ड काउंसलिंग इन एजुकेशन एण्ड साइकोलॉजी, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
5. गुप्ता, एस. पी. (2005): सांख्यिकीय विधियां, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
6. हकीम, एम.ए.; अस्थाना, विपिन एवं जायसवाल, सीताराम (1991): व्यक्तित्व मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
7. जायसवाल, सीताराम (2005): शिक्षा में निर्देशन और परामर्श, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
8. मिश्रा, मंजु (2008): शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
9. ओबेराय, एस. सी. (2008): शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन एवं परामर्श, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ
10. गनावा, निवेदिता (2006) ''पारिवारिक वातावरण का किशोरों की शैक्षणिक योग्यता एवं व्यवसाय रूचि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन'', अप्रकाशित शोध प्रबंध, गृह विज्ञान संकाय, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल
11. पठारिया नीतु (2021) ''माध्यमिक स्तर के छात्र व छात्राओं की व्यावसायिक रुचि का तुलनात्मक अध्ययन'', अप्रकाशित लघु शोध प्रबंध, शिक्षा संकाय, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल
12. पंवार, मोहन सिंह एवं पाण्डे, सीमा (2017) ''माध्यमिक स्तर की छात्राओं की व्यावसायिक रूचि पर पारिवारिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन'', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल सांइस एण्ड मैनेजमेंट स्टडीज (आईजेएसएसएमएस), वॉल्युम 3, नम्बर 1, जुलाई 2017, पेज नम्बर 79-82
13. **Aggarwal, Dr. Meenu (2003)** : Manual of Home Environment Scale, Lal Bahadur Shastri Teacher Training Colleage, Jaipur
14. **Afshan (1991)** ''Gifted rural and urban girls : Their vocational interest and creativity'', M.Phil ., Edu. Univ. of Kashmir , Vth Survey of research in education, 1988-1992 , Vol -2, pg. 1339.
15. **Kulshrestha, S. P. (1965)** : Manual of Vocational Intrest Record, National Psychological Corporation, Agra
16. **Mary, John (1981)** ''Futuro pesspeetive, self concept, and vocational interest of adolescent'' Ph.D. Psy, Madras U. , IV th survey of research in Edu. , Vol – 2 , 1983 -88 ,Pg No. 535 , S.No. 597.
17. **Mohapatra, Manjula Manjari (2004) "**Prediction of vacational interests of +2 students in relation to their values, Occupational Aspiration level and academic achievements", Asian journal of psychology and education, vol. 37, No.1-2, Pg. No. 22-24
18. **Saheb, S.J. (1980)** ''A study of academic & non academic abilities in relation to the vocational interest of the entrants to the + 2 stage of schools in family nadu'', Ph.D. Edu., MKU.IV survey of research in education, vol-II 1983-88, Pg No. 1292-1293.
19. **Tomar, J.P.S. (1985)** ''A study of occupational interest trends of adolescents and their relation with prevaleut job trends of employment in eastern uttar Pradesh'', *Ph.D. Edu. Avadh Univ. IV th Survey of research in education, Vol.I, 1983.*
20. **Baghel, Hemlata and Chaturvedi, Vandana (2013)** ''Impact of Personality and Socio-Economic status towards Vocational interests of Secondary School Students'', *Journal of multidicsiplnary educational research (JMER), Volume I, Issue I, January 2013, Pg. No. 44-48*
21. **Trivedi, Divya (2015)** "Effect Of Home Environment On Vocational Interest Of Higher Secondary Students", *Planning of Social Research, Volume 3, Issue 3, July 2015, page no. 19-22*

ISSN 2278 - 0327

जैविक घड़ी के पालन में आधुनिक रोगों के निवारण की सम्भावनाओं का समीक्षात्मक अध्ययन

रवि दूबे
शोधार्थी, योग विज्ञान
श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़, राजस्थान

सारांश– प्रस्तुत शोध पत्र आधुनिक समय में विकृत जीवनशैली के कारण बढ़ते रोगों के उपचार में जैविक घड़ी के पालन तथा उसके प्रभाव का अध्ययन है। आधुनिक जीवनशैली की वजह से बढ़ते रोग चिकित्सा जगत के लिए चिन्ता का विषय बन चुका है। रोग न सिर्फ शारीरिक बल्कि मानसिक स्तर पर भी उसी गति से बढ रहे हैं।

इस शोध पत्र में जीवन शैली से उत्पन्न रोगों पर परिवर्तित तथा प्राकृतिक जीवन शैली अपनाकर किस प्रकार स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है, उन पहलुओं का अध्ययन किया गया है। जैविक घड़ी के चक्रों में समय नियोजन की महत्ता, उपयोग तथा परिणाम के बिन्दुओं का विवेचन है। उन कारणों पर भी चर्चा की गयी है, जिनकी वजह से जीवन शैली बिगड़ रही है। शोध पत्र का उद्देश्य सामाजिक हित में है, जीवन शैली का महात्व समाज में विस्तारित हो, प्राकृतिक स्वास्थ्य की समझ तथा चेतना का विकास हो, इसी दिशा में यह अध्ययन–प्रयास है।

मुख्य शब्द– जैविक घडी, जीवन शैली, आधुनिक रोग, स्वास्थ्य, उपचार, प्राकृतिक जीवन, संयम, पालन।

आधुनिक रोगों का बढ़ता प्रभाव–

आधुनिक जीवन शैली में दौड़ता इंसान प्रकृति के संतुलित प्रवाह से कहीं आगे निकल चुका है। वैश्वीकरण का प्रभाव तथा प्रतिस्पर्धा में सफल होने की चुनौतियाँ स्वास्थ्य के प्राकृतिक नियमों को कहीं पीछे छोड़े जा रही हैं। परिणामत: जीवन शैली से नये रोगों का पैदा होना तथा उनका जटिल रोगों में परिवर्तित होना, अब सामान्य होता जा रहा है। जीवनशैली से जुड़े हुए रोग एक नई चुनौती के रूप में उभरकर सामने आ रहे हैं। इस मामले में भारत व चीन जैसे देशों में तो स्थिति और भी खराब है।

वर्तमान में सबसे बड़ी समस्या यह है कि लक्षणों का तो इलाज करना चाहते हैं, लेकिन रोग की मूल जड़ के इलाज के प्रति ना तो सजग हैं और ना ही जिम्मेदार। उदाहरण के रूप में हम मोटापे की बात कर सकते हैं। जैसा कि सर्वज्ञात है कि मोटापा कई बीमारियों का मूल कारण है। अक्सर लोग मोटापा घटाने की बजाय दर्दनिवारक दवायें लेते हैं और अंतोगत्वा इसका अंतिम परिणाम घुटने के ऑपरेशन के रूप में सामने आता है। इस बात को लेकर लोग पूरी तरह से अनिभिज्ञ रहते हैं कि इस समस्या के निवारण के लिए सबसे पहले अपनी जीवनशैली में आमूल–चूल परिवर्तन करने की जरूरत हैं।

जैविक घड़ी का समय चक्र तथा कार्य–

जैविक घड़ी (Biological Clock) प्रकृति का वह चक्र है, जो ऊर्जा को शरीर के विशेष भाग में निश्चित समय तक रोककर उस भाग को कार्यशीलता के लिए नियमित बनाती है। साथ ही उस भाग का शोधन तथा विशेष कार्यक्षमता भी प्रदान करती है। जैविक घड़ी की गति का आधार पूरी तरह प्रकृति है, ना कि मानवीय स्वभाव, चिन्तन या संकल्पशक्ति। बिना किसी बाहरी आयामों से प्रभावित हुए वह अपने निश्चित चक्र में गति करती रहती है।

जैविक घड़ी के गतिचक्र तथा कार्यप्रणाली को निम्न प्रकार से समझते हैं–

प्रातःकाल 3 से 5 बजे – यह समय जीवनीशक्ति का विशेष रूप से फेफड़ो में होता है। दो गिलास से तीन गिलास गुनगुना पानी पीकर खुली हवा में घूमना एवं प्राणायाम जैसे प्रयोग करना विशेष रूप से लाभप्रद है। इस समय दीर्घ श्वसन करने से फेफड़ों की कार्यक्षमता खूब विकसित होती है। उन्हें शुद्ध प्राण वायु और ऋण आयन विपुल मात्रा में मिलने से शरीर स्वस्थ व स्फूर्तिमान होता है। यह समय ब्रह्म मुहूर्त का होता है इस समय में उठने वाले लोग बुद्धिमान व उत्साही होते है, और सोते रहने वाले जीवन को आलसी व निस्तेज पाते है। फेफड़े सम्बन्धी रोगों की चिकित्सा का यह सर्वोत्तम समय होता है। अन्य समय की अपेक्षा इस समय फेफड़ों को कहीं अधिक बेहतर बनाया जा सकता है।

प्रातःकाल 5 से 7 बजे – इस समय जीवनीशक्ति विशेष रूप से आंत में होती है। प्रात: जागरण से लेकर सुबह 7 बजे के बीच मल–त्याग एवं स्नान का लेना चाहिए । सुबह 7 के बाद जो मल – त्याग करते है उनकी आँतें मल में से त्याज्य द्रवांश का शोषण कर मल को सुखा देती हैं। इससे कब्ज तथा कई अन्य रोग उत्पन्न होते हैं। कब्ज, गैस, अपच, पेट के निचले हिस्से में दर्द व आतों की समस्या जैसी समस्याओं से निजात पाने के लिए इस समय के चिकित्सा प्रयोग विशेष लाभ दें पाते हैं।

प्रातःकाल 7 से 9 बजे – इस समय जीवनीशक्ति विशेष रूप से आमाशय में होती है। यह समय भोजन के लिए उपर्युक्त है । इस समय पाचक रस अधिक बनते हैं। भूख न लगना, कम या अधिक लगना,

पाचन सम्बन्धी समस्या को दूर करने के लिए यह समय बहुत उपयुक्त है।

प्रात:काल 9 से 11 बजे- इस समय जीवनी शक्ति अग्नाशय व प्लीहा में रहती है। किसी भी प्रकार की मधुमेह, अग्नाशय ग्रन्थि के अन्य असन्तुलन तथा प्लीहा सम्बन्धी समस्याओं के उपचार के लिए यह समय सर्वाधिक उपयुक्त है।

प्रात:काल 11 से 1 बजे - इस समय जीवनीशक्ति विशेष रूप से हृदय में होती है। दोपहर 12 बजे के आस-पास मध्याह्न-संध्या (आराम) करने की हमारी संस्कृति में विधान है। इसीलिए भोजन वर्जित है । इस समय तरल पदार्थ ले सकते है। जैसे मट्ठा पी सकते हैअथवा दही खा सकते है।

दोपहर 1 से 3 बजे - इस समय जीवनीशक्ति विशेष रूप से छोटी आंत में होती है। इसका कार्य आहार से मिले पोषक तत्त्वों का अवशोषण व व्यर्थ पदार्थों को बड़ी आँत की ओर धकेलना है। भोजन के बाद प्यास अनुरूप पानी पीना चाहिए। इस समय भोजन करने अथवा सोने से पोषक आहार-रस के शोषण में अवरोध उत्पन्न होता है व शरीर रोगी तथा दुर्बल हो जाता है ।

दोपहर 3 से 5 बजे - इस समय जीवनीशक्ति विशेष रूप से मूत्राशय में होती है। 2-4 घंटे पहले पिये पानी से इस समय मूत्र-त्याग की प्रवृति होती है।

संध्याकाल 5 से 7 बजे - इस समय जीवनीशक्ति विशेष रूप से गुर्दे में होती है । इस समय हल्का भोजन कर लेना चाहिए । शाम को सूर्यास्त से 40 मिनट पहले भोजन कर लेना उत्तम रहेगा। सूर्यास्त के 10 मिनट पहले से 10 मिनट बाद तक भोजन न करे। शाम को भोजन के तीन घंटे बाद दूध पी सकते है । देर रात को किया गया भोजन सुस्ती लाता है यह अनुभवगम्य है।

रात्रि 7 से 9 बजे - इस समय जीवनीशक्ति विशेष रूप से मस्तिष्क में होती है । इस समय मस्तिष्क विशेष रूप से सक्रिय रहता है । अत: प्रात:काल के अलावा इस काल में पड़ा हुआ पाठ जल्दी याद रह जाता है । आधुनिक अन्वेषण से भी इसकी पुष्टि हुई है।

रात्रि 9 से 11 बजे - इस समय जीवनीशक्ति विशेष रूप से रीड़ की हड्डी में स्थित मेरुरज्जु में होती है। इस समय पीठ के बल या बायीं करवट लेकर विश्राम करने से मेरूरज्जु को प्राप्त शक्ति को ग्रहण करने में मदद मिलती है। इस समय की नींद सर्वाधिक विश्रांति प्रदान करती है । इस समय का जागरण शरीर व बुद्धि को थका देता है । यदि इस समय भोजन किया जाय तो वह सुबह तक जठर में पड़ा रहता है, पचता नहीं और उसके सड़ने से हानिकारक द्रव्य पैदा होते हैं जो अम्ल (एसिड) के साथ आँतों में जाने से रोग उत्पन्न करते हैं। इसलिए इस समय भोजन करना खतरनाक है।

रात्रि 11 से 1 बजे - इस समय जीवनीशक्ति विशेष रूप से पित्ताशय में होती है । इस समय का जागरण पित्त-विकार, अनिद्रा , नेत्ररोग उत्पन्न करता है व बुढ़ापा जल्दी लाता है। इस समय नई कोशिकाएं बनती है।

रात्रि 1 से 3 बजे - इस समय जीवनीशक्ति विशेष रूप से लीवर में होती है। अन्न का सूक्ष्म पाचन करना यह यकृत का कार्य है। इस समय का जागरण यकृत (लीवर) व पाचन-तंत्र को बिगाड़ देता है । इस समय यदि जागते रहे तो शरीर नींद के वशीभूत होने लगता है, दृष्टि मंद होती है और शरीर की प्रतिक्रियाएं मंद होती हैं। अत: इस समय सड़क दुर्घटनाएँ अधिक होती हैं।

जैविक घड़ी के पालन द्वारा रोगों के निवारण के विशेष तथ्य-

प्राकृतिक जैविक घड़ी को जीवन की आदतों से अतिरिक्त मदद कर सकते हैं। पृथ्वी के चुम्बकत्व के उपयोग के लिए पूर्व व दक्षिण दिशा में सिर करके सोने की आदत डालना, कड़ी भूख लगने पर जमीन पर कुछ बिछाकर ही सुखासन में बैठकर भोजन करने की आदत डालना, क्योकि इस आसन में मूलाधार चक्र सक्रिय होने से जठराग्नि प्रदीप्त रहती है।

शरीर की जैविक घड़ी को ठीक ढंग से चलाने हेतु रात्रि को बत्ती बंद करके सोयें। इस संदर्भ में हुए शोध चौंकाने वाले हैं। देर रात तक कार्य या अध्ययन करने से और बत्ती चालू रख के सोने से जैविक घड़ी निष्क्रिय होकर भयंकर स्वास्थ्य-संबंधी हानियाँ होती हैं। अँधेरे में सोने से यह जैविक घड़ी ठीक ढंग से चलती है।

जैविक घड़ी के साथ यदि तालमेल बना सकें और नियमित रूप से उसके साथ चल सकें, तो कुछ ही दिनों में स्वास्थ्य की दिशा में क्रान्ति आ सकती है। आधुनिक जीवन शैली से उत्पन्न रोगों से लड़कर उन्हें जीता भी जा सकता है। बिना किसी दवा के प्राकृतिक स्वास्थ्य के साथ आनन्द व शान्ति को जीवन में नियमित कर सकते हैं।

अध्ययन निष्कर्ष- वस्तुत: जैविक घड़ी जीवन का प्राकृतिक चक्र है। यदि चक्र को तोड़ा ना जाए, उसके साथ चला जाए तो प्रकृति स्वयं हमारा संतुलन बनाये रखने का काम करती है। स्वास्थ्य प्रदान करती है। शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक स्वास्थ्य प्रदान करते हुए आध्यात्मिक स्वास्थ्य की ओर प्रेरित करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

- जैविक घड़ी, दो दृश्य (1970) ब्राउन, ए फ्रैंक, हेस्टिग, जे बुडलैन्ड व पामर, जॉन डी, अकादमिक प्रेस, हरियाणा
- आधुनिक जीवन शैली के रोग, कारण व निवारण (2021) कपूर, वैद्य राजेश, गवाक्ष प्रकाशन, हिमाचल प्रदेश
- योगामृत (2020) गुरुवेन्द्र, डा0 अमृत लाल, किताब महल पब्लिकेशन, दिल्ली
- प्राकृतिक चिकित्सा एवम् योग(2015)नीरज, डा0 नागेन्द्र कुमार, पापुलर बुक डिपो, जयपुर
- रोग एवम् योग(1998)कर्मानन्द, डा0 स्वामी, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत
- समस्या पेट की समाधान योग का, सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत
- प्राणशक्ति एक दिव्य विभूति (1995), ब्रह्मवर्चस, अखंड ज्योति संस्थान, मथुरा
- जीवेम शरद: शतम् (1998), ब्रहमवर्चस, अखन्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
- चिकित्सा उपचार के विविध आयाम (1998), ब्रहमवर्चस, अखन्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

माध्यमिक स्तर के छात्र व छात्राओं की कैरियर प्राथमिकता का तुलनात्मक अध्ययन

कुमार सौरभ
शोधार्थी, शिक्षा संकाय
मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

डॉ. प्रीति शर्मा
विभागाध्यक्ष (एम.एड.)
मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

प्रस्तुत शोध पत्र में माध्यमिक स्तर छात्र व छात्राओं की कैरियर प्राथमिकता का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। न्यादर्श के रूप में 75 छात्र व 75 छात्राओं का चयन कर उन पर 'कैरियर प्राथमिकता रिकार्ड' का प्रशासन किया गया तथा प्राप्त प्राप्तांकों के आधार पर छात्र व छात्राओं की विभिन्न क्षेत्रों में कैरियर प्राथमिकता का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। प्राप्त परिणामों के अनुसार माध्यमिक स्तर के छात्र व छात्राओं की कैरियर प्राथमिकता के 'दूरसंचार व पत्रकारिता', 'कला व प्रारूप', 'वाणिज्य व प्रबंध' 'चिकित्सा', 'रक्षा' तथा 'शिक्षा' क्षेत्रों में पसंद में सार्थक अंतर पाया गया जबकि 'विज्ञान व तकनीकी', 'कृषि', 'पर्यटन व सत्कार उद्योग' तथा 'कानून व व्यवस्था' क्षेत्रों में पसंद में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

मुख्य शब्द: माध्यमिक स्तर, कैरियर प्राथमिकता

प्राचीन समय में व्यक्ति सामान्यत: अपने पारम्परिक व्यवसाय को ही अपनी जीविकोपार्जन मानते थे और यह स्थिति आज से लगभग 50 वर्ष पूर्व भी बहुत हद तक विद्यामान थी, उस समय युवाओं को सफलता से कैरियर की कोई अन्य दिशा भी प्राप्त हो जाती थी। कैरियर के उस दौर में युवागण अपने कैरियर को लेकर अधिक परेशान नहीं रहते थे, लेकिन आज परिस्थितियां काफी बदल चुकी हैं। अब जब हम 21वीं सदी में प्रवेश कर चुके हैं साथ ही हमने रोजगार के विभिन्न प्रकार विकसित कर लिये हैं, जो वैभवशाली सुविधा तथा सुखी जीवन के लिए आवश्यक हैं, तब कैरियर का चयन करना बहुत मुश्किल कार्य हो गया है। वैश्वीकरण, उदारीकरण और भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर में अच्छे कैरियर के लिए प्रतियोगिता दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। इस नए दौर में युवाओं को यह बात अच्छी तरह समझना होगी कि आज औद्योगिक व सूचना क्रांति के इस दौर में कैरियर संबंधी अनेक विकल्प उनके सामने खुल गए हैं, जिनमें से वे यदि अपनी पसंद का कोई क्षेत्र चुनकर काम शुरू करें तो आसानी से सफलता प्राप्त की जा सकती है। कार्यक्षेत्र में सफलता पाने के लिए युवागण अगर कुछ बातों का अपने जीवन में ध्यान रखें तो सफलता का रास्ता उतना कठिन नही रहेगा जितना कि वे समझते हैं।

कैरियर प्राथमिकता दो शब्दों के सुमेल से बना है। कैरियर और प्राथमिकता, कैरियर शब्द का अर्थ है व्यक्ति का रूचि के साथ किया जाने वाला वह आनंददायक कार्य या व्यवसाय जो जीवकोपार्जन का उस व्यक्ति विशेष के लिये सर्वोत्तम साधन हो एवं प्राथमिकता शब्द का अर्थ जीवन में किये जाने वाले कार्य में दी जाने वाली उच्चतम वरीयता से है। इस तरह कैरियर प्राथमिकता के अर्थ को हम इस तरह समझ सकते हैं कि कैरियर प्राथमिकता का अर्थ व्यक्ति विशेष को अपने जीवन में उच्चतम वरीयता ऐसे कार्य को देना जिसमें रूचि और आनंद के साथ जीवकोपार्जन का सर्वोत्तम साधन हो, अर्थात् कैरियर प्राथमिकता का अर्थ ऐसे व्यवसाय के चयन से है जिसके द्वारा जिस क्षेत्र में व्यक्ति अपना भविष्य निर्धारण कर सके, जिससे उनका जीवन संवर सके और भावी जीवन में निष्कंटक मार्ग पर सफलता पूर्वक अग्रसर होते रहें। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु शोधार्थी ने माध्यमिक स्तर के छात्र व छात्राओं की कैरियर प्राथमिकता का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास इस अध्ययन द्वारा किया है।

प्रस्तुत शोध से संबंधित पूर्व में भी कुछ शोध कार्य किये गये हैं जैसे - **मेहता, एम. व बजाज, एस. कुमार** (1986) ने किशोरावस्था के विद्यार्थियों के व्यवसयिक चयन निर्णय क्षमता पर व्यक्तित्व और कैरियर दृष्टिकोण का प्रभाव का अध्ययन किया और पाया कि अनियंत्रित वर्ग के किशोर विद्यार्थियों के व्यक्तित्व और कैरियर दृष्टिकोण व्यवसयिक चयन पर नियंत्रित वर्ग की अपेक्षा अधिक पाया गया जबकि इस स्थिति में निम्न और उच्च व्यक्तित्व दोनों प्रकार के छात्र शामिल थे। व्यक्तित्व विकास कार्यक्रम कैरियर विकास कार्यक्रम की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली पाये गये। **आफशान** (1991) के अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं के चारित्रिक विशेषताओं में उनके माता-पिता की शिक्षा या व्यवसाय के आधार पर कोई भिन्नता नहीं पाई गई। प्रतिभाशाली शहरी एवं ग्रमीण छात्राओं की व्यावसायिक रूचियां लगभग समान पाई गई है। **यादव, आर.** (1999) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि किशोर संगीत और अन्य कलाओं से संबंधित कार्य की अपेक्षा प्रशासनिक कार्य में अधिक रूचि रखते हैं। उच्च बुद्धि वाले छात्र भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में कार्य अधिक पसंद करते हैं। **मोहपात्रा, मंजरी मंजुला** (2004) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान तथा गणना के क्षेत्र में छात्राओं की रूचि छात्रों से सार्थक रूप से उच्च पाई गई, व्यापार के क्षेत्र में छात्र व छात्राओं की रूचि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि कला के क्षेत्र में छात्रों की रूचि

छात्राओं से सार्थक रूप से उच्च पाई गई। **विकास, वरूण** (2008) ने स्नातक स्तर पर विद्यार्थियों का आधुनिकीकरण के प्रति अभिवृत्ति का उनके लिंग एवं व्यवसयिक शिक्षा के संदर्भ में अध्ययन किया और पाया कि स्नातक स्तर पर लिंग एवं व्यवसायिक शिक्षा के आधार विद्यालयों के आधुनिकीकरण के प्रति अभिवृति में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया। **त्रिवेदी, दिव्या** (2009) ने अपने अध्ययन में पाया कि लड़के एवं लड़कियों की व्यावसायिक रूचियों में भिन्नता पाई जाती है। शिक्षित परिवार के लड़के-लड़कियों की व्यवसायिक रूचियां लगभग समान पाई गई। परिवार के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर का व्यावसायिक रूचि पर कोई प्रभाव नहीं पाया गया। **बघेल, हेमलता एवं चतुर्वेदी, वंदना** (2013) ने अपने अध्ययन के निष्कषर्तः पाया कि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की व्यवसायिक रूचि का व्यक्तित्व घटक, सामाजिक-आर्थिक स्तर से सार्थक धनात्मक सहसंबंध पाया गया। **पाण्डे, ए.** (2017) ने अपने अध्ययन के निष्कषर्तः पाया कि विशिष्ट किशोरों में सामान्य किशोरों की तुलना में बेहतर व्यवसायिक रूचि पायी गयी। कक्षा 12वीं के किशोरों में कक्षा 10वीं के किशोरों की तुलना में बेहतर व्यवसायिक रूचि पाई गई। आयु, शिक्षा तथा बुद्धि में वृद्धि के साथ व्यवसायिक रूचि में वृद्धि पाई गयी। **सिंह, उपमा एवं पाण्डेय, अनामिका** (2018) ने अपने अध्ययन के निष्कषर्तः पाया कि माध्यमिक स्तर की शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र की छात्राओं की कैरियर प्राथमिकता के दूरसंचार व पत्रकारिता, कला व प्रारूप, विज्ञान व तकनीकी, चिकित्सा, पर्यटन व सत्कार उद्योग, कानून व व्यवस्था, शिक्षा क्षेत्रों में रूचि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि कैरियर प्राथमिकता के कृषि, वाणिज्य व प्रबंध, रक्षा क्षेत्रों में रूचि में सार्थक अंतर पाया गया तथा ग्रामीण क्षेत्र की छात्राओं में, शहरी क्षेत्र की छात्राओं की तुलना में कैरियर प्राथमिकता के कृषि, वाणिज्य व प्रबंध, रक्षा क्षेत्रों में बेहतर रूचि पाई गई।

उद्देश्यः- माध्यमिक स्तर के छात्र व छात्राओं की कैरियर प्राथमिकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाः- माध्यमिक स्तर के छात्र व छात्राओं की कैरियर प्राथमिकता के विभिन्न क्षेत्रों में पसंद में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

उपकरणः- कैरियर प्राथमिकता रिकार्ड (C.P.R.)- डॉ. विवेक भार्गव व राजश्री भार्गव

विधिः- प्रस्तुत शोध कार्य हेतु भोपाल जिले के माध्यमिक विद्यालयों की कक्षा दसवीं में अध्ययनरत् 150 विद्यार्थियों (75 छात्र एवं 75 छात्राएं) का चयन साधारण यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा करके उन पर 'कैरियर प्राथमिकता रिकार्ड' का प्रशासन किया गया तथा कैरियर प्राथमिकता के विभिन्न क्षेत्रों का अध्ययन करने हेतु मॉस्टर शीट तैयार की गई। मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया एवं प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त किये गये।

परिणामों का विश्लेषणः-

परिकल्पना : माध्यमिक स्तर के छात्र व छात्राओं की कैरियर प्राथमिकता के विभिन्न क्षेत्रों में पसंद में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

तालिका

माध्यमिक स्तर के छात्र व छात्राओं की कैरियर प्राथमिकता के विभिन्न क्षेत्रों में पसंद संबंधी तुलनात्मक परिणाम

कैरियर प्राथमिकता के क्षेत्र	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
दूरसंचार व पत्रकारिता	छात्र	75	9.79	3.71	2.12	< 0.05
	छात्राएं	75	8.56	3.35		
कला व प्रारूप	छात्र	75	7.50	4.03	2.43	< 0.05
	छात्राएं	75	8.96	3.29		
विज्ञान व तकनीकी	छात्र	75	9.17	4.09	1.11	> 0.05
	छात्राएं	75	9.89	3.81		
कृषि	छात्र	75	7.42	3.08	0.94	> 0.05
	छात्राएं	75	6.96	3.15		
वाणिज्य व प्रबंध	छात्र	75	8.78	3.77	2.33	< 0.05
	छात्राएं	75	7.36	3.69		
चिकित्सा	छात्र	75	12.56	4.19	2.73	< 0.01
	छात्राएं	75	14.39	3.97		
रक्षा	छात्र	75	10.67	3.55	3.97	< 0.01
	छात्राएं	75	8.29	3.74		
पर्यटन व सत्कार उद्योग	छात्र	75	9.59	3.65	0.47	> 0.05
	छात्राएं	75	9.34	3.23		
कानून व व्यवस्था	छात्र	75	8.67	4.13	0.89	> 0.05
	छात्राएं	75	9.25	3.88		
शिक्षा	छात्र	75	10.13	3.64	2.86	< 0.01
	छात्राएं	75	11.79	3.45		

स्वतंत्रता के अंश - 148

0.05 स्तर के लिये निधार्रित न्यूनतम मान - 1.98

0.01 स्तर के लिये निधार्रित न्यूनतम मान - 2.61

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से यह स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर के छात्र व छात्राओं की कैरियर प्राथमिकता के 'दूरसंचार व पत्रकारिता', 'कला व प्रारूप', 'वाणिज्य व प्रबंध' 'चिकित्सा', 'रक्षा' तथा 'शिक्षा' क्षेत्रों में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर है, क्योंकि कैरियर प्राथमिकता के 'दूरसंचार व पत्रकारिता', 'कला व प्रारूप' तथा 'वाणिज्य व प्रबंध' क्षेत्रों के लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमशः 2.12, 2.43, 2.33 स्वतंत्रता के अंश 148 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान 1.98 से

अधिक हैं साथ ही कैरियर प्राथमिकता के 'चिकित्सा', 'रक्षा' तथा 'शिक्षा' क्षेत्रों के लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमशः 2.73, 3.97, 2.86 स्वतंत्रता के अंश 148 पर सार्थकता के 0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान 2.61 से अधिक हैं जबकि कैरियर प्राथमिकता के 'विज्ञान व तकनीकी', 'कृषि', 'पर्यटन व सत्कार उद्योग' तथा 'कानून व व्यवस्था' क्षेत्रों में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि इन सभी क्षेत्रों के लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमशः 1.11, 0.94, 0.47, 0.89 स्वतंत्रता के अंश 148 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान 1.98 से कम हैं।

अतः उपरोक्त परिणामों के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है माध्यमिक स्तर के छात्र व छात्राओं की कैरियर प्राथमिकता के 'दूरसंचार व पत्रकारिता', 'कला व प्रारूप', 'वाणिज्य व प्रबंध' 'चिकित्सा', 'रक्षा' तथा 'शिक्षा' क्षेत्रों में पसंद में सार्थक अंतर पाया गया तथा कैरियर प्राथमिकता के 'दूरसंचार व पत्रकारिता', 'वाणिज्य व प्रबंध' तथा 'रक्षा' क्षेत्रों में छात्रों की पसंद, छात्राओं की तुलना में अधिक पाई गयी जबकि कैरियर प्राथमिकता के 'कला व प्रारूप', 'चिकित्सा' तथा 'शिक्षा' क्षेत्रों में छात्राओं की पसंद, छात्रों की तुलना में अधिक पाई गयी। कैरियर प्राथमिकता के 'विज्ञान व तकनीकी', 'कृषि', 'पर्यटन व सत्कार उद्योग' तथा 'कानून व व्यवस्था' क्षेत्रों में माध्यमिक स्तर के छात्र व छात्राओं की पसंद में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

निष्कर्ष–

माध्यमिक स्तर के छात्र व छात्राओं की कैरियर प्राथमिकता के 'दूरसंचार व पत्रकारिता', 'कला व प्रारूप', 'वाणिज्य व प्रबंध' 'चिकित्सा', 'रक्षा' तथा 'शिक्षा' क्षेत्रों में पसंद में सार्थक अंतर पाया गया तथा कैरियर प्राथमिकता के 'दूरसंचार व पत्रकारिता', 'वाणिज्य व प्रबंध' तथा 'रक्षा' क्षेत्रों में छात्रों की पसंद, छात्राओं की तुलना में अधिक पाई गयी जबकि कैरियर प्राथमिकता के 'कला व प्रारूप', 'चिकित्सा' तथा 'शिक्षा' क्षेत्रों में छात्राओं की पसंद, छात्रों की तुलना में अधिक पाई गयी। कैरियर प्राथमिकता के 'विज्ञान व तकनीकी', 'कृषि', 'पर्यटन व सत्कार उद्योग' तथा 'कानून व व्यवस्था' क्षेत्रों में माध्यमिक स्तर के छात्र व छात्राओं की पसंद में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

// संदर्भ ग्रंथ सूची//

1. अग्रवाल, बी. बी. (1996): आधुनिक भारतीय शिक्षा और समस्यायें, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
2. भटनागर, आशा एवं गुप्ता, निर्मला (1999): गाइडेंस एण्ड काउंसलिंग – ए थ्योरिटिकल प्रसपैक्टिव, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
3. भटनागर, आर.पी. (2001): गाइडेन्स एण्ड काउंसलिंग इन एजुकेशन एण्ड साइकोलॉजी, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
4. भाटिया, के.के. (2006): मार्गदर्शन तथा परामर्श के सिद्धांत, कल्याणी पब्लिशर्ज, नई दिल्ली
5. गुप्ता, एस. पी. (2005): सांख्यिकीय विधियां, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
6. शर्मा, आर. के. (2007): एजुकेशनल एण्ड वोकेशनल गाइडेन्स एण्ड काउंसलिंग, राधा प्रकाशन मंदिर, आगरा
7. शर्मा, एन. आर. (1995): एजुकेशनल एण्ड वोकेशनल गाइडेन्स, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
8. उपमा, सिंह एवं पाण्डेय, अनामिका (2018) ''माध्यमिक स्तर की षहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र की छात्राओं की कैरियर प्राथमिकता का तुलनात्मक अध्ययन'', इन्टरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ ह्यूमन रिसोर्स एण्ड सोशल साइंस, वॉल्युम 5, इश्यु 1, जनवरी 2018, पेज नम्बर 704–708
9. **Afshan (1991)** ''Gifted rural and urban girls : Their vocational interest and creativity'', M.Phil ., Edu. Univ. of Kashmir , Vth Survey of research in education, 1988-1992 , Vol -2, pg. 1339.
10. **Baghel, Hemlata and Chaturvedi, Vandana (2013)** ''Impact of Personality and Socio-Economic status towards Vocational interests of Secondary School Students'', *Journal of multidicsiplnary educational research (JMER), Volume I, Issue I, January 2013, Pg. No. 44-48*
11. Bhargava, Vivek and Bhargava, Rajshree (2001): **Manual of Career Preference Record (CPR),** *Har Prasad Institute of Behaviourial studies, Agra.*
12. **Bhardwaj, R.L. (1978)** ''Vocational interests as functions of creativity components, intelliguce and socio- economic status among college going students'', Ph. D., Psy. Agra Univ., IV the survey of research in edu. Vol. –I ,1983-88 Pg.-342-344,S.No. 355
13. **Mohapatra, Manjula Manjari (2004) "**Prediction of vacational interests of +2 students in relation to their values, Occupational Aspiration level and academic achievements", Asian journal of psychology and education, vol. 37, No.1-2, Pg. No. 22-24
14. **Saheb, S.J. (1980)** ''A study of academic & non academic abilities in relation to the vocational interest of the entrants to the + 2 stage of schools in family nadu'', Ph.D. Edu. , MKU.IV survey of research in education, vol-II 1983-88, Pg No. 1292-1293.
15. **Sujata, (1989)** ''Occupational choices of rural and urban youth as related to intelligence, personality, need for achievement locus of control and academic achievement'', *Ph.D.Psy. Punjab Univ. , Vth Survey of Research in Education, Vol-2 , Pg. 1925,1988-92*

ISSN 2278 - 0327

ज्योतिष शास्त्र में प्रश्न का स्थान, उद्भव एवं विकास

मेघा जोशी
शोधार्थी
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सर्वजनविदित है कि त्रयस्कन्धात्मक ज्योतिष शास्त्र भूतल पर प्रसिद्ध है। ज्योतिषशास्त्र के त्रयस्कन्धों में अनेक शाखाएं निहित है, जैसा कि आचार्य वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ बृहत्संहिता में उद्घोषित किया है – ''*ज्योतिः शास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितम्*''[1] अर्थात् ज्योतिष शास्त्र की समग्र शाखाओं को सिद्धान्त–संहिता–होरा रूपी स्कन्धों में समाहित किया गया है। इन तीनों स्कन्धों में होरा स्कन्ध की प्रसिद्धि फलकथन के लिए अत्यधिक है।

यह स्कन्ध त्रिविध कर्मों के आधार पर फलकथन करता है। इन त्रिविध कर्मजन्य फलों के कथन हेतु होरा शास्त्र की एक पद्धति प्रसिद्ध है, वह पद्धति निम्न है – संचित कर्म का फलविचार आधान कुण्डली या जन्मकुण्डली के माध्यम से किया जाता है, प्रारब्ध कर्म का फलविचार दशान्तर्दशादि के माध्यम से किया जाता है तथा क्रियमाण कर्म के फल का विचार तात्कालिक ग्रहों के राशि–नक्षत्र परिवर्तन के द्वारा किया जाता है अथवा प्रश्नकुण्डली के माध्यम से किया जाता है। अतएव होरा रूपी स्कन्ध को पाँच विभागों में विभक्त किया गया है – *जातक, ताजिक, रमल, प्रश्न और स्वप्न।*

उपर्युक्त कथित पंचस्कन्धों में प्रश्नशास्त्र का स्थान ज्योतिषशास्त्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रश्नशास्त्र में तत्काल फल का प्रतिपादन होने के कारण प्राचीनकाल से ही समाज में इसकी महती आवश्यकता रही है, इसलिए इस प्रश्नशास्त्र रूपी कल्पवृक्ष के बीज हमें वैदिक संहिताओं में भी प्राप्त होते हैं, जैसा कि शुक्ल यजुर्वेद की माध्यान्दिन संहिता में प्राप्त होता है –

''*प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुप शिक्षाया*
अभिप्रश्निनं मर्यादायै प्रश्नविवाकम्।।''[2]

ऋग्वेद में भी प्रश्न परिप्रश्न के माध्यम से अतीव गूढ़तत्त्वों का चिन्तन प्राप्त होता है। प्रश्नशास्त्र के आदिस्वरूप का दिग्दर्शन अथर्व परिशिष्ट में भी प्राप्त होता है। इतना ही नहीं बादरायण संहिता, नारदसंहिता, गर्गसंहितादि में एक–एक अध्याय प्रश्नविद्या का स्थापित है। आचार्य बादरायण ने अपने ग्रन्थ प्रश्नविद्या के अन्तर्गत प्रश्न का वैशिष्ट्य बताते हुए कहा है कि –

''*अगृहीतजातकस्य तु पृच्छाकालोऽपि जन्मसमयः स्यात्।*
भवतीति कमलयोनिर्वदति तथापरे मुनयः।।''[3]

अर्थात् किसी जातक के जन्म विवरण का अभाव होने पर उसकी समस्या का समाधान ज्योतिष की प्रश्न शाखा के माध्यम से किया जाता है। जातक के प्रश्न पूछने के समय को अथवा प्रश्न लग्न को जन्म लग्न मानकर फलविचार किया जाता है।

''*जन्मसमये यदुक्तं शुभाशुभं दिव्यदृग्भिराचार्यैः।*
पृच्छाकाले नृणां तदेव भवतीति विज्ञेयम्।।''[4]

नारद संहिता में भी प्रश्नशास्त्र के महत्त्व को प्रतिपादित करने के लिए अलग से एक अध्याय के रूप में स्थान दिया गया है। देवर्षि नारद ने अपने ग्रन्थ नारद संहिता में प्रश्न के विषय में कहा है कि –

''*पुण्यैर्निमिश्रशकुनैः प्रश्नकाले तु मंगलम्।*
दंपत्योरशुभैरेतैरशुभं सर्वतो भवेत्।।''[5]

महर्षि पाराशरकृत 'बृहत्पाराशरहोराशास्त्र' में भी एक अध्याय प्रश्न अध्याय के रूप में है। बृहत्पाराशरहोराशास्त्र में ग्रहशान्ति अध्याय से पूर्व प्रश्नाध्याय प्राप्त होता है। इस अध्याय में 47 श्लोक है। बृहत्पाराशरहोराशास्त्र के अन्तर्गत प्रश्नशास्त्र के विषय में महर्षि पाराशर मैत्रेय को ज्ञान प्रदान करते है। यही ज्ञान 'प्रश्नाध्याय' के रूप में शास्त्र में कथित है।

मैत्रेय ने कहा है कि –

''*भगवन्प्रश्नशास्त्रं तु सूचिकानां प्रकाशितम्।*
कलौ युगे तु मंदानां यज्ज्ञातुं तन्द्वदस्व मे।।''[6]

इसमें मैत्रेय भगवान पाराशर से प्रश्न शास्त्र का ज्ञान प्रदान करने के लिए निवेदन करते है। महर्षि पाराशर मैत्रेय को प्रश्न शास्त्र का ज्ञान प्रदान करते हुए कहते है कि –

''*जन्मलग्नं समासाद्य यद्यत्प्रोक्तं तु जातके।*
तत्सर्वं प्रश्न लग्नेन प्रश्नकालाद्वदेद्बुधः।।''[7]

प्रश्नशास्त्र के आर्षग्रन्थ के रूप में 'प्रश्ननारदी' नामक ग्रन्थ को स्वीकार किया गया है। इस ग्रन्थ के ग्रन्थकार स्वयं नारदजी है। इस ग्रन्थ में 32 श्लोक है। प्रश्ननारदी ग्रन्थ को नारदसंहिता के अंग के रूप में कुछ पण्डित स्वीकार करते हैं।

कालिदास के ग्रन्थ 'उत्तरकालामृत' में 'दशाफल' अध्याय के बाद ''प्रश्नखण्ड'' नामक विषय एक अध्याय के रूप में प्राप्त होता है।[8]

आचार्य बादरायण ने भी प्रश्न शास्त्र विषयक 'प्रश्न विद्या' नामक ग्रन्थ की रचना की थी।[9]

प्रश्नशास्त्र के मौलिक ग्रन्थों का विकास पांचवी सदी में प्रारम्भ हुआ। आचार्य वराहमिहिर की 'दैवज्ञवल्लभा' कृति प्रश्नशास्त्र पर आधारित है। दैवज्ञवल्लभा के मंगलाचरण में वराहमिहिर भगवान नृसिंह को प्रणाम करके प्रश्न विषयक ग्रन्थ का प्रणयन करते है –

''नत्वोद्गिरन्तमनलं भैरवमद्वैतमीश्वरं नृहरिम्।
वराहेणैषा क्रियते प्रश्ने दैवज्ञवल्लभारचना।।'' [10]

और भी –

'' *प्रश्नाक्षरैरुदयहेतुभिरुल्लसद्भिर्बाह्यस्थितैश्च शकुनैरधिगम्य सम्यक्।*
प्रष्टुः शुभं च यदि वाप्यशुभं प्रयत्नाश्रत्कालजं तदिह दैवविदाऽभिधेयम्।।''[11]

इसके अन्तर्गत आचार्य वराहमिहिर ने फलादेश की रीति बतायी है।

प्रश्नशास्त्र के विकास की भूमिका में द्वितीय सोपान के रूप में 'षट्पञ्चाशिका' नामक ग्रन्थ उपलब्ध होता है।[12] इस ग्रन्थ में सात अध्याय तथा 56 श्लोक है। इस ग्रन्थ के रचयिता वराहमिहिराचार्य के पुत्र दैवज्ञ पृथुयश है। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत निम्नलिखित विषयों का समावेश है – होरा, गमागम, जय-पराजय, शुभाशुभ, प्रवास चिन्ता, नष्ट वस्तु प्राप्ति, मिश्राध्याय।

''*च्युतिर्विलग्नाद्धिबुकाच्च वृद्धिः;*
मध्यात् प्रवासोऽस्तमयान्निवृत्तिः।
वाच्यं ग्रहैः प्रश्नविलग्नकालाद्
गृहं प्रविष्टो हिबुके प्रवासी।।''[13]

इस श्लोक में दैवज्ञ पृथुयश ने प्रश्न विचार में केन्द्र (1-4-7-10) भावों से विचारणीय बिन्दुओं का कथन किया है –

(1) लग्न से – च्युति/स्थान पतन।
(2) चतुर्थ भाव से – प्रश्नकर्ता की उन्नति।
(3) सप्तम भाव से – प्रवासी व्यक्ति का आना/न आना।
(4) दशमभाव से – यात्रा का विचार।

इस ग्रन्थ के बाद प्रश्नशास्त्र के मौलिक ग्रन्थों के रूप में भट्टोत्पलकृत 'प्रश्नज्ञान'[14] नामक ग्रन्थ प्रश्नशास्त्र की परम्परा को विकास पथ पर अग्रेसित करता है। इस ग्रन्थ में 70 आर्या है। भट्टोत्पल का समय शक सं. 888 माना गया है।[15]

इस ग्रन्थ के पश्चात् सन् 10 वीं शताब्दी में भट्टवोसरि का 'आयज्ञानतिलक' नामक ग्रन्थ प्रश्न शास्त्र के विकास के क्रम में उपलब्ध होता है। इस ग्रन्थ में ध्वज, धूम, सिंह, गज, खर, श्वान, वृष और ध्वाक्ष इन आठ आयों के माध्यम से प्रश्नफलनिर्णय किया जाता है।[16]

इसके बाद प्रश्न साहित्य में आचार्य दुर्गदेव कृत 'रिट्ठ-समुच्चय' नामक ग्रन्थ उपलब्ध होता है। आचार्य ने सन् 1089 में इस ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ में अगुलिप्रश्न, अलक्तप्रश्न, गोरोचनप्रश्न, प्रश्नाक्षरप्रश्न, शकुनप्रश्न, अक्षरप्रश्न, होराप्रश्न और लग्न प्रश्न – इन आठ प्रकार के प्रश्नों का सम्यक् विवेचन किया गया है।[17]

इसके अतिरिक्त पद्मप्रभुसूरि कृत 'भुवनदीपक या ग्रहभावप्रकाश' नामक ग्रन्थ उपलब्ध होता है।[18] पद्मप्रभुसूरि ने इस ग्रन्थ की रचना विक्रम संवत् 1294 में की थी। इस ग्रन्थ में 36 द्वार प्रकरण है तथा कुल 170 श्लोक है। इस ग्रन्थ में निम्नलिखित विषयों का समावेश किया गया है – राशिस्वामी, उच्चनीचत्व, मित्रशत्रु, राहु का गृह, केतु स्थान, ग्रहों के स्वरूप, द्वादश भावों से विचारणीय बातें, इष्टकालज्ञान, लग्न सम्बन्धी विचार, विनष्ट ग्रह, राजयोग कथन, लाभालाभ विचार, लग्नेश की स्थिति का फल, गर्भ विचार, प्रसवज्ञान, दाम्पत्य सुख के क्लेश का विचार, यमज विचार, मृत्यु विचार आदि।[19]

भुवनदीपक में कथित है कि –

'' *इन्दुः सर्वत्र बीजाभो लग्नं तु कुसुमप्रभम्।*
फलेन सदृशोऽशश्च भावः स्वादुसमः स्मृत।।''[20]

अर्थात् चन्द्रमा सर्वत्र बीज के समान है, लग्न पुष्प के समान है, नवांश फल के समान है तथा भाव फल के स्वाद के समान है।

तथा –

'' *प्रश्नकाले सौम्यवर्गो यदि लग्नेऽधिको भवेत्।*
ग्रह भावानपेक्षिण तदाख्येयं शुभं फलम्।।
प्रश्नकाले क्रूरवर्गो लग्ने यद्यधिको भवेत्।
अशुभं फलमाख्येयं ग्रहापेक्षां बिना तदा।।''[21]

अर्थात् प्रश्नकालीन लग्न में यदि शुभ ग्रह का वर्ग अधिक हो तो अन्य भावादि को बिना विचारे शुभफल कहना चाहिये। यदि प्रश्न लग्न में पाप वर्ग अधिक हो तो अन्य भावादि को बिना विचारे अशुभ फल कहना चाहिए।

13वीं, 14वीं शताब्दी में भी प्रश्नशास्त्र से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। नरचंद उपाध्याय के प्रश्नशास्त्र पर निम्न ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं – प्रश्नशतक, प्रश्नचतुर्विंशतिका, ज्ञानदीपिका।[22]

इसके अतिरिक्त प्रश्नशास्त्र के विकास की परम्परा में 1587 ई. आचार्य नीलकण्ठ के 'ताजिक नीलकण्ठी' ग्रन्थ के अन्तर्गत सम्मिलित प्रश्नतन्त्र[23] की गणना की जाती है।

16 वीं शताब्दी में सन् 1660 में परमानन्द पाठक ने 'प्रश्नमाणिक्यमाला' नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में चार भाग हैं। ऐसा माना जाता है कि इस ग्रन्थ का अन्तिम भाग उमापति (पाठक पुत्र) के द्वारा सम्पूर्णता को प्राप्त हुआ।

आधुनिक साहित्कारों ने भी प्रश्न शास्त्र की परम्परा को अपने अनुपम ग्रन्थों, टीकाओं के माध्यम से खूब पल्लवित किया है। सन् 1817 में पर्वतीय वासवानन्द ने 'प्रश्नसिन्धु' नामक पुस्तक की रचना की थी।[24]

सीताराम झा ने प्रश्नशास्त्र के अनुपम ग्रन्थ 'केरलप्रश्नसंग्रह' तथा पृथुयश प्रणीत 'षट्ञ्चाशिका' नामक ग्रन्थों की टीका की रचना की। इनका जन्म 1866 में हुआ था।

अच्युतानन्द झा ने भी प्रश्नशास्त्र विषयक 'ज्योतिषप्रश्नफलगणना' की रचना की। इनका जन्म सन् 1867 में हुआ था।

इसके अतिरिक्त प्रश्न शास्त्र पर रामकृष्ण मिश्र ने 'प्रश्नचण्डेश्वर' नामक ग्रन्थ की रचना की।

18वीं शताब्दी के अन्त में श्री वाल्मीकि त्रिपाठी के आत्मज आचार्य रूद्रमणि की 'प्रश्नशिरोमणि' नामक रचना प्राप्त होती है।[25]

प्रश्नशास्त्र की रचनाओं में इनके अतिरिक्त श्री दीपक कपूर का 'प्रश्न शास्त्र', डॉ. सुरेश चन्द्र मिश्र की 'प्रश्न संदर्शनम्', कर्नल राज कुमार की Prashna Avedic Approach तथा श्री उमंग तनेजा की के.पी. पद्धति पर आधारित रचना उपलब्ध होती है।[26]

निष्कर्ष -

ज्योतिषशास्त्र की प्रश्न शाखा का गहन अध्ययन करने के उपरान्त यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि प्रश्नशास्त्र का उद्भव वैदिक काल में ही हो गया था। ऋग्वेद, शुक्ल यजुर्वेद, अथर्ववेद में प्रश्नशास्त्र रूपी वृक्ष के बीज दृष्टिगोचर होते हैं। तदनन्तर गर्ग संहिता, नारद संहिता, बादरायण संहिता, बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, उश्ररकालामृत इन ग्रन्थों में प्रश्न विषयक अध्याय उपलब्ध होते हैं। पांचवीं सदी में प्रश्नशास्त्र विषयक मौलिक ग्रन्थों की रचना प्रारम्भ हुई। इस समय में आचार्य वराहमिहिर ने 'दैवज्ञवल्लभा', उनके पुत्र आचार्य पृथुयश ने 'षट्पञ्चाशिका', आचार्य भट्टोत्पल ने 'प्रश्नज्ञान' - इन प्रश्नशास्त्र विषयक ग्रन्थों की रचना की थी। तदनन्तर दशवीं सदी में प्रश्नशास्त्र पर भट्टवोसरि, आचार्य दुर्गदेव के द्वारा रचित ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। प्रश्नशास्त्र पर 1294 सं. में आचार्य पद्मप्रभुसूरि का भुवनदीपक ग्रन्थ उपलब्ध होता है। तदन्तर 13वीं, 14वीं, 16वीं, 18वीं शताब्दी में अनेक प्रश्न ग्रन्थों एवं टीकाओं की रचना हुई।

सन्दर्भ सूची -

1. बृहत्संहिता - उपनयनाध्याय - श्लोक सं 9
2. शुक्ल यजुर्वेद-माध्यान्दिन संहिता अध्याय (30)- मन्त्र सं. 10
3. प्रश्न विद्या - ग्रन्थारम्भ - श्लोक सं. 4
4. प्रश्न विद्या - ग्रन्थारम्भ - श्लोक सं. 5
5. नारद संहिता - विवाहप्रश्नलग्नाध्याय - श्लोक सं. 13
6. बृहत्पाराशरहोराशास्त्र - प्रश्नाध्याय - श्लोक सं 1
7. बृहत्पाराशरहोराशास्त्र - प्रश्नाध्याय - श्लोक सं 2
8. ''एवं जन्मखगोदयः फलमिदं सर्वं वदेज्जातके
   तन्मो चेदथ जन्मपत्रमपि वा तत्प्रश्नलग्नाद्वदेत्।
   प्रश्नो जातकतुल्य एव न भवेद्भेदोऽथवा दुर्दिने
   न ज्ञाते घटिकादिके गृहनवांशादींश्च पृच्छाद्वदेत्।।''
   - उत्तरकालामृत - प्रश्नखण्ड - श्लोक सं. 1
9. ''पूर्वं परीक्ष्य जीवितमन्यत् पश्चाच्छुभाशुभं पुंसाम्।
   जगदभ्युद्यतमखिलं करोति किं प्राप्तकालस्य।।''
   - प्रश्न विद्या - ग्रन्थारम्भ - श्लोक सं. 1
10. दैवज्ञवल्लभा - प्रश्नावताराध्याय - श्लोक सं 1
11. दैवज्ञवल्लभा - प्रश्नावताराध्याय - श्लोक सं. 11
12. ''प्रणिपत्य रविं मूर्ध्ना वराहमिहिरात्मजेन पृथुयशसा।
    प्रश्ने कृतार्थगहना परार्थमुद्दिश्य सद्यशसा।।''
    - षट्पञ्चाशिका - होराध्याय - श्लोक सं 1
13. षट्पञ्चाशिका - होराध्याय - श्लोक सं. 2
14. ''रविशशिकुजबुधगुरुसितरविजगणेशान्प्रणम्य भक्त्यादौ।
    वक्ष्येऽहं स्पष्टतरं प्रश्नज्ञानं हिताय दैवविदाम्।।''
    - प्रश्न ज्ञान - आचार्य भट्टोत्पल - श्लोक सं. 1
15. भारतीय ज्योतिष - डॉ. नेमीचन्द शास्त्री - पृ.सं. 98
16. भारतीय ज्योतिष - डॉ. नेमीचन्द शास्त्री - पृ.सं. 99
17. भारतीय ज्योतिष - डॉ. नेमीचन्द शास्त्री - पृ.सं. 10
18. ''सारस्वतं नमस्कृत्य महः सर्वतमोपहम्।
    ग्रहभावप्रकाशेन ज्ञानमुन्मील्यते मया।।''
    - भुवनदीपक - श्लोक सं. 1
19. भारतीय ज्योतिष - डॉ. नेमीचन्द शास्त्री - पृ.सं. 107
20. भुवनदीपक - लग्नविचारद्वारम् - श्लोक सं. 56
21. भुवनदीपक - द्रेष्काणादिद्वारम् - श्लोक सं. 156,157
22. भारतीय ज्योतिष - डॉ. नेमीचन्द शास्त्री - पृ.सं. 107
23. ''तस्मान्नृपः कुसुमरत्नफलाग्रहस्तः
    प्रातः प्रणम्य वरयेदपि प्राङ्मुखस्थः।
    होरांगशास्त्रकुशलान् हितकारिणश्च
    संहृत्य दैवगणकान् सकृदेव पृच्छेत्।।''
    - ताजिक नीलकण्ठी - प्रश्नाध्याय (14) - श्लोक सं. 3
24. प्रश्न रहस्य - भूमिका - पृ.सं. 14
25. प्रश्न रहस्य - भूमिका - पृ.सं. 14
26. प्रश्न रहस्य - भूमिका - पृ.सं. 14

ISSN 2278 - 0327

माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन

धर्मेन्द्र कुमार
शोधार्थी, शिक्षा संकाय
मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

डॉ. प्रीति शर्मा
विभागाध्यक्ष (एम.एड.),
मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

प्रस्तुत शोधपत्र में म.प्र. राज्य के भोपाल जिले में स्थित माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। न्यादर्श के रूप में 150 शिक्षकों (75 पुरुष एवं 75 महिला) का चयन साधारण यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा करके उन पर डॉ. प्रमोद कुमार एवं डी.एन. मुथा की 'शिक्षण प्रभावशीलता मापनी' का प्रशासन किया गया। प्राप्त परिणामों के अनुसार माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों के मध्य शिक्षण प्रभावशीलता एवं शिक्षण प्रभावशीलता के संवेगात्मक एवं व्यक्तित्व घटकों में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि शैक्षणिक, व्यावसायिक, सामाजिक एवं नैतिक घटकों में सार्थक अंतर पाया गया।

मुख्य शब्द: माध्यमिक विद्यालय, शिक्षण प्रभावशीलता

प्राचीन भारतीय शिक्षा-व्यवस्था मे अध्यापक को 'आचार्य' का नाम दिया गया है। भारतीय साहित्य में भी आचार्य की महिमा का गान किया गया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में कहा है -

''मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव।''

अर्थात् बालक के लिए माता-पिता, आचार्य-तीनों ही देवता स्वरूप होते हैं। 'आचार्य' अथवा 'आचार्या' नाम आदर्श आचार से युक्त आदर्श व्यक्ति का है। 'आचार्य' का कार्य केवल अध्ययन और शिक्षण ही नहीं है, विद्यार्थियों को आचारवान् बनाना भी है।

'आचार्य' अथवा अध्यापक का शिक्षा में महत्त्वपूर्ण स्थान है। जे. एफ. ब्राउन लिखते हैं कि - ''समस्त बातों को ध्यान में रखकर मैं इस परिणाम पर पहुँचता हूँ कि 'अध्यापक' शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग होता है। पाठ्यक्रम, विद्यालय संगठन और पाठन-सामग्री यद्यपि अध्यापन के महत्त्वपूर्ण अंग है, परन्तु वे सभी तब तक निष्प्राण रहते हैं जब तक कि अध्यापक के सजीव व्यक्तित्व द्वारा उनमें प्राण-प्रतिष्ठा नहीं कर दी जाती है।''

अत: किसी भी विद्यालय का भवन, छात्र, सहायक सामग्री आदि कितनी भी प्रभावशाली क्यों न हों, जब तक वहाँ के अध्यापक चरित्रवान तथा योग्य नहीं होंगे, उस विद्यालय का शिक्षण-स्तर उन्नत नहीं हो सकता। बालक के सर्वांगीण विकास में शिक्षक को बड़ा ही महत्त्वपूर्ण कार्य करना पड़ता है। शिक्षक ही वास्तव में बालक का समुचित शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास कर सकता है। विद्यालय में शिक्षक को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती है। सम्पूर्ण विद्यालय योजनाओं को वही व्यवहारिक रूप देता है। अच्छे शिक्षकों के अभाव में अच्छी से अच्छी शिक्षण पद्धति प्रभाव रहित हो जाती है।

शिक्षक शिक्षा से संबंधित प्रत्येक शोधकार्य का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से संबंध शिक्षण की प्रभावशीलता से होता है। **रेयन्स** (1970) ने कहा है - ''शिक्षक उसी सीमा तक प्रभावशाली है, जिस सीमा तक शिक्षक की क्रियांए छात्रों के आधारभूत कौशल, अवधारणा, कार्य करने की आदत, वांछित अभिवृत्ति, मूल्य निर्णय तथा पर्याप्त व्यैक्तिक समायोजन पैदा करने के लिये अनुकूल है।''

शिक्षक का महत्व संमाज तथा शिक्षा पद्धति दोनों मे ही स्पष्ट है। अत: यह कहा जा सकता है कि मानव समाज एवं देश की उन्नति उत्तम शिक्षकों पर ही निर्भर है। अत: उपरोक्त सभी बातों को ध्यान में रखते हुए शिक्षकों की प्रभावशीलता का अध्ययन करना बहुत ही सामयिक प्रतीत हो रहा है। अत: शोधकर्ता ने भोपाल जिले के माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन विषय का चयन शोधकार्य हेतु किया है।

शिक्षक प्रभावशीलता से संबंधित पूर्व में भी कुछ शोधकार्य हुये है। **भसीन, चंचल** (1988) ने अपने अध्ययन में पाया कि शहरी तथा ग्रामीण, शासकीय व अशासकीय तथा पुरुष व महिला शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता तथा शिक्षण अभिक्षमता में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। **दोशी, प्रवीण** (2004) ने अपने अध्ययन में पाया कि पुरुष शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता महिला शिक्षकों से अधिक पाई गई। **कुमार तथा साहू** (2005) ने प्राथमिक स्तर पर शिक्षामित्रों व नियमित शिक्षकों कि शिक्षण दक्षता का अध्ययन किया तथा पाया कि कक्षागत सम्प्रेषण तथा अधिगम के मूल्यांकन की दक्षता को छोड़कर, बाकि सभी प्रकार की शिक्षण दक्षताओं में बी.टी.सी. व

विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षक समान है। पहचान और उपचार की दक्षता व अधिगम के मूल्यांकन की दक्षता में बी.टी.सी. शिक्षक व शिक्षामित्र समान है। समग्र रूप में विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षक शेष दोनों प्रकार के शिक्षकों से अधिक दक्ष है। **जायसवाल, विजय एवं नायक, संतोष कुमार** (2007) ने अपने अध्ययन में पाया कि उच्च समायोजित अध्यापकों तथा अध्यापिकाओं की शिक्षण दक्षता निम्न समायोजित अध्यापकों तथा अध्यापिकाओं की तुलना में अधिक है। अध्यापकों के लिंग का उनकी शिक्षण दक्षता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। **बासु, सरस** (2010) ने अपने अध्ययन में पाया कि पुरुष तथा महिला शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता में सार्थक अंतर पाया गया महिला शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता, पुरुष शिक्षकों की तुलना में उच्च पाई गई। **खातून, सालेहा** (2011) ने अपने अध्ययन में पाया कि अध्यापक शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता में लिंग के आधार पर कोई अंतर नहीं पाया गया। **बाजपेयी, अग्रवाल एवं शुक्ला** (2012) ने अपने अध्ययन में पाया कि शासकीय विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता में लिंग भेद पाया गया तथा महिला शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता पुरुष शिक्षकों की तुलना में उच्च पाई गई, जबकि अशासकीय विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता में कोई लिंग भेद नहीं पाया गया। **स्वरूप, विधि एवं पाठक, सीमा** (2012) ने अपने अध्ययन में पाया कि विवाहित महिला शिक्षक प्रशिक्षक तथा पुरुष शिक्षक प्रशिक्षक की शिक्षण दक्षता में सार्थक अंतर पाया गया तथा पुरुष शिक्षक प्रशिक्षकों की शिक्षण दक्षता महिला शिक्षक प्रशिक्षकों की तुलना में उच्च पाई गई। **शुक्ला, हरगोविन्द** (2013) ने अपने अध्ययन में पाया कि शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र तथा शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

उद्देश्य:-

1. माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता के विभिन्न घटकों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना:-

1. माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।
2. माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता के विभिन्न घटकों में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

उपकरण:-

शिक्षक प्रभावशीलता मापनी - डॉ. प्रमोद कुमार एवं डी.एन. मुथा

विधि:-

सर्वप्रथम भोपाल जिले में स्थित माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत 150 शिक्षकों (75 पुरुष एवं 75 महिला) का चयन साधारण यादृच्छिक न्यादर्ष विधि द्वारा करके इन शिक्षकों पर डॉ. प्रमोद कुमार एवं डी.एन. मुथा की 'शिक्षक प्रभावशीलता मापनी' का प्रशासन किया गया तथा इस मापनी में दिये गये सभी घटकों का अलग-अलग फलांकन किया गया। प्राप्तांकों के आधार पर मॉस्टर शीट तैयार की गई। मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त किये गये।

परिणामों का विश्लेषण:-

परिकल्पना 01: माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

तालिका क्रमांक 01

माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता संबंधी तुलनात्मक परिणाम

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	सार्थकता
पुरूष शिक्षक	75	266.25	17.60	0.39	0.05 स्तर पर असार्थक
महिला शिक्षक	75	267.49	21.06		

स्वतंत्रता के अंश - 148

0.05 स्तर के लिये निधार्रित न्यूनतम मान - 1.98

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों के मध्य शिक्षण प्रभावशीलता में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि इसके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 0.39 स्वतंत्रता के अंश 148 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान 1.98 से कम हैं।

अत: इन परिणामों के आधार पर कहा जा सकता है कि माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

अत: इन परिणामों के आधार पर पूर्व में ली गयी उपरोक्त परिकल्पना ''माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा'', स्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना 02: माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता के विभिन्न घटकों में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

तालिका क्रमांक 02

माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता के विभिन्न घटकों संबंधी तुलनात्मक परिणाम

शिक्षण प्रभावशीलता के घटक	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	सार्थकता
शैक्षणिक	पुरूष शिक्षक	75	53.63	11.80	2.68	0.01 स्तर पर सार्थक
	महिला शिक्षक	75	58.51	10.50		
व्यावसायिक	पुरूष शिक्षक	75	49.93	7.39	2.86	0.01 स्तर पर सार्थक
	महिला शिक्षक	75	46.41	7.69		
सामाजिक	पुरूष शिक्षक	75	44.39	6.35	2.13	0.05 स्तर पर सार्थक
	महिला शिक्षक	75	42.17	6.37		
संवेगात्मक	पुरूष शिक्षक	75	33.84	4.47	1.68	0.05 स्तर पर असार्थक
	महिला शिक्षक	75	32.33	6.37		
नैतिक	पुरूष शिक्षक	75	35.19	7.13	4.30	0.01 स्तर पर सार्थक
	महिला शिक्षक	75	39.81	6.02		
व्यक्तित्व	पुरूष शिक्षक	75	49.28	9.39	0.79	0.05 स्तर पर असार्थक
	महिला शिक्षक	75	48.25	6.07		

स्वतंत्रता के अंश – 148

0.05, 0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान – 1.98, 2.61

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों के मध्य शिक्षण प्रभावशीलता के शैक्षणिक, व्यावसायिक, सामाजिक एवं नैतिक घटकों में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर है, क्योंकि इन घटकों के लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमश: 2.68, 2.86, 2.13, 4.30 स्वतंत्रता के अंश 148 पर सार्थकता के 0.01, 0.01, 0.05, 0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान क्रमश: 2.61, 2.61, 1.98, 2.61 से अधिक हैं जबकि पुरुष एवं महिला शिक्षकों के मध्य शिक्षण प्रभावशीलता के संवेगात्मक एवं व्यक्तित्व घटकों में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि इन घटकों के लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमश: 1.68, 0.79 स्वतंत्रता के अंश 148 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान .98 से कम हैं।

अत: इन परिणामों के आधार पर कहा जा सकता है कि माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों के मध्य शिक्षण प्रभावशीलता के शैक्षणिक, व्यावसायिक, सामाजिक एवं नैतिक घटकों में सार्थक अंतर पाया गया तथा महिला शिक्षकों की शैक्षणिक, नैतिक घटकों में शिक्षण प्रभावशीलता, पुरुष शिक्षकों की तुलना में उच्च पाई गयी जबकि पुरुष शिक्षकों में व्यावसायिक, सामाजिक घटकों में शिक्षण प्रभावशीलता, महिला शिक्षकों की तुलना में उच्च पाई गयी। माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों के मध्य शिक्षण प्रभावशीलता के संवेगात्मक एवं व्यक्तित्व घटकों में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

अत: इन परिणामों के आधार पर पूर्व में ली गयी उपरोक्त परिकल्पना ''माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता के विभिन्न घटकों में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा'', आंशिकत अस्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष–

1. माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
2. माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों के मध्य शिक्षण प्रभावशीलता के शैक्षणिक, व्यावसायिक, सामाजिक एवं नैतिक घटकों में सार्थक अंतर पाया गया तथा महिला शिक्षकों की शैक्षणिक, नैतिक घटकों में शिक्षण प्रभावशीलता,

पुरुष शिक्षकों की तुलना में उच्च पाई गयी जबकि पुरुष शिक्षकों में व्यावसायिक, सामाजिक घटकों में शिक्षण प्रभावशीलता, महिला शिक्षकों की तुलना में उच्च पाई गयी। माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों के मध्य शिक्षण प्रभावशीलता के संवेगात्मक एवं व्यक्तित्व घटकों में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

// **संदर्भ ग्रंथ सूची**//

1. भाई, योगेन्द्रजीत (1974) शैक्षिक एवं विद्यालय प्रशासन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
2. भारद्वाज, दिनेशचंद्र (नवीन संस्करण) विद्यालय प्रशासन एवं स्वास्थ्य शिक्षा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
3. चौबे, डॉ. सरयू प्रसाद (1958) जनतन्त्रात्मक विद्यालय संगठन, भारत पब्लिकेशन आगरा
4. प्रसाद, केशव (नवीन संस्करण) विद्यालय व्यवस्था, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
5. शर्मा, आर.ए. (1995) शिक्षा अनुसंधान, सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ
6. शर्मा, आर.ए. (2001) विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन, आर. लाल बुक डिपो मेरठ

Related Research :

1. Basu, Saras (2010) Emational Intetigence and Teacher efffectiveness of secondary school teacher, *Indian journal of teacher education anweshka, Vol. 7, June 2010, Page No. 19-24*
2. Bhasin, Chanchal. (1988) Teaching aptitude and its relationship with reaching effectiveness of the higher secondary school teachers in relation to the modern community., *Ph.D., Edu, Rani Durgavati Univ., in Fifth Survey of Educational Resarch, Vol – 2, Pg. No. 1437-38*
3. Khatoon, Saliha (2011) Emotioanl etetligence effective teaching of D. ED & B. ED level school teachers. *The CTE National Journal, Vol. IX, No. 1, Jan.-June 2011, Page No, 64-68*
4. बाजपेयी, आशीष, अग्रवाल, रंजना व शुक्ला, हरगोविन्द (2012) 'माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शासकीय व अशासकीय विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन', नेशनल जर्नल ऑफरिचर्स इन ऐजुकेशन *(NJREE)*, स्पेशल इश्यु, मार्च 2012, पेज 25 से 33
5. दोशी, प्रवीण (2004) 'प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों की शिक्षणप्रभावशीलता को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन', प्राइमरी शिक्षा, अप्रैल 2004, पेज 25 से 33
6. जायसवाल, विजयय नायक, संतोष कुमार (2007) 'प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत् बी.टी.सी. एवं आध्यापिकों के शिक्षण दक्षता पर उनके समायोजन के प्रभाव का अध्ययन', भारतीय आधुनिक शिक्षा, नई दिल्ली, जुलाई 2007, पेज 113 से 123
7. स्वरूप, विधि एवं पाठक, सीमा (2012) 'विवाहित शिक्षक प्रशिक्षकों के तनाव का उनकी शिक्षण दक्षता पर प्रभाव', *National journal of research in education and extension (NJREE) special Issue - march 2012. Pg. no. 85-87*
8. शुक्ला, हरगोविन्द (2013) 'हाईस्कूल के विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर बुद्धि, पारिवारिक एवं विद्यालयीन वातावरण तथा शिक्षण प्रभावशीलता के प्रभाव का अध्ययन', अप्रकाशित शोध प्रबंध, म.प्र. भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय, भोपाल

ISSN 2278 - 0327

किशोरियों में असुरक्षा की भावना पर महामृत्युंजय मंत्र के प्रभाव का अध्ययन

प्रेरणा
शोधार्थी, योग विज्ञान विभाग
श्री गुरु राम राय विश्वविद्यालय, देहरादून (उत्तराखण्ड)

प्रो० (डॉ०) सरस्वती काला
विभागाध्यक्ष, योग विज्ञान विभाग
श्री गुरु राम राय विश्वविद्यालय, देहरादून (उत्तराखण्ड)

शोध सारांश

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समाज का हर वर्ग विभिन्न चुनौतियों का सामना कर रहा है और इनमें से कुछ की चुनौतियां अन्य सभी से अधिक है जैसे कि किशोरावस्था से गुजर रही लडकियों में असुरक्षा समस्या। इस असुरक्षा के कई आयाम हैं जैसे- 'आर्थिक असुरक्षा, सामाजिक असुरक्षा, पारिवारिक असुरक्षा एवं व्यक्तिगत असुरक्षा की भावना' आदि सम्मिलित है। भारतीय गृह मन्त्रालय के अधीन संगठन, राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) द्वारा जारी विभिन्न अपराधों से जुडे आंकडों से विभिन्न स्तरों पर महिलाओं के प्रति होने वाले अत्याचार एवं षोषण की प्रमाणिक जानकारी उपलब्ध होती है। ऐसे ही अन्य प्रमाणिक स्त्रोतों से वर्तमान परिप्रेक्ष्य में किशोरावस्था की लड़कियों को घर, परिवार, समाज एवं स्वयं के स्तर पर विभिन्न चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, और कभी-कभी इन सबके परिणाम स्वरूप असुरक्षा की भावना किशोरियों में विसंगति का रूप ले लेती है। असुरक्षा से जुड़ी समस्या के निराकरण के लिए महामृत्युंजय मंत्र का प्रयोग एक लाभकारी साधन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। इस मंत्र का निर्माण, वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने वाले हमारे महान ऋषियों द्वारा वर्षों के परिश्रम के बाद किया था। इसका स्पंदन एवं सकारात्मक तरंगे व्यक्ति के व्यक्तित्व को ऊर्जावान् बनाकर उत्साह से भर देती है।

Key Word:–

किशोरावस्था, महामृत्यंजय मंत्र, असुरक्षा।

वर्तमान समय में लिंग आधारित भेदभाव में काफी कमी आई है लेकिन फिर भी कहीं न कहीं समाज का ताना-बाना इस प्रकार से बना है कि परिवार युवा किशोर (लडकों) की परवरिश किशोरियों की तुलना में अधिक मुक्त व स्वतन्त्र वातावरण में होती है। जबकि शिक्षा, कैरियर (आजीविका) उन्नति, या अन्य दूसरे क्षेत्रों के लिए लड़कियों को उतनी स्वतन्त्रता व मुक्त वातावरण नहीं मिलता है। इसके अतिरिक्त घरेलु हिंसा, यौन उत्पीड़न एवं लिंग आधारित भेदभाव के कई ऐसे अवसर आते हैं जिनसे किशोरियों के व्यक्तित्व में असुरक्षा की भावना आ जाती है।

National Statistical Organization (NSO) (2019) - की रिपोर्ट के अनुसार भारत की साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत है जिनमें से 82.14 प्रतिशत लडके एवं 65.46 प्रतिशत लडकियां हैं। जो 2021 के आंकडों के अनुसार 77.70 प्रतिशत है जिसमें पुरुष साक्षरता दर 84.74 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता दर 70.30 प्रतिशत है। अशिक्षा, बेरोजगारी, हिंसा, उत्पीडन जैसे अनेक नकारात्मक कारण किशोरियों में असुरक्षा महसूस करवाते हैं। अपने स्वयं के घर में भी वे अपने आपको उक्त लिखित जैसे भयावह व विभिन्न प्रकार के कारणों से स्वत: ही असुरक्षित मानने लगती है।

एक किशोरी की हीन भावना आत्ममूल्य की कमी है जो सन्देह व अनश्चितता और मानकों को मापने की भावना को कम कर देती है। यह भावना अक्सर अवचेतन स्थिति की होती है और पीड़ित व्यक्तियों में जीवन के प्रति अत्यधिक नकारात्मक बना देती है। किशोरियों के जीवन में बचपन से ही असुरक्षा की भावना के कारण लगभग किसी न किसी रूप में प्रभावी होने लगते हैं। उदाहरणस्वरुप- लिंग भेद, शिक्षा, पारिवारिक परिवेश, विवाह सम्बन्धी जीवन आदि।

शर्मा, कुशाग्र (2017) के शोध के अनुसार शादीशुदा एवं विधवा महिलाओं में असुरक्षा के स्तर में काफी भिन्नता देखी गई।

Times of India की रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण भारत में 2.6 प्रतिशत किशोरियों का विवाह 18 वर्ष की उम्र से पहले हो जाता है। 37.3 प्रतिशत का 18 से 20 वर्ष की आयु में तथा 60 प्रतिशत किशोरियों का विवाह 21 वर्ष की आयु में होता है। जो कहीं न कहीं कम उम्र में अधिक जिम्मेदारियों दबाब असुरक्षा को महसूस करवाता है।

National Family Health Survey (NFHS) की सर्वे के अनुसार भारत में 27 प्रतिशत किशोरियों का विवाह 18 वर्ष की आयु से पहले करवाया गया। जिससे उनमें स्वयं के प्रति असुरक्षा का भाव पाया गया। आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, झारखण्ड एवं मध्य प्रदेश (राज्यों) में बाल विवाह का अनुपात सर्वाधिक पाया गया।

प्रस्तुत शोधपत्र में किशोरियों में असुरक्षा की भावना से तात्पर्य- 'आर्थिक असुरक्षा, सामाजिक असुरक्षा एवं व्यक्तिगत असुरक्षा से हैं'।

जिसमें किशोरियां अपने जीवन एवं अपने आत्म सम्मान से जुड़ी कई विचारधाराओं का समावेश करती है। अगर लड़की अविवाहित है तो उसकी शिक्षा एवं स्वास्थ्य से जुड़ी आवश्यकताओं के लिए उसे अपने माता-पिता पर निर्भर रहना पड़ता है एवं अगर ग्रामीण परिवेश में होने वाले बाल विवाह से पीड़ित है तो कम उम्र से उसे अपना व अपने बच्चों के भरण पोषण के लिए पति एवं ससुराल पक्ष के आर्थिक संसाधनों पर निर्भर होना पड़ता है। इन दोनों ही परिस्थितियों में अगर पति या पिता से अलगाव या इनकी किसी कारणवश मृत्यु हो जाय तो एक किशोरी के लिए अपनी सभी सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति करना मुश्किल हो जाता है और यही उनकी आर्थिक असुरक्षा को जन्म देता है। देश में अभी भी कामकाजी महिलाओं का प्रतिशत (स्तर)अन्य विकसित देशों की तुलना में बहुत कम है जिस कारण देश की जनसंख्या की आधी आबादी हमेशा आर्थिक समस्या का सामना करती है।

Periodic Labor Force Survey [PIFS] 2020 के आंकडों के अनुसार काम करने वाले (आजीविका) पुरुषों का प्रतिशत 56.8 है तथा काम करने वाली महिलाओं का प्रतिशत 22.21 है जो देश की आर्थिकी को भी स्पष्ट प्रदर्शित करता है।

सामाजिक असुरक्षा-किशोरियों की सामाजिक असुरक्षा से तात्पर्य, उसके सामाजिक एवं पारिवारिक पक्ष दोनों से जुड़ी असुरक्षा से है जिससे एक समाज के स्तर पर लिंग के आधार पर एवं बराबरी के दर्जे का अभाव है। जैसे- समाज में रहकर जिन कार्यों को करने की स्वतन्त्रता परिवार के किशोर बालकों को है, वही स्वतन्त्रता किशोरियों को नहीं मिलती। कुछ प्राचीन विचारधाराएं, संस्कृति एवं रीति/रिवाज भी किशोरियों में सामाजिक असुरक्षा के भाव को उत्पन्न करती है।

National Crime Records Bureau, Ministry of Home affairs (2020) के अनुसार आपराधिक आंकडों में देश की महिलाओं का प्रतिशत 65.3 है जिसमें बलात्कार, हिंसा, हत्या एवं दहेज जैसे कारक शामिल हैं। यह आंकडे प्रतिवर्ष वृद्धि कर रहे हैं। 'द लेसेंट' विश्व प्रसिद्ध पत्रिका के आंकडे स्पष्ट करते हैं कि प्रतिदिन 85 महिलाएं अपनी हिंसा को लेकर शिकायत दर्ज करती हैं, जिसमें 15 वर्ष से 45 वर्ष तक की महिलाएं शामिल थी।

टाइम्स ऑफ इण्डिया (2013) के अनुसार 2010 के आंकडों की तुलना में प्रतिवर्ष महिला हिंसा को लेकर आज तक 7.1 प्रतिशत की बढोत्तरी हुई है।

पारिवारिक असुरक्षा- किशोरियों में पारिवारिक असुरक्षा एक चुनौती के रूप में सामने आती है जिसमें परिवार से जुड़े विभिन्न फैसलों में इनकी भागीदारी न के बराबर होती है। यहां तक कि इनके स्वयं के जीवन के फैसले भी माता-पिता, भाई तथा परिवार के बड़े ही निर्णय करते हैं और इन सब फैसलों में इनका हित परिवार के अन्य सदस्यों के हित के बाद आता है। यही शून्य दर्जे का जीवन किशोरियों के अन्दर पारिवारिक असुरक्षा का सबसे बड़ा कारण बनता है।

UNICEF (2022) की रिपोर्ट के अनुसार 38 प्रतिशत पूर्व अनुमान से ही पता लग जाता है कि कम से कम एक किशोरी स्कूल से अपनी पढ़ाई को आधे में ही छोड़ देती है, वहीं UDISE की रिपोर्ट बताती है कि सेकेण्डरी स्तर पर यह 14.6 प्रतिशत (साल) था। (2020-21) जिसका कारण परिवार की असामान्य स्थिति बताया गया।

व्यक्तिगत असुरक्षा- किशोरियों में अनेक शारीरिक बदलाव उनमें स्वत: ही असुरक्षा का भय उत्पन्न करते हैं। जैसे मासिक धर्म की नियमितता, अंगों का विकसित होना, शारीरिक छवि का परिपक्व होना आदि। स्वास्थ्य के सन्दर्भ कई बार पोषक तत्वों की कमी भी किशोरियों में असुरक्षा की भावना उत्पन्न करती है। उदाहरणार्थ- एनीमिक होना (खून की कमी) विटामिनस की आपूर्ति होना, आयरन का कम होना आदि।

CNNS Thematic Repart (2019) के अनुसार- 10 से 19 वर्ष की 31 प्रतिशत किशोरियों में आयरन की कमी पाई गई। वहीं 40 प्रतिशत किषोरियां एनीमियां से ग्रसित थी, साथ ही 35 प्रतिशत किशोरियों में विटामिन डी का स्तर अत्यधिक न्यूनतम देखा गया।

इस प्रकार की सभी समस्याओं के समाधान के लिए सबसे ज्यादा जरुरी है कि किशोरियों को स्वयं का आत्मबल मजबूत करना होगा और इसके लिए किशोरियों को सही मार्ग दर्शन के साथ मानसिक रूप से मजबूत बनने के लिए योगाभ्यास करना चाहिए। प्रस्तुत शोध पत्र में असुरक्षा की भावना के निराकरण के लिए महामृत्युञ्जय मन्त्र की प्रमुखता प्रदर्षित की गई।

महामृत्युञ्जय मन्त्र-

मन्त्रयोग- मन्त्रों का निरन्तर अभ्यास भी विज्ञान की तरह कार्य करता है। मन्त्र योग का योग के क्षेत्र में एक अलग ही स्थान है। जहां मन का अर्थ है-सोचना एवं त्र का अर्थ है रक्षा करना।

मन्त्रों का ध्यान धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के मार्ग का दर्शन करवाता है। जीव व व्यक्तिगत आत्मा पापों से मक्ति,स्वर्ग में आनन्द एवं मुक्ति का अनुभव करती है। जब मन्त्रों को लगातार दोहराया जाता है तो चेतना चित्त या चैतन्य चेतना में जागृत होती है जो मन्त्रों द्वारा अव्यक्त होकर एक सकारात्मक शान्ति प्रदान करता है।

मन्त्र

ॐ त्र्यम्बकम् यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।।

(ऋग्वेद 7/59/12, शुक्ल यजुर्वेद 3/60)

मन्त्र का शाब्दिक अर्थ-

त्र्यम्बकम्- वह एक जिसके पास तीनों शक्तियों का साथ है
यजामहे- हम बलिदान देते हैं

सुगन्धिम्- हमारा जीवन मैधावी कर्मों से सुगन्धित हो जाता है। इसलिए शक्ति जागृत करते है।

पुष्टिवर्धनम्- उसके लिए जो हमारी शक्तियों का पोषण करता है तथा जिसकी कृपा से हमारी भक्ति बढ़ाती है व हमें आध्यात्मिक की ओर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है।

उर्वारुकमिव- जिस प्रकार एक तरबूज /ककड़ी पकने पर बैल से गिर जाती है उसी प्रकार हम भी अपने कार्यों के अनुसार कर्म फल प्राप्त करते हैं।

बन्धनात् मृर्त्यो- बन्धनों से जो मृत्यु है।

मुर्क्षाय- उनसे मुक्त हो जाओं व मोक्ष प्राप्त करों।

मामृतात्- मैं पुन: अमरता से भाग नहीं सकता। परम –आत्मा अनैतिकता के बन्धनों से मुक्त है।

व्याख्या- हम भगवान शिव से प्रार्थना करते हैं जिनके तीन दिव्य नेत्र हैं और जो दिव्य गन्ध की मृत्यु से परे है और जो भक्तों की सभी सांसारिक वस्तुओं को पूरा करते हैं वे सांसारिक बन्धनों से मुक्त हैं क्योंकि मृत लकड़ी उसी पेड़ से अलग हो जाती है।

33 अक्षरों वाला महामृत्यंजय मन्त्र, 33 देवों का प्रतिनिधित्व करता है जो हमारे शरीर के विभिन्न अंगों में विद्यमान है। स्वास्थ्य के दौरान वे हमारे अंगों की रक्षा करते हैं। उन्हीं की उपस्थिति से हमारा जीवन है, बिना उनके हम मर चुके हैं। जप के माध्यम से इस प्रकार के सुरक्षात्मक शक्ति मन्त्र सक्रिय हो जाते हैं और आत्महीनता, असुरक्षा, अवसाद जैसी बाधाओं को नष्ट कर देते हैं।

महामृत्यन्जय मन्त्र मार्कण्डेय पुराण में महर्षि मार्कण्डेय के नाम से विख्यात हुआ। यह मन्त्र मुख्य रूप से मृत्यु पर विजयी प्राप्त करने वाला मन्त्र है जिसका प्रसंग मार्कण्डेय की जीवंत कहानी से मिलता है। भगवान् शिव के उग्र अवतार का जिक्र करते हुए इसे 'रुद्रमन्त्र' भी कहा जाता है। तीन दिव्य नेत्रों (शिव के) के कारण इसे 'त्र्यम्बकम् मन्त्र' भी कहा जाता है। जीवन रक्षक कवच के कारण इसे 'मृतसंजीवनी मन्त्र' कहा जाता है।

महामृत्युन्जय मन्त्र शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य को पुर्नस्थापित करता है और यह एक मोक्ष मन्त्र भी है जो दीर्घायु प्रदान करके अनैतिकता को पूर्ण करता है। भौतिकता के इस युग में कहा जाता है कि जप व मन्त्रोच्चारण ही ईश्वर बोध का सबसे आसान एवं सबसे सुरक्षित तरीका है।

शर्मा, इन्दु एवं जोशी भावना ने भी अपनी एक शोध में महामृत्युन्जय मन्त्र के प्रभाव का अध्ययन आत्महीनता एवं अवसाद पर किया था जिसका सार्थक परिणाम देखा गया था तथा सुझाव में बताया गया कि महामृत्युन्जय मन्त्र के जाप से भगवान शिव पीड़ित व्यक्ति को हिम्मत के साथ शान्ति का आशीर्वाद देते हैं जिसके (जिसके अभ्यास से) पीड़ित व्यवसायी अनैतिकता भी प्राप्त कर सकता है।

भगवतगीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-'बाहरी सम्पर्कों को बाहर ही रखकर भौंहों के मध्य एकटक के साथ ध्यान करना सर्वोत्तम विधि है'। (अध्याय-5/27) इसे 'ललाट टकटकी' भी कहा जाता है। मन्त्रों के जाप से वृत्तियों का नाश होता है तथा मानवीय चेतना का जागरण होता है।

उपसंहार-

प्रस्तुत शोध में किशोरियों की असुरक्षा के मुख्य आयामों पर प्रकाश डाला गया जिसमें सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक व व्यक्तिगत असुरक्षित कारण षामिल थे। चूंकि वर्तमान में महामृत्युञ्जय मंत्र पर शोध निरन्तर कार्यरत है जिसका प्रभाव भी लाभकारी व सार्थक सिद्ध हो रहा है। इसलिए किशोरियों में असुरक्षा की भावना के निराकरण के लिए भी प्रयुक्त मंत्र का उपयोग किया गया जिसका परिणाम सकारात्मक प्राप्त हुआ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- Adolescents, Diets and Nutrition: Growing Well in a Changing World. (2019, October). The *CNNS Thematic Reports*, Issue 1.
- Global Burdem of Disease Study. (2021). *The Lancet*. Retrive form: www.patrika.com
- Indu Sharma, Banu Joshi. Effect of Maha Mirunjaya mantra on self inferiority and depression, Unpublished Manuscript.
- International Institute for Population Sciences (IIPS). (2017). National Family Health Survey
- (NFHS) - 4 (2015-16).
- MoHFW & IIPS. (2016). National Family Health Survey-4, 2015-16: India Fact Sheet
- National Statistical Organization (NSO) 2019. Round of national sample survey on education divide.
- National Crime Records Bureau: Ministry of Home Affairs. (2020). Crime in India. Vol 1, 3B, pp 253-259.
- Periodic Labour Force Survey (PLFS). (2020-21, June). Ministry of Statistical & ProgrammeImplementation. Annual report by PIB Delhi.
- Sharma, K. & Ranjan, R. (2017). A comparative study of inferiority and insecurity in married and widow women. *Indian J. of Resh*. Vol 6.

UNICEF (2020). Efforts of the union education: Ministry's plan of reopening schools.

ISSN 2278 - 0327

सामाजिक बहिष्कार एवं धर्म : भारत में पिछड़े मुसलमानों का एक अध्ययन

डॉ. ज्याउद्दीन
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
डी.ए.वी. पी.जी. कॉलेज, वाराणसी

हयात अहमद
शोधछात्र, समाजशास्त्र विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारसंक्षेप (Abstract)- जहाँ तक भारत के दलितों का सवाल है, वे भारतीय समाज में सबसे अधिक वंचित और हाशिए पर रहने वाले समुदाय हैं। वे बुनियादी सुविधाओं और जीवन के लिए अस्तित्व से वंचित हैं। वे अनादि काल से मनुष्य के रूप में पहचानने और इस उपमहाद्वीप में गरिमा के साथ रहने के लिए लड़ रहे हैं। वे बड़े पैमाने पर भारत के निर्वासित नागरिक हैं और वे लोग जिनके पास व्यावहारिक रूप से कोई अधिकार नहीं है वे केवल भोजन के साथ जीवित रहते हैं और कुछ नहीं। पिछड़े मुसलमान मुख्य रूप से धर्मांतरित लोग हैं, विशेष रूप से हिंदू या जीववाद से। भारतीय संविधान में केवल कुछ निचली जातियों के धार्मिक समूहों को आरक्षण दिया गया है, जैसे कि हिंदू, बौद्ध और सिख और यह केवल इसलिए कि ये सभी धर्म भारतीय मूल के हैं और इनका आपस में कोई संबंध नहीं है जो कि बिल्कुल भी सच नहीं है। पिछड़े मुसलमानों की समस्या का संदर्भ देने के लिए जाति व्यवस्था की उत्पत्ति, धर्मांतरण के कारण और समाज में उनकी स्थिति को समझना बहुत आवश्यक है। जाति वास्तव में एक सामाजिक घटना है जिसे लगभग सभी भारतीयसमुदायों द्वारा साझा किया जाता है, चाहे उनकी धार्मिक मान्यता कुछ भी हो। यह पेपर पिछड़े मुसलमानों की सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक स्थिति पर केंद्रित है और वर्तमान आरक्षण प्रावधानों के मुद्दे पर बहसकरने की कोशिश करता है।

मुख्यशब्द (Keyword)- सामाजिक बहिष्कार, धर्म, पिछड़े मुसलमान, जाति भेदभाव

प्रस्तावना-धर्म के बारे में बात करना बहुत आसान है लेकिनइसे परिभाषित करना अधिक कठिन है। वर्षों से पश्चिम में धर्म की इतनी सारी परिभाषाएँ दी गई हैं कि एक आंशिक सूची भी अव्यावहारिक होगी, अलग-अलग सफलता के साथ, वे सभी एक तरफ कठोर, लघु, विशिष्ट परिभाषा और दूसरी ओर अर्थहीन सामान्यताओं से बचने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में वैचारिक से सहज और आंतरिक संबंधी बयान के महत्व को स्थानांतरित करने का प्रयासकिया गया था, फ्रेडरिक श्लेइरमाकर ने अन्य के विपरीत, धर्म को 'पूर्ण निर्भरता की भावना' के रूप में परिभाषित किया। चूंकि उस समय कुछ अन्य लोग भी रहे हैं जिन्होंने औपचारिक सैद्धांतिक परिभाषाओं से बचने और प्रयोगात्मक भावनात्मक एवं सहज कारकों के साथ-साथ मूल्यांकन और जातीय कारकों को शामिल करने की मांग की है। ये कारक धार्मिक व्यक्ति की इस भावना के लिए सत्य प्रतीत होते हैं कि धर्म अंदर से कैसा है, जिसमें विलियम जेम्स ने धर्म को 'जासूस का उत्साही स्वभाव' कहा है। इस तरह की परिभाषाएं विश्वास उन्मुख लोगों की तुलना में आदिम और एशियाई धार्मिकों के लिए अधिक सार्वभौमिक रूप से लागू होती हैं[1]। दलित शब्द की बात करें तो यह केवल 'उत्पीड़ित' शब्द को संदर्भित करता है। इसका वर्तमान अनुप्रयोग लगभग तीस साल पहले हुआ था। यह उन सभी सैकड़ों, जातियों, एवं जन्म-समूहों या जाति समुदायों पर लागू होता है, जो प्रत्येक स्थानीय सामाजिक संरचना के सबसे निचले हिस्से में स्थित हैं, जो भारत की आबादी का पांचवां हिस्सा हैं। यह श्रेणी उन लोगों पर लागू होती है जिन्हें ब्राह्मणों द्वारा प्रागैतिहासिक काल में तैयार और शुद्ध किए गए 'चार श्रेणी' (वर्णाश्रमधर्म) के नीचे रखा गया है[2]।

लेकिन समस्या मुख्य रूप से पिछड़े मुसलमानों के साथ है जो अपने अधिकारों और आरक्षण प्रावधानों में शामिल करने की मांग कर रहे हैं। वे भारत में सामाजिक रूप से बहिष्कृत श्रेणियों में से एक हैं क्योंकि उनका निचली जातियों से जुड़ाव है। दूसरी ओर, सत्तारूढ़ शासन निचली जाति के लोगों को किसी भी लाभ से इनकार करता है, जो इस विचार पर इस्लाम में परिवर्तित हो गए कि उन्हें आजीविका, सम्मान और इंसान के रूप में स्थिति कमाने जैसा कुछ मिलता है। वर्तमान समय में मुस्लिम समाज दो प्रमुख समूहों में विभाजित है, अशरफ, जो अपनी उत्पत्ति विदेशी भूमि से लगाते हैं, उच्चजाति के हिंदू जो इस्लाम में परिवर्तित हो गए, और अजलाफ, विशेष रूप से दलित, भंगी (मैला ढोने वाले), मेहतर (स्वीपर), चमार (टेनर), हलालखोर (डोम) इत्यादि। यह अच्छी तरह से दिखाया गया है कि समय और स्थान के साथ भेदभाव और सामाजिक बहिष्कार की प्रकृति और रूपों में बदलाव आया है। हालांकि यह तरल रूपों में बदल गया है, परन्तु कानूनी सुरक्षा उपायों और समान अवसरनीतियों के अस्तित्व के बावजूद भेदभाव की प्रथाएं हर समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में मौजूद हैं [3]। यह एक

सर्वविदित तथ्य है कि भारत में धर्म एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। और समाज के प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन में प्रवेश करता है। मुख्य रूप से भारतीयसंदर्भ में प्रत्येक धर्म सभी प्रकार के शोषण और बहिष्कार के साथ अपनी प्रमुख प्रकृति प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण स्रोत है।

धार्मिक समुदायों की जनसंख्या (1961-2011)

धर्म	1961	1971	1981	1991	2001	2011
हिन्दू	83.45	82.72	82.63	82.00	80.45	79.8
मुस्लिम	10.69	11.20	11.35	12.11	13.43	14.2
ईसाई	2.44	2.59	2.42	2.34	2.34	2.3
सिक्ख	1.79	1.89	1.96	1.94	1.87	1.7
बुद्धिस्ट	0.74	0.69	0.70	0.76	0.78	0.7
जैन	0.46	0.47	0.48	0.39	0.41	0.4
अन्य	0.34	0.39	0.41	0.38	0.65	0.9

Source: The First & Second Report on Data,Census of India, 2001-2011, New Delhi.

जाति आधारित भेदभाव - इस्लाम ने 7वीं शताब्दी ई. में अपने जन्म के लगभग तुरंत बाद भारत में प्रवेश किया और देश के विभिन्न हिस्सों में अपना रास्ता बना लिया। दक्षिण में यह भारत के मालाबार तट परस्थित (वर्तमान केरल) राज्य के माध्यम से प्रवेश किया। इसके वाहक अरब व्यापारी थे जो भारत के साथ व्यापारिक गतिविधियों में शामिल थे। मालाबार क्षेत्र में अपनी कई यात्राओं के दौरान, अरब व्यापारियों ने स्थानीय महिलाओं के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किए और इन विवाहों से कई संतानें हुईं। इसके परिणामस्वरूप क्षेत्र के विभिन्न हिस्सों में इस्लाम का प्रसार हुआ। कई सूफी संत इन व्यापारियों के साथ थे और उनके उपदेश और एक समतावादी आस्था के आकर्षण के प्रभाव में कई स्थानीय लोग, मुख्य रूप से निम्न वर्ग से, इस्लाम में परिवर्तित हो गए [4]।

भारतीयसमाज में आत्मसात करने की यह प्रक्रिया आसान नहीं रही है और भारत के मुसलमानों को आज जिन चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, वेलगातार बदलती राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्थिति के साथ मौजूद हैं। मोटे तौर पर यह देखा गया है कि जो लोग परिवर्तित हो गए ज्यादातर दबे-कुचले वर्गों से ताल्लुक रखते हैं। इतिहास में इस्लाम या तो गुलाम बन गया या हिंदू धर्म से ज्यादा दयनीय स्थिति हो गई। इस धर्म में जाति फिर से मस्जिद के मौलवी (पुजारी) और अशरफ (उच्चजाति के भारतीय मुसलमान) के अवसर वादियों की नियंत्रक साधन बन गई है [5]।

विभिन्न ऐतिहासिक और प्रथागत कारणों से हिंदूजाति व्यवस्था ने देश में इस्लाम पर इतना गहरा प्रभाव डाला कि जाति व्यवस्था कमजोर होने पर भी मुसलमान अपने आप में पूरी तरह से बच नहीं सका [6]। जातिव्यवस्था मुसलमानों की एक सामाजिक वास्तविकता है, इस तथ्य के बावजूद कि वे इस्लाम के अनुयायी हैं, उदाहरण के लिए, अब्दुल बिस्मिल्लाह, साहित्य अकादमी पुरस्कार विजेता अपने लेख 'दलित मुस्लिम पहचान का आधार' में उन्होंने अशरफों के गहरे पूर्वाग्रह को दर्शाया है। उदहारण के तौर पर अगर देखा जाय तो अशरफ घराने के लोग अपनी बेटी की शादी अजलाफ घराने में नहीं करते है। बहुत से जातियों के यहाँ वे खाना भी नहीं खाते है जैसे धोबी जो एक अजलाफ जाति है उनका मानना है कि 'धोबी मासिक धर्म वाली महिलाओं के दूषित कपड़े धोते हैं और इसलिए वह अछूत हैं' [7]।

वास्तव में, मुस्लिम समुदाय में कुछ जातियों जैसे कि भाटियार को इतना नीचा माना जाता है कि उनका नाम हीगाली का एक शब्द है। धोबी को डोम से भी बदतर माना जाता है। कहावत है 'डोम के घर में खाओ लेकिन धोबियों में कभी नहीं'। मुसलमानों में ऊंची जातियां इनमें से कुछ निचली जातियों को 'अछूत' भी मानती हैं [8]।

भारतीय मुसलमान जातियों में विश्वास करते हैंलेकिन वे मोहम्मद पैगंबर का पता लगाना भूल जाते हैं जो एक आदिवासी (कुरैश) समुदायसे थे जिनका वे अनुसरण कर रहे हैं और प्रार्थना कर रहे हैं। मुस्लिम लीग या मुस्लिम मजलिज ने मुस्लिम कमेटी के कमजोर वर्ग के बारे में नहीं सोचा। इन राजनीतिक दलों ने धर्म के नाम पर या पिछड़े मुसलमानों के मन में सांप्रदायिक पार्टियों का डर पैदा करके, पिछड़े मुसलमानों की भागीदारी को सीमित करके अपना वोट अर्जित करने की कोशिश की है। इन पार्टियों को डर था कि पिछड़े मुसलमानों को आरक्षण देने से उनकी सामाजिक और वित्तीय स्थिति को बढ़ावा मिलेगा, जिसके परिणामस्वरूप पार्टियों का एजेंडा विफल हो जाएगा और राजनीति में पिछड़ो का वर्चस्व होगा क्योंकि पिछड़े मुसलमान भारत में रहने वाली कुल मुस्लिम आबादी का 85 प्रतिशत से अधिक हैं। मुसलमानों में अपनी हैसियत को लेकर यह अंतर कोई नया मुद्दा नहीं है। 1946 में मोमिन पार्टी के अब्दुल्ला कयूम और अतिकुर्रहमान मंसूरी अरबी ने कहा था कि मुस्लिम लीग अमीर मुसलमानों की पार्टी है और पाकिस्तान में पिछड़े मुसलमानों के लिए कोई जगह नहीं होगी। इस बिंदु को अब्दुल्ला कयूम ने पिछड़े मुसलमानों को पाकिस्तान में पलायन करने से रोकने के लिए समझाया था। बाद में जिन्ना ने कहा था कि अगर पिछड़े मुसलमानों ने मुस्लिम लीग का समर्थन किया होता तो पाकिस्तान का विस्तार दिल्ली तक होता। उस साल मोमिन पार्टी ने चुनाव जीता था। विभाजन के बाद भी, भारत में 25 करोड़ मुसलमानों पर सिर्फ 25 मुस्लिम अभिजात वर्ग का ही वर्चस्व है और ये रईस सिर्फ धर्म के नाम पर दूसरे मुसलमानों के साथ भेदभाव और अपमान कर रहे हैं। जहां दूसरे धर्मों के दलितों की स्थिति में दिन-ब-दिन सुधार हो रहा है, वहीं पिछड़े मुस्लिमों की स्थिति बद से

बदतर होती जा रही है। पिछड़े मुसलमानों पर हो रहे ये अत्याचार आज भी जारी हैं, इसलिए उन्होंने इन अत्याचारों के खिलाफ खुद आवाज उठाने का फैसला किया है वे अब 25 मुस्लिम अभिजात वर्ग की तानाशाही नहीं चाहते हैं।

आंतरिक चुनौती के रूप में सामाजिक स्तरीकरण- बेहतर समझ के उद्देश्य से, आज समुदाय के सामने आने वाली चुनौतियों को बाहरी और आंतरिक चुनौतियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। बाहरी चुनौतियाँ वे हैं, जो समुदाय के बाहर मौजूद कारकों से उत्पन्न होती हैं। इन कारकों में सबसे महत्वपूर्ण निस्संदेह यह होगा कि भारत के मुसलमानों को लगातार 'पांचवें स्तंभकार' के रूप में देखा जा रहा है, जो 'अतिरिक्त' को आश्रय दे रहे हैं। आंतरिक चुनौती जो समुदाय को कमजोर करने की धमकी देता है जो इसकी जड़ों पर हमला कर रहा है। यहां जिस खतरे का उल्लेख किया जा रहा है वह भारत में मुसलमानों के कुछ वर्गों द्वारा प्रचलित जाति-आधारित भेदभाव है। पवित्र कुरान कहता है-'हे मानव! हमने (ईश्वर) तुम्हें नर और मादा के एक जोड़े से रचा, और तुमको कौमो और कबीलों का रूप दिया, ताकि तुम एक दूसरे को जान सको (न की एक दुसरे से नफरत करो)' (Quran : 10)

यह आयत बिल्कुल स्पष्ट कर देती है कि यद्यपि इस्लाम लिंग और कबीले के आधार पर भेदभाव को स्वीकार करता है, लेकिन यह सामाजिक स्तरीकरण को मान्यता नहीं देता है। परन्तु मुस्लिम समुदाय भारत के अन्य समुदाय की तरह विविधतापूर्ण, खंडित और जाति-ग्रस्त बना हुआ है। वास्तव में सामाजिकस्तरीकरण के स्तर मुसलमानों के भीतर देखे गए है भारतीय समुदाय कुरान के इस फरमान को पूरी तरह से नकारते हैं [9]।

इम्तियाज अहमद के मौलिक काम, भारत में मुसलमानों के बीच जाति और सामाजिकस्तरीकरण (1973) और हाल ही में, अली अनवर की मासावत की जंग: बिहार का पसमांदा मुसलमान (2001) ने भारतीय मुसलमानों के बीच जाति की वास्तविकता को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया है। हालाँकि, यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि मुसलमानों के बीच यह भेदभावपूर्ण प्रथा, दक्षिण या भारत के किसी अन्य हिस्से की तुलना में उत्तर भारत में अधिक देखी गई, हिंदुओं के बीच यह उतनी स्पष्ट, दमनकारी और व्यापक नहीं है। तथ्य यह है कि भारत के मुस्लिम समुदाय के भीतर जाति के आधार पर भेदभाव मौजूद है, जो समस्या के लिए पर्याप्त कारण है। विदेशी वंश का दावा करने वाले मुसलमान एक श्रेष्ठ स्थिति का दावा करते हैं जो खुद को अशरफ या 'महान' के रूप में मानते है। दूसरी ओर, स्वदेशी धर्मान्तरित लोगों के वंशजों को आमतौर पर अवमानना के रूप में अजलाफ या 'आधार' या 'नीच' कहा जाता है। इस वर्गीकरण के अनुसार, अगरदेखा जाय तो भारत की मुस्लिम आबादी का 75 प्रतिशतभारी हिस्सा अजलाफ श्रेणी में आ जाएगा[10]।

लेकिन इस्लाम के समतावादी विश्वास में परिवर्तन नहीं हुआ है अजलाफ के साथ मुस्लिम उच्च जाति का भेदभाव जारी है। निचली और पिछड़ी जाति के मुसलमानों के साथ किए गए दुर्व्यवहार ने हिंदू समाज में निचली जातियों के समान पिछड़े मुसलमानों को अनुसूचित जाति के रूप में मान्यता देने के लिए एक आंदोलन का नेतृत्व किया है[11]। इस आंदोलन के नेताओं में से एक डॉ. एजाज अली ने, बिहार में निचली जाति के मुसलमानों को दफनाने के अधिकारों से वंचित करने का विरोध करते हुए कहा कि यह 'इस्लाम के मूल सिद्धांतों के खिलाफ' था और 'इस्लाम में जाति का कोई आधार नहीं था'[12]। हालांकि इस बात से कोई इंकार नहीं है कि भारतके मुसलमानों में जन्म के आधार पर भेदभाव की घिनौनी प्रथा प्रचलित है, लेकिन जाति के आधार पर अलग पहचान और अन्य लाभों की मांग करना यह कदम बड़े खतरे से भरा है। यह समुदाय के भीतर पहले से मौजूद विभाजनों को केवल एक और आयाम प्रदान करेगा। क्या शिया, सुन्नी, देवबंदी, बरेलवी, अहल-ए-हदीस, जमात-ए-इस्लामी आदि पर आधारित विद्वता इतनी नहीं है कि वे अब 'पिछड़े मुस्लिम' और 'अगड़ी जाति के मुस्लिम' जैसी श्रेणियां बनाने की कोशिश कर रहे हैं? मामला एक ऐसी स्थिति में पहुंच गया है जहां डॉ.एजाज अली के नेतृत्व में अखिल भारतीय संयुक्त मुस्लिम मोर्चा नामक एक संगठन ने आगे बढ़कर मुसलमानों के लिए नौकरी में आरक्षण हासिल करने के लिए एक अद्वितीय 'दे-टेक' फॉर्मूला प्रस्तावित किया है। इस समुदाय को जिस कड़वी सच्चाई को दूर करने की जरूरत है, वह यह है कि जाति का स्तरीकरण, जो मुस्लिम समाज की एक सच्चाई है। इस अप्रिय प्रथा को दूर किया जा सकता है। समुदाय को इसके खिलाफ अपना चेहरा खड़ा करना होगा और इस अमानवीय प्रथा से लड़ने का एकमात्र तरीका सीधी कार्रवाई है-एक जिहाद, जाति-आधारित स्तरीकरण का अभ्यास, प्रचार या वैधीकरण करने वाले जमात-ए-उलामा, जमात-ए-इस्लामी और तब्लीगी जमात जैसे संगठनों को हस्तक्षेप करने और जागरूकता कार्यक्रम चलाने की आवश्यकता है, जिसका उद्देश्य न केवल आदिम मानसिकता बल्कि सामाजिक बाधाओं को भी तोड़ना है। इसके अलावा, यह स्थिति न केवल गैर-इस्लामी है, बल्कि भारत में मुस्लिम समुदाय की समृद्धि और सुरक्षा के लिए भी हानिकारक है। ये डर बहुत वास्तविक हैं। इन परिस्थितियों में, इस परीक्षा के लिए भारत के मुस्लिम समुदाय की प्रतिक्रिया ऐसी होनी चाहिए जो इसकी परिपक्वता और उम्र को दर्शाती हो; एक प्रतिक्रिया जो समुदाय के सामूहिक ज्ञान और पवित्र कुरान और पैगंबर की महान शिक्षाओं को प्रदर्शित करती हो।

अखिल महाराष्ट्र मुस्लिम खटीक समाज द्वारा दायर एक जनहित याचिका (पीआईएल) के जवाब में, जिसमें कहा गया था कि मुस्लिम समुदाय के भीतर पिछड़े मुस्लिम है जो आरक्षण की जरूरत और एससी सूची में शामिल करने की मांग कर रहे है, इस पर सुप्रीम कोर्ट

ने केंद्र को नोटिस जारी कर जवाब मांगा था। इसके अलावा, न्यायाधीश ने इस्लाम के भीतर किसी भी प्रकार की जाति व्यवस्था के अभ्यास को प्रतिबंधित करने वाले कुरान के सख्त आदेशों का उल्लेख किया और याचिकाकर्ता से पूछा कि क्या इस्लाम जाति व्यवस्था की अनुमति देता है[13]। शीर्ष अदालत के इस अवलोकन ने एक बहस शुरू कर दी है कि इस्लाम में जाति व्यवस्था है या मुसलमानों में? सभी सामाजिक वैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि यद्यपि इस्लाम में जाति व्यवस्था नहीं है, लेकिन भारतीय मुस्लिम समाज ने कई बिरादरियों को चित्रित करके एक पदानुक्रमित संरचना विकसित की है। कुरान और पैगंबर की बातें बिल्कुल स्पष्ट हैं कि सभी इंसान समान हैं; सभी एक दूसरे के भाई-बहन हैं। परन्तु, कुछ मुसलमानों ने विदेशी वंश के आधार पर अशरफया कुलीन के रूप में अपने लिए श्रेष्ठ दर्जा स्थापित किया, जबकि स्वदेशी के वंशज धर्मान्तरित लोगों को आमतौर पर अजलाफ या 'नीच' कहा जाता है।

भारतीय मुसलमानों में जातियों के अस्तित्व परसच्चर समिति की रिपोर्ट कहती है-वर्तमान मुस्लिम समाज चार प्रमुख समूहों में विभाजित है-

1. अशरफ, जो अपनी उत्पत्ति का पता विदेशी भूमि से लगाते हैं,
2. उच्च जाति के हिंदू जो इस्लाम में परिवर्तित हुए,
3. मध्यम जाति के धर्मान्तरित जिनके व्यवसाय अनुष्ठानिक रूप से स्वच्छ हैं,
4. पूर्ववर्ती अछूत जातियों से धर्मान्तरित - भंगी (मैला ढोने वाले), मेहतर (स्वीपर), चमार (टेनर), हलालखोर (डोम) आदि[14]।

इसी तरह, न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्रा आयोग ने भारतीय नागरिकता के विभिन्न वर्गों के बीच जातियों की व्यापकता का पता लगाया और यह निष्कर्ष निकाला कि -'जाति वास्तव में एक सामाजिक घटना है जिसे लगभग सभीभारतीय समुदायों द्वारा साझा किया जाता है, भले ही उनके धार्मिक अनुनय अलग-अलग हो'[15]।

ऐतिहासिक रूप से, दलितों की एक अच्छी संख्या इस्लाम में परिवर्तित हुई। लेकिन धर्मांतरण के बाद उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति दरिद्र और पिछड़ी बनी रही। इस्लाम की तह में शामिल होने से उन्हें अपनी प्रतिभा और क्षमताओं को इतना बढ़ावा नहीं मिला कि वे अन्य सभी के साथ समान प्रतिस्पर्धा का सामना कर सकें। उनमें से अधिकांश ने कारीगर, किसान और मजदूर के रूप में अपने पारंपरिक व्यवसायों को जारी रखा सिवाय इसके कि शरीयत में इसे अशुद्ध या अस्वीकार्य माना जाता था। फिर भी, हाल ही में, इनमें से कुछ मुस्लिम जाति समूहों ने खुद को मुस्लिम नामकरण दिया। और खुद को इस्लामिक व्यक्तित्वों के साथ जोड़ा। उदाहरण के लिए, कसाई ने खुद को कुरैशी के रूप में नामित किया; बुनकर अंसारी के रूप में; दर्जी के रूप में इदरीसी; अब्बासी के रूप में भिश्ती; सब्जी विक्रेता रायन के रूप में; सलमानी के रूप में नाई; बढ़ई और लोहार जैसे सैफी आदि। एक लोकतांत्रिक राज्य में, प्रत्येक सामाजिक रूप से पहचाने जाने योग्य समूह विकास में अपना चेहरा देखने की इच्छा रखता है। लाखों पिछड़े मुसलमान, जो व्यावसायिक रूप से एससी के समान हैं, एससी सूची में शामिल करने की मांग करते हैं ताकि उन्हें आरक्षण का लाभ मिल सके।

संवैधानिक स्थिति- हालांकि भारतीय कानून 'पिछड़े मुसलमानों' के लिए लाभ प्रदान नहीं करता है; हिंदू, बौद्ध और सिक्ख अनुसूचित जाति को दिए गए समान अधिकारों के लिए मुसलमान आंदोलन करते रहे हैं। सामाजिक स्थिति के कारण उनके बीच भेदभाव कम नहीं हुआ है। भारत का संविधान, जो 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ, दलितों को कुछ तरजी ही विकल्प प्रदान करता है जो इतनी शताब्दियों से भारतीय समाज में अपने अधिकारों से वंचित हैं [16]।

प्रसिद्ध इंद्रा साहनी मामले में सुप्रीम कोर्टने फैसला किया था कि 'एक जाति भारत में एक सामाजिक वर्ग हो सकती है और अक्सर होती है'। इसके अलावा 'यदि यह सामाजिक रूप से पिछड़ा हुआ है, तो यह अनुच्छेद 16 (4) के उद्देश्य के लिए एक पिछड़ा वर्ग होगा। गैर-हिंदुओं में कई व्यावसायिक समूह, और संप्रदाय हैं, जो ऐतिहासिक कारणों से सामाजिक रूप से पिछड़े हैं। वे भी अनुच्छेद 16(4) के उद्देश्य के लिए पिछड़े सामाजिक समूहों का प्रतिनिधित्व करते हैं, पिछड़े वर्गों की पहचान निश्चित रूप से अन्य व्यावसायिक समूहों, वर्गों और लोगों के वर्गों के बीच जातियों के संदर्भ में की जा सकती है (एआईआर 582 एससी1993)। इसलिए, यह उम्मीद की जाती है कि सर्वोच्च न्यायालय भारतीय संविधान के संदर्भ, विभिन्न आयोगों के निष्कर्षों और सामाजिक वास्तविकताओं को ध्यान में रखते हुए पिछड़े मुसलमानों के आरक्षण के मुद्दे का विश्लेषण करेगा। क्योंकि पिछड़े मुसलमानों पर हो रहे अत्याचार आज भी जारी है। पिछड़े मुसलमान अनुसूचित जाति आरक्षण के पात्र हैं वे न केवल दलित हिंदुओं के समान पेशे में लगे हुए हैं बल्कि अपने समकक्ष दलित हिंदुओं के समान सामाजिक भेदभाव से भी गुजरते हैं। पिछड़े मुसलमानों की स्थिति जिसमें नट, बक्खो, खटीक, भटियारा, कुंजरा, धुनिया, कलाल, डफली, हलालखोर, धोबी, गोरकन, मीरशिकर, रंगरेज, दर्जी, मोचिस, मुकरी और गरुड़ आदि शामिल हैं, जो दिन-ब-दिन बदतर होते जा रहे हैं। इस बीच, पिछड़े/दलित मुसलमानों के लिए आरक्षण के मुद्दे को दबाने के बजाय यह उलेमा और समुदाय के नेताओं का कर्तव्य है कि वे यह महसूस करें कि इस समूह को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है और उनके उचित हिस्से को प्राप्त करने के रास्ते में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए, क्योंकि सच्चर रिपोर्ट के अनुसार वे 'संचयीरूप से उत्पीड़ित' हैं। मुस्लिम समुदाय से बार-बार इस्लाम के नाम पर एकता बनाए रखने की अपील, संवैधानिक लाभों को छोड़कर, एक बुद्धिमान विचार नहीं होगा। हो सकता है कि भविष्य में किसी दिन आरक्षण पूरी तरह से समुदाय की दरिद्रता पर

आधारित हो, लेकिन तब तक जाति-आधारित समर्थन पूरी तरह से उचित लगता है। सच है, मुस्लिम समुदाय को विखंडन के प्रस्ताव को अस्वीकार करना चाहिए, लेकिन उन्हें सामाजिक न्याय के उन्हीं सिद्धांतों को समुदाय के भीतर लागू करना चाहिए, जैसा कि वह राष्ट्र के भीतर अपने लिए मांग करते है[17]।

निष्कर्ष-विभिन्न आँकड़ों और रिपोर्टों से पता चलता हैकि भारत में 85 प्रतिशत से अधिक मुसलमान पिछड़े हैं। जब मुस्लिम मिशनरियों ने भारत में अपना काम शुरू किया तो आजादी से दशकों पहले, सभी जातियों के लिए समान व्यवहार और अवसर का उनका वादा दलितों के लिए प्रमुख कारण बन गया, जो मिशनरी संदेश को अपनाने के लिए खुद को हिंदू धर्म के पदानुक्रम के सामाजिक-आर्थिक निचले पायदान पर पाते हैं, लेकिन कुछ भी काम नहीं किया और जातिगत पूर्वाग्रहों से कोई बच नहीं पाया। जातिवाद रंगभेद की भारतीय प्रजाति है और दलित, जिन्हें भारत के अश्वेतों के साथ-साथ निर्वासित नागरिकों के रूप में जाना जाता है, अभी भी सभी प्रकार के अत्याचारों और उत्पीड़न का सामना कर रहे हैं, मौलिक स्वतंत्रता और बुनियादी जरूरतों की मांग कर रहे हैं। मस्जिद के भीतर नागरिक अधिकारों का नुकसान हुआ है, मानवाधिकारों का उल्लंघन और सम्मान हुआ है। दशकों तक एक लंबी चुप्पी और धैर्य के बाद, यह भारतीय मस्जिद के साथ-साथ विभिन्न शासनों को न्याय करने और अन्य उपायों की तलाश करने में विफलता का पर्दाफाश कर रहा है। जाति एक ऐतिहासिक समस्या है और इसे हल करने के लिए एक ऐतिहासिक क्षण और प्रयास की आवश्यकता है और जहां तक पिछड़े मुसलमानों का संबंध है, वे अभी भी स्वतंत्रता, गरिमा, समानता और विकास के लिए इतिहास बनाने में लगे हैं। पिछड़े मुसलमानों की समस्या का समाधान मात्र धार्मिक प्रतिबिंब और सबसे अच्छे मौखिक इशारे से नहीं हो सकता बल्कि संरचित असमानताओं को मौलिक रूप से और तेजी से बदलने के लिए विभिन्न नीतियों, प्रशासनिक और संरचनात्मक परिवर्तनों को लागू करना होगा इन सभी को ठोस कार्रवाई में देखना होगा। इसका उद्देश्य ऐतिहासिक रूप से संचित असमानताओं को दूर करके समानता को बढ़ावा देना है। भारत सरकार ने उनमें स े कुछ पर जानबूझकर काबू पाकर अधिक समानता प्राप्त करने के साधन के रूप में प्रतिपूरक भेदभाव का उपयोग किया है। ऐतिहासिक रूप से संचित विकलांगता जिससे दलित लंबे समय से पीड़ित हैं। जहां तक पिछड़े मुसलमानों पर विभिन्न अध्ययनों का संबंध है, इन कमजोर समूहों के लिए खुद को राजनीतिक समुदाय के पूर्ण सदस्य के रूप में दावा करने के लिए एक भी समावेशी नीति नहीं है[18]। जो भी हो, मुसलमान के साथ सबसे बड़ी समस्या यह है कि वे अधिक रूढ़िवादी हैं इस्लाम और मौलवी जो भी कहते हैं उस पर पूरा भरोसा करते हैं। पिछड़े मुसलमानों को अपने धर्म से परे सोचना होगा तभी कोई समाधान के बारे में सोच सकता है और भारत में अन्य दलित समुदायों के साथ एकता नामक कुछ संभव है। पिछड़े मुसलमानों को भी अन्य धार्मिक समूहों या समुदायों की तरह स्वतंत्र आंदोलन शुरू करना चाहिए। अगर वे स्वतंत्र सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक आंदोलन शुरू नहीं करते हैं, तो मुझे नहीं लगता कि वे उस लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे जो वे अब तक सोच रहे हैं। अंत में, यह कहा जा सकता है कि यदि हिंदू, सिक्ख और बौद्ध को जाति और धर्म के आधार पर आरक्षण दिया जा रहा है, तो पिछड़े मुसलमानों को क्यों नहीं। वास्तव में पिछड़े मुसलमान समान व्यवहार और आरक्षण के पात्र हैं। समस्या का लोकतांत्रिक और कानूनी समाधान होना चाहिए। इन सभी कमजोर समूहों को आरक्षण के ढांचे में शामिल किया जाना चाहिए ताकि वे भी गरिमा के जीवन के रूप में रह सकें, खुद को पेश करने के लिए जगह और अपना उचित हिस्सा प्राप्त कर सकें जो अनादि काल से वंचित है।

संदर्भ सूची -

1 Eliada Mircea, The Encyclopedia of Religion, Macmillan Publishing Company, New York, Vol. 12, 1987 .Pp.282-283.

2 Webster, John C.B, The Dalit Christians: A History, ISPCK Publication, Delhi, 1990. Pp. 159-187.

3 Prasad Chunnu, Issue of Reservation and Quota: A Critical Perspective", Social Action, Vol. 42:3 July-September 2007. Pp. 242-258.

4 Kurup, K.K.N, The Sufis and religious harmony in Kerala, in A.A.Engineer (ed.) Sufism and Communal Harmony, Printwell, Jaipur, 1991. P-80.

5 Imtiaj Ahmad, Social Stratification among Muslims, The Economic Weekly, Vol.10, 1971. Pp. 193-96.

6 Zillor Khan, Caste and Muslim Peasantry in India and Pakistan, Man in India, Vol. 48, 1068. Pp. 133-148.

7 Imtiaj Ahmad ,The Democratic Problem of the Muslim Community in the edited book by Safdar Imam Quadri and Sanjay Kumar, Marginalization of Dalit Muslims in Indian Democracy, New Delhi, Deshkal Publication, 2003. P-p.1-2.

8 Imtiaj Ahmad, The Ashraf-Ajlaf Dichotomy in Muslim Social Structure in India, IESHR, Vol.3, no.3, 1966. Pp. 268-78.

9 Alam Anwar, Democratization of Indian Muslims, Economic and Political Weekly, XXXVIII (46) November 15, 2003. p. 488
10 Anwar Ali, Masawat ki Jung: Pasemanzar: Bihar ka Pasmanda Musalman (in Hindi), Vani Prakashan, New Delhi, 2001. P.30.
11 Sikand Yoginder, Also The 'Dalit-Muslims' and the All India Backward Muslim Morcha, 2003.
12 Sahay Anand Mohan, Backward Muslims protest denial of burial also News report in www.rediff.com. 2003, March 6.
13 Times of India, January 26, 2008.
14 Sachhar Report on Muslims of India, 2006, p. 192.
15 Rangnath Mishra Report, 2007, p. 209.
16 Basu, Durga Das, Introduction to the Constitution of India, Law Publishers, New Delhi, 2004. Pp.285-287.
17 See for detail, www.dalitmuslims.com, (Indian Dalit Muslims Voice). 38 Times of India, 13 July, 2009.
18 Prasad Chunnu, Social Exclusion and Caste Based Discrimination on Dalit Christians in South India, National Conference, Social Mobility in South India, on 24th and 25th September, by Department of Sociology, Pondicherry University, Puducherry. 2009.

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. Eliada, M. (1987). The Encyclopedia of Religion. Macmillan Publishing Company, New York. Vol. 12, Pp.282-283.
2. Webster, J. C.B (1990). The Dalit Christians: A History. ISPCK Publication, Delhi. Pp. 159-187.
3. Prasad, C. (2007). Issue of Reservation and Quota: A Critical Perspective. Social Action, Vol. 42:3 July-September. Pp. 242-258.
4. Kurup, K.K.N. (1991), The Sufis and religious harmony in Kerala, in A.A.Engineer (ed.) Sufism and Communal Harmony. Printwell PublicationJaipur. P.80.
5. Ahmad, I. (1971). Social Stratification among Muslims. The Economic Political Weekly Journal. Vol.10, Pp. 193-96.
6. Khan, Z. (1068). Caste and Muslim Peasantry in India and Pakistan, Man in India Journal. Vol. 48, Pp. 133-148.
7. Ahmad, I. (2003). The Democratic Problem of the Muslim Community in the edited book by Safdar Imam Quadri and Sanjay Kumar, Marginalization of Dalit Muslims in Indian Democracy. New Delhi, Deshkal Publication. Pp.1-2.
8. Ahmad, I. (1966). The Ashraf-Ajlaf Dichotomy in Muslim Social Structure in India. IESHR, Journal. Vol.3, no.3, Pp. 268-78.
9. Alam, A. (2003). Democratization of Indian Muslims. Economic and Political Weekly. XXXVIII (46) November 15, p. 4881.
10. Anwar, A. (2001). Masawat ki Jung: Pasemanzar: Bihar ka PasmandaMusalman (in Hindi). Vani Prakashan, New Delhi. P.30.
11. Sikand, Y. (2003). The 'Dalit-Muslims' and the All India Backward Muslim Morcha. India Committee of the Netherlands.
12. Sahay, A, M. (2003). Backward Muslims protest denial of burial also News report in www.rediff.com.March 6.
13. Basu, D. (2004). Introduction to the Constitution of India. Law Publishers, New Delhi. Pp. 285-287.
14. Prasad, C. (2009). Social Exclusion and Caste Based Discrimination on Dalit Christians in South India. National Conference, Social Mobility in South India, on 24th and 25th September.By Department of Sociology, University, Pondicherry.
15. Times of India, January 26, 2008.
16. Sachhar Report on Muslims of India, 2006, p. 192.
17. Rangnath Mishra Report, 2007, p. 209.
18. See for detail, www.dalitmuslims.com, (Indian Dalit Muslims Voice). 38 Times of India, 13 July, 2009.
19. The First Report on Data, Census of India, 2001, New Delhi.
20. The Second Report on Data, Census of India, 2011, New Delhi.

वेष्टनव्यायोग (A Playlet on Gherao) की भाषाशैली

टुम्पा जाना
सह-अध्यापिका
नाड़ाजोल-राज-कलेज(पश्चिमवङ्ग)

रूपककार वीरेंद्रकुमार भट्टाचार्य की कृतियों में से एक रूपक वेष्टनव्ययोग है। स्वतंत्रता के बाद आधुनिक संस्कृत नाटककार के रूप में वीरेंद्रकुमार भट्टाचार्य पश्चिम बंगाल और दुनिया में एक लोकप्रिय नाम है। उनका जन्म 1917 ई. में बंगाल के सिलहॉट जिले में हुआ था। उन्होंने अपनी उच्च शिक्षा कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्राप्त की। उसके बाद कलकत्ते के सेन्ट पलस कलेज में दर्शनशास्त्र के अध्यक्ष रहे। वह 1949 ई. में अध्यापन के बाद सेवानिवृत्त हुए। बाद में उन्होंने विभिन्न महत्वपूर्ण प्रशासनिक कार्यों के प्रमुख के रूप में कार्य किया। सूत्रधार ने वेष्टनव्यायोग नाटक के प्रस्तावना में कहा-'ग्रन्थकार: स्वयं भूतपूर्व: शिल्पाधिकारिको वीरेन्द्रकुमारभट्टाचार्यनामा'[1]। 1967 ई. से उन्होंने संस्कृत भाषा में नाटक आदि लिखना शुरू किया। संस्कृत साहित्य में उनके आजीवन योगदान के लिए उन्हें 'साहित्यसूरी' सम्मान मिला। उनकी संस्कृत कृतियाँ है -कविकालिदास:, शार्दूलशकटम्, सिद्धार्थचरितम्, गीतगौराङ्गम्, शूर्पणखाभिसार:, मर्जिनाचातुर्यम्, चार्वाकताण्ड व:, सुप्रभास्वयंवर:, मेघद्यौत्यम्, लक्षणव्यायोग:, शरणार्थिसंवाद:, झञ्झावृत्त:, वेष्टनव्यायोग। वेष्टनव्यायोग नाटक का प्रकाशन संस्कृत-साहित्य-परिषद द्वारा 1971 ई. में हुआ था।

नाटक की शुरुआत विष्णु के दसवें अवतार कल्कि अवतार (कलियुगे वङ्गेष्वाविर्भूत: श्रीहरेर्दशमावतार: कल्की[2]) के गुणगान से होती है। नान्दी में कलियुग के राजनीतिक नेता या नायक ने कल्कि-अवतार को प्रणाम किया-'तं नौमि कल्किरूपं वङ्गेष्वहं वेष्टनायुधवन्तम्[3]। साठ के दशक से, घेराबंदी एक राजनीतिक मुद्दा रहा है। लेकिन नाटक में इसके दुष्परिणामों को दिखाए बिना ही उन्होंने चुटकुलों या हंसी की आड़ में हास्य का विकास किया है। जो वेष्टनव्यायोग के कुछ अंशों में स्पष्ट है। यथा-'*...वेष्टनव्यायोगनाम एव उपस्थाप्यतेह्यद्य रसज्ञमनोरञ्जनार्थम्;...कश्चित् कल्पेत विदुषां मोदाय*'[4]। वेष्टनव्यायोग की प्रस्तावना में ग्रन्थकार ने स्वयं कहा है-'*पुस्तकेऽस्मिन् राजनैतिकमालोचनं प्राय: नास्ति। वेष्टनपद्धते: प्रयोगस्य कौतुककर: परिणाम एव दर्शित:*'[5]। यह एक नाटक है या इसे प्रहसन कहना बेहतर है। व्यायोग तो यह हैं ही, साथ ही यह प्रहसन, एकाङ्की, नाटिका और नाटक हैं। नाटक में सूत्रधार और पारिपार्श्विक (गजदन्त) के अलावा आठ अन्य कुशीलव हैं। यथा-जननायक कल्कि, शिल्पाध्यक्ष (Labour Officer), श्रमाध्यक्ष(Chairman) और श्रमिकों के पांच प्रतिनिधि-संजय,अभिजित्, जयद्रथ, सत्राजित् और अरिजित्। एक अच्छी रचना की भाषा शैली और उसमें निहित साहित्यशास्त्रीय सार ग्रन्थ-ग्रन्थकार दोनों को बेहतर काव्य या साहित्य बनाने में मदद करता है। वेष्टनव्यायोग को इसकी बहुमुखी प्रतिभा के कारण समकालीन अर्थात् आधुनिक संस्कृत साहित्य में हास्य या प्रहसन के सबसे लोकप्रिय रूपों में से एक माना जाता है। वेष्टनव्यायोग नाटक में वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य की भाषा की महारत अद्वितीय है। इस नाटक में उन्होंने बंगाली भाषा और पूर्वी बंगाल की कहावतों को संस्कृत भाषा में प्रस्तुत किया। उनके नाटक की भाषाशैली को नीचे कई चरणों या बिंदुओं में दिखाया गया है।यथा-

(1)भाषा की सरलता, सरसता और मनोहरता-

कवि वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य ने वेष्टनव्यायोग नाटक में भाषा को बहुत ही सरल, और सठीक तरीके से प्रस्तुत किया है। भाषा की सरलता इस रचना को बहुत ही आकर्षक बनाती है। कुछ उदाहरण यथा-'*प्रथममुपविशन्तु सर्वे पश्चात् शृणोमि भवद्वाक्यम्; 'न पठितं पत्रमिदं भवता साद्योपान्तम्; कष्टकरं कालं कलयामो वयं नरकसदृशे गह्वरे'; 'न श्रेयसे प्रभवति आचरणमीदृशम्*'[6]। यहाँ कलियुग की दुर्दशा या दुरवस्था का वर्णन बहुत ही सुचारुभाषा में किया गया है। इन्हीं विचारों के बीच मंच पर कुशीलव के चरित्र का विश्लेषण और खूबसूरती से प्रस्तुत किया गया है।

(2)देशी और विदेशी के साथ-साथ आधुनिक शब्दों के संस्कृत रूप-

देशी-विदेशी शब्दों के साथ-साथ आधुनिक संस्कृत शब्दों के संस्कृतीकरण पर वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य ने जोर दिया। पारंपरिक संस्कृत भाषा के साथ आधुनिक संस्कृत भाषा का रूप इस नाटक में दर्शकों और पाठकों के उत्साह को बढ़ाने में बहुत मददगार रहा है। ये शब्द न केवल बंगाली भाषा के पाठकों को आकर्षित करते हैं बल्कि पूरे संस्कृतभाषा के पाठकों को समान रूप से आकर्षित करते हैं। इसके माध्यम से गैर-बंगाली भाषियों को बंगाली भाषा के बारे में एक धारणा मिलता है। इस संदर्भ में कुछ शब्द ध्यान देने योग्य हैं। यथा-कृष्णहट्ट (Black Market), प्रकाशहट्ट (Open Market), श्रमाध्यक्ष (LabourOfficer), शिल्पाध्यक्ष (Chairman),

चलदिदंचलिष्यति, वेष्टनम्, चरमपत्रम् (ltimatum),आदि।

(3)भाषा पर अधिकार-

भाषा पर कवि का पूर्ण नियंत्रण इस नाटक में देखा जा सकता है। छोटे-छोटे वाक्य लेकिन उनके अर्थ बहुत गहरे हैं। कुछ उदाहरण यहां दिखाए जा रहे हैं। यथा-*'विलम्वनं पूजार्हाणाम् अनादराय प्रभवति'; 'क्षणिकलाभो न सूचयति विजयम्'; सत्यमेव जयते नानृतं हिंसा वा कदापि'; 'शठे शाठ्यं समाचरेत्'* [7]।

(4) वर्णनकुशलता-

कवि की काव्य रचना का एक विशेष पहलू है वर्णन का विस्तार। जिसे वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य ने वेष्टनव्यायोग नाटक में दिखाया। कुछ विवरण के माध्यम से, भाषा की ताकत के साथ-साथ घटना की विशद तस्वीर को खूबसूरती से विकसित होता है। कथा की गहराई के माध्यम से पाठक कभी करुणरस में, कभी फिर वीररस में लथपथ होते हैं। वेष्टनव्यायोग की प्रस्तावना में सूत्रधार ने आधुनिक कलियुग की दुर्दशा का इस प्रकार वर्णन किया है-*' सूत्रधार:-अथ किम्! सखे गजदन्त, किं न पश्यसि खलवृत्तानि यत्र तत्र रात्रिन्दिवम्? महार्घाणि जातानि सर्ववस्तूनि, तथापि दुष्प्राप्याणि प्रकाश्यहट्टेषु यद्यपि लभ्यानि तानि कृष्णहट्टेषु। मनुष्यजीवनं पशुप्राणेभ्योह्यपि मन्यते हेयतरम्, अतो नरहत्या क्रियते तुच्छातितुच्छहेतो:.अनृतं जयति सर्वत्र, सत्यं तु नाद्रियते। दुराचारोह्यपि वित्तवान् पुज्यते न विद्यावत्ता न वा चारित्र्यम्। पापपूर्णं सञ्जातं नो जम्बूद्वीपं विशेषत: पश्चिमबङ्गाख्यं खण्डितं राष्ट्रम्'*[8]। इस प्रकार कवि ने सुंदर वर्णनात्मक शैली के माध्यम से आधुनिक बंगाल के दुखद जीवन का वर्णन किया है। इससे यह पता चलता है कि कवि स्वयं बुराई से प्रभावित समाज का प्रतिनिधि है।

(5) ध्वन्यात्मकता-

कवि वीरेन्द्रकुमारभट्टाचार्य विचार की संक्षिप्तता को काव्यात्मक रूप में व्यक्त किया है।वह अक्सर छोटे वाक्यों में संवाद का इस्तेमाल करते थे। संचार की यह शैली कुशिलवों के बीच बहुत दिलचस्प है। उपस्थित लोगों के अनुकूल चरित्र का सूचक है उनकी भाषा। उच्चस्तरीय पात्रों (शिल्पाध्यक्ष, श्रमाध्यक्ष) की भाषा बहुत ही संयमित और शिष्ट है। यथा-

'श्रमाध्यक्ष:-सौजन्येन प्रयोजनं सर्वत्र सर्वकालेषु च'।

'शिल्पाध्यक्ष:-भो: सहकर्मिण:,स्थिरा भवन्तु। कथम् इदृशं सम्भाषिता वयम्?'

नाटक में सभी ने लौकिक संस्कृत में बात की। बातचीत के माध्यम से सामान्यलोकभाषा का प्रयोग भी पाठक को बहुत आकर्षित करता है। बोधगम्यता के कारण छोटे वाक्य भी बहुत सरल और गतिशील होते हैं।

(6) रसोन्मेषता-

इस बात से कोई इंकार नहीं है कि लेखन हास्य से भरपूर है। नाटक के आरंभ से अंत तक हास्यरस हर जगह पाया जा सकता है। हालांकि नाटककार ने मजदूरों की दुर्दशा का वर्णन करते हुए करुण रस को नाटक में पेश किया। शिल्पाध्यक्ष और श्रमिकाध्यक्ष के बीच संवाद के माध्यम से वर्तमान सामाजिक स्थिति को हास्य के रूप में प्रस्तुत किया।

इस प्रकार यह देखा जाता है कि वेष्टनव्यायोग में भाषा की उपस्थिति ध्यान देने योग्य है। वास्तव में वीरेन्द्रकुमारभट्टाचार्य का भाषाज्ञान प्रबल था। इसका प्रमाण वेष्टनव्यायोग के अध्ययन से ही मिलता है और कवि काव्य की रचना तभी कर सकता है, जब उसे विभिन्न विषयों का ज्ञान हो। इसीलिए काव्यप्रकाशकार मम्मट ने काव्य के कारण के बारे में कहा-

'शक्तिर्णिपुनता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञ: शिक्षयाभ्यास हेतुस्तदुद्भवे'।।[9]

यहाँ आलंकारिक मम्मट काव्य के तीन कारणों का उल्लेख करते हैं-शक्ति, निपुणता और अभ्यास। इसमें निपुणता है लोकशास्त्रों का ज्ञान। वीरेन्द्रकुमारभट्टाचार्य को भी एक कवि के रूप में विविध गहन ज्ञान था। भाषा उनमें से एक हैं। इसलिए विभिन्न शास्त्रों का प्रभाव और उपस्थापन उनकी रचनाओं में देखी जा सकती है।।

सन्दर्भ-

1 वेष्टनव्यायोग, प्रस्तावना, पृ-1
2 वही, पृ-2
3 वही, पृ-1
4 वेष्टनव्यायोग, प्रस्तावना, पृ-1
5 वेष्टनव्यायोग,मुखबन्ध
6 वही, पृ-12
7 वही, पृ-13
8 वही, पृ-3
9 काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास

सन्दर्भ ग्रन्थसूची-

(1) भट्टाचार्य, वीरेन्द्रकुमार. वेष्टनव्यायोग. कलकत्ता-4.संस्कृत-साहित्य- परिषत्. 1971.
(2) चट्टोपाध्याय, डॉ.ऋता. आधुनिक संस्कृत साहित्य. कलकत्ता. प्रग्रेसिभ पावलिशार्स. 2012.
(3) उपाध्याय, रामजी. आधुनिक संस्कृत नाटक. सागर विश्वविद्यालय. सागर.
(4) शर्मा,मञ्जुलता. आधुनिक संस्कृत काव्य की परिक्रमा, नवदेहली, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थानम्. 2011.
(5) शर्मा,मञ्जुलता. आधुनिक संस्कृत साहित्य के नये भावबोध, नवदेहली, संस्कृत ग्रन्थागार, 2010
(6) मुसलगांवकर, श्री.केशव. आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा, नवदेहली, चौखम्भा विद्याभवन, 2004

ISSN 2278 - 0327

कोविड-19 महामारी के समय ऑनलाइन शिक्षा एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स की उपयोगिता

अखिलेश कुमार गुप्ता
शोध छात्र, शिक्षा विभाग
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)

डॉ. सुधीर सुदाम कावर
सहायक प्राध्यापक, शिक्षा विभाग
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश

कोविड-19 वैश्विक महामारी के समय में वैकल्पिक व्यवस्था के रूप में संचार के तकनीकी उपकरणों का उपयोग करते हुए ई-शिक्षा एवं ऑनलाइन शिक्षा के माध्यम से विभिन्न ऑनलाइन प्लेटफॉर्म व सोशल नेटवर्किंग साइट्स के उपयोग द्वारा शिक्षा प्रक्रिया को गति देना, जिसमे राष्ट्रीय स्तर पर दीक्षा (DIKSHA), स्वयं (SWAYAM), ई-पाठशाला (E-PATHASHALA), ई-बस्ता, नेशनल रिपॉजिटरी ऑफ ओपन एजुकेशनल रिसोर्सेज (NROER), इत्यादि को समय की आवश्यकता के अनुसार सुदृढ़ किया गया तथा विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा जिसमे छत्तीसगढ़ शासन द्वारा 'पढाई तुहरे दुवार' अर्थात् शिक्षा आप के द्वार, स्कूल शिक्षा विभाग राजस्थान सरकार द्वारा 13 अप्रैल 2020 को सोशल मीडिया इंटरफेस फॉर लर्निंग इंगेजमेंट (SMILE) प्रोग्राम, मध्य प्रदेश राज्य सरकार द्वारा डिजिटल लर्निंग एनहांसमेंट प्रोग्राम (DigiLEP) 'अब पढाई नही रुकेगी' प्रोग्राम प्रारम्भ किया गया ये सभी प्रोग्राम विद्यार्थियों को घर पर रहकर शिक्षा प्राप्त करने के लिए चलाये गए हैं और व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से शैक्षिक संस्थाओं व शिक्षकों ने ऑनलाइन कक्षा के लिए गूगल मीट, स्काइप, जूम, गूगल क्लास रूम, वेबएक्स, अन्य प्लेटफॉर्म जिसमे वाट्सएप, यू-टयूब, फेसबुक, इंस्टाग्राम, मूडल, माइक्रोसॉफ्ट टीम, इन सब के माध्यम से शिक्षा प्रक्रिया को संचालित किया। जिसमें ऑनलाइन कक्षा से सम्बंधित जानकारी कक्षा का टाइम, लिंक एवं अध्ययन सामग्री के लिए वाट्सएप व टेलीग्राम पर तथा अन्य अध्ययन के लिए यूट्यूब लिंक भी विद्यार्थियों से साझा किया गया। विभिन्न शिक्षण संस्थाओं द्वारा वेबिनार के लिए फेसबुक लाइव का भी उपयोग किया गया।

कुंजी शब्द- कोविड-19, ऑनलाइन शिक्षा, सिंक्रोनस व असिंक्रोनस, संचार, सोशल नेटवर्किंग साईट्स, उपयोगिता

प्रस्तावना- बीसवीं शताब्दी के मध्य भारतीय सामाजिक व्यवस्था में एक नवीन क्रांति का सूत्रपात हुआ जिसे सूचना क्रांति का नाम दिया गया इस क्रांति के परिणाम स्वरूप मनुष्य के ज्ञान स्रोत में अपार वृद्धि हुई और उसे ज्ञान क्रांति या बौद्धिक क्रांति के रूप में अभिहित किया गया (**मालवीय, 2013**)। विज्ञान के इस युग में व्यक्ति घर बैठे विश्व में घटित घटनाओं की जानकारी प्राप्त कर रहा है इसके लिए वह सूचना एवं तकनीकी के नये माध्यमों का प्रयोग अपने दैनिक जीवन में कर रहा है (**रतोरिया, 2019**)। संचार व सूचना के लिए उपयोग किया जाने वाला मोबाइल आज सभी आयु वर्ग के लोगों तक पहुँच गया है, जिससे लोगों के बीच में सूचनाओं के विस्तार को तीव्र गति दी है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति वेब 2.0 टूल्स के माध्यम से स्वयं सूचना का निर्माण-कर्त्ता एवं उपयोगकर्त्ता दोनों की भूमिका का निर्वहन कर रहा है (**कंवरिया, 2018**)। अपने मोबाइल/स्मार्टफोन मे व्यक्ति विभिन्न प्रकार की सुविधाओं को प्राप्त कर रहा है आज डिजिटल रूप में बैंकिंग व्यवस्था, सोशल मीडिया के सहयोग से सूचना एवं दूर-दराज के लोगों से संपर्क व मनोरंजन आदि के लिए इसका उपयोग कर रहा है इन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए डिजिटल उपयोग ने हम सभी के वास्तविक जीवन को इन तकनीकी उपकरणों के आस-पास सीमित कर दिया है।

आज सारा विश्व वैश्विक महामारी की विभीषिका से स्वयं को बचाने में लगा है कोविड-19 ने मानव सभ्यता के वास्तविक संवेदनाओं को झकझोर कर रख दिया है जिसकी वजह से लोगों का सामजिक जीवन प्रभावित हुआ है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने भी कोविड-19 महामारी को व्यापक रूप से सबसे चुनौतीपूर्ण संकट माना है जिसका दुनिया ने कभी सामना नही किया है- कोविड-19 वायरस ने दुनिया भर में मानव जीवन, अर्थव्यवस्था, रोजगार के अवसरों व नौकरियों का बहुत ज्यादा नुकसान किया है इसने जनसंख्या के सभी वर्गों को प्रभावित किया है और लोगों के रहन-सहन, खानपान, आवागमन, जीवन स्तर, शिक्षा प्रभावित होने के साथ-साथ कई क्षेत्रों में कार्य के तरीके में भी बदलाव हुआ है (WHO, 2020)।

शिक्षा क्षेत्र पर महामारी का प्रभाव

कोविड-19 के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए और लोगों को इस महामारी से बचाने के लिए भारत सरकार द्वारा 23 मार्च 2020 को कोविड-19 संक्रमण को देखते हुए राष्ट्रव्यापी लॉकडाउन लगाया गया जिसकी वजह से लोगों को एक जगह सामूहिक रूप से एकत्र होने, किसी प्रकार के आयोजन आदि पर रोक लगा दिया गया। इस महामारी ने सबसे ज्यादा असर यदि किसी क्षेत्र पर डाला तो वह शिक्षा

है- जिसके कारण सभी शिक्षण संस्थानों में शिक्षण और अधिगम प्रक्रिया बाधित हुई। विश्व बैंक 2020 के आकड़ों के अनुसार विद्यालयों एवं शिक्षण संस्थानों के बंद होने से विश्व के 190 से अधिक देशों के लगभग 1.70 बिलियन से अधिक विद्यार्थियों को प्रभावित किया है। यूनिसेफ की जून 2020 की रिपोर्ट के अनुसार भारत में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा में नामांकित 247 मिलियन बच्चे और प्री स्कूल और आगंनवाडी केन्द्रों में नामांकित 28 मिलियन बच्चों की शिक्षा इस महामारी से बाधित हुयी है (यूनिसेफ, 2020)। इसको ध्यान में रखते हुए मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने इस वैश्विक महामारी (कोविड-19) से सभी को सुरक्षित रखने के प्रयास में शिक्षा से जुड़े व्यक्तियों को (शिक्षक/छात्र) एक दूसरे से दूरी बनाकर वैज्ञानिक तकनीकी उपकरणों का उपयोग करते हुए शैक्षिक गतिविधियों को संचालित करने को कहा है। विद्यार्थियों की शिक्षा बाधित न हो इसके लिए 'भारत पढ़े ऑनलाइन' अभियान की शुरुवात की है एवं अप्रैल 2020 मानव संसाधन विकास मंत्रालय (MHRD)के मार्गदर्शन में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT)द्वारा अल्टरनेटिव अकेडमिक कैलेंडर (AAC) विकसित किया गया है जो शिक्षकों व छात्रों को विभिन्न तकनीकी साधनों और सोशल मीडिया टूल का उपयोग करने के लिए दिशा निर्देश प्रदान करता है (एम.एच.आर.डी, अप्रैल.2020)।

महामारी के समय संचालित शिक्षा

महामारी ने शिक्षा के क्षेत्र में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के उपकरणों का उपयोग करने का अवसर दिया है या हम कह सकते हैं की महामारी के समय शिक्षण के लिए कोई विकल्प न होने की स्थिति में इसका उपयोग आवश्यक हो गया। शैक्षिक प्रक्रिया को संचालित करने के लिए भारत सरकार और देश के विभिन्न राज्यों की सरकारों, शिक्षकों और शैक्षिक संस्थानों ने शिक्षा व्यवस्था के संचालन को गति देने के लिए ई-शिक्षा एवं डिजिटल शिक्षा के रूप में ऑनलाइन शिक्षा का सहारा लिया, जिसमें इंटरनेट व अन्य संचार उपकरणों की सहायता से दी जाने वाली शिक्षा है- जिसके अंर्तगत मोबाइल अधिगम, वेब आधारित अधिगम, कम्पयूटर आधारित अधिगम, ब्लेंडेड अधिगम, कम्पयूटर आधारित अनुदेशन, वर्चुअल क्लास रूम, डिस्कशन फोरम इत्यादि शामिल हैं (धवन, 2020) (राथीस्वरी, 2018)। वर्चुअल क्लास रूम एक ऐसा कक्षा-कक्ष होता है जिसके अंतर्गत शिक्षक और विद्यार्थी ऑनलाइन वातावरण में वेब कांफ्रेंसिंग के माध्यम से संवाद स्थापित करते है तथा ऑनलाइन शिक्षा जिसमें किसी वास्तविक विद्यालय में जाने के बजाय इंटरनेट के कनेक्शन द्वारा विद्यार्थी किसी भी समय, कही से भी शिक्षक से संपर्क कर शिक्षा एवं शैक्षिक सामग्री प्राप्त कर सकते है, किसी भी शैक्षिक प्रकरण पे चर्चा कर सकते है (CGSCERT, 2017)। स्वरूप के आधार पर ई-शिक्षा को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है-

सिंक्रोनस (Synchronous) वह व्यवस्था जिसमें 'एक ही समय में' विद्यार्थी और शिक्षक अलग-अलग स्थानों से एक-दूसरे से शैक्षिक संवाद करते हैं। विद्यार्थियों को अध्ययन सामग्री ऑनलाइन उपकरण की मदद से उपलब्ध कराया जाता है अर्थात् वह शैक्षिक व्यवस्था जिसमें पूर्व नियोजित समय पर शिक्षक और विद्यार्थी अन्यत्र रहते हुए एक निश्चित समय पर तकनीकी संचार उपकरणों के माध्यम से एक दूसरे से जुड़ते हैं व विचार विमर्श, संवाद, शंका समाधान करते हुए अधिगम करते हैं। इस व्यवस्था में विद्यार्थी और शिक्षक में आमने-सामने लाइव होते हैं, शिक्षक व विद्यार्थियों में वास्तविक अंत:क्रिया होती है, तत्काल प्रतिपुष्टि संभावना होती है। **असिंक्रोनस (Asynchronous)** वह शैक्षिक व्यवस्था जिसमें विद्यार्थी और शिक्षक एक निश्चित समय पर साथ नहीं होते हैं विद्यार्थियों को पाठ्यक्रम एवं विषयवस्तु से सम्बंधित जानकारी पहले से ही होती है व अध्ययन सामग्री पहले से ही उपलब्ध कर दी जाती है जिसमें विद्यार्थी अपनी सुविधानुसार किसी भी समय विषयवस्तु तक पहुँचता है। जिसमें ईमेल, वाट्सएप, टेलीग्राम, फेसबुक, रेडियो, टेलीवीजन चैनल इत्यादि द्वारा अधिगम करता है अर्थात् इस व्यवस्था में विद्यार्थी और शिक्षक के बीच आमने-सामने की अंतक्रिया व वास्तविक समय संचार की प्रक्रिया नही होती है (धवन, 2020) (वैष्णव एवं कावरे, 2016)।

इंटरनेट और सूचना के तीव्र विकास ने ई-शिक्षा या डिजिटल शिक्षा के क्षेत्र में अनुकूल वातावरण तैयार किया है राष्ट्रीय स्तर पर भारत सरकार शिक्षा मंत्रालय पूर्व नाम मानव संसाधन विकास मंत्रालय (MHRD) ने विद्यार्थियों और शिक्षकों की सहायता के लिए कई पहल किये जिसमें पहले से मौजूद डिजिटल प्लेटफॉर्म का प्रभावी ढंग से उपयोग किया ई-लर्निग प्लेटफॉर्म के अंर्तगत संचालित ऑनलाइन कोर्स जैसे दीक्षा (DIKSHA), स्वयं (SWAYAM), ई-पाठशाला (E-PATHASHALA), ई-बस्ता, नेशनल रिपॉजिटरी ऑफ ओपन एजुकेशनल रिसोर्सेज (NROER), इत्यादि को समय की आवश्यकता के अनुसार सुदृढ़ किया गया। देश के विभिन्न क्षेत्रों से विद्यार्थियों और शिक्षकों ने शैक्षिक संसाधनों के रूप में व प्रशिक्षण के लिए इनका बड़े पैमाने पर उपयोग किया https://www.education.gov.in

विभिन्न राज्य सरकारों ने अपने दायित्वों का निर्वहन करते हुए अपने यहाँ विभिन्न प्रकार के ऑनलाइन पोर्टल विकसित किये जिससे शिक्षा की प्रक्रिया संचालित हो सके जिसमे छतीसगढ़ शासन द्वारा 'पढाई तुहरे दुवारे' अर्थात् शिक्षा आप के द्वार इस 'ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म' के माध्यम से शिक्षक और विद्यार्थी ऑनलाइन इंटरैक्टिव क्लासेस के लिए वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से जुड़ पाएंगे, इस पोर्टल पर विद्यार्थियों को पठन सामग्री ऑडियो, वीडियो एवं पीडीएफ प्रारूप में उपलब्ध होंगी' http://www.cgschool.in

ISSN 2278 - 0327

https://sarkariyojna.com/cgschool-padhai-tuhar-dwar-registration

छायाचित्र स्रोत https://images.app.goo.gl/kbNwLyjXPvBWFDaC6

राजस्थान राज्य के लिए स्कूल शिक्षा विभाग राजस्थान सरकार ने 13 अप्रैल 2020 को सोशल मीडिया इंटरफेस फॉर लर्निंग इंगेजमेंट (SMILE) प्रोग्राम प्रारम्भ किया। राज्य में कोविड–19 लॉकडाउन के समय में शिक्षकों एवं विद्यार्थियों की शिक्षण एवं अधिगम की प्रक्रिया बाधित न हो इस हेतु यह एक सोशल मीडिया आधारित ऑनलाइन कार्यक्रम है – 'इस कार्यक्रम के द्वारा विद्यार्थी व शिक्षक वाट्सएप के माध्यम से प्रतिदिन वीडियो सामग्री का लिंक प्राप्त करते हैं। 1 से 10 वीं की कक्षा के लिए विभिन्न स्रोतों से वीडियो सामग्री का संकलन किया गया है। लिंक पर क्लिक करके शिक्षक व विद्यार्थी सामग्री तक अपनी पहुँच बना सकते हैं।

https://rajshaladarpan.nic.in/ShalaSamvad/Home/SmileProject.aspx

छायाचित्र स्रोत– https://images.app.goo.gl/18K6fPg7mFjfwBQ9

मध्य प्रदेश राज्य सरकार द्वारा डिजिटल लर्निंग एनहांसमेंट प्रोग्राम (DigiLEP)'अब पढाई नही रुकेगी' प्रोग्राम प्रारम्भ किया गया इस प्रोग्राम के द्वारा विद्यार्थी अपने घर में बैठे बैठे मोबाइल एप्लीकेशन्स के माध्यम से अपनी पढाई कर सकते हैं –इसमें 'सभी स्कूल शिक्षक अपने–अपने स्कूल के नाम से सभी विद्यार्थियों को जोड़कर वाट्सएप ग्रुप बनायेंगे ग्रुप में प्रतिदिन ऑनलाइन क्लास लिया जायेगा और बच्चों को होमवर्क भी दिया जायेगा' https://pragyakendr.com/digilep-mp। कोविड–19 के समय राज्य सरकारों द्वारा शिक्षा के लिए किये गए प्रयास सराहनीय हैं।

छायाचित्र स्रोत– https://images.app.goo.gl/ZwYZZLP8ypAqHBxv7

कोविड–19 ने परम्परागत कक्षा शिक्षण को ऑनलाइन शिक्षा में बदल दिया जिसकी वजह से विद्यालयों, कालेजों, विश्वविद्यालयों के साथ शिक्षक, अभिभावक और विद्यार्थियों के जिम्मेदारियों का दायरा बढ़ गया सभी शिक्षा संस्थानों ने ऑनलाइन शिक्षा के स्वरूप को शिक्षण के लिए अपना लिया व वर्तमान समय में ऑनलाइन शिक्षा हेतु सोशल नेटवर्किंग साइट्स के उपयोग को नकारा नहीं जा सकता। नंदिनी ने (2013 पृ 23) में अपने लेख सामाजिक सक्रियता का नया चेहरा 'फेसबुक' में बताती है की सोशल नेटवर्किंग समूचे विश्व में सर्वाधिक लोकप्रिय ऑनलाइन (इंटरनेट) गतिविधि बनकर उभरी है। सोशल नेटवर्किंग साइट्स को शिक्षा प्रदान करने के संदर्भ में एक बेहतरीन साधन माना जा रहा है। इसके द्वारा शैक्षिक सूचना एवं जानकारी को एक दूसरे से अदान–प्रदान करने के लिए उपयोग किया जा रहा है (देसमल, 2017) (बोअतेंग एवं अमंकवा, 2016)। शिक्षक एवं छात्रों द्वारा शैक्षिक कार्यों हेतु एवं सूचना को साझा करने के लिए वाट्सएप, फेसबुक, ट्विटर, लिंक्डाइन आदि जैसे साइट्स का प्रयोग किया जा रहा है (श्रीवास्तव एवं कुमार, 2017)। नाम्बियार, 2020 ने अपने शोध पत्रद् इम्पैक्ट ऑफ ऑनलाइन लर्निंग ड्यूरिंग कोविड–19: स्टूडेंट्स एंड टीचर पर्सपेक्टिवमें बताया कि शिक्षक

ऑनलाइन कक्षा के लिए गूगल मीट, स्काइप, जूम, गूगल क्लास रूम, सिस्को वेबएक्स, प्लेटफॉर्म का उपयोग करते हैं तथा इसके आलावा शिक्षक शिक्षा के लिए अन्य प्लेटफॉर्म जिसमे वाट्सएप,

यू–ट्यूब, फेसबुक, इंस्टाग्राम, मूडल, माइक्रोसॉफ्ट टीम, जीतसी, लार्क एंड अवाया आदि का उपयोग करने लगे है। पालियाथ एवं धिनकर, 2020 ने अपने शोधपत्र यूज ऑफ सोशल मीडिया फॉर टीचिंग डयूरिंग पेन्डेमिक कर्फेक्स में बताया कि कोविड–19 महामारी के समय शिक्षा के वैकल्पिक साधन के रूप में शैक्षिक उपयोग के लिए ब्लॉग, विकी लॉग, यू–ट्यूब, फेसबुक, गूगल प्लस, वेबिनार आदि सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म मदद कर सकते हैं।

माध्यमिक विद्यालय में कार्यरत शिक्षक आरव शिवेन एवं वानिका (बदला हुआ नाम) ने साक्षात्कार के दौरान कोविड–19 महामारी के शिक्षण अनुभवों को हमसे साझा किया– साक्षात्कार के समय उनसे ऑनलाइन शिक्षा से सम्बंधित प्रतिदिन शिक्षण कार्य,पाठ्येतर गतिविधियां, परीक्षा एवं मूल्यांकन, अन्य कार्य आदि प्रश्न किये। महामारी के समय में किसी भी शिक्षण संस्थान में कक्षा को प्रत्यक्ष रूप से चला पाना संभव नहीं था। महामारी के परिणाम स्वरूप शिक्षा प्रक्रिया को संचालित करने के लिए शिक्षण के तरीके में बदलाव करना पड़ा तथा परम्परागत कक्षा शिक्षण पद्धति के स्थान आधुनिक ऑनलाइन शिक्षण पद्धति का उपयोग करना पड़ा और शैक्षिक गतिविधियों को संचालित किया गया। बहुत से विद्यार्थियों के पास ऑनलाइन शिक्षा के लिए मोबाइल और इंटरनेट नहीं था हम सभी शिक्षकों ने उनके अभिभावकों से बात किया विद्यार्थियों के अभिभावकों ने हमारी बात को माना अपने बच्चों की शिक्षा के लिए मोबाइल और इंटरनेट की व्यवस्था की।

महामारी के समय शिक्षा में सोशल नेटवर्किंग साइट्स की उपयोगिता–शिक्षा से जुड़े विभिन्न क्रिया–कलाप एवं कार्य किये गए

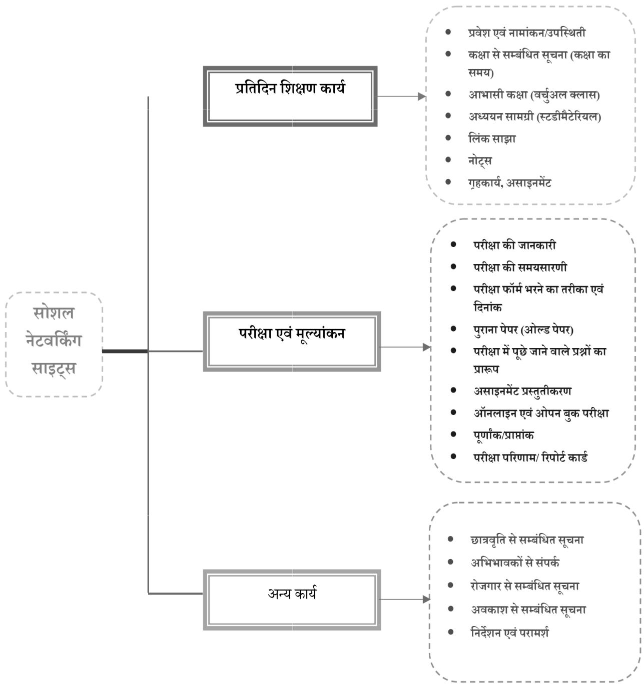

प्रतिदिन शिक्षण कार्य कोविड–19 काल में पूरा सत्र शिक्षण की प्रक्रिया ऑनलाइन माध्यम से संचालित हुयी इस संकट के काल शिक्षकों के लिए शिक्षण कार्य बहुत ही चुनौती भरा रहा परन्तु इस समय में हमारे शिक्षकों ने विद्यार्थियों के साथ मिलकर प्रतिदिन शिक्षण कार्य किया जिसमे शिक्षा के सभी स्तरों पर अपनी आवश्यकता के अनुसार प्रतिदिन योजना बनाई गयी व योजना अनुसार शिक्षण कार्य संपन्न किया गया जिस समय लॉकडाउन लगाया गया उस समय हमारे यहाँ कई विद्यालयों के सिलेबस पूरा नही हुए थे कोविड–19 काल में शिक्षकों के सामने सबसे बड़ी चुनौती थी वह सिलेबस को पूरा करने और उसके बाद विद्यार्थियों की परीक्षा लेने की थी इसके लिए डिजिटल आभासी कक्षा के विकल्प को विद्यालय और शिक्षकों द्वारा चुना गया। विद्यालय प्रशासक और शिक्षकों ने वाट्सएप ग्रुप बनाया एवं विद्यार्थियों को इनसे जोड़ा गया एवं शिक्षा व शिक्षण कार्य सम्पादित किया गया और सिलेबस पूरा होने के बाद ओपन बुक परीक्षा ली गयी। सर्वप्रथम मैंने जूम मीट एप्प डाउनलोड किया उसका लिंक मैंने वाट्सएप के माध्यम से विद्यार्थियों को भेजा, कक्षा लेने का समय और विषय से सम्बंधित सभी सूचनाएं भी वाट्सएप के माध्यम से संप्रेषित करती थी। उस समय कुछ विद्यार्थी रुचि लेते हुए ऑनलाइन कक्षा से जुड़ते थे, कुछ विद्यार्थी तो अंतिम समय में कक्षा में जुड़ते थे तथा कुछ ऐसे विद्यार्थी थे जो एक बार भी ऑनलाइन कक्षा में नही जुड़ पाए। बहुत से ऐसे विद्यार्थी थे जो कक्षा प्रारम्भ से अंतिम तक जुड़े रहे व शैक्षिक उद्बोधन के लिए क्रियाशील भी रहे किन्तु उन्हीं में कुछ ऐसे भी थे जो ऑनलाइन कक्षा से तो जुड़ जाते थे किन्तु कुछ पूछने पर किसी प्रकार की प्रतिपुष्टि भी नहीं देते थे। ऑनलाइन कक्षा में नेटवर्क की भी समस्या होती थी जिससे विद्यार्थियों को मेरी आवाज स्पष्ट रूप से सुनाई नहीं देती थी जिसके कारण ऑनलाइन कक्षा के संचालन में परेशानी होती थी।

दूसरी सबसे बड़ी चुनौती हम सभी के समक्ष थी सत्र निरंतरता को बनाये रखना और विद्यार्थियों का प्रवेश व नामांकन की राज्य सरकारों के निर्देश पर शैक्षिक संस्थाओं ने प्रवेश से सम्बंधित सूचना को विद्यार्थियों और अभिभावकों तक पहुँचाने के लिए वाट्सएप, टेलीग्राम, फेसबुक, यूट्यूब आदि सोशल नेटवर्किंग साइट्स का सहारा लिया गया तथा नामांकन की नियमावली के अनुसार ऑनलाइन एवं डाक (पत्राचार) के माध्यम से आवेदन स्वीकार किये गये प्रवेश में किसी प्रकार की समस्या न हो इसके लिए हेल्प डेस्क बनाया गया। कहीं पूर्व कक्षा के प्राप्तांक की मेरिट के आधार पर विद्यार्थियों को प्रवेश दिया गया तो कहीं पर ऑनलाइन परीक्षा के अंकों को आधार बनाकर प्रवेश दिया गया।

प्रवेश के बाद कक्षा शिक्षण के लिए वर्चुअल क्लास (आभासी कक्षा) ली गयी ऑनलाइन कक्षा का लिंक, समय वाट्सएप ग्रुप, टेलीग्राम पर शेयर किया किया गया जिसमें विद्यार्थी अपने घर से

और शिक्षक अपने सुविधा के अनुसार जहाँ पर थे वहीं से ऑनलाइन कक्षायें संचालित की। ऑनलाइन कक्षा के लिए गूगल मीट, जूम एप, वेबएक्स, गूगल क्लास रूम आदि का सहारा लिया गया। ऑनलाइन कक्षा में ही विद्यार्थियों की उपस्थिति ली जाती अध्ययन सामग्री पीडीएफ, वीडियो, ग्राफिक्स की सहायता से विद्यार्थियों को उपलब्ध कराया गया, नोट्स, असाएन्मेंट व गृहकार्य भी वाट्सएप ग्रुप में शिक्षकों के द्वारा दिया जाने लगा।

परीक्षा एवं मूल्याकन– विद्यार्थियों की परीक्षा साप्ताहिक, त्रैमासिक सेमेस्टर एवं वार्षिक परीक्षा ओपन बुक एग्जाम (खुली किताब परीक्षा) सोशल नेटवर्किंग साइट्स के माध्यम से ली गयी परीक्षा से जुडी जानकारी, परीक्षा फॉर्म भरने का तरीका, परीक्षा में पूछे जाने वाले प्रश्नों का प्रारूप, ओल्डपेपर, मौखिक एवं लिखित दोनों प्रारूप में जो विद्यार्थियों की समझ के अनुरूप हो शिक्षकों द्वारा उपलब्ध कराया गया। विद्यार्थियों द्वारा असाएन्मेंट प्रस्तुतिकरण एवं ऑनलाइन ओपन बुक परीक्षा कैमरा ऑन करके शिक्षकों के द्वारा लिया जाता था और उत्तरपुस्तिका को वाट्सएप एवं टेलीग्राम, ईमेल इत्यादि पर व्यक्तिगत रूप में निर्धारित समय के अन्दर मंगाया जाता।

अन्य कार्य– सरकार द्वारा विद्यार्थियों को लाभ देने के उद्देश्य से चलाई जा रही विभिन्न प्रकार की योजनाओं के बारे में जानकारी एवं छात्रवृत्ति से सम्बन्धित सूचना को विद्यार्थियों व अभिभावकों तक पहुँचाने के लिए उनके वाट्सएप ग्रुप में व व्यक्तिगत रूप से संपर्क किया गया और उससे सम्बंधित जानकारी को साझा किया गया। कुछ अभिभावक तो किसी जानकारी को जल्द समझ जाते थे किन्तु कुछ लोगों को योजनाओं और सरकारी शैक्षिक सूचना को समझाने में बहुत ज्यादा मेहनत करनी पड़ती थी। विद्यार्थियों व उनके कैरियर से जुड़ी व विषय चयन से जुड़ी समस्याओं को जानकर शैक्षिक व व्यावसायिक निर्देशन एवं परामर्श की भी व्यवस्था उनको वाट्सएप वीडियों कॉल, चैट, सामान्य कॉल से किया गया।

निष्कर्ष – कोविड–19 की इस संकट के समय में लोगों को स्वास्थ्य व रोजगार के साथ शिक्षा की प्रक्रिया को वैकल्पिक व्यवस्था के रूप में संचालित करना एक बहुत बड़ी चुनौती है इस लिए भारत सरकार, राज्य सरकार एवं शैक्षिक संस्थाओं ने ई–शिक्षा के अंतर्गत ऑनलाइन शिक्षा का सहारा लिया। ऑनलाइन शिक्षा के लिए पहले से जो व्यवस्था थी उसे और बेहतर किया गया साथ ही शिक्षा के नये विकल्पों सृजन व तकनीकों का प्रयोग किया गया जिसमे गूगल मीट, स्काइप, जूम, गूगल क्लास रूम, सिस्को वेबएक्स, प्लेटफॉर्म का उपयोग किया गया तथा इनका सही व सहयोगात्मक उपयोग के लिए विभिन्न सोशल नेटवर्किंग साइट्स जिसमे वाट्सएप, टेलीग्राम, फेसबुक, यूट्यूब आदि का उपयोग शिक्षा के लिए किया गया। ऑनलाइन कक्षा से सम्बंधित जानकारी जिसमे कक्षा का टाइम, लिंक एवं अध्ययन सामग्री के लिए वाट्सएप व टेलीग्राम का ज्यादा उपयोग किया गया एवं अन्य अध्ययन के लिए यूट्यूब लिंक भी विद्यार्थियों से साझा किया गया। विभिन्न शिक्षण संस्थाओं द्वारा वेबिनार के लिए फेसबुक लाइव का भी उपयोग किया गया। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं की सोशल नेटवर्किंग साइट्स ई–शिक्षा या ऑनलाइन शिक्षा के लिए सहायक है एवं विद्यार्थियों व शिक्षकों के शैक्षिक उपयोग के लिए और बेहतर किया जा सकता है किन्तु वास्तविक कक्षा–कक्ष का स्थान नहीं दिया जा सकता क्यों की ऑनलाइन शिक्षा में प्रयोगात्मक सीखना संभव नहीं है। इस समय लगभग सभी जगहों पर शिक्षण संस्थान खुल रहे हैं जिसमे अब प्रत्यक्ष या आमने सामने के शिक्षण की व्यवस्था होगी किन्तु हम कोविड –19 के समय जिस शिक्षण प्रणाली का उपयोग कर रहे थे उससे एका–एक पारंपरिक कक्षा में लौटना उचित नही होगा बल्कि अब हमें परम्परागत कक्षा शिक्षण के साथ ऑनलाइन शिक्षा के स्वरूप को संयुक्त रूप से अपनाकर इसे और अधिक व्यस्थित किया जा सकता है। सभी स्तरों पर विद्यार्थियों की शिक्षा (शिक्षण) के लिए वास्तविक कक्षा शिक्षण के साथ तकनीकि आधारित शिक्षा को बराबर का स्थान देना समय की आवश्यकता है जिससे शिक्षा और शिक्षण को अधिक और रूचि पूर्ण बनाया जा सकता है यदि हम अपने विद्यार्थियों के शिक्षा में ऑनलाइन एवं ऑफ लाइन दोनों प्रकार की शिक्षा का मिश्रित व्यवस्था के अनुरूप शिक्षण कार्य करते है तो संभव है परिणाम और बेहतर हो सकते हैं और हम अपनी शिक्षा व्यवस्था में तकनीकि उपकरणों का उपयोग कर अधिक प्रभावी बना सकते हैं जैसे वास्तविक कक्षा में सैद्धांतिक एवं प्रयोगात्मक कार्य तथा इसके विषय में प्रोजेक्ट, असाइनमेंट, गृहकार्य आदि को ऑनलाइन या सोशल नेटवर्किंग साइट्स के उपयोग पर केन्द्रित करे तथा शिक्षा व शिक्षण से सम्बन्धित सभी सूचनाएं संप्रेषित करने हेतु डिजिटल प्लेटफॉर्म जिसमे वाट्सएप, टेलीग्राम, इन्स्टाग्राम, लिंक्डइन, फेसबुक आदि का प्रयोग करें इससे यह होगा कि आने वाले समय में यह हमारी शैक्षिक प्रक्रिया का अंग होगा तथा पेपर (कागज) व पर्यावरण को नुकसान किये बगैर समय की बचत के साथ आधुनिक डिजिटल विकास में स्वयं के योगदान को सुनिश्चित करेंगे।

सन्दर्भ-सूची

- कांवरिया, वि. (2018). शिक्षा में तकनीकी की समझ एवं नवीन प्रयोग. भारतीय आधुनिक शिक्षा एन. सी. आर. टी.,पृ 106–111.
- देशमल,ज.अ. (2017).ने द् इम्पैक्ट ऑफ यूजिंग सोशल मीडिया एंड इंटरनेट ऑन अकेडमिक परफॉरमेंस: केस स्टडी बहरीन यूनिवर्सिटीज.यूरोपियन अलायन्स फॉर इनोवेशन एंडडोर्सेद ट्रांसएक्शनस ऑन स्केलेबल इनफार्मेशन सिस्टम,वॉल्यूम 4 (13), पृ 1–12.
- धवन, शी. (2020). ऑनलाइन लर्निंग : अ पनासाइन द् टाइम ऑफ कोविड–19 क्राइसिस. जर्नल ऑफ एजुकेशन टेक्नोलॉजी

सिस्टम्स. वाल्यूम 49 (1). पृ.1-18. journals.sagepub.com/home/ets

- नाम्बियार, दी. (2020). द् इम्पैक्ट ऑफ ऑनलाइन लर्निंग ड्यूरिंग कोविड-19 : स्टूडेंट्स एंड टीचर पर्सपेक्टिव. द् इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंडियन साइकोलॉजी 2348-5396, वॉल्यूम 8 इशू 2 पृ 783-793 https://www.ijip.in
- नंदिनी, सी. (2013).सामाजिक सक्रियता का नया चेहरा 'फेसबुक' 0971-8397, पृ 20-23.www.yojana.gov.in
- पालियाथ, गा., एवं धिनकर, रा . (2020). यूज ऑफ सोशल मीडिया फॉर टीचिंगड्यूरिंग पेन्डेमिक कर्फेव्स. जर्नल ऑफ क्रिटिकल रिव्यु. वॉल्यूम 7 इशू 07. पृ 1868-1873.
- बोअतेंग, ओ. रा. एवं अमंकवा, अ. (2016). द् इम्पैक्ट ऑफ सोशल मीडिया ऑन स्टूडेंट अकेडमिक लाइफ इन हायर एजुकेशन. ग्लोबल जर्नल ऑफ ह्यूमन सोशल साइंस, लिंग्विस्टिक्स एंड एजुकेशन, वॉल्यूम 16 (4).
- मालवीय, रा. (2012). उद्यिमान भारतीय समाज में शिक्षक, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन.
- राथीस्वरी, के. (2018). इनफार्मेशन कम्युनिकेशन टेक्नोलॉजी इन एजुकेशन. जर्नल ऑ ? एप्लाइड एंड एडवांस्ड रिसर्च. ISSN 2519-9412.पृ.ह्य 45- - s 47. https://www.phoenixpub.org/journals/index.php/jaar
- रतोरिया, शा. (2019). सोशल मीडिया का उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता, आवासीय पृष्ठभूमि एवं उनकी अंतक्रिया के सन्दर्भ में प्रभाव का सर्वेक्षणत्मक अध्ययन.रिसर्च रिव्यु इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टी-डीस्सिपिलिनरी, वॉल्यूम 4 (4), पृ 653-656.
- रानी, उ. (2017). आधुनिक युग में मीडिया का महत्व. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च रिव्यु इन इंजीनियरिंग साइंस एंड टेक्नोलॉजी, 2278-6643,पृ 1-6.
- श्रीवास्तव, मु., एवं कुमार, सु. (2017).सोशल मीडिया और युवा विकास. मीडिया मीमांसा, पृ 37-42.
- श्रीवास्तव, र. (2016) भारतीय शैक्षिक संदर्भो में सूचना व संप्रेषण तकनीकी विकास एवं चुनौतियां.भारतीय आधुनिक शिक्षा. पृ 62-71.
- वैष्णव, रा. एवं कावरे, सु. (2016). वर्चुअल क्लासरूम फॉर टीचिंग डेवलपमेंट ऑफ सिंक्रोनस एंड असिंक्रोनस वर्चुअल क्लासरूम फॉर टीचिंग. स्कालर्स प्रेस जर्मनी.
- सिंह, अ. (2017). सोशल मीडिया तकनीक एवं प्रभाव. ऋषभ बुक्स : दरियागंज नई दिल्ली.
- CGSCERT, 2017 प्रारम्भिक शिक्षा में पत्रोपाधि (डी.एल.एड.) शैक्षिक तकनीकी प्रथमवर्ष - राज्य शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद छतीसगढ़, रायपुर
- https://www.un.org/development/desa/dspd/wp-content/uploads/sites/22/2020/08/sg/policy brief covid-19 and education august 2020.pdf
- https://www.unicef.org/rose/sites/unicef.org.rosa/files/202006/UNICEF%20Upended%20Live%20Report%20%June%202020.pdf
- www.drishtiias.com/hindi
- https://www-aajtak-in.cdn.ampproject.org/v/s/www.aajtak.in/amp/india-today-hindi/cover-story/story/corona-lockdown-education-online-revolution-digital-education-power-supply
- https://www.orfonline.org/hindi/research/the-need-and-challenges-of-online-education-in-covid-19-era/
- https://images.app.goo.gl/kbNwLyjXPvBWFDaC6
- https://images.app.goo.gl/vAUgnEipp1eE9FGGA
- https://images.app.goo.gl/ZwYZZLP8ypAqHBxv7
- https://images.app.goo.gl/18K6fPg7mFjfwBQ97
- https://ncert.nic.in/aac.html
- https://pib.gov.in/press Release Pag .aspx?Prid=1615009
- https://highereduhry.com/index.php/drishtikon-mgz
- www.drishtiias.com/hindi aditoriyal april2020
- https://rajshaladarpan.nic.in/ShalaSamvad/Home/SmileProject.aspx
- https://pragyakendr.com/digilep-mp
- https://www.who.int/emergencies/diseases/novel-coronavirus-2019.
- https://sarkariyojna.com/cgschool-padhai-tuhar-dwar-registration
- https://dx.doi.org/10.21839/jaar.2018.v3s1.169

ISSN 2278 - 0327

प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा : संज्ञानात्मक विकास में पूछताछ आधारित अधिगम की भूमिका

प्रीती साहू
शोधार्थी, शिक्षा विभाग
गुरुघासीदास विश्वविद्यालय बिलासपुर, छत्तीसगढ़, 495009

डॉ. मुकेश कुमार चंद्राकर
सहायक प्राध्यापक (शोध निर्देशक), शिक्षा विभाग
गुरुघासीदास विश्वविद्यालय बिलासपुर, छत्तीसगढ़, 495009

सारांश-

वर्तमान समय में बदलती दुनिया के अनुरूप बच्चों को जीवन व विद्यालय के लिए आधारभूत क्षमता के रूप में वैज्ञानिक कौशल विकसित करने की जरूरत है। संज्ञानात्मक विकास दृष्टि से उन्हें विषय वस्तु को सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करना भी आवश्यक है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह है की बच्चों में इन कौशलों को लागू किया जा सके तथा संज्ञानात्मक विकास में उसके महत्व को प्रस्तुत किया जा सके। पूछताछ आधारित शिक्षा का आधार 3-5 वर्ष तक की आयु के बच्चों में अन्वेषण, चिंतनशीलता, तार्किक क्षमता व आलोचनात्मक सोच उनमे विकसित करना है, जो बच्चों में वर्तमान समय में होनी आवश्यक है, बच्चों को सीखने के लिए प्रेरित करना, अवलोकन करना तथा पूछताछ कौशल विकसित करना सकरात्मक दृष्टिकोण को सुनिश्चित करता है। बच्चों में पूछताछ आधारित अधिगम उनके बहुत से स्व अनुभव व स्वमूल्यांकन का तथा उसे आपस में साझा करने के लिए प्रेरित करता है। पूर्व के शोध परिणाम बताते है की पारम्परिक दृष्टिकोण से पूछताछ आधारित शिक्षा अधिक सफल है इसे हमारे कक्षाओं में विकसित व प्रोत्साहित करना चाहिए।

कीवर्ड - संज्ञानात्मक विकास, पूछताछ आधारित शिक्षा, प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा, अनुप्रयोग।

प्रस्तावना -

मानव जीवन विकास की विभिन्न अवस्थाओं से होकर गुजरता है इन अवस्थाओं मे के 3-6 वर्ष की आयु को सम्पूर्ण जीवनकाल का अत्यंत महत्वपूर्ण काल माना है तथा इन वर्षो मे अंत: ग्रन्थसंपर्क बनते है इसलिए यह अवधि मस्तिष्क के पूर्ण विकास एवं क्षमता वृद्धि के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया,यह अवधि सामाजिक एवं व्यक्तिगत मूल्यों, आदर्शों को समझने व आत्मसात करके जीवन के प्रत्येक पड़ाव में बालक का मार्ग दर्शन करते हैं व जीवन के अंतिम समय तक हमारे साथ बने रहते है (सिंह,2014)। 3 से 6 आयु वर्ग के बच्चों को सर्वांगीण विकास की आवश्कता होती है, यह समय बच्चों के अपने भावी विद्यालय में समायोजन व जीवन की कठिनाइयों का सामना करने के लिए बहुत जरूरी है, बच्चों के रचनात्मक, संज्ञानात्मक, भावनात्मक अधिगम की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए निर्मित की गई परिवर्तनशील खेलों, खोज विधि अधिगम, विषय-वस्तु आधारित अधिगम एवं विभिन्न गतिविधियों जो बच्चों के स्मरण शक्ति, ध्यानकेन्द्रित कर पाने व उन्हें नियंत्रित कर पाने मे सहायक होते है बच्चों के कार्य निष्पादन एवं आत्मसातीकरण से उनमें आत्मविश्वास उत्पन्न होता है जो उनमे भविष्य के वर्षो में उनका सीखना सरल, सुगम व आसान बना देता है। यह भी आवश्यक है की बच्चों को भावनात्मक व संज्ञानात्मक रूप से मजबूत बनाने के लिए ऐसा वातावरण प्राप्त हो जिससे वे उन्हें स्वस्थ, सुरक्षित, एवं खुला (मुक्त) परिवेश जिसमें वह (बालक) खोजबीन कर सके, अपने परिवेश जिसमें वह रहता है उसमे विषय मे सीख सकें तथा सीखे हुए ज्ञानको अच्छे ढंग से अभिव्यक्त कर सके और स्वयं के प्रति सकारात्मकदृष्टिकोण का विकास कर सके। बच्चों में सकरात्मक दृष्टिकोण का विकास कौशल, संप्रेषण, रचनात्मक प्रक्रिया, सामाजिक-भावनात्मक विकास, संज्ञानात्मक विकास, शारीरिक एवं मूल्यों के विकास से ही संभव है। (ई.सी.सी.ई. पाठ्यचर्या का प्रारूप,2016)

बच्चे के इस प्रारम्भिक दौर मे उन्हें एक उपयुक्त वातावरण प्रदान करना अत्यंत महत्वपूर्ण है यही उसके आगामी जीवन की मजबूत नीवं प्रदान कर सकेगी। प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल और

शिक्षा केवल बच्चे का अधिकार ही नही, यह हमारे राष्ट्र की मानव पूंजी में लम्बी अवधि का निवेश है जिसका लाभ हमें दीर्घकाल में प्राप्त होगा। इसलिए छ: वर्ष से कम उम्र के सभी बच्चों के सर्वांगीण विकास की नीवं डालने हेतु निःशुल्क, समावेशी व आनन्दपूर्ण व सक्रिय अधिगम क्षमता विकास पर जोर दिया गया (शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 की धारा 11 एवं ई.सी.सी.ई. की राष्ट्रीय नीति 2013)। भारत की जनसंख्या 2001 में 1 अरब पहुँच गई थी तथा विश्व में बच्चों की जनसंख्या में भारत पहले स्थान में था व 0-6 वर्ष के आयु के बच्चों की संख्या 1.58 करोड़ था तथा मानव विकास के समग्र में काफी निम्न पाया गया। भारत में प्रत्येक वर्ष 2.5 करोड़ बच्चे जन्म लेते है तथा शिशु मृत्यु दर 70 बच्चे प्रति 1000 है तथा केवल 1.94 लाख बच्चे आई.सी.डी.एस. के तहत शाला पूर्व शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं, निजी संस्थाओं का स्पष्ट आकड़े उपलब्ध नहीं है (मानव विकास रिपोर्ट 2002)। भारत के संविधान में ई.सी.सी.ई. की सेवाओं को प्रोत्साहित करने के लिए राज्य नीति निदेशक सिद्धांतों व मौलिक अधिकारों के रूप में अनेक प्रावधान प्रस्तुत किये (अनुच्छेद 39 एफ, 42 , 45, 47 आदि) जो हमारे देश को ई.सी.सी.ई. के विकास के लिए एक मजबूत ढाँचा प्रदान करता है।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा अपने आप में एक वृहद् रूप है, इसका प्रधान कार्य 0-6 वर्ष के बच्चों की समस्याओं के समाधान से है यह मुख्य रूप से दो भागों मे बटा हुआ है 0-3 व 3-6 वर्ष। 0-3 वर्ष के दौरान बच्चों के स्वास्थ जाँच, संदर्भ सेवा, टीकाकरण, पूरक आहार को शामिल किया गया है, वही 3-6 वर्ष में देखभाल के साथ बाल शिक्षा पर जोर दिया गया, इसमें बालक के संज्ञानात्मक विकास, सामाजिक एवं व्यक्तिगत विकास, शारीरिक विकास, भाषाई विकास, सृजनात्मक विकास एवं भावात्मक विकास मुख्य है (हस्त पुस्तिका, उड़ान2016)।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा के कार्यक्रम के उद्देश्य (राष्ट्रीय ई.सी.सी.ई. पाठचर्या फ्रेमवर्क)-

- उत्तम पोषण, स्वस्थ आदतें, स्वच्छता अभ्यास विकसित हो।
- बच्चों को प्रभावी संवाद, भाषा समझने व बोलने मे सक्षम हो।
- मानसिक कुशलता, अवधारणा की समझ विकसित करना, ताकि आस-पास के वातावरण को जान सके।
- सामाजिक योग्यता एवं भावनात्मक विकास में वृद्धि करना।
- समग्र रूप से व्यक्तित्व के विकास का अवसर प्रदान करना।
- बच्चों के सर्वांगीण विकास हेतु आई.सी.डी.एस, अभिभावक एवं समुदाय के मध्य प्रभावी भागीदारी स्थापित करना।

पाठ्यचर्या का विकास बचपन की अवस्था को ध्यान में रखकर करना चाहिए, क्योंकि बच्चे खेल व विभिन्न दैनिक गतिविधियों के द्वारा क्षमताओं व इच्छाओं के विकास हेतु विभिन्न अनुभव दिए जाए जिससे वह खुद समस्या-समाधान, दृश्यप्रत्यक्षीकरण, मानसिक कुशलता का अपनी आयु के अनुरूप विकास व समझ विकसित कर सके। ज्ञान, कौशल व संज्ञानात्मक योग्यताओं पर अधिक ध्यान देने से सीखने की इच्छा, मननशीलता, तत्परता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

संज्ञानात्मक विकास-

2 से 7 वर्ष अवधि के बच्चे जीन प्याज़े द्वारा दी गई संज्ञानात्मक विकास की अवस्था के पुर्व संक्रियात्मक स्तर के अंतर्गत आते है। इस आयु वर्ग के बच्चों में विभिन्न क्रियात्मक कौशलों का विकास होता है, उनकी भाषा विकास की गति तीव्र होती हैं व इस उम्र के बच्चो में जिज्ञासा (जानने) की प्रव्रति बहुत ही तीव्र होती हैं, वह बहुत प्रश्न करते है और आस-पास के वातावरण को जानने एवं समझने का प्रयास करते है। इस आयु वर्ग के बच्चे साधारण निर्देश को समझ पाते है व घटनाओं व क्रियाओं को लम्बें समय तक याद रख पाते हैं तथा समवर्ती समूह के खेलों में रूचि भी दिखाते है, वे अपने परिजनों, रंगों, वस्तुओं, शरीर के अंगों के नाम, वस्तुओं की संकल्पनाओं एवं अवधारणा के विषय में सामान्य समझ विकसित कर लेते है (हस्त पुस्तिका, उड़ान, 2017)। वह दूसरे व्यक्ति के भाव के प्रति अनुक्रिया दिखा पाते है, तथा स्व: संकल्प की योग्यता उनमें विकसित हो पाती है 'मैं कौन हूँ' तथा स्वयं के प्रति परिचय दे पाते है। यह पहलु एक चक्र की भांति है- बच्चा अपनी स्व-संकल्पना के अनुसार व्यवहार करता है, वह जिस प्रकार का व्यवहार करता है (ई-ज्ञान कोष, इकाई-13)।

संज्ञानात्मक विकास के आयामों का वर्गीकरण - ई.सी.सी.ई पाठ्यचर्या का प्रारूप संचालनालय एकीकृत बाल विकास सेवा (2016), मध्यप्रदेश एवं हस्त पुस्तिका, उड़ान (2017) रायपुर द्वारा संज्ञानात्मक विकास को विभिन्न आयामों मे विभाजित किया गया हैं, जो निम्न सारणी में प्रस्तुत हैं -

ज्ञानेन्द्रिय विकास	अवधारणा विकास	हमारा परिवेश	वर्गीकरण, तर्क , समस्या- समाधान
-वस्तुओं को देखकर पहचाना व समूह जमाना -विभिन्न आवाजों को सुनकर उनमे अंतर करना -अधिक व कम वस्तुओं एवं उसकी मात्रा का अनुमान लगाना -तापमान का अंतर पहचान पाना -वस्तुओं को सूंघ कर पहचान पाना -चखकर स्वाद समझ पाना	-परिवेश मे उपलब्ध विभिन्न आकार को पहचान पाना व नाम बता पाना व आकृति के आधार पर अंतर कर पाना -दो- तीन आकृति को मिलाकर नई आकृति बना पाना -रंग के आधार पर जमा पाना (गहरा-हल्का) -पहले व बाद में आने वाली संख्या समझ पाना -वस्तु व आकृति के पैटर्न बनाना -लम्बा -छोटा, दांया -बांया,अंदर -बाहर ,उपर-नीचे, मोटा-पतला,दूर-पास,हल्का-भारी, -संख्या को गिन कर उनकी संख्या बताना -वस्तुओं को विभिन्न आधार पर समूह बनाना तथा उनकी संख्या बताना	-घर व पड़ोस मे रहने वाले लोगो के काम के बारे में बताना -ऋतुओं के आधार पर कपडों को पहचाना -भोजन, सब्जी व फल के बारे में बताना -पालतू व जंगली जानवर तथा पक्षीयों के रहने का स्थान व उनकी बोली को पहचान -उपयोग के आधार पर वाहन की पहचान -एक बढ़ते हुए पौधों में आने वाले अंतर को पहचाना -पानी व पेड़ों का जीवन में महत्व व बचाव को समझाना	-विभिन्न आकार व आकृति के अंतर को समझना एवं उनके बारे में बताना -विभिन्न आकार,आकृति व रंग के आधार पर वस्तु का वर्गीकरण करना -वस्तुओं में समानता व विभिन्नता को अलग-अलग समूह करना -दैनिक जीवन से जुड़े आदतों को क्रम से जानना - कारण- परिणाम को समझना -पज़ल को समझकर जोड़ पाना

प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा में पूछताछ आधारित अधिगम–

शिक्षण में बच्चों के पूर्वज्ञान व अनुभव पर आधारित होती है जिसमें बच्चों को स्वायत्ता के लिए रचनात्मक चिंतन के तरीके में वृद्धि एव प्रेरक सीखने का अनुभव, बातचीत कौशल, भाषा कौशल में सुधार तथा समय सारणी व वर्कशीट को कम करने एवं बच्चों को उनके वातावरण से जोड़कर / सम्बंधित करके बच्चों में संज्ञानात्मक विकास को बल प्रदान करती हैं (नेजगी 2016)। तथा वैज्ञानिक सीखने का प्रथम नियम जिज्ञासा ही है तथा शिशु के सीखने की जड़ तो जन्म से ही है। यह उम्र उन्हें वैज्ञानिक साक्षरता में पहल करने के लिए आश्चर्यचकित करने वाले प्रश्नों का लाभ लेने की बात करता है गारज़ोंन एवं मार्टिनेज, 2017, हरदुद ए. 2015,एडेल्सन, एवं उनके सहयोगी 1999)

परन्तु हमारे शालाओं में पढाये जा रहे विषयवस्तु व बहार के वातावरण में अंतर महसूस करते हैं, जब सीखने को अलग–थलग किया जाता है उनके बीच कोई संबंध न होने पर छात्र, कक्षा में सीखये गए अवधारणाओं को सरलता से भूल जाते है पूछताछ–आधारित उपागम अपने शिक्षण को छात्र के पूर्व ज्ञान व अनुभव पर आधारित करती है। पूछताछ– आधारित उपागम पर आधारित शिक्षा छात्रों में स्वायत्ता के लिए रचनात्मकता (नज़ेगी 2016), महत्वपूर्ण सोच (एडेल्सन,गोरडीन एंड पेय 1999) को बढ़ाये व प्रेरक सीखने का अनुभव प्रदान करे, उनके संचार कौशल मे सुधार करें (हरदुद एटअल 2015) तथा टाइम टेबल व वर्कशीट को कम करे, छात्र को उनके वातावरण से सम्बंधित करके छात्रों में संज्ञानात्मक विकास को बल प्रदान करे। जब छात्र अपने ज्ञानेन्द्रिय का जितना अधिक प्रयोग करेगा उसमे उतना ही अधिक मानसिक कुशलता, दृश्य प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, भाषाई विकास एवं समस्या समाधान का सरलता से व गहराई से सीख सकेगे। शार्ट (2009) का दावा है की 'हम कैसे पढ़ाते है' 'हम कैसे पढ़ते है' उससे अधिक प्रभावित करते है।

पूछताछ आधारित अधिगम का सैद्धांतिक ढाँचा– बच्चे अपने आस–पास के वातावरण व दुनिया को समझने के लिए जिज्ञासा, अनुभव व अनुकरण करने की प्रेरणा के साथ पैदा हुए है। जो 'क्यों' व 'कैसे' प्रश्नों से शुरुआत होता है (पोलोमा एवं गरिका 2018), आगे चलकर यही कदम वैज्ञानिकता के विकास को बढ़ावा देता है, प्रारम्भिक काल में बच्चों में अनुकरण, निरिक्षण करके उसे आत्मसात करने व उसे प्रयोग करने की क्षमता का विकास को बढ़ावा देने में मदद करता है। प्रारम्भिक वर्षों में जाँच आधारित अधिगम में बच्चे खेलते, खोजते, सवाल करते, आंनद के साथ अपने संज्ञानात्मक विकास को मौलिकता प्रदान करते है, इस प्रक्रिया में प्रारम्भिक वर्षों के शिक्षक बच्चों को एक आधार प्रदान करती है (हस्त पुस्तिका 2017)। भविष्य की चुनौतियों व मांग की पूर्ति हेतु बच्चों को शुरुआती समय से तैयार करना होता है, जब वे जिज्ञासु, सीखने के लिए उत्साहित होते है, जब वे अनुभव, अभिभावक, शिक्षक तथा दोस्तों, वीडियो,टेलीविजन, रेडियो, दूरसंचार नेटवर्क जैसी तकनीकों

से काफी प्रभावित होते है, तथा उनमें पूर्व से विद्यमान प्राकृतिक जिज्ञासा और उत्साह का पूरी तरह लाभ शिक्षक व अभिभावकों को उठाना चाहिए, उनके उभरते कौशलों को विकसित करना चाहिए (पोलोमा एवं गरिका 2018)। पूछताछ आधारित अधिगम किसी भी विषय की गहन अध्ययन पर आधारित होता है इसे प्रक्रिया में लाने के लिए सामुदायिक या छोटे समूह या व्यक्तिगत रूप से किया जाता है। इसमें बच्चों को कहानियां सुनना, वस्तु व परिस्थिति का अवलोकन करना तथा विवेचनात्मक प्रश्नों को पूछना तथा उन्हें सोचने, विचार-विमर्श करने का पर्याप्त समय देना तथा अंत में बच्चे क्या जानना चाहते हैं इसका निर्णय उन्हें ही करने देने से सम्बंधित है। शिक्षक द्वारा बच्चों को विभिन्न सामग्री प्रदान करना, उन्हें प्रोत्साहित करना, उनको सही समय में मार्गदर्शन प्रदान करना ताकी वे विषय-वस्तु की गहराई तक पहुँच सके, सवालों का जवाब ढूढ़ सके। शिक्षक उनके एक अनुभव से नए अनुभव को जोड़ने तथा उनको प्रत्यक्ष -अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें सही प्रकिया सुझाने में मदद करे। जिसके द्वारा बच्चे अपने प्राप्त ज्ञान को माडल, चित्र, संगीत, नाटक खेल, आदि के माध्यम से प्रकट का सकें (पूर्व प्राथमिक पाठ्यचर्या, एन.सी.ई.आर.टी 2019)। विभिन्न माध्यमों से अपने वातावरण को जानना व उनका अवलोकन हेतु आकृति, रंगों, गतिविधियों, घटनाओं की मदद लेते है, तथा उन्हें सूघने, छुने, सुनने, स्वाद व देखकर विभिन्न तरीको से समस्याओं को हल करने, अपने पूर्व अनुभव के साथ जोड़कर नई चीजों का परीक्षण करने की कोशिश करते है। बच्चों में जाँच करने की इच्छा शिक्षक ही प्रबल कर सकता है शिक्षक को बच्चों की मानसिक शक्ति का क्षितिज विस्तार करना चाहिए, नए व सार्थक अनुभव लेने के लिए उनके वातावरण का भी क्षितिज विस्तार करना चाहिए, इस तरह बच्चों को पूछताछ आधारित अधिगम कौशल में दत्त किया जा सकता है।

शिक्षण में पूछताछ आधारित सीखना-

अवधारणा को समझ बच्चों में स्वयं होती है व सीखने की आवश्यकता भी इससे ही सम्बंधित है शिक्षक केवल सूचना प्रषित करने के बजाय बच्चों के विभिन्न गतिविधि, चर्चा व बच्चों के बीच आपसी बातचीत को निर्देशित व उन्हें प्रोत्साहित करता है। पूछताछ आधारित सीखना के लिए बच्चों को उनके नये ज्ञान समझ विकसित करने के लिए बच्चों से शिक्षक का अच्छा संबंध विकसित हो, शिक्षक को बच्चों से खुली प्रश्नावली का प्रयोग करना चाहिए, ऐसा वातावरण विकसित करे जहाँ छात्र केन्द्रित संवाद अधिक व बाते कम हो, तथा बच्चे अधिक कार्य करे। इस शिक्षण पद्धति का सबसे अधिक महत्व बच्चों में विभिन्न क्रियाओं से संज्ञानात्मक विकास के अंतर्गत मानसिक कुशलता, स्मृति, संचार, समस्या- समाधान व द्रष्य प्रत्यक्षीकरण का गुण मुख्य रूप से विकसित होता है इस पद्धति से बच्चे अपने ज्ञानेन्द्रिय से ज्ञान प्राप्त करते है व उस ज्ञान को शिक्षक के मार्गदर्शन में अपने पूर्व ज्ञान के माध्यम से अपने ज्ञान का विस्तार करते है तथा उनका संप्रेषण कुशलता का गुण उनमे विकसित हो जाता है (अबू, एलिअस, इस्माइल 2007)। पूछताछ आधारित सीखना बच्चों में अपने वातावरण को जानने की जिज्ञासा को जीवंत रखने की सबसे सफल प्रक्रिया है। यह बच्चों का खुला व्यक्तित्व बनाने, जोखिम व जिम्मेदारी लेने व उद्देश्य पूर्ण आधारित सटीकता लाने में मदद करता है। पूछताछ आधारित सीखना के मूल चरण निम्नलिखित-

1. समस्या तैयार करना (वास्तविक जीवन की स्थिति)
2. निरिक्षण करें और वर्णन करें (स्थिति)
3. जाँच (प्रश्नों का उत्तर देने के लिए)
4. विश्लेषण
5. संवाद (समूह कार्य)
6. विचार करे (समाधान)

शिक्षण के लिए अनुप्रयोग -यहां कुछ तरीके दिए गए हैं जिनसे आप पूर्व प्रारम्भिक शालाओं के बच्चों को बढ़ावा दे सकते हैं। बच्चे वास्तविक क्रियाओं के साथ-साथ चित्रों, कहानियों और मीडिया को छूने और प्रयोग करने से सीखते हैं। जब आप कोई परिवेश और पोषण के बारे में कहानियां पढ़ते हैं, तो बच्चों को छूने, महसूस करने, सूंघने, स्वाद लेने, वर्गीकृत करने, हेरफेर करने और खोजने के लिए सामग्री का एक संग्रह लाएं। संग्रह बच्चों को चीजों के नाम सीखने, वर्गीकृत करने, गिनने और वर्णन करने का एक आदर्श तरीका भी प्रदान करते हैं। पूछताछ गतिविधियों का उपयोग करें जो बच्चों को उनके सीखने में सक्रिय भागीदारी के अवसर प्रदान करें (वर्कशॉप : इन्क्वारी बेस्ड लर्निंग.)। बच्चों को अपने आसपास की दुनिया में हेरफेर करने और बातचीत करने के लिए प्रोत्साहित करें ताकी वे रिश्तों, विशेषताओं और प्रक्रियाओं के बारे में अवधारणाओं का निर्माण कर सकें (हस्त पुस्तिका 2017)। अन्वेषण के माध्यम से, पूर्व संक्रियात्मक आयु वर्ग के बच्चे उन वस्तुओं के बारे में आकड़े एकत्र और व्यवस्थित करना शुरू करते हैं जिन्हें वे हेरफेर करते हैं। उदाहरण के लिए, जब बच्चे पानी में फ़नल और कप के साथ खेलते हैं, तो वे माप, मात्रा, तैरना, बुलबुले और प्रिज्म, वाष्पीकरण और संतृप्ति जैसी अवधारणाओं के बारे में सीखते हैं। विविध गतिविधियों और खेल के वातावरण विभिन्न कौशल, अवधारणाओं और प्रक्रियाओं के माध्यम से स्व रूचि भी उत्पन्न होती है। बच्चों को रोजाना एक निश्चित समय भीतरी और बाह्य दोनों गतिविधियों में बिताना चाहिए। उन गतिविधियों के प्रकारों पर विचार करें जो बड़े और छोटे कौशल और सामाजिक, भावनात्मक और संज्ञानात्मक विकास की सुविधा प्रदान करती हैं। उदाहरण के लिए, बाहरी खेल गतिविधियाँ और खेल जैसे चढ़ना, गेंद फेंकना और पकड़ना, और साइकिल चलाना बड़े-कौशल विकास को बढ़ाता है, पूर्व-संक्रियात्मक आयु वर्ग के बच्चे अनुकरण के माध्यम से काफी हद तक सीखते हैं। उदाहरण के

लिएबच्चों को तिपहिया साइकिलों के माध्यम सेकौशल विकास को बढ़ाना चाहिए, सूक्ष्म कौशल गतिविधियों में शामिल हैं,उदाहरण के लिएबाहरी खेल जैसे चढ़ना, फेंकना और गेंदों को पकड़नाऔर कैंची चलाना, मोतियों की माला, रंगना, लिखना और मचान उपयुक्त कार्य और व्यवहार, सरल पहेली को पूरा करने वाली गतिविधियाँ को शामिल करना। सामग्री का उपयोग करने के संभावित तरीकों पर साथियों या शिक्षकों द्वारा बच्चों को विस्तार पूर्ण प्रदर्शन देखने के अवसर प्रदान करें। उदाहरण के लिएबच्चों द्वारा ब्लॉक और गणित के जोड़तोड़ के साथ मुफ्त अन्वेषण में प्रतिरूप (आकृति) तकनीक और रणनीतियाँ दिखा सकते हैं जिन्हें वे अपने खेल में प्रयोग कर सकते हैं। भाषा और साक्षरता में रुचि और विकास को प्रोत्साहित करने के लिए साक्षरता-समृद्ध वातावरण प्रदान करें। कक्षा की कहानियां और श्रुतलेख,लेखन और परिचित गीतों और फिंगर-प्ले व चार्ट प्रदर्शित करें। विभिन्न प्रकार के किताबों, पत्रिकाओं और समाचार पत्रों सहित छात्रों को पढ़ने के लिए सभी प्रकार के साहित्य में बच्चों को प्रेरित करने के लिए कागज और लेखन सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कराये (मोर्रिसन,2015)। दैनिक साक्षरता गतिविधियों में साझा, निर्देशित और स्वतंत्र पढ़ने और लिखने के अवसर शामिल होने चाहिए, गीत गाना और फिंगर-प्ले और रचनात्मक बाह्य भाग तथा स्व-चयन परियोजनाओं में बच्चों को निर्बाध समय की अनुमति दें।

निष्कर्ष-

बच्चे स्वयं ही खोज करके प्रमाण जुटा कर सीखते है व अपना ज्ञान सृजन करते है। इसके लिए शिक्षक बच्चों को प्रत्येक विषय को नये ढंग से उनके समक्ष रखने का प्रयास करे। जिससे बच्चों में उद्दीप्त किया जा सके और विषय के प्रति जिज्ञासा, रूचि उत्पन्न किया जा सके। शिक्षण के नवीन तरीके ढूँढना, शैक्षिक सामग्री एकत्र करना विभिन्न विषयों की नवीन अवधारणा से खुद को समृद्ध करना एवं बच्चों का इस दिशा में मार्गदर्शन करना, जिसकी मदद से अपने अनुभव को नवीन ज्ञान से जोड़ सके। यह ध्यान रखना आवश्यक है की बच्चे विभिन्न शिक्षण क्रियाकलाप के लिए विभिन्न प्रतिक्रिया देते है और उन्हें उनकी उन सभी क्रियाओं के लिए स्वतंत्रता होनी चाहिए। एक महत्वपूर्ण बात ये भी ध्यान रखना चाहिए की बच्चों का विकास इस तरह हो की बच्चे के ज्ञान में वृद्धि होने के साथ-साथ वे अपनी ताजगी, जिज्ञासा,विस्मय और खोज की भावना को लुप्त ना दे। पिछले वर्षों में शिक्षण पद्धति में काफी बदलाव आया है, तथा बच्चों में सही ढंग से व क्रमबद्ध पढ़ाने पर बल दिया गया है, शिक्षा नवाचार प्रस्ताव को कक्षा में लागु करना, उन्हें सोचने का समय अधिक दिया जाये तथा सीखने के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव का निरीक्षण करना बहुत उपयोगी होगा, जो हमें सामान्य तरीके से उपलब्धि में सुधार करने में सहायता प्रदान करेगा, जिससे उनका बचपन और दिलचस्प हो सकता है।

संदर्भ ग्रंथ -

- अबू, र.,एलिअस एवं इस्माली, न.2007. इम्पिमेंटिंग इन्क्वारी बेस्ड लर्निंग : अन इन्नोवेटिव मेथड फॉर प्रोएक्टिव स्टूडेंट्स, 12 इंटरनेशनल कांफ्रेस ऑन एजुकेशन यूनिवर्सिटी, ब्रूनेई दारुस्सलाम.
- इस्माली, न. एवं इलियास, सु.2006. इन्क्वारी बेस्ड लर्निंग: अ न्यू अप्प्रोच टू क्लासरूम लर्निंग,इंग्लिश लैंग्वेज जनर्ल मलेशिया, वोल.-2(1):13-24.
- ई.सी.सी.ई. पाठ्यचर्या का प्रारूप, 2016. संचालनालय एकीकृत बाल विकास सेवा, मध्यप्रदेश.
- ई-ज्ञान कोष : इकाई -13 संज्ञानात्मक विकास : मानसिक संकल्पना और प्रतीकात्मक विचार शक्ति की ओर http://egyankosh.ac.in/handle/123456789/44048.
- चु, स. कै., रेबेका,बी.रा., निकोल,जे.त., एवं मिचेले, नो. से. विं.यी. ली,2017. 21 सेंचुरी स्कील डेवलपमेंट थ्रू इन्क्वारी बेस्ड लर्निंग, इ-बुक आई एस बी एन 978-981-10-2481-8.
- तोमर,र. एंड कुमारी अ. 2017.कोग्नितिवे डेवलपमेंट ऑ ? चिल्ड्रेन इन प्राइवेट फ्रैंचाइज़ी प्रीस्कूल. इंटर जनरल रेसेंट साइंस रिसर्च . 8 (2) पी.पी.- 15494-15499 .
- द प्रीस्कूल करिकुलम 2019. नेशनल काउंसिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग, नई दिल्ली.
- दोस्ताल,जि.2015. इन्क्वारी बेस्ड इंस्ट्रक्शन : कांसेप्ट, एसेंस, इम्पोर्टेन्ट एंड कॉन्ट्रिब्यूशन.
- नजवी,जे.2016. डीटरमिटेंस ऑफ यूज़ ऑफ इन्क्वारी बेस्डइंस्ट्रक्शन बाय अर्ली चाइल्डहुड टीचर इन टीचिंग साइंस इन मेरु साउथ सब-कंट्री, केनिया. डॉ.थीसिस, केन्यात्ता यूनिवर्सिटी, स्कूल ऑ ? एजुकेशन.
- पोलोमा,का.,गरिका,दि.2018. इन्क्वारी बेस्ड लर्निंग: अन इनोवेटिव प्रपोजल फॉर ई.सी.ई.,जनर्ल ऑफ लर्निंग स्टाइल्स, वोल.11 न.22.
- मोर्रिसन, एस. गे. 2015. अर्ली चाइल्डहुड एजुकेशन टुडे, पियर्सन ग्लोबल 13 एडिसन.
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद 2010.3.6 प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा राष्ट्रीय फोकस समूह, आधार पत्र, नई दिल्ली.
- वर्कशॉप : इन्क्वारी बेस्ड लर्निंग. https://www.thirteen.org/edonline/concept2class/inquiry/index.html
- शोर्ट,के.2009.इन्क्वारी एज अ स्टांस ऑन करिकुलम. डेविडसन,एस. एण्ड एस. टाकिंग द पी वय पी फॉरवर्ड.(11).वुडब्रिज: जॉन काट एजुकेशनल लिमिटेड.
- सिंह, ए.के.2014. शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्युटर्स पटना .
- हस्त पुस्तिका, उड़ान 2017. शिशु शिक्षा एवं देखभाल, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, रायपुर.

धर्मविजयनाटक में भारतीयदर्शनप्रस्थानों की भूमिका : एक अनुशीलन

डॉ. कृपाशङ्कर शर्मा
साहित्यविभाग
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर, भोपाल

शोध सारांश - प्रस्तुत आलेख में धर्मविजयनाटक की कथा में प्रयुक्त भारतीयदर्शनप्रस्थानों के सन्दर्भों को लेकर अन्य सन्दर्भों के साथ समीकृत किया गया है । वे सन्दर्भ भारतीय समाज जो कि नाट्यकाल में अपनी सामाजिक भूमिका का दिग्दर्शन कराता है, को उजागर करते हैं। उसे शोधमार्ग में स्वीकार करते हुए भूदेवशुक्ल तथा उनके धर्मविजयनाटक की दार्शनिकभूमि को उद्घाटित करने का कार्य किया गया है। धर्मविजयनाटक की धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा व्यावहारिक वैचारिकसत्ता का लोकोन्मोचन कर समाज में प्रतिपाद्य नाट्यग्रन्थ की प्रासङ्गिकता बतलाना है। इस आलेख में वेदान्त, न्याय, मीमांसा, सांख्य तथा योग आदि दार्शनिक विचारों का पल्लवन किया गया है।

कूटशब्द- वेदान्त, सान्वीक्षिकी, विलयं, प्रगल्भा: ।

भारतीय साहित्यशास्त्रपरम्परा में नाट्य को त्रिवर्गसाधन माना गया है। साहित्य में नाट्यप्रयोग के लिये नाट्यशास्त्र को भरतमुनि का प्रायोगिकशास्त्र कहा जाता है। इस प्रयोगप्रधान शास्त्रानुसार नाट्यकृतियों में ग्रन्थकार समाज का समुज्ज्वलचित्रण करता है। भूदेवशुक्ल प्रणीतधर्मविजयनाटक में भी नाट्यकार शुक्लजी ने भारतीयसमाज के सांस्कृतिक-धार्मिक-दार्शनिक-स्वरूप का प्रकाशन किया है।

साहित्यसृजनकर्ता ग्रन्थकार अपनी सृजनात्मकशक्ति से जडचेतनात्मक लोक को अनुभूत करता हुआ अपनी रचना में उसको यथेष्ट प्रतिबिम्बित करने की चेष्टा करता है। यद्यपि धर्मविजयनाटक की कथावस्तु धर्माश्रित है। धर्म को दर्शन से पृथक् नहीं किया जा सकता है, बल्कि उसका संयुक्त स्वरूप ही भारतीयदार्शनिक-चिन्तन-परम्परा का आधार है। प्रतिपाद्य नाटक की कथावस्तु में धर्मकर्म तथा दर्शन से सम्बद्ध विचारों का सन्निवेश हुआ है। पाँच अङ्कों का यह नाटक प्रतीकनाट्यपरम्परा का विशिष्ट नाटक है। ये पाँच अङ्क पञ्चभौतिकतत्त्वों के प्रतीक है। धर्मविजयनाटक के प्रतीकपात्र धर्म-अधर्म-पाप-पुण्य-प्रायश्चित-पण्डित-सङ्गति-सत्य-अंहिसा-अस्तेय आदि दार्शनिक वैचारिक भूमि पर अपना प्रकाशन करते हैं। इसी दार्शनिक वैचारिक पृष्ठभूमि का उद्घाटन करना प्रस्तुत शोध-आलेख का प्रतिपाद्य है।

भारतीय दर्शनप्रस्थानों में ही नहीं अपितु समस्त विद्या का उद्देश्य चतुर्विध पुरुषार्थ सिद्धि है। धर्मविजयनाटक में वेदान्त-न्याय-सांख्य-मीमांसा आदि के सन्दर्भ मिलते हैं, जो यह सूचित करते हैं कि-नाटक के रचनाकाल में भारतीय दर्शनप्रस्थानों का प्राचुर्य युग एवं काल की आवश्यकता रही है। उस काल में भौतिक सुख सुविधाओं का अभाव रहते हुए भी समाज अपनी दार्शनिकवैचारिक पृष्ठभूमि तथा दर्शनपरम्परा का अनुपालन करते हुए परमपुरुषार्थ की सिद्धि करता था। नाटक के कतिपय सन्दर्भ यहाँ प्रमाणके रूप में प्रस्तुत करते हैं-

वेदान्ते धर्मशास्त्रे परिणतमतयो न्यायशास्त्रे प्रवीणा:
काव्यालङ्कारगोष्ठीष्वपिरसिकतमा नाटकाख्यानदक्षा:।
काव्यं कर्तुं प्रगल्भा: प्रतिपदमपि ये भावयन्ति स्वबुद्ध्या
तेषां वक्त्रं पुराणं निवसति सजलं सेतिहासं नरेन्द्र॥ [1]
वेदान्तोऽन्यतममवाप वीक्षणपथं नान्वेति सान्वीक्षिकी
सिद्धान्त: कपिलस्य कोऽपि विलयं यात: स पातञ्जल:।
मीमांसा विरताऽङ्गभङ्गविकला वेदस्मृतिर्विस्मृता
साहित्यं पिहितं हितैषिणि ! हितं नो जीवितं मेऽधुना॥ [2]

नाटक के ये दो पद्य भारतीय विद्याओं को केन्द्रित कर बतलाये गये हैं कि समाज में इनका प्राधान्य रहा है।

वेदान्तदर्शन-वेदान्तविद्या के अधिष्ठाता महर्षिवादरायणव्यास हैं। वादरायण व्यास ने ब्रह्मसाक्षात्कार के लिये स्वानुभूति से ब्रह्मसूत्र का प्रणयन कर आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है। जिस पर भगवत्पादशङ्कराचार्य ने अपने वैदुष्यपूर्ण स्वानुभवगम्य व्याख्यान लिखकर दार्शनिकविचार का पल्लवन किया है। इसी प्रकार सनातन परम्परा के प्रतिष्ठित आचार्यों में रामानुजाचार्य,वल्लभाचार्य, माध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, कुमारिलभट्ट , वाचस्पतिमिश्र, उदयन,जयन्तभट्ट आदि प्रमुख दार्शनिक प्रसिद्ध हैं। वेदान्तदर्शन के सिद्धान्त मानवजीवन के लिये लोक और परलोक के साधनभूत तथा उद्धारक माने जाते हैं। दर्शन का मूल ध्येय आत्मसाक्षात्कार है, जीवमात्र अपने कल्याण कामना से ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। *वेदान्तदर्शन का सन्दर्भ वेदान्ते* (2/56) /*वेदान्तोऽन्यतमवाप* (3/2) / *विरतिमुपगता कापि वेदान्तविद्या* (3/17) धर्मविजयनाटक में सन्दर्भ बतलाते हैं, कि उस काल में भारतीयदर्शनों की परम्परा में वेदान्त जीवनमुक्ति के लिये सामाजिक-व्यवस्था में बहु प्रसिद्ध था तथा समाज वेदान्तदर्शन के सिद्धान्तानुसरण की ओर उन्मुख था।

न्यायदर्शन -धर्मविजयनाटक में '*न्यायशास्त्रप्रवीणा:*' (2/56)/ *नान्वेति सान्वीक्षिकी* (3/2)/ *न्याय: स्मृत्योर्विरोधे* (3/21)[3] ये सन्दर्भ ही नाटककार की न्यायदर्शन में प्रवीणता का परिचायक हैं। इस बात से स्पष्ट होता है कि नाट्यकालीन समाजव्यवस्था में न्यायदर्शन का प्राधान्य रहा है। न्यायदर्शन के प्रतिष्ठाता आचार्य गौतम को माना जाता है। यह वह दर्शन है जो तर्क के आधार पर अनुमान प्रमाण के द्वारा दार्शनिकविचार

का प्रतिपादन करता है। तत्कालीन समाज इस न्यायदर्शन के माहात्म्य को जानते हुए लोकमङ्गल के लिए स्वाध्याय करता रहा है। लोकमङ्गल एवं जीवनमुक्ति के साधनभूततत्त्व के रूप मेंन्यायदर्शन की उपादेयता है।

मीमांसादर्शन-'मीयते अनेन मीमांसा' के अनुसार मीमांसाशब्द का अर्थ है गहन विचार परीक्षण या अनुसन्धान। मीमांसा का प्रथम सूत्र अथातो धर्मजिज्ञासा करना है। नाट्यकारभूदेवशुक्ल ने धर्मविजय की दृष्टि से ग्रन्थरचना की है। उन्होंने मीमांसा का गहन अध्ययन किया है। सम्बद्ध विषय का अध्ययन किये बिना उसका प्रतिपादन करना दुरूह कार्य है। साहित्यशास्त्र के आचार्यगण मीमांसाशास्त्र के अध्ययन के साथ शास्त्रीय विषयों का अर्थान्वय कर अर्थबोध करते थे। इसीलिये काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने 'तात्पर्यार्थेषु केचित्' लिखकर प्रमाणित किया है। भारतीयदर्शनप्रस्थानों में मीमांसादर्शन भी एक विशिष्टदर्शन माना जाता है। श्रुतिविहित कर्मसिद्धान्त की शास्त्रीय पर्यालोचना और जीवजगत का कल्याण इस दार्शनिकप्रस्थान की विशेषता है। इसके दो भाग हैं-पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा। धर्मविजयनाट्यकथा में धर्मशास्त्रीय विषयों को आधार बनाया गया है। नाटक में '*मीमांसा विरताऽङ्गभङ्गविकला वेदस्मृतिर्विस्मृता*'(3/2)यह सन्दर्भ नाट्यकार शुक्लजी के मीमांसादर्शन के पाण्डित्य का द्योतक माना जा सकता है। नाटक की कथा में यह सन्दर्भ प्रसङ्गानुसार योजित करना ही मीमांसादर्शन के प्रति अगाधश्रद्धा होना सिद्ध करता है। नाटक में वर्णित सामाजिकव्यवस्था के अनुसार तत्कालीन सामाजिकजन भी इस मीमांसादर्शन का स्वाध्याय करते हुए श्रुतिविहित कर्मसिद्धान्त के मर्म को जानने का प्रयत्न करते थे। इस प्रकार प्रकृतसन्दर्भ से यह अनुमान परिलक्षित होता है।

सांख्यदर्शन- सांख्यदर्शन भारतीयदर्शन के प्राचीन सम्प्रदायों में परिगणित है। व्युत्पत्ति के आधार पर सांख्य शब्द सम् उपसर्गपूर्वक चक्षिङ् धातु से अङ् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है। चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि अयं दर्शनेऽपि (सिद्धान्तकौमुद्याम् अदादिगणे) इस विवेचनानुसार सम्यक् ख्याति अर्थात् सम्यक् दर्शन् या सम्यक् ज्ञान् सांख्य शब्द का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है। कुछ विद्वान इसके दो अर्थ ग्रहण करते हैं- संख्या तथा ज्ञान। *संख्यायन्ते गणयन्ते येन तत् सांख्यम् संख्यायते प्रकृतिपुरुषान्यता ख्यातिरूपोऽवबोधो सम्यक् ज्ञायते येन तत् सांख्यम्।*[4]सांख्य का सम्बन्ध तत्त्वों की संख्या से है। सांख्यदर्शन में महदादि पच्चीस तत्त्वों की गणना की गई है, इसीलिये इसे तत्त्वसंख्यान एवं तत्त्वगणन भी माना जाता है। तत्त्वज्ञान प्रकृति और पुरुष के पार्थक्य का ज्ञान है। गणना एवं ज्ञान दोनों अर्थों के प्रतिपादनसन्दर्भ में महाभारत का वचन उद्धरणीय है-

संख्या प्रकुर्वते चैव प्रकृतिञ्च प्रचक्षते ।
तत्त्वानि च चतुर्विंशत्तेन सांख्यं प्रकीर्तितम्॥[5]

इसी संख्या या विवेकज्ञान के कारण इस दर्शन का नाम सांख्य प्रख्यात हुआ। सम्यक् स्थानं संख्या संख्यैव सांख्यं प्रकृतिपुरुषविवेकात्मकं विशिष्टं ज्ञानम्। इसका तात्पर्य है कि-सम्यक् ज्ञान अर्थात् शास्त्रानुशीलन से तत्त्वों का यथार्थ बोध, प्रकृतिपुरुष महदादि तत्त्वों की सही उपलब्धि। अमरकोशकार ने भी '*संख्यावान् पण्डित: कवि:*'[6] इस प्रकार निर्दिष्ट किया है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी-*ज्ञानयोगे संख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्*(3/3) बताया है।[7] सांख्यदर्शन के प्रतिष्ठाता आचार्य महर्षिकपिल को माना जाता है। यह वह दर्शन है जो संख्या के अनुसार दार्शनिकविचारों को पल्लवित करता है। धर्मविजयनाटक में महर्षिकपिल और उनके सिद्धान्त के लिये सन्दर्भ आता है '*सिद्धान्त: कपिलस्य*' (3/2)जो यह सूचित करता है,कि नाट्यकार शुक्ल जी सांख्यदर्शन के भी विद्वान थे, इसीलिये नाट्यकथा में दार्शनिक पक्ष को सूत्रात्मक शैली में सूचित किया है,कि उस काल के समाज में सांख्यदर्शन के स्वाध्याय का प्राधान्य रहा है। इसदर्शन के वेद, उपनिषद्, स्मृति, रामायण, महाभारत, पुराणादि ग्रन्थों में बहुधा सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। स्वयं धर्मविजयनाटककार भूदेवशुक्ल ने अपने नाटक में सूत्रात्मक सन्देश दिया है। नाट्यकालीन भारतीय समाज में सांख्यदर्शन प्रचलित रहा है।

योगदर्शन-योगदर्शन भारतीय दर्शनपरम्परा में अपना विशिष्ट स्थान रखता है । आज भौतिकतावाद के आधुनिक जीवनशैली में मानव विविधप्रकार के कष्टों से पीडित है। उन कष्टों के निवारण के लिए योगदर्शन की आवश्यकता प्रतीत होती है। नाटककार भूदेवशुक्लजी ने धर्मविजयनाटक में '*विलयं यात: सपातञ्जल:*'(3/2) सूत्र के द्वारा यह सूचित किया है,कि नाट्यकालीन भारतीय समाज में योगदर्शन जीवन के परमपुरुषार्थ की सिद्धि के लिये प्रयुक्त होता रहा है। उस काल में योगदर्शन के अनुसार जीवन जीना समाजव्यवस्था का प्रमुख ध्येय रहा होगा। नाट्यकार स्वयं इस दार्शनिकव्यवस्था को अनुपालित करते थे इसप्रकारकीसम्भावना व्यक्त होती है।

उपर्युक्त सन्दर्भों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि धर्मविजयनाट्यकथा में गर्भित दर्शनप्रस्थानों वेदान्त, न्याय, मीमांसा, सांख्य तथा योग के सूत्र सूचित करते है कि भारतीय समाजव्यवस्था में दार्शनिकप्रस्थानों का प्राधान्य उनके सामाजिकसमुत्कर्ष के लिये प्रचलित रहा है । नाट्यकार भूदेवशुक्ल जी नाट्य या काव्यादि साहित्य के ही विद्वान् नहीं थे अपितु वे दर्शनप्रस्थानों की विशाल परम्परा मे भी अपना पाण्डित्य स्थापित किये हुए थे। क्योंकि सम्बद्ध विषय के ज्ञानाभाव में उस विषय वस्तु के बारे में विचार प्रतिपादन करना अथवालिखना अतिदुष्कर कार्य होता है। भूदेवशौक्ल जी उक्त विषयों के ज्ञाता थे, तभी तो अपने नाट्यग्रन्थ में उन विषयों का प्रसंगानुसार उल्लेख किये हैं। इन समस्त तथ्यों को ध्यान में रखकर यह कहना युक्तिसंगत प्रतीत होता है, कि साम्प्रतिक युग में भारतीयदर्शनशास्त्रों का उपयोग लोकमङ्गल तथा विश्वबन्धुत्व के मार्ग का प्रकाशक सिद्ध प्रतीत होते हैं इति दिक्।

सन्दर्भ-

1. धर्मविजयनाटक 2/56
2. वही 3/2
3. वही.3/17
4. भारतीयदर्शन
5. महाभारत
6. अमरकोश
7. श्रीमद्भगवद्गीता 3/3

प्राचीनकाल से ज्योतिषशास्त्र की व्यापकता श्रीमद्भागवतमहापुराणानुसार चारों युगों का वर्षमान निर्धारण

डॉ. सोमेश्वर नाथ झा 'दधीचि'
सहायक प्राध्यापक, एम.एम.टी.एम. कॉलेज, दरभंगा

ग्रहाधीनं जगत्सर्वं ग्रहाधीना: नरावरा:।
*कालज्ञानं ग्रहाधीनं ग्रहा:कर्मफलप्रदा:।।*वृहस्पतिसंहिता 1/6

सम्पूर्ण संसार ग्रहों के अधीन हैं, ग्रहों के अधीन ही सभी श्रेष्ठ मनुष्य हैं। काल का ज्ञान ग्रहों के अधीन है और ग्रह ही कर्मों के फलप्रदाता हैं। वेदों का प्रधान विषय यज्ञ का सम्पादन है और यज्ञ के सफल सम्पादन के लिए ग्रहों की सुगति देखकर आरम्भ किया जाय, जिसको बताने वाला शास्त्र ज्योतिषशास्त्र है। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि ज्योतिष के बिना यज्ञों का सम्यक्सम्पादन नहीं हो सकता। ज्योतिषशास्त्र की व्युत्पत्ति *'ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रम्'* अर्थात् सूर्यादि ग्रह काल का बोध कराने वाले शास्त्र को ज्योतिषशास्त्र कहते हैं। ज्योतिषशास्त्र में ग्रह, नक्षत्र, ज्योति:, पदार्थों का स्वरूप संचार, परिभ्रमणकाल, ग्रहण और ग्रह स्थिति प्रभृति समस्त घटनाओं का निरूपण एवं ग्रह नक्षत्रों की गति, स्थिति और संचारानुसार शुभाशुभ फलों का कथन किया जाता है।

वेदा ही यज्ञार्थमभिप्रवृत्ता: कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञा:।
*तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं योज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्।।*आ.ज्यो.-36

ज्योतिषशास्त्र का अस्तित्व हम वेदों और वैदिक साहित्य में सर्वत्र पाते हैं। वेदों में सूर्य,चन्द्रमा और दूसरे कतिपय नक्षत्रों के लिए देवत्व रूप में स्तुतिपरक ऋचाएँ पाई गई हैं। सूर्य चन्द्र का प्रत्यक्ष दर्शन तथा प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर इनसे भयभीत होकर देवत्व स्वरूप मानकर पूजा किया जाने लगा। इसीलिए वेदों में कई स्थानों पर सूर्यचन्द्र नक्षत्र के स्तुतिपरक मन्त्र आये हैं। वस्तुत: भारतीय ऋषियों ने इनके रहस्य से प्रभावित होकर ही देवत्व रूप में स्तुति किये होंगे। स्तुतिपरक ऋचाओं में नक्षत्रों के प्रति वैदिक ऋषियों की रहस्यपूर्ण उत्सुकता का भाव विद्यमान है। ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थों में ग्रह नक्षत्रों के रूप-रंग, गुण-प्रभाव आदि पर विचार होने लगे। वैदिक यज्ञों की विधियाँ सम्पन्न करने के लिए ऋतु, अयन, दिनमान और लग्न आदि के शुभाशुभ के लिए ब्राह्मण युग में ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान अनिवार्य होने लगा। पाणिनीय शिक्षा में वेद भगवान के इन छ: अंगों का तदनुरूप स्थान निर्धारित किया गया है और वहाँ बताया गया है कि सामवेद पढ़ने पर ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। छन्द तो वेद भगवान के पैर हैं, कल्प हाथ, ज्योतिष आँखें, निरूक्त कान, शिक्षा नाक और व्याकरण मुख हैं।

यथा शिखा मयुरानां नागानांमणयो यथा
*तद्वद्वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्ध्निसंस्थितम्।।*वेदांग ज्यो. श्लो.-4
शिक्षा कल्पोथव्याकरणं निरूक्तंछन्दसां च य:।
ज्योतिषामयनं चैव वेदांगानि षडैवतु।।

पणिनीयशिक्षा षड्वेदांगों में ज्योतिष की महत्ता के संबंध में लिखा हुआ है कि जिस प्रकार मयुरों की शिखाएँ एवं नागों की मणियाँ सर्वोपरि स्थानों को प्राप्त है उसी प्रकार वेदांगशास्त्रों में गणित अर्थात् गणित ज्योतिष का स्थान सर्वोपरि है। ज्योतिषशास्त्र को पहले-पहल गणित फलित इन दो रूपों में स्वीकार किया गया। बाद में वह स्कन्धत्रय के नाम से कहा जाने लगा जिसको सिद्धान्त, संहिता और होरा इन तीन विभागों में विभाजित किया गया परन्तु वर्तमान समय में पाँच भागों में विभक्त कर ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन किया जाता है। होरा, गणित, संहिता, प्रश्न और शकुन ये पाँच भेद हैं। ऋग्वेद संहिता के एक मंत्र में द्वादश राशियों की गणना से वर्ष 360 दिन गिने गए हैं। ऋग्वेद का यह राशी चक्र गणना ज्योतिष की अतिप्राचीन स्थिति पर अपना प्रमाण उपस्थित करता है। ऋग्वेद संहिता 1/164/11

वैदिकसंहिताओं में नक्षत्रपुंज, देवतापुंज, निहारिका आदि विषयों के नाम रूप आकृति का वर्णन मिलता है। आकाश मंडल में ग्रहों की गति का अध्ययन भूमण्डल पर उनके प्रभावकी वैज्ञानिक व्याख्या वेद मंत्रों में वर्णित है।[1] तैत्तिरीय संहिता में हमें द्वादश मासों के नाम क्रमश: मधु, माधव, शुक, शूचि, नभस, नभस्य, ईष, उर्ज, सहस, सहस्य, तपस और तपस्य मिलता है।[2] विद्वानों के अनुसार वैदिक युग में कृत्तिका नक्षत्र से गणना की जाती थी और कृत्तिका प्रथमचरण ही संपातविन्दु समझा जाता था। अथर्ववेद में हमें अठाइस नक्षत्रों के नाम और उनकी गणना का क्रम भी मालूम होता है।[3] ऋग्वेद में राशियों की संख्या 12 हीं स्वीकार की गयी है।[4] नक्षत्र शब्द सभी ताराओं के लिए प्रयुक्त हुआ है जैसे सर्वशक्तिमान सूर्य के आगमन से नक्षत्र (तारे) और रात चोर की तरह भागते हैं।[5] वैदिक संहिताओं से बढ़कर व्याख्यारूप ब्राह्मण उपनिषद् आदि ग्रन्थों में भी ज्योतिष के विभिन्न अंगों पर विस्तृत चर्चाएँ मिलती हैं। शतपथब्राह्मण में सप्तर्षि मण्डल को ऋक्ष के नाम से कहा गया है। शुक्र की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि शुक्र वही है जो चमकता है वह चमकता है इसलिए उसको शुक्र कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि बृहस्पति जब पहले प्रकट हुआ था तब वह तिष्य (पुष्य) नक्षत्र के पास था। छान्दोग्य उपनिषद की एक कथा के अनुसार नारदजी ने सनत्कुमार ऋषि के पास जाकर ब्रह्मविद्या पढ़ने की इच्छा प्रकट की थी तब ऋषि सनत्कुमार के यह पूछे जाने पर कि वे (नारदजी) कौन-कौन विद्याएँ अब तक पढ़ चुके हैं। नारदजी ने अपनी अधीत विद्याओं में नक्षत्र विद्या अर्थात् ज्योतिष और राशी विद्या

अर्थात् अंकगणित का नाम लिया। महाभारत के विराट् पर्व में कहा था उसमें भीष्म द्वारा कालगणना कर पाण्डवों के वनवास की अवधि 13 वर्ष से पाँच मास 12दिन अधिक मलमास अथवा अधिक मास को भी जोड़कर कहा था।[5] इतना ही नहीं आदिपर्व में, वनपर्व में, अश्वमेधपर्व में और वनपर्व में भी नक्षत्र, चन्द्रतिथि, सूर्यतिथि पक्ष और ऋतु का उल्लेख मिलता है। '*अष्टाविशानि शिवानि शग्मानि सहयोगं भजन्तु मे। योगं प्रपद्ये क्षेमं च क्षेमं प्रपद्येयोगं च नमोऽहोरात्राभ्याम् स्तु।।*' [6]

अथर्ववेद के मंत्र में योग और क्षेम की प्राप्ति के लिए प्रार्थना है कि किसी वस्तु को प्राप्त करना योग और उसकी रक्षा करना क्षेम है। नक्षत्रों से इसको देने की प्रार्थना किया गया है। इस मंत्र में अहोरात्र पद आया है उसका ज्योतिष के होराशास्त्र में अत्यन्त महत्त्व है। अर्थात् अहोरात्र पद के आदिम 'अ' और अंतिम 'त्र' वर्ण के लोप से होरा शब्द बनता है। इस होरा लग्न के ज्ञान मात्र से जातक का शुभाशुभ कर्मफल कहना चाहिये। श्रीमद्भागवतमहापुराण में काल गणना का सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रारूप का उद्भेदन किया गया है।

अहोरात्राद्यंतलोपाद्धोरेति प्राच्येतेबुधैः। तस्य ही ज्ञानमात्रेण जातकर्मफलं वदेत्।।[7]
अणुर्द्वौ परमाणु स्यात्त्रसरेणुस्त्रयःस्मृतः। जालार्करश्म्यवगतः खमेवानुपतन्नगात्।।[8]

दो परमाणु मिलकर एक 'अणु' होता है और तीन अणुओं के मिलने से एक त्रसरेणु होता है, जो झरोखे में से होकर आई हुई सूर्य की किरणों के प्रकाश के अकाश में उड़ता देखा जाता है। ऐसे तीन त्रसरेणुओं को पार करने में सूर्य को जितना समय लगता है उसे त्रुटि कहते हैं। इससे सौ गुना काल वेध कहलाता है। तीन वेध का एकलव होता है तीन लव एक निमेष और तीन निमेष को एक क्षण कहते हैं। पाँच क्षण की एक काष्ठा होती है और पन्द्रह काष्ठा का एक लघु होता है। पन्द्रह लघु की एक नाडिका दण्ड कही जाती है। दो नाडिका का एक मूहूर्त्त होता है और दिन के घटने बढ़ने के अनुसार 6 या 7 नाड़िका एक प्रहर होता है यह याम कहलाता है जो दिन या रात का चौथा भाग होता है।

'*त्रसरेणुत्रिकं भुंक्ते यः कालः सत्रुटिः स्मृतः।शतभागस्तु वेधः स्यात्तैस्त्रिभिस्तुलवः स्मृतः।।*[9] *निमेषस्त्रिलवो गेय आम्नातस्ते त्रयः क्षणः। क्षणान् पंजविदुः काष्ठां लघु तादश पंच च।।*[10] *लघुनि वै समाम्नाता दश पंच चनाड़िका। ते द्व मुहुर्त्तः प्रहरः षडयामः सप्त वानृणाम्।।*[11] *द्वादशार्धपलोन्मानंचतुर्भिश्चतुरंगुलैः। स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रंयावत्प्रस्थजलप्लुतम्।।*'[12]

श्रीमद्भागवत में ही काल गणना को और विस्तारपूर्वक बताया गया है। छः पल ताँबे का एक ऐसा बरतनहो जिसमें एक प्रस्थ जल आ सके और चार माशे सोने की चार अंगुल लंबी सलाई बनवाकर उसके द्वारा उस बरतन के पेंदे में छेद करके उसे जल में छोड़ दिया जाय। जितने समय में एक प्रस्थ जल उस बरतन में भर जाय या वह बरतन जल में डूब जाय उतने समय को एक नाड़िका कहते हैं। मैत्रेयजी विदुरजी को दिन-रात कृष्ण-पक्ष शुक्ल-पक्ष, मास, ऋतु, अयन और वर्ष के विषय में बताते हैं कि इस प्रकार मनुष्य की आयु सौ वर्षों की होती है।

'*यामाश्चत्वारश्चत्वारो मर्त्यानामहनी उभे। पक्षः पंचदशाहानि शुक्लः कृष्णश्चमानद्।।*[13] *तयोः समुच्चयो मासः पितृणांतदहर्निशम्। द्वौ तावृतुः षडयनं दक्षिणंचोत्तरं दिवि।।*[14] *अयने चाहनी प्राहुर्वत्सरो द्वादशस्मृतः। संवत्सरशतं नृणांपरमायुर्निरूपितम्।।*[15] *ग्रहर्क्षताराचक्रस्थः परमाण्वादिनाजगत्। संवत्सरावसानेन् पर्येत्यनिमिषोविभुः।।*[16] *संवत्सरः परिवत्सरः इडावत्सरः एव च। अनुवत्सरो वत्सरश्च विदुरैवंप्रभाष्यते।।*'[17]

वर्ष संवत्सर का प्रतिपादन करने के बाद श्रीमद्भागवत में युगों का वर्षमान निर्धारित कियागया है। देवताओं के वर्ष को दिव्य वर्ष कहते हैं। 1 दिव्य वर्ष बराबर मनुष्य के 360 वर्ष के बराबर होता है। इसी प्रकार चारों युगों के वर्षमान का भी वर्णन किया गया है।

'*कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेतिचतुर्युगम्। दिव्यैर्द्वादशभिर्वर्षैः सावधानंनिरूपितम्।।*[18] *चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषुयथा क्रमम्। संख्यातानि सहस्राणि द्विगुणानिशतानि च।।*[19] *संध्यांशयोरन्तरेण यः काल:शतसंख्योः। तमेवाहुर्युगं तज्ञा यत्र धर्मोविधीयते।।*'[20]

शतयुग त्रेतायुग द्वापरयुग कलियुग ये 4 युग अपने अपनी संध्या और संध्यांशों के सहित देवताओं के 12 सहस्त्र वर्ष तक रहते हैं। सत्य युग आदि चारों युगों में क्रमशः 4,3,2,1 सहस्त्र दिव्य वर्ष होते हैं और प्रत्येक में जितने सहस्त्र वर्ष होते हैं उससेदुगुने सौ वर्ष उनकी सन्ध्या और संध्यांश होते हैं। युग के आदि में संध्या और अंत में संध्यांश इनके बीच के काल को कालवेताओं ने युग कहा है। प्रत्येक युग में धर्मविशेष की प्रधानता रहती है। उपर्युक्त कालगणना के आधार पर युगों का वर्षमान निर्धारित है:-

शतयुग 4000 दिव्य वर्ष + 400 संध्या वर्ष + 400 संध्यांश वर्ष कुल 4800 दिव्यवर्ष x 360 वर्ष = 17,28,000 वर्ष शतयुग का वर्षमान।
त्रेतायुग 3000 दिव्य वर्ष 300 संध्या वर्ष + 300 संध्यांश वर्ष कुल 3600 दिव्य x 360 वर्ष = 12,6,000 वर्ष त्रेतायुग का वर्षमान।
द्वापरयुग 2000 दिव्य वर्ष + 200 संध्या वर्ष + 200 संध्यांश वर्ष कुल 2400 दिव्यवर्ष x 360 वर्ष = 8,64,000 वर्ष द्वापरयुग का वर्षमान।
कलियुग1000 दिव्य वर्ष + 100 संध्या वर्ष + 100 संध्यांश वर्ष कुल 1200 दिव्यवर्ष x 360 वर्ष = 4,32,000 वर्ष कलयुग का वर्षमान।

आज भी श्रीमद्भागवत महापुराण के आधार पर किये गए काल गणना को आधार मानकर कलियुग का वर्ष 4,32,000 वर्ष निर्धारित किया गया है। सम्प्रति कलियुग का प्रथम चरण ही चल रहा है।

सन्दर्भ सूची -

1. तिलक-आरिजिनआर रिसर्चेज इन टू दि ऐक्टिविटी ऑफवेदाज पृष्ठ संख्या 01-09, 1938
2. तैतिरीयसंहिता 01/04/14
3. अथर्ववेदसंहिता 19/7
4. ऋग्वेद 1/164/11/49
5. ऋग्वेद 1/50/02
6. अथर्ववेद-19/08/02
7. बृ.पा.होराशास्त्र पूर्वभाग 03/02
8. श्रीमद्भागवत०3/11/05
9. श्रीमद्भागवत० 03/11/06
10. श्रीमद्भागवत० 03/11/07
11. श्रीमद्भागवत० 03/11/08
12. श्रीमद्भागवत० 03/11/09
13. श्रीमद्भागवत० 03/11/10
14. श्रीमद्भागवत०03/11/11
15. श्रीमद्भागवत० I 03/11/12
16. श्रीमद्भागवत० 03/11/13
17. श्रीमद्भागवत० I 03/11/14
18. श्रीमद्भागवत० 03/11/18
19. श्रीमद्भागवत० 03/11/19
20. श्रीमद्भागवत० 03/11/20

ब्रह्म का दार्शनिक स्वरूप

(ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य के आलोक में)

डॉ. मेघराज मीणा
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
शिवाजी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

यह चराचर जगत् किससे उत्पन्न होता है? इसका नियामक कौन है? किसके संकेत से प्रकृति में परिवर्तन आता है और दिन तथा रात कैसे बनते हैं? जिसकी आज्ञा से सूर्य तपता है और दूध जैसी सफेद चाँदनी से चन्द्रमा जगत् को नहला देता है? ये और इन जैसे अनेक शाश्वत् प्रश्न हैं जिनका समाधान मानव वैदिककाल से ही खोजने में लग गया था। उपनिषदों में उसकी दृष्टि बाह्य जगत् से हटकर अध्यात्म की ओर अग्रसर हुई । इस समय उसने सोचना आरम्भ किया कि मन, प्राण तथा इन्द्रियाँ किसकी प्रेरणा से कार्य करते हैं?[1] इस प्रकार के अनेक प्रश्न मानव मन को मथते रहे हैं, इनके परिणामस्वरूप उसने एक परम तत्त्व की कल्पना की जिसे ब्रह्म कहा जाता है। इसी परमतत्त्व से यह चराचर जगत् उत्पन्न होता है, सत्ता में रहता है और अन्त में विलीन हो जाता है।[2] इसके भय से आग तपती है, सूर्य तपता है, इन्द्र, वायु और मृत्यु सभी इससे भयभीत होकर कार्य करते हैं।[3] इस परमतत्त्व का नाम ही ब्रह्म है ।

ब्रह्म-व्युत्पत्तिपरक अर्थ-

ब्रह्म शब्द 'बृह वृद्धौ' तथा 'बृहि वृद्धौ' धातुओं से मनिन् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। इन धातुओं के आधार पर ब्रह्म का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है-'*बृहत्वाद् बृंहणत्वाद् ब्रह्म*।' अर्थात् जो तत्त्व महान्, व्यापक, निरवधिक और निरतिशय महत्त्व से सम्पन्न है वह ब्रह्म है।[4] शङ्कराचार्य के अनुसार बृहतृ होने से ब्रह्म कहा जाता है।[5] शङ्कराचार्य का कथन है-'*बृंहति बृंहयति तस्मादुच्यते परं ब्रह्म*।' अर्थात् जो स्वयं बढ़ता है तथा प्रजा को बढ़ाता है वह ब्रह्म है। '*बृंहणाद् ब्रह्म*' अर्थात् देश, काल तथा वस्तु आदि से अपरिच्छिन नित्यब्रह्म परिलक्षित होता है।[6]

ब्रह्म का लक्षण-

शङ्कराचार्य ने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में ब्रह्म को नित्य-शुद्धबुद्धमुक्त-स्वभाव, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् आदि के रूप में प्रतिपादित किया हैं। इस नाम-रूपात्मक जगत् की रचना, स्थिति और लय जिस सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् तत्त्व से होते हैं वह ब्रह्म है।[7] इसी भाव को श्रुति भी पुष्ट करती है -

'*यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।...तद् ब्रह्म*।'[8] अर्थात् जिससे प्राणिजगत् उत्पन्न होता है, उत्पन्न होकर जिससे जीवित रहता है और अन्त में जिसमें लय हो जाता है, वह ब्रह्म है। ब्रह्मसूत्र भाष्य में ब्रह्म के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है -

'*अस्य जगतो नामरूपाभ्यां व्याकृतस्य अनेककर्तृभोक्तृसंयुक्तस्य प्रतिनियतदेशकालनिमित्तक्रियाफलाश्रयस्य मनसा अपि अचिन्त्यरचना-रूपस्य जन्मस्थितिभङ्गं यतः सर्वज्ञात् सर्वशक्तेः कारणाद् भवति, तद् ब्रह्म*'।[9]

अर्थात् नाम और रूप के द्वारा प्रकट हुए अनेक कर्त्ता और भोक्ता से युक्त जिसमें नियत देश और नियत काल पर ही कर्मों का फल प्राप्त होता है जिसकी रचना मन में सोचने योग्य भी नहीं है, सूक्ष्म और दुष्कर रचना वाले इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय जिस सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् कारण से होती है वह ब्रह्म है।

ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य में ब्रह्म का दार्शनिक स्वरूप -

निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य में बह्म के स्वरूप को स्पष्ट किया जा सकता है-

1. सृष्टि का कारण ब्रह्म/आत्मा -

उपनिषदों में प्रतिपादित ब्रह्मविषयक ज्ञान को, व्यवस्थित रूप में केवल उपनिषदों के माध्यम से ही समझना कठिन है क्योंकि यह अत्यन्त गहन एवं अथाह है। अतः कालान्तर में (400 B.C.) महर्षि बादरायण व्यास ने सार रूप में, इसे ब्रह्मसूत्रों के रूप में व्यवस्थित कर दिया। परन्तु सूत्रात्मक होने के कारण, इसको समझ पाना भी कठिन हो गया। इस कठिनाई को अनुभव करते हुए शङ्कराचार्य ने परवर्ती काल में (800 A.D) इन सूत्रों पर भाष्य लिखा। बादरायण ने जिन-जिन उपनिषद्-उद्धरणों को ध्यान में रखकर जो-जो भी सूत्र लिखा उस उस सूत्र की व्याख्या करते हुए, शङ्कराचार्य ने उन-उन उपनिषद्-उद्धरणों को पुनः उल्लिखित कर उसे एकदम स्पष्ट कर दिया। वस्तुतः इन उद्धरणों के बिना सूत्रों को समझ पाना कठिन ही नहीं अपितु असंभव भी है। उदाहरणार्थ - बादरायण सभी उपनिषदों के अध्ययन के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सारे उपनिषद् एक स्वर से यह कह रहे हैं कि जगत् का मौलिक कारण ब्रह्म, आत्मा अथवा सत् है। इस भाव को उन्होंने-तत्तु समन्वयात्[10] में सूत्रित कर दिया। किन्तु सूत्रमात्र के अध्ययन से पाठक को सूत्र का आशय स्पष्ट नहीं होता। जिन-जिन उपनिषद् वाक्यों को आधार मानकर बादरायण ने यह सूत्र रचा, उन-उन उपनिषद् वाक्यों को उद्धृत करके शङ्कराचार्य ने इस सूत्र की व्याख्या करके पाठकों को सूत्र का सार दे दिया। इस सूत्र के भाष्य में ब्रह्म को

जगत् का कारण बताते हुए कहा है–' *तद्ब्रह्म सर्वज्ञं सर्वशक्ति जगदुत्पत्ति–स्थितिलयकारणं वेदान्तशास्त्रादेवावगम्यते। कतम्? समन्वात् । सर्वेषु हि वेदान्तेषु वाक्यानि तात्पर्येणैतस्यार्थस्य प्रतिपादकत्वेन।*'[11] अर्थात् शङ्कराचार्य ने इस हेतु निम्न उपनिषद् वाक्यों को उद्धृत किया है –

(1) *सदेव सोम्येदमग्र आसीत। एकमेवाद्वितीयम्।*[12] सृष्टि के प्रारम्भ में एकमात्र अद्वितीय सत् (ब्रह्म) था। 'सत्' शब्द यहाँ अस्तित्वमात्र वस्तु का बोधक है, जो सूक्ष्म, निर्विशेष, सर्वगत, एक, निरञ्जन, निरवयव और विज्ञानस्वरूप है।

(2) *आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्।*[13] यह एक ही आत्मा उत्पत्ति के पूर्वकाल में था। अत: श्रुति से सिद्ध होता है कि सृष्टि का एकमात्र कारण ब्रह्म ही है।

(3) *अयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभू:*।[14] यह आत्मा ही सबका अनुभव करने वाला ब्रह्म है।

(4) *ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्तात्*।[15] यह अमृतरूपी ब्रह्म ही आगे है। अत: सृष्टि का मूल कारण ब्रह्म ही है।

इत्यादि श्रुतिवाक्यों के समन्वयात्मक कथन अर्थात् एक ध्वनि से सहमति जताने के कारण यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्म एवं आत्मा ही जगत् का कारण है। ब्रह्मसूत्र '*श्रुतत्वाच्च*' में कहा गया है कि ब्रह्म ही जगत् का कारण है, अचेतन प्रधान जगत्कारण नहीं है। इस तथ्य की पुष्टि श्रुति भी करती है–' *स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जिनिता न चाधिप:*'[16] अर्थात् वह सर्वज्ञ परमेश्वर ही जगत् का कारण है, वह जीवों का अधिष्ठाता है, उसका कोई उत्पादक अथवा अधिष्ठाता नहीं है ।

2. जगत् का कारण ब्रह्म निराकार/निर्विशेष –

जगत् का परम कारण ब्रह्म, निर्विशेष एवं निराकार होने के कारण, इन्द्रियातीत, अन्त:करणातीत है। इस भाव को सूत्रित करने के लिए बादरायण ने निम्न सूत्र रचा–'अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात्'[17] किन्तु, पूर्ववत् यहाँ भी मात्र सूत्र को पढ़ने से सूत्रार्थ समझ नहीं आता। बादरायण ने जिन उपनिषद्–वाक्यों को ध्यान में रखकर यह सूत्र रचा, उन उपनिषद्–वाक्यों को उद्धृत करते हुए शङ्कराचार्य ने इस सूत्र की व्याख्या इस भाँति की है –

(1) *अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम्*।[18] वह स्थूल नहीं है, अणु नहीं है, ह्रस्व नहीं है, दीर्घ नहीं है अत: ब्रह्म प्रधानरूप से निराकार है।

(2) *अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्*।[19] वह ब्रह्म शब्दरहित, स्पर्शरहित, रूपरहित और अविनाशी है।

(3) *आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निर्विहिता ते यदन्तरा तद्ब्रह्म।*[20] वह आकाश, नाम और रूप का स्पष्टीकरण करने वाला है, वे नाम और रूप जिसके भीतर है वह ब्रह्म है।

(4) दिव्यो ह्यमूर्त: पुरुष: सबाह्याभ्यन्तरो ह्यज: ।[21] स्वयंप्रकाश, सर्वमूर्त्तिवर्जित, बाह्य और भीतररहित एवं जन्मरहित पुरुष है।

(5) *तदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्ममयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभू:*।[22] वह ब्रह्म कारण तथा कार्य नहीं है, अन्तर तथा बाह्य नहीं है, यह आत्मा ब्रह्म है, सबका अनुभव करता है।

अत: समस्त श्रुतिवाक्य ब्रह्म को निराकार सिद्ध करती है। शङ्कराचार्य ब्रह्मसूत्र के भाष्य में इसी भाव को स्पष्ट करते हुए कहते है–' *तस्मादेवं जातीयकेषु वाक्येषु यथाश्रुतं निराकारमेव ब्रह्माऽवधारयितव्यम्। इतराणि त्वाकारवद्ब्रह्मविषयाणि वाक्यानि न तत्प्रधानानि*' ।[23] अर्थात् निष्प्रपञ्च ब्रह्मात्मप्रधान है, अन्य अर्थ प्रधान नहीं है, ऐसा 'ततु समन्वयात्' इस सूत्र में प्रतिष्ठापन किया गया है। इस प्रकार के वाक्यों में निराकार ब्रह्म की अवधारण करना चाहिये। अन्य वाक्यों में जो साकार ब्रह्मविषयक हैं, वे साकारब्रह्मप्रधान नहीं है, उपासना विधिप्रधान है। उपनिषदों के उदाहरण देकर उपसंहार रूप में प्रथम अध्याय में रचित ब्रह्मसूत्र के अपने भाष्य में शङ्कराचार्य ततु समन्वयात्[24] को उद्धृत करते हुए कहते है कि ये सारे वाक्य एक ध्वनि से कहते हैं कि ब्रह्म निराकार अर्थात् निर्विशेष है।

3. जगत् का कारण ब्रह्म निर्विशेष होने के कारण अनिर्वचनीय–

वह ब्रह्म निर्गुण, निर्विशेष होने के कारण अलक्षण है। परिणामत: उसे विचार का विषय नहीं बनाया जा सकता। अत: ब्रह्म का विवेचन निषेधमुखेन ही करना चाहिए। आधुनिक पाश्चात्य दर्शन के विचारक स्पिनोजा भी ईश्वर को निर्गुण एवं अनिर्वचनीय मानते हैं। ब्रह्म को केवल अपरोक्षानुभूति से जाना जा सकता है। अनुभव का एक ऐसा रूप है, जिसमें हम ब्रह्म होकर उसे जान सकते है। सभी उपनिषद् वाक्यों के आधार पर, बादरायण ब्रह्म के निराकार और निर्विशेष होने के कारण उसके अनिर्वचनीयत्व हेतु निम्न सूत्र रचते है–' *दर्शयति चाथो अपि स्मर्यते।*'[25] शङ्कराचार्य इस सूत्र को निम्न उपनिषद् वाक्यों को उद्धृत करते हुए स्पष्ट करते हैं–

(1) *अथात आदेशो नेति नेति*।[26] दोनों रूपों के व्याख्यान के अनन्तर उसके ब्रह्मज्ञान के हेतु होने से ब्रह्म मूर्त्त नहीं है और अमूर्त्त भी नहीं है यह उपदेश है।

(2) *अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादध*।[27] उस ब्रह्म के विषय में हम नहीं जानते। वह विदित से अन्य है तथा अविदित से भी परे है।

(3) *यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह*।[28] जहां से वाणी मन के साथ पहुँचे बिना ही लौट आती है। अत: ब्रह्म इन्द्रियों से भी परे है।

अत: उक्त सभी उपनिषद्–उद्धरणों का समर्थन लेते हुए शङ्कराचार्य ब्रह्म को अनिर्वचनीय घोषित करते हैं।

4. ब्रह्म सर्वशक्तिमान है –

शङ्कराचार्य के अनुसार ब्रह्म शब्द से इसके नित्य और शुद्ध अर्थों का भी बोध होता है।[29] शङ्कराचार्य ने अपने भाष्य में ब्रह्म को नित्य–शुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् आदि के रूप में प्रतिपादित करते हुए कहा है कि इस नाम–रूपात्मक जगत् की रचना, स्थिति और लय जिस सर्वज्ञ,सर्वशक्तिमान् तत्त्व से होते हैं वह ब्रह्म है–' *अस्ति तावद् ब्रह्म नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव सर्वज्ञं सर्वशक्तिसमन्वितम्।*'[30] उपर्युक्त

कथन की पुष्टि श्रुतिवाक्य इस प्रकार करते हैं – '*यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।......तद् ब्रह्म*।[31]

अर्थात् जिससे प्राणिजगत् उत्पन्न होता है, उत्पन्न होकर जिससे जीवित रहता है और अन्त में लय हो जाता है, वह ब्रह्म है।

ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखते हुए शङ्कराचार्य ने ब्रह्म के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए पूर्वापर पक्षों का विवेचन करने के पश्चात् यह सिद्ध किया कि ब्रह्म का अस्तित्व है और वह ज्ञान का लक्ष्य (जिज्ञास्य) बन सकता है। ब्रह्मस्वरूपावधारण के विषय में पूर्वपक्ष एक शंका प्रस्तुत करते हैं कि क्या ब्रह्म प्रसिद्ध है या अप्रसिद्ध ? प्रसिद्ध शब्द से यहाँ ज्ञात अर्थ लिया जाता है और अप्रसिद्ध का अर्थ है जिसे जाना नहीं जा सकता है। भावार्थ यह है कि क्या ब्रह्म ऐसी सत्ता है जिसे जाना जा सकता है या ऐसी सत्ता है जिसे जाना नहीं जा सकता है क्योंकि यदि यह स्वीकार किया जाए कि 'ब्रह्म प्रसिद्ध है' तो उसके ज्ञान की इच्छा करना व्यर्थ है और यदि वह अप्रसिद्ध है तो उसे जानने का प्रयत्न करना भी व्यर्थ होगा। इस शंका का निराकरण करते हुए शङ्कराचार्य कहते हैं कि ब्रह्म प्रसिद्ध है वह नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है। इस प्रकार वे स्थापना करते हैं कि ब्रह्म का अस्तित्व है और वह जिज्ञासितव्य है। इस प्रसंग में एक यह शंका उपस्थित की जाती है कि यदि ब्रह्म प्रसिद्ध है तो उसके स्वरूप की प्रतीति क्यों नहीं है ? अर्थात् हमें प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता है। आचार्य शङ्कर ने इसका समाधान करते हुए कहा है कि इन्द्रियाँ बहिर्मुखी हैं, उनके द्वारा बाह्य पदार्थों का ही प्रत्यक्ष होता है, ब्रह्म उनका विषय नहीं बन पाता है।[32]

5. ब्रह्म ज्योतिस्वरूप है –

ब्रह्मसूत्र '*ज्योतिश्चरणाभिधानात्*'[33] में 'ज्योति:' शब्द ब्रह्म का वाचक है। श्रुतिवाक्यों में भी ज्योतिशब्द को ब्रह्म का वाचक माना गया है –

(1) '*अथ यदत: परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते विश्वत: पृष्ठेषु सर्वत: पृष्ठेश्वनुत्तमेषूत्तमेषु लोकेष्विदं वाव तद्यदिदिमस्मिन्नन्त: पुरुषे ज्योति:*'[34] अर्थात् इस द्युलोक से परे जो परम ज्योति विश्व के पृष्ठ प्र यानी सबके ऊपर, जिनसे उत्तम कोई दूसरा लोक नहीं है ऐसे उत्तम लोकों में प्रकाशित हो रही है वह निश्चय यही है जो कि इस पुरुष के भीतर ज्योति है।

(2) '*अत्रायं पुरुष: स्वयं ज्योति:*।'[35] अर्थात् यह पुरुष (ब्रह्म) स्वयं ज्योति है। इसे ज्योतियों का ज्योति भी कहा गया है।

(3) '*हिरण्यमये परे कोशे विरज ब्रह्म निष्कलम्। तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदु:*।'[36] वह ब्रह्म सबके अन्दर विद्यमान है वह शुभ्र है तथा सूर्य आदि सभी प्रकाशकों का प्रकाशक है ।

6. ब्रह्म आनन्दमय है –

उपनिषदों में, ब्रह्मसूत्रों तथा अन्य वेदान्त के ग्रन्थों में ब्रह्म का आनन्द तथा आनन्दमय शब्दों के द्वारा प्रतिपादन किया गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् में ब्रह्म स्वरूप आनन्दमय माना गया है– *विज्ञानमानन्दं ब्रह्म*।[37] तैत्तिरीयोपनिषद् में भी ब्रह्म के लिए आनन्द शब्द का प्रयोग किया गया है।[38] वहाँ कहा गया है कि आनन्द से ही सभी भूत उत्पन्न होते हैं, आनन्द में ही स्थित हैं और अन्तत: आनन्द में उनका लय हो जाता है।[39] ब्रह्मसूत्र में ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है– 'विकारशब्दान्नेति चेन्न प्राचुर्यात्।' तथा 'तद्धेतुव्यपदेशाच्च।' इन दोनों सूत्रों के द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है कि ब्रह्म आनन्दमय है। अपने भाष्य में इस तथ्य को सुदृढ़ करते हुए शङ्कराचार्य लिखते हैं– '*ब्रह्मण्येवानन्दशब्दो दृष्ट:*।'[40] इस सन्दर्भों से सिद्ध होता है कि ब्रह्म आनन्द तथा आनन्दमय है। '*आनन्दमयोऽभ्यासात्*'[41] इस सूत्र पर भाष्य करते हुए शङ्कराचार्य ने लिखा है–'*ब्रह्मेति गम्यते....आनन्दमयस्य सर्वान्तिरत्वात्*।'[42] अर्थात् उपनिषदों में ब्रह्म के लिए आनन्द शब्द का कई बार प्रयोग होने से यह सिद्ध होता है कि आनन्दमय आत्मा ब्रह्म है क्योंकि यह सभी अन्तरतम में विराजमान है। ब्रह्म को आनन्दमय रूप में निम्नलिखित श्रुतिवाक्यों के माध्यम से किया है –

(1) '*रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति*' इति। *को ह्येवान्यात्क: प्राण्यात्, यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् एष ह्येवानन्दयाति*'[43] अर्थात् यह पुरुष रस को प्राप्त करके आनन्दयुक्त होता है। यदि आकाश– पूर्ण परब्रह्म यह आनन्द न होता, तो कौन चेष्टा करत और कौन जीता, यह परमात्मा ही आनन्द प्राप्त कराता है।

(2) '*सैषानन्दस्य मीमांसा भवति*'।[44]

(3) '*एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चन्*'[45]

(4) '*आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्*'[46]

(5) '*विज्ञानमानन्दं ब्रह्म*'[47]

7. ब्रह्म अन्तर्यामी है –

ब्रह्मसूत्र में प्रतिपादित किया गया है कि इन्द्रियों के द्वारा ब्रह्म का अनुभव इसलिए नहीं किया जा सकता है कि ब्रह्म अन्तर्यामी है। '*अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात्*'।[48] इस सम्बन्ध में बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि वह अन्तर्यामी है, देखने में नहीं आता है तथापि सबको देखता है, सुनने में न आने वाला होते हुए भी सब कुछ को जानने वाला है। मनन में न आने वाला होते हुए भी सबका मनन करने वाला है। वह अविज्ञेय होते हुए भी सबको सम्यक् प्रकार से जानता है।[49] अत: ब्रह्म प्रसिद्ध है, अन्तर्यामी है परन्तु उसका नेत्र आदि इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है को ब्रह्म का अस्तित्व नहीं है। वस्तुत: ब्रह्म प्रसिद्ध है क्योंकि ब्रह्म सबका आत्मा है, इसलिए ब्रह्म का अस्तित्व प्रसिद्ध है। आत्मा के अस्तित्व का अनुभव सबको होता है। 'मैं नही हूँ ऐसा ज्ञान किसी समझदार व्यक्ति को नहीं होता है अपितु सभी यह अनुभव करते है कि 'मैं हूँ'। यदि आत्मा का अस्तित्व प्रसिद्ध न होता तो 'मैं नहीं हूँ' सब ऐसा अनुभव करते। अत: आत्मा का अस्तित्व है और यह आत्मा ब्रह्म है।[50]

निष्कर्षत: सुस्पष्ट है कि ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य में जगत् का कारण ब्रह्म, निर्विशेष एवं निराकार होने के कारण अनिर्वचनीय है। ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य में शास्त्र (आगम) को अन्तिम प्रमाण माना गया है। प्रत्यक्षादि प्रमाणों के द्वारा ब्रह्म का ज्ञान नहीं हो सकता। ब्रह्मसाक्षात्कार केवल शास्त्र (आगम) प्रमाण से किया जा सकता है। ब्रह्मज्ञान अन्तिम प्रमाण है जो आत्मा के प्रमातापन को भी निवृत्त कर देता है। अद्वितीय ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्त स्वरूप है। जो पुरुष उसे बुद्धिरूप परम आकाश में निहित जानता है, वह सर्वज्ञ ब्रह्मरूप से एक साथ ही सम्पूर्ण भोगों को प्राप्त कर लेता है ।

सन्दर्भ-सूची

1. केनेषितं पतति प्रेषितं मन: केन प्राण: प्रथम: प्रैति युक्त:। केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षु: श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥ केन.उ., 1/1
2. तैत्तिरीयोपनिषद्, 3/1
3. भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्य:। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चम: ॥ कठोपनिषद्, 2/3/3
4. शब्दकल्पद्रुम, तृतीय भाग, पृ. 442-443
5. बृहत्तमत्वाद् ब्रह्म । तैत्तिरीयोपनिषद्, (शांकरभाष्य), 1/1/1
6. ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य 1/1/1 पर रत्नप्रभा पृष्ठ - 86-87
7. अस्ति तावद् ब्रह्म नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव सर्वज्ञं सर्वशक्तिसमन्वितम्। ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य, 1/1/2
8. तैत्तिरीयोपनिषद्, 3/1
9. ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य, 1/1/2
10. ब्रह्मसूत्र, 1/1/4
11. ब्रह्मसूत्र (शाङ्करभाष्य), 1/1/4
12. छान्दोग्योपनिषद्., 6/2/1
13. ऐतरीयोपनिषद्, 1/1/1
14. बृहदारण्यकोपनिषद्, 2/5/19
15. मुण्डकोपनिषद्, 2/2/11
16. श्वेताश्वेतरोपनिषद्, 6/9
17. ब्रह्मसूत्र, 3/2/14
18. बृहदारण्यकोपनिषद्, 3/8/8
19. कठोपनिषद्, 3/15
20. छान्दोग्योपनिषद्, 8/14/1
21. मुण्डकोपनिषद्, 2/1/2
22. बृहदारण्यकोपनिषद्, 2/5/19
23. ब्रह्मसूत्र (शाङ्करभाष्य), 3/2/14
24. ब्रह्मसूत्र, 1/1/4
25. ब्रह्मसूत्र, 3/2/17
26. बृहदारण्यकोपनिषद्, 2/3/6
27. केनोपनिषद्, 1/3
28. तैत्तिरीयोपनिषद्, 2/4/1
29. 'ब्रह्मशब्दस्य हि व्युत्पाद्यमानस्य नित्यशुद्धत्वादयोऽर्थो: प्रतीयन्ते, बृहतेर्धातोरर्थानुगमात्'। ब्रह्मसूत्र (शाङ्करभाष्य),1/1/1
30. ब्रह्मसूत्र (शाङ्करभाष्य), 1/1/1- 2
31. तैत्तिरीयोपनिषद्, 3/1
32. 'स्वभावतो विषयाविषयाणीन्द्रियाणि, न ब्रह्मविषयाणि।' ब्रह्मसूत्र (शाङ्करभाष्य), 1/1/2
33. ब्रह्मसूत्र, 1/1/24
34. छान्दोग्योपनिषद्, 3/13/7
35. बृहदारण्यकोपनिषद्, 2/3/9
36. मुण्डकोपनिषद्, 2/2/9
37. मुण्डकोपनिषद्, 3/9/28
38. आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। तैत्तिरीयोपनिषद्, 3/6
39. आनन्दाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तैत्तिरीयोपनिषद्, 3/6
40. ब्रह्मसूत्र (शाङ्करभाष्य), 1/1/12
41. ब्रह्मसूत्र, 1/1/12
42. ब्रह्मसूत्र (शाङ्करभाष्य), 1/1/12
43. तैत्तिरीयोपनिषद्, 2/7
44. तैत्तिरीयोपनिषद्, 2/8/1
45. तैत्तिरीयोपनिषद्, 2/8-9
46. तैत्तिरीयोपनिषद्, 3/6
47. बृहदारण्यकोपनिषद्, 3/9/28
48. ब्रह्मसूत्र, 1/2/18
49. ब्रह्मसूत्र, 3/7/23
50. ब्रह्मसूत्र (शाङ्करभाष्य)1/1/1

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

- ईशादि नौ उपनिषद्, शाङ्करभाष्यार्थ, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2066.
- एकादशोपनिषद्, सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, विजयकृष्ण लखनपाल प्रकाशन, दिल्ली, 2010.
- कठोपनिषद्, गीताप्रेस गोरखपुर, सं0 2027.
- छान्दोग्योपनिषद्, शाङ्करभाष्यार्थ, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2067.
- बृहदारण्यकोपनिषद्, शाङ्करभाष्यार्थ, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2067.
- चतु:सूत्री ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम् (ब्रह्मतत्त्वप्रकाशिका हिन्दी व्याख्या सहित), व्या0 आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1966.
- ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम् (चतु:सूत्री), संपा0 रमाकान्त तिवारी, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1991.
- ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम् (रत्नप्रभा टीका सहिता) अनु0 यतिवर श्री भोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004.
- ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम् (आचार्यशङ्करविरचित) व्या. स्वामी श्रीहनुमानदासजी षट्शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2009.
- वेदान्तपरिभाषा (धर्मराजाध्वरीन्द्रविरचित) व्या. श्रीगजानन शास्त्री मुसलगांवकर, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2010.
- वेदान्तसार (श्रीसदानन्दप्रणीत), व्या0 बदरीनारायण शुक्ल, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2009.
- देवराज, नन्दकिशोर, भारतीय दर्शन, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, छठा संस्करण, 2002.
- रानाडे, आर.डी, उपनिषद् दर्शन का रचनात्मक सर्वेक्षण, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1971.
- शर्मा, राममूर्ति, अद्वैत वेदान्त (इतिहास तथा सिद्धान्त), ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली. 1996.
- शर्मा, राममूर्ति, भारतीय दर्शन की चिन्तन धारा, चौखम्बा औरन्टिल, दिल्ली, 1997.

ऐतरेय उपनिषद् की उपादेयता

डॉ. सौरभ जी
सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

उपनिषद् शब्द 'उप' और 'नि' उपसर्गपूर्वक सद् धातु से निष्पन्न हुआ है, यहाँ पर सद् धातु तीन अर्थों में प्रयुक्त की गई है – ज्ञान, गमन (क्रिया) एवं प्राप्ति, तदनुसार उपनिषद् वह विद्या है, जो शिष्य को गुरु के सान्निध्य से प्राप्त होती है। विद्या प्राप्ति के पश्चात् शिष्य की अभिव्यक्ति ज्ञानमय क्रिया से युक्त होती है और उसी प्रकार के फल की प्राप्ति भी होती है। अत: स्पष्ट है कि उपनिषदीय ज्ञान गुरु के अनुग्रह से प्राप्त होता है, उसके बाद ही शिष्य की संसार में गति अत्यन्त सरलता से हो जाती है।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि किस शिष्य को उपनिषद् विद्या प्राप्त होती है तो इसका उत्तर स्पष्ट है, जो शिष्य नचिकेता के समान ब्रह्मविद्या का जिज्ञासु होता है उसी को वह विद्या प्राप्त होती है। कहा जाता है जो ब्रह्म को जान लेता है वह सभी प्रकार के ज्ञान को जान लेता है। अत: अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि ऐतरेय उपनिषद् में ऐसा क्या वर्णित है जिसे समस्त सृष्टि को जानना चाहिए। ऐतरेय उपनिषद् में ऐतरेय ऋषि ने जगत् के निर्माण की प्रक्रिया का अत्यन्त सुन्दर प्रतिपादन किया है, जिसको जानने की जिज्ञासा प्रत्येक मनुष्य के मन में होती है। क्योंकि मनुष्य विधाता की सर्वोत्कृष्ट कृति है। मनुष्य की उपदेयता उसके मनन एवं चिंतन से उत्पन्न विवेक ज्ञान से युक्त क्रियाओं से सिद्ध होती है। अत: मनुष्य के विषय में कहा गया है 'मननात् मनु' अर्थात् मनन के कारण मनुष्य, मनुष्य कहलाता है। ऐतरेय ऋषि ने ऐतरेय उपनिषद् में 'सृष्टि विज्ञान' को अत्यन्त सरलतम रूप में अभिव्यक्त किया है। मनुष्य के मन में उत्पन्न होने वाले प्रश्न जैसे मैं कौन हूँ, अथवा ब्रह्माण्ड सहित संसार की उत्पत्ति कैसे हुई, जड़-जङ्गम प्राणियों को उत्पन्न करने वाला कौन है आदि प्रश्नों का बड़े ही सुन्दर ढंग से उत्तर दिया है।

उपनिषद् के आरम्भ में कहा गया है कि सृष्टि के आदि में केवल एक ईश्वर था। जब ईश्वर ने तप एवं ध्यान किया तब उसके मन में संसार के निर्माण की इच्छा जाग्रत हुई –

स ईक्षत लोकान्नुसृजा इति।

(ऐ.उ. 1/1)

अर्थात् ईश्वर के मन में सर्वप्रथम सृष्टि निर्माण की प्रक्रिया में लोकों के निर्माण की इच्छा जाग्रत हुई। ऐतरेय उपनिषद् में वर्णित ईश्वर की संसार निर्माण की इच्छा ऋग्वेद के हिरण्यगर्भ सूक्त से समानता रखती है। हिरण्यगर्भ सूक्त में कहा गया है कि सृष्टि के आदि में वह ईश्वर अकेला था, उस ईश्वर ने जब तप एवं ध्यान किया तब उसके मन में 'काम' उत्पन्न हुआ कि वह संसार का सृजन करे। यह 'काम' ही संसार के निर्माण का प्रथम आधार था –

हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीद्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

(ऋ. 10/121/1)

अर्थात् जगत् के आदि में हिरण्यगर्भ बीज रूप में ईश्वर था जिसकी सृष्टि अद्यतन काल तक वृक्ष के रूप में अविष्कृत है। सृष्टि के निर्माण के सन्दर्भ में इसी प्रकार का साक्ष्य नासदीय सूक्त में भी मिलता है, जहाँ कहा गया है कि सृष्टि के 'आदि' में ज्योति रूप ईश्वर था न सत् था न असत्, न रात न दिन, न अमरता थी न मृत्यु, केवल था तो वह 'ब्रह्म' तत्त्व। वह ब्रह्म तत्त्व ही प्राणयुक्त क्रिया से शून्य और माया के साथ जुड़ा हुआ, एक रूप में विद्यमान था, सृष्टि के उत्पन्न होने से पूर्व रूप में यह जगत् जलमग्न था अर्थात् उस समय कारण एवं कार्य एक रूप था। जब ईश्वरेच्छा हुई कि वह जगत् का निर्माण करें तब उसके संकल्प एवं तप की महिमा से संसार का निर्माण हुआ –

नासदासीन्नो सदा सात्त दानीं नासीद्रजोनोव्योमापरोयत्
....न मृत्युरासीतमृतं न तर्हि न रात्र्या ....तिरश्चीनो
विततो रश्मिरेषामद्य:। (ऋ. 10/129/1-5 मन्त्र)

अत: उक्त तथ्य यह स्पष्ट करते हैं कि संसार विधाता के काम रूप इच्छा से उत्पन्न हुआ है। यह इच्छा ही प्रथम बीज है। यहाँ पर ईश्वर के मन में उद्भूत होने वाला काम संसार के कल्याण का था इसी कारण वह फलीभूत हुआ। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है कि ईश्वर के अन्दर यह इच्छा स्वाभाविक रूप से विद्यमान होता है, बाह्य विषयों से प्रभावित नहीं अपितु अन्तस्फुरणा का परिणाम होती है –

स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च।

(श्वेता.उप.6/8)

अत: स्पष्ट है ईश्वर की इच्छा एवं एक साधारण मनुष्य की इच्छा में विभेद है क्योंकि ईश्वर की इच्छा स्वाभाविक होती है कल्याण की होती है, वहीं साधारण व्यक्ति की इच्छा बाह्य विषयों से प्रभावित होती है। अत: ईश्वर में स्वाभाविक इच्छा जगत के निर्माण की थी, ईश्वर ने स्वनिर्मित लोकों को अम्भ, मरीचि, मर तथा आप: नाम दिये –

अम्भो मरीचीर्मरमापोऽवोऽभ: परेणविं द्यौः
प्रतिष्ठाऽन्तरिक्षं मरीचय पृथ्वीमरोयाअद्यस्ताताआप:।

(ऐ.उ. 1/2)

अर्थात् ईश्वरकृत पहला लोक अम्भ, दूसरा इससे ऊपर का लोक जिसे द्युलोक कहा गया, मरीची अर्थात् अंतरिक्ष, तदोपरान्त 'मर' जिसे पृथिवीलोक कहा गया, इसी प्रकार चौथा लोक जिसे आप: की संज्ञा दी गई वह पृथिवी से नीचे का लोक था। आप: से ही ईश्वर ने एक गोलाकार पिण्ड रूप पुरुषाकृति का निर्माण किया।

ऐतरेय उपनिषद् में वर्णित लोकों के निर्माण की प्रक्रिया, शतपथ ब्राह्मण में आप: से नगर निर्माण किये जाने की समानता रखता है –

स यो अपां रसमासीत्तमूर्ध्वसमुदोहन् तामस्मै परमकुर्वस्तद्यदस्मै पुरम् कुर्वस्तस्मात्पुष्करम्। पुष्करं ह वै तत्पुष्करमित्याचक्षे परोक्षम्। (शतपथ ब्राह्मण 7/4/1/13)

अर्थात् अव्यक्त आप: से प्रकृति का रस ऊपर आया जो रस ऊपर आया इसे ही पुर की संज्ञा दी गई अत: पुर बनाने के कारण उस आप: को पुष्कर नाम दिया गया। इसी आप: से एक पुरुष निर्मित किया गया जो ऐतरेय उपनिषद् की पुरुषाकृति की समानता रखता है। इस प्रकार जब पुरुषाकृति का निर्माण हो गया तब ईश्वर की पुन: इच्छा हुई, तब ईश्वर ने लोक की रक्षा हेतु लोकपालों की रचना की –

स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालानुसृजा इति।।
सोऽद्भ्य एवं पुरुषं समुद्धृत्यामूर्च्छयत।।

(ऐ.उ. 3/3)

लोकपालों की रचना के उपरान्त ईश्वर ने 'पुरुषाकृति' से देवताओं की रचना की। पुरुष रूप आकृति के मुख से वाणी को उत्पन्न किया और वाणी से अग्नि को उत्पन्न हुई –

मुखाद्वाग्वाचोऽग्नि। (ऐ.उ. 2/4)

'पुरुषाकृति' की नासिका से दो छिद्रों को बनाया और उन नासिका छिद्रों से 'प्राणवायु' अर्थात् वायुदेव को उत्पन्न किया –

नासिकेरनिरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राण: प्राणाद्वायु।

(ऐ.उ. 2/4)

इसी क्रम में उस पुरुषाकृति की आँखों से चक्षु और चक्षु से सम्पूर्ण संसार को प्रकाश प्रदान करने वाले सूर्य एवं चन्द्रमा का निर्माण किया –

आक्षिणीनिरभिद्येतामक्षिभ्य चक्षुश्चक्षुणादिव्य:।

(ऐ.उ. 2/4)

इसी क्रम में कानों से श्रोत्र अर्थात् श्रवण शक्ति उत्पन्न हुई और इन्हीं श्रोत्र से दिशाएँ उत्पन्न हुईं –

कर्णोनिरभिद्येतां कर्णाभ्यांश्रोत्रं श्रोत्रादिश:।

(ऐ.उ. 2/4)

उस विराट् आकृति रूप पुरुष की त्वचा से लोम और लोम से औषधि रूप वनस्पतियाँ उत्पन्न हुईं –

त्वडनिरभिद्यत त्वचो लोमानिलोमभ्यओषधि वनस्पतयो।

(ऐ.उ. 2/4)

उसी प्ररुष के हृदय से मन और मन से चन्द्रमा प्रकट हुआ –

हृदयं निरभिद्यतहृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा।

(ऐ.उ. 2/4)

नाभि से अपान और अपान से मृत्यु प्रकट हुई –

नाभिनिरभिद्यतनाभ्याअपानोऽपानान्मृत्यु।

(ऐ.उ. 2/4)

विराट् पुरुष की प्रजननेन्द्रियों से वीर्य और वीर्य से जल प्रकट हुआ –

'शिश्नं निरभिद्यत शिश्नाद्रेतोरेतस आप:'

(ऐ.उ. 2/4)

इसी प्रकार का वर्णन यजुर्वेद में भी मिलता है –

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षो: सूर्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणाश्च मुखादग्निरजायत।।

(यजु. 31/12/4)

अर्थात् ऐतरेय उपनिषद् में वर्णित तथ्य की पुष्टि यजुर्वेद से भी होती है, यहाँ पर मन से चन्द्रमा और नेत्र से सूर्य, श्रोत्र से प्राणवायु तथा मुख से अग्नि उत्पन्न हुई।

जब सभी देवताओं की रचना हो गई, तब देवताओं ने ईश्वर से प्रार्थना की कि आश्रय के अभाव में हमारे निर्माण का कोई औचित्य नहीं है अत: आप हमें निवास हेतु आश्रय प्रदान करें। तब ईश्वर ने सबसे पहले देवताओं के निवास हेतु गाय की आकृति बनाई, किन्तु देवताओं ने गाय में निवास करने के लिए मना कर दिया। तदुपरान्त ईश्वर ने देवताओं के आश्रयभूत 'अश्व' की आकृति निर्मिति की, उसे देखकर भी देवताओं ने मना कर दिया। ईश्वर ने सबसे अन्त में देवताओं के निवास के लिए मनुष्य की आकृति निर्मित की, इस आकृति को देखकर देवताओं ने अविलम्ब निवास हेतु स्वीकृति दे दी। देवताओं के मनुष्याकृति में निवास करने के पीछे सम्भवत: यही कारण रहा होगा कि मनुष्य ईश्वरकृत सबसे उत्कृष्ट रचना है, जिसके पास उत्तम क्रिया एवं विवेक है –

ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति।
ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्न वैनोऽयमलमिति।
ताभ्य: पुरुषमानयत्ता अब्रुवन सुकृतं बनेतिपुरुषो वाव सुकृतम्।
ता अब्रवीद्यथाऽऽयतनं प्रविशतेति।

(ऐ.उ. 2/2, 3)

देवताओं को जब आश्रय प्राप्त हुआ, तब ईश्वर ने देवताओं की क्षुधा एवं पिपासा को शांत करने के लिए अन्न एवं जल को उत्पन्न किया –

स इक्षतेमे नु लोकाश्च लोकपाश्चान्नमेभ्य: सृजा इति।
सोऽपोभ्यतपत्ताभ्योडमितप्ताभ्योमूर्तिरजायत यो वै सा मूर्तिरजायता

अन्नं वैतत।। (ऐ.उ. 2/3/2)

जब ईश्वर ने देवताओं की बुभुक्षा को शांत करने के लिए अन्न की रचना की, तब एक समस्या उत्पन्न हुई कि निर्मित अन्न को धारण कौन करेगा। इस प्रकार जब वाणी ने अन्न को धारण करना चाहा तब वह बोलकर शांत हो गई, आँखों ने धारण करने का विचार किया तो वे देखकर शांत हो गई इसी प्रकार प्राण अन्न को सूँघकर शांत हो गया, कान सुनकर, त्वचा छूकर, जननेन्द्रियाँ अन्न को त्यागकर तृप्त हो गई, अत: ये सभी अन्न को धारण करने में समर्थ न हो सके –

यद्धैनद्वाचाडग्रहैष्यदभि व्याहृत्यहैवान्नमत्रप्स्यत।
.... यद्धैनप्राणेनाग्रहैष्यदभि प्राण्यहैवान्नमत्रप्स्यत्
.......तदपानेनाजिघृत्तदावयत्.......
स एषोऽन्नस्यग्रहोयद्वायुरन्नमायुर्वा एष यद्वायु:।

(ऐ.उ. 3/3)

इस प्रकार अन्न को अपान वायु ने धारण किया और सम्पूर्ण शरीर की निर्माण क्रिया सम्पन्न हुई। इसके पश्चात् जो जो देव पुरुषाकृति के जिस स्थान से उत्पन्न हुए थे वे तद् तद् स्थान पर विराजमान हुए। अन्न के निर्माण होने पर, धारण किये जाने पर, देवताओं के यथा स्थान पर विराजमान हो जाने पर भी अभी तक शरीर जड़ था, किसी क्रिया को सम्पादित करने में समर्थ नहीं था। इसका कारण केवल यही था कि अभी तक शरीर में आत्मा रूप ब्रह्म का प्रवेश नहीं हुआ था जिस कारण से शरीर जड़ था। इसका तात्पर्य यह है कि उस ब्रह्म के अन्त:करण में प्रवेश से ही बहिकरण काम करते हैं। रसायन शास्त्र में कहा जाता है कि जिस प्रकार एक वस्तु के उपस्थित होने मात्र से अन्यान्य अनेक वस्तुएँ मिल जाती हैं। इसे रसायनशास्त्र में कैटैलाइटिक (Catalytic) कहते हैं और इस मिश्रण से पहले वाली वस्तु सर्वथा अलग रहती है। अत: यह कहा जा सकता है कि आत्मा के शरीर में रहने पर शरीरावयव स्वमेव क्रिया करना आरम्भ कर देते हैं, किन्तु आत्मा इन सबसे विलग रहती है। यही कारण होगा कि मनुष्य के निर्माण की प्रक्रिया पूर्ण हो जाने पर भी परम प्रकाश रूप परमात्मा के अभाव में निर्मित आकृति निष्क्रिय थी। इसी पर पुन: परमात्मा ने विचार किया और कहा कि मेरे बिना, मेरे द्वारा निर्मित हर तत्त्व जड़ एवं निष्क्रिय है अत: इस शरीर में मुझे प्रवेश करना चाहिए। तब वह ईश्वर मनुष्य के मूर्धा भाग को विदीर्ण करके ब्रह्मरन्ध्र ग्रन्थि से शरीर में प्रवेश किया। इस कारण वह ब्रह्म तत्त्व 'विदृति' नाम से जाना गया। सदा आनन्दित रहने के कारण 'नान्दन' एक अन्य नाम से प्रसिद्ध हुआ–

स एतमेव सामानं विदार्यै तथा द्वाराप्रापद्यत।
सैषा विदृति नाम द्वास्तदेतन्नान्दनं तस्य त्रय:
स्वप्ना अयभावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ इति।

(ऐ.उ. 3/12)

ऐतरेय उपनिषद् का यह वर्णन कठोपनिषद् में कुछ इस प्रकार मिलता है मनुष्य के शरीर में आत्मा एवं परमात्मा प्रकाश एवं छाया की भाँति प्रविष्ट हैं–

गुहाम्प्रविष्टौ परमेपरार्द्धे। छायातपौब्रह्मविदोवदन्ति।

(कठो. 3/1)

अत: उक्त प्रमाणों से विदित होता है कि आत्मा एवं परमात्मा के रहने पर ही शरीर किसी भी कार्य को करने में समर्थ होता है। तत्पश्चात् मनुष्य को उचित वातावरण प्रदान करने हेतु ईश्वर ने पृथिवी, जल, वायु, आकाश तथा अग्नि को प्रत्यक्षत: उत्पन्न किया। तदुपरान्त अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज, अश्व, गाय, हाथी आदि जड़–जङ्गम, पेड़–पौधे आदि उत्पन्न किए। ये सब उत्पन्न करने वाला परमात्मा प्रज्ञानेत्र वाला प्रज्ञानं ब्रह्म था। अत: सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न करने वाला प्रज्ञान रूप ब्रह्म ही था –

एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि
च पञ्चभूतानि पृथिवी, वायुराकाश आपोज्योतीषीत्ये
तानिमानि च स्वेदजानिचोद्भिज्जानि चाश्वा गाव:
पुरुषा हस्तिनो यत्किञ्चेद प्राणि जङ्गम च पतत्रि च
यञ्च स्थावरं सर्व तत्प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं
प्रज्ञानेत्रो लोक: प्रज्ञा: प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म।

(ऐ.उ. 3/1, 2)

अत: उक्त प्रमाणों से विदित होता है कि पृथिवी सहित अन्य लोकों का निर्माण विधाता की इच्छा से था। जब लोकों का ईश्वर ने निर्माण किया तब ईश्वर ने पुन: इच्छा की कि लोकों के स्वामी की रचना की जाए तब जल में से ईश्वर ने एक गोलाकार पुरुष की आकृति को निकाला और इस पुरुष रूप आकृति के अंगों से लोकपाल रूप देवताओं की रचना की। देवताओं की क्षुधा एवं पिपासा को शांत करने हेतु ईश्वर ने अन्न एवं जल की रचना की। अन्न एवं जल के पश्चात् देवताओं के आश्रयभूत विधाता ने मनुष्य की आकृति बनाई और देवताओं को निवास योग्य उचित भूमि प्रदान की। इस पर भी ईश्वर की सृष्टि प्रक्रिया पूर्ण नहीं हुई तब ईश्वर ने मनुष्य के भीतर स्वयं प्रवेश किया। अब भी संसार पूर्ण न था तब ईश्वर ने मनुष्य के लिए उचित वातावरण हेतु पृथिवी, जल, वायु, आकाश एवं अग्नि को प्रत्यक्ष आकार प्रदान किया। इसके बाद ईश्वर ने जड़ जङ्गम रूप पेड़, पौधे जीवजन्तुओं को उत्पन्न किया। यह सृजन की क्रिया करने वाला परमब्रह्म, प्रज्ञा नेत्र रूप ज्ञानवान् ईश्वर था जिसे ऐतरेय उपनिषद् में प्रज्ञानं ब्रह्म कहा गया अर्थात् परमात्मा ज्ञान रूप है।

ISSN 2278 - 0327

वैदिक देवता सूर्य

डॉ. प्रवीण बाला
सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग,
भारती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

वैदिक देवता सूर्य असीमित ऊर्जा के स्रोत हैं। इनके पास इतनी ऊर्जा है कि सम्पूर्ण चराचर जगत में विद्यमान जितने भी स्थूल तत्त्व हैं उन सभी को प्राणवान एवं प्रकाशित करने का सामर्थ्य रखते हैं। अत: सूर्य वह ज्योति है जो संसार के प्राणियों में विद्यमान तम: को अपाकृत करके सत् कर्म की ओर प्रवृत्त करने की शक्ति रखते हैं –

तरणि विश्व दर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य विश्वमाभासि रोचनम्।
(ऋ. 1/50/4)

सूर्य अपने तेज से सम्पूर्ण संसार को तेजस्विता प्रदान करता है। इस कारण से सूर्य को सम्पूर्ण संसार की आत्मा कहा गया है –

सूर्यआत्माजगतस्तस्थुश्च। (ऋ. 1/115/1)

यही कारण है कि सूर्य में अतिशय आकर्षण शक्ति है। सूर्य में विद्यमान आकर्षण शक्ति के कारण ही सभी ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं और सूर्य से ऊर्जा प्राप्त करते हैं–

वैश्वानरं कवयो याज्ञयासोऽग्नि देवा अजनयन्नजुर्यम्।
नक्षत्रं प्रत्नममिनच्चरिष्णु यक्षस्याध्यक्षंतविषंबृहन्तम्।।
(ऋ. 10/80/13)

अर्थात् सकल ब्रह्माण्ड में हर ग्रह, नक्षत्र आदि की स्थिति, गति तथा प्रकृति का कारण सूर्य ही है। सूर्य ही वह महान सत्ता है जिससे यह पृथिवी स्थित है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने सूर्य की इस आकर्षण शक्ति के लिए कहा कि सूर्य के आस-पास विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र पाया जाता है जिसे अंग्रेजी भाषा में Electro Magnetic Radiation कहते हैं, जिस कारण से पृथिवी सहित अन्य ग्रहों की स्थिति है –

सूर्ये उत्तभिताद्यौ:। (ऋ. 10/85/1)
सविता यन्त्रै: पृथिवीम् अरम्णात्। (ऋ. 10/149/1)

अर्थात् सूर्य के कारण ही पृथिवी की गति एवं स्थिति है, यही कारण है कि पृथिवी पर जीवन संभव है। संभव है इसी कारण से वैदिक ऋषियों ने सूर्य की मुक्त कण्ठ से स्तुति की होगी। सूर्य प्रत्येक व्यक्ति की धार्मिक आस्था का प्रतीक रूप है। यास्क ने सूर्य की इन्हीं विशेषताओं और महत्ता को देखते हुए सूर्य को द्युलोक का देवता बताया है –

त्रिस: एवं देवता इति नैरुक्ता:।
अग्नि पृथिवी स्थान: वायुवेन्द्रोवान्तारिक्षस्थान: सूर्योद्युस्थान:।
(निरुक्त 7/5/2)

अर्थात् वेदों में देवताओं के स्थान के क्रम से तीन लोक बताए हैं वे तीन लोक पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक हैं। इन तीनों लोकों में द्युलोक सबसे उत्कृष्ट लोक माना गया है। सूर्य को द्युलोक का स्वामी कहा गया है।

सूर्य एक होते हुए भी विभिन्न कार्यों को करने के कारण अनेक नाम से जाने जाते हैं –

सप्तदिशोनानासूर्या:। (ऋ. 9/114/3)

सम्पूर्ण लोकों को दिन अर्थात् प्रकाश से परिचय कराने के कारण इन्हें अग्नि कहा गया है –

विश्वस्मा अग्निभुवनाय देवा वैश्वानरं केतुमहनाम कृण्वन्।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में प्रश्न किया गया है कि कितने सूर्य हैं, कितनी अग्नियाँ हैं, कितनी ऊषाएँ हैं? आदि उक्त सभी प्रश्नों के उत्तर बाल्यखिल्य संहिता में मिनलते हैं –

एक स्वाग्निबहुधा समिद्धएक: सूर्यो विश्वमनु प्रभूत:।
एकवोषा सर्वमिदं विभात्येकं वा इदं विबभूव सर्वम् इति।
(अ. 8/85/2)

ऋग्वेद के एक मन्त्र में सूर्य को इन्द्र भी कहा गया है अर्थात् वे रथ के पहिये के समान सदैव क्रिया को सम्पादित करते हैं, अपनी कान्ति से काले अन्धकार को नष्ट करते हैं –

य सूर्य: पर्युरूवरांस्येन्द्रोववृत्याद्रश्येव चक्रा। (ऋ. 10/89/2)

सूर्य ऐसी अग्नि है जो प्रत्येक स्थान पर पायी जाती है, किन्तु सूर्य रूपी अग्नि की क्रिया विभिन्न स्थानों भिन्न-भिन्न होती है। यही कारण है कि सूर्य एक है किन्तु उसके अन्य नाम इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि आदि हैं –

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्य: स सुपर्णो गरुत्मान।
एक सद्विप्रा बहुधावदन्त्यग्निं यमं मातारिश्वानमाहु:।।
(ऋ. 1/164/46)

अर्थात् सूर्य के जितने गुण, कर्म एवं स्वभाव है उतने ही सूर्य के नाम मिलते हैं। सूर्य में पाया जाने वाला स्वभाव ही विभिन्न ऋतुओं को उत्पन्न करता है। सूर्य से ही दिन एवं रात निर्मित होते हैं अत: सभी प्राणियों को सूर्य की उपासना करनी चाहिए–

वयश्चिते पतत्रिणोद्विपच्चतुष्पदर्जुनि।
उष प्रारन्नृतुसु दिवो अन्तेभ्यस्परि। (ऋ. 1/50/3)

तन् मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षेसूर्यो रूपं कृणुतेद्यो रूपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाज: कृष्णमन्यद्धरित: संभरन्ति।।

(ऋ. 1/115/5)

सूर्य तीनों कालों में विद्यमान रहने वाले देव हैं। यही कारण है कि सूर्य को भूत वर्तमान और भविष्य का ज्ञाता कहा गया है। वे समस्त प्राणियों को सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलयुग का ज्ञान कराते हैं –

सूर्योदेवीमुषसं रोचमानां मेर्यो न योषामभ्येतिपश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रतिभद्रायभद्रम्।।

(ऋ. 1/115/2)

सूर्य ही वह देव है जो सबको धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की शिक्षा एवं सिद्धि प्रदान करते हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि सूर्य संसार में मानव को सभी प्रकार को अभ्युदय को प्रदान करते हैं –

अद्या देवा उदिता सूर्य्यस्य निरंहस: पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदिति: सिन्धु: पृथिवी उतद्यौ:।

(ऋ. 1/115/6)

अत: मन्त्र में सभी मनुष्यों से आग्रह किया गया है कि पाप कर्मों से दूर रहकर पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि हेतु सूर्य की उपासना करें। सूर्य में समस्त रोगों को दूर करने का सामर्थ्य है, इस कारण सूर्य को उत्तम वैद्य भी कहा गया है –

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरांदिवम्ह्द्रोगं।
मम सूर्य हरिमाणं च नाशय। (ऋ. 1/50/11)

सूर्य ही एकमात्र संसार का देवता है, जिसके उदय से संसार को भयग्रस्त करने वाले चौरादि विलुप्त हो जाते हैं, जैसे ही रात्रि होती है वैसे ही वे असामाजिक तत्त्व सक्रिय हो जाते हैं। यहाँ पर चौरादि रोगों से तात्पर्य अज्ञान से है जैसे ही ज्ञानोदय होता है वैसे अन्य विकार स्वत: तिरोहित हो जाते हैं। अत: सूर्य के इस गुण के कारण स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश में कहा है कि 'प्रकाश से प्रेरणा का हेतु सूर्यलोक अथवा सकल विद्या का प्रकाशक जगदीश्वर सूर्य है।' (दयानन्द सरस्वती वैदिक कोष, पृ. 1070, सत्यार्थ प्रकाश, प्रथम समुल्लास)

अत: सूर्य समस्त संसार की प्रेरणा को स्रोत है, वह समस्त जगत को प्रेरित करता है, सूर्य की इन शक्तियों की स्पष्टता सूर्य शब्द की व्युत्पत्तिजन्य अर्थ से भी होती है। यास्क ने निरुक्त में सूर्य की व्युत्पत्ति निम्नलिखित दी है–

1. सूर्य शब्द गत्यर्थक √सृ से निष्पन्न है, जिसका अर्थ अंतरिक्ष में गमनशील।
2. सूर्य शब्द प्रेरणार्थक √सू से निष्पन्न है क्योंकि वह समस्त जगत को प्रेरित करता है।
3. सूर्य शब्द सू उपसर्गपूर्वक गत्यर्थक √ऽर धातु से निष्पन्न हुआ है जिसका तात्पर्य शोभन गमन करने वाला –

सूर्य: सर्तेर्वा सुवतेर्वा स्वीर्य्यतेर्वा। (नि. 12/14/2)

अत: यास्क ने सूर्य को सर्वप्रेरक, प्रकाश तथा वर्षा आदि क्रियाओं का जनक बताया है। अत: सृष्टि में होने वाली समस्त क्रियाओं का हेतु सूर्य है। उदित होते हुए सूर्य को जांतवेदस कहा है –

उदुत्य जातवेदसं देवं वहन्ति केतव:। दृशे विश्वाय सूर्यम्।।

(ऋ. 1/50/7)

सूर्य देव सभी तत्त्वों में रश्मि रूप में विद्यमान हैं। अपनी रश्मियों से सबको प्रकाशित करते हैं। क्योंकि सूर्य देव हैं और देव शब्द दानात् द्योत्नात और द्वीपनात् से निष्पन्न हुआ है अर्थात् जो देने में समर्थ है, स्वयं प्रकाशित है और अन्य सभी को प्रकाशित करने में समर्थ हैं। अत: सूर्य के अन्दर ये तीनों गुण पाए जाते हैं –

अदृश्रमस्य केतवो विरश्मयो जर्नोअनु भ्राजन्तो अग्नयो यथा।

(ऋ.1/50/3)

अत: सूर्य के सम्पर्क में आते ही प्रत्येक तत्त्व स्वक्रिया की ओर अग्रसर हो जाता है। सूर्य देव इतने शक्तिशाली हैं कि वे सबको सुख प्रदान करने वाले हैं, संसार के रस का हरण करने वाले हैं तथा उनका रथ सात अश्वों द्वारा चलाया जाता है –

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य शोचिष्केशं विचक्षणं।

(ऋ.1/50/8)

सूर्य की शक्ति इस तथ्य से विदित होती है कि सूर्य से आकाश, वायु अंतरिक्ष तथा पृथिवी पर होने वाले उपद्रवों से शांति तथा रक्षा की प्रार्थना की जाती है –

सूर्यो नो दिवस्थातु वातो अन्तरिक्षात्।
अग्निर्न: पार्थिवेभ्य:।। (ऋ. 10/158/1)

ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है कि सूर्य की उपासना से अलौकिक दिव्य ज्ञान की प्राप्ति होती है, सूर्य के आकर्षण से पृथिवी समरूप पदार्थों को धारण करती है, सूर्य के अभाव में पृथिवी वज्र के समान कठोर होती है, अत: सूर्य से ही पृथिवी गन्ध से युक्त है क्योंकि प्रत्येक बीज की अविष्कृति का कारण सूर्य है –

मद्रा अश्वा हरित: सूर्यस्य चित्रा एतम्बा अनुपाद्यास:।
नमस्यन्तो दिव आप्रष्ठमस्यु परिद्यावपृथिवी यन्तिसद्या।।

(ऋ. 1/115/3)

सूर्य के प्रकाश को 'सुरूप' कहा गया है। यहाँ पर 'सुरूप' शब्द का तात्पर्य प्रसिद्ध से है, अर्थात् सूर्य की उपासना करने वाले व्यक्ति को प्रसिद्धि प्राप्त होती है –

सुपेशसं सुखं रथं यमहस्था उषस्त्वम्।
तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्यदुहितर्दिवह।।

(ऋ. 1/50/2)

ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है कि सूर्य पतन की ओर जाते हुए मनुष्य का उत्थान करता है, अत: सूर्य से प्रार्थना की गई है कि पतन की ओर जाते हुए हमें रोकें –

जो वा सवितर्यस्य ते हर: शतं सर्वो अर्हति।
पाहिनो दिद्युत: पतन्य:।। (ऋ. 10/158/2)

सूर्य की उपासना करने का विधान एक अन्य कारण से भी बताया गया है। सूर्य द्युलोक का स्वामी है, इसी सूर्य के कारण रात एवं दिन का निर्माण होता है, सूर्य के द्वारा ही मित्र प्राण के रूप में और वरुण उदान के रूप में स्थित है अत: सभी को स्व-स्वरूप में रहने के लिए सूर्य की स्तुति करनी चाहिए -

तत सूर्यस्य देवता तन् महित्वं मध्या कत्तोर्वितं तं स जभार।
(ऋ.10/158/18)

सूर्य को चक्षु प्रदान करने वाला परमात्मा कहा गया है अत: सूर्य ही वे नेत्र प्रदान करता है जिनसे व्यक्ति किसी भी पदार्थ के वास्तविक स्वरूप को देख पाता है। सूर्य से उत्तम वायु, मेघ तथा प्रकाश को प्रदान करने की प्रार्थना की गई है -

चक्षुर्नोदेव: सविताचक्षुर्न उत पर्वत: चक्षुर्धाता दधातुनं।
(ऋ. 10/1583)
चक्षुर्नो द्येहि चक्षुषो चक्षुर्विरव्यै तन्तभ्य: सं चेदं वि चं पश्येम।
(ऋ. 10/158/4)

सूर्य के पास दिव्य चक्षु हैं। इन दिव्य चक्षुओं के कारण सूर्य सकल संसार का साक्षी है अत: सृष्टि के आदि से अद्यतन काल तक स्वशक्ति से स्थापित देव कहा गया है -

सु सन्दृशे त्वां वयं प्रति पश्येम सूर्य विपथ्येम नृ चक्ष स:।।
(ऋ. 10/158/5)

सूर्य की शक्ति एवं महनीयता को देखते हुए वेद में एक स्थान पर कहा गया है कि अपने सौभाग्य को उदित करने की इच्छा रखने वाली स्त्रियाँ सूर्य के समान पति को वर रूप में पाना चाहती थी -

उदसो सूर्यो अगादुयं मामको भग:।
अहं तद्विद्वला पति मथ्य साक्षि विवासहि:।।
(ऋ. 10/158/6)

ऋग्वेद में एक अन्य स्थान पर सूर्य को प्राणों का संरक्षक कहा है। अर्थात् सूर्य सभी को जीवन प्रदान करता है -

विभ्राडब्रहस्पिबतु सोम्यं महवायुर्दधद्यज्ञपतावविहुतम्।
वात जूतो यो अभि रक्षतित्मना प्रजा: प्रपोषपुरुधावित राजति।
(ऋ. 10/170/1)

संसार के प्राणों का संरक्षक सूर्य सभी को अन्न, बल, ज्ञान का प्रदाता है। समस्त जगत के आलस्य को दूरकर अज्ञान को समाप्त करता है -

अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा।
(ऋ. 10/170/2)

सूर्य श्रेष्ठ ज्योतियों की एक ज्योति है, जो सम्पूर्ण विश्व को जीतने वाली है -

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुतमं विश्वनिदृनजिदुच्यते वृहत।
विश्वभ्राडबु भ्राजो महि सूर्यो दृश उरूप पप्रथे सह ओजो अच्युतम्।
(ऋ.10/170/3)

सूर्य के विषय में इतना तक कहा गया है कि जिस प्रकार कोई व्यक्ति चित्र की प्रशंसा करता है तो स्वाभाविक रूप से चित्रकार की प्रशंसा हो रही होती है। उसी प्रकार यदि कोई सूर्य की महिमा का गुणगान करता है तो स्वाभाविक रूप से विश्वकर्ता का गुणगान हो रहा होता है-

विभ्राजज्जयोतिषास्वरगच्छो रोचनं दिव:।
येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता विश्व कर्मणविश्ववेदव्यावृता।।
(ऋ.10/170/4)

सूर्य के पास संसार को प्रकाशित करने वाली ज्योति है। यही कारण है कि सूर्य के पास विष को अमृत में बदलने की 'मधुविद्या' बताई गई है। अत: संसार प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला विष को या अप्रत्यक्ष दिखाई देने वाला विष हो सबको अमृत में बदलने की शक्ति सूर्य के पास है। यहाँ पर प्रत्यक्ष विष को धारण करने वाले जीव साँप, बिच्छू, मच्छर आदि कहे गये हैं। इनमें सर्वाधिक तीव्र विष बिच्छू एवं सर्प का होता है सूर्य इस विष को भी दूर कर अमृत में बदल देता है। अदृष्ट विष से यहाँ पर तात्पर्य मनुष्य के भीतर अदृश्य रूप में विद्यमान काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य रूपी विष विद्यमान रहता है। यह वह विष है जो मनुष्य के भीतर विभिन्न प्रकार के रोगों को उत्पन्न करने में समर्थ होता है साथ ही विभिन्न प्रकार के व्यसनों का भी कारण बनता है। अत: सूर्य इन दोनों प्रकार के विषों का शमन करने में समर्थ है -

कङ्कतो न कङकूतोऽथो सतीन कङ्कत:। (ऋ.1/191/1)
उत पुरस्तात सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा। (ऋ.1/191/8)
उद अपप्तद् असौ सूर्य: पुरु विश्वानिजूर्वन्।
आदित्य: पर्वतेभ्यो विश्सवदृष्टो अदृष्टहा।। (ऋ.1/191/9)

अत: सूर्य के पास इक्कीस प्रकार की मधुविद्या बताई गई है, जो संसार में विद्यमान अत्यन्त घातक विष को भी अमृत में बदलने की शक्ति रखता है -

त्रि: सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्यपुष्यम अक्षन्।
.........मधुत्वा मधुला चकार।।
(ऋ.1/191/2)

अत: उक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि, वैदिक देवता सूर्य संसार के सर्वशक्तिमान देव हैं। ये अपनी ऊर्जा से संसार के सभी प्राणियों को ऊर्जावान करते हैं। संसार में विद्यमान तम: को समाप्त कर सत्व की ओर अग्रसर करने वाले देव हैं। सूर्य ही वह एकमात्र शक्ति हैं जिस कारण पृथिवी सहित सभी ग्रहों की स्थिति हैं सूर्य के पास ऐसी मधुविद्या है जो समस्त विष को अमृत में बदलने का सामर्थ्य भी रखती है।

मंजुल भगत की कहानियों में नारी जीवन की विसंगतियाँ

डॉ. सुनिता यादव

भारतीय हो अथवा पाश्चात्य जगत बहुत हद तक नारी जीवन में विसंगतियां समान रही है। वर्गीय दृष्टि से भी माने तो चाहे नारी किसी भी वर्ग की हो कहीं न कहीं उसका शोषण हुआ है। फिर वो मानसिक स्तर पर हो या दैहिक स्तर पर। अलग-अलग धर्म से संबंधित होने पर भी उनकी समस्याएँ एक समान है अंतर है तो केवल शोषण के होने वाले रूपों का। आज भी नारी की आर्थिक पराधीनता की स्थिति बनी हुई है। इन सबके अतिरिक्त नारी के अर्थोपार्जन करने से पति-पत्नी के संबंधों में नई समस्याओं व विसंगतियों ने जन्म लिया है। कालांतर में एक नारी के पत्नी रूप में उसके दांपत्य जीवन में यौन संबंधों से उत्पन्न कुण्ठा, घुटन, तनाव, तलाक आदि की समस्या विद्यमान है और इस समय तक नारी के अन्य रूप जैसे प्रेमिका, विधवा, वेश्या आदि पर भी आधुनिक जीवन का प्रभाव पड़ने से उसमें और भी अधिक जटिलतायें आ गई है। आज समाज में नारी पति की अनुगामिनी बनने की बजाए सहभागिनी बनना अधिक उचित समझती है। वह परंपराओं व मूल्यों का पालन तो करना चाहती है साथ ही प्रगति के क्षेत्र में पति से कंधे से कंधा मिला कर खड़ा होना चाहती है। मंजुल भगत के लगभग सभी नारी पात्र पारंपरिक आदर्श भारतीय मूल्यों का पोषण करते हैं साथ ही पति के लिए घर की चारदीवारी लांघ कर संघर्ष भी करते हैं।

मंजुल भगत के नारी पात्र भारतीय संस्कारों के कारण ही अनेक विसंगतियों का सामना करते हुए पारिवारिक सता को बनाए रखने का पूरा प्रयास करते हैं। मंजुल भगत की कहानियों के नारी पात्र अपने घर को बनाए रखने के लिए नपुंसक पति से भी तलाक लेने को तैयार नहीं होते हैं। उनकी कहानी 'अजूबा' में निशीथ और नेहा पति-पत्नी के संबधों को नया आयाम का रूप देते हैं निशीथ और नेहा चार वर्ष कनाड़ा में रहते हैं। इन चार वर्षो में वह विवाहित होकर भी कुँवारी है वह अपने नपुंसक पति से तलाक न लेकर अपनी जिंदगी से समझौता कर लेती है। वह यह मान लेती है कि ''अपनी जिंदगी को पत्तों के सहारे सजाउंगी। रहने दो इन पत्तों को मेरे जीवन में। क्यों बटोरते हो ? क्यों काटों में मेरी मुस्कुराहट देखना चाहते हो ?''[1]

इस प्रकार नेहा अपने पति से तलाक न लेकर अपने जीवन में आने वाली विडंबनाओं में जीते हुए अपने पति के साथ रहती है।

मंजुल भगत के नारी पात्र सबल भी हैं, परंतु फिर भी नारी के परंपरागत तथा प्राकृतिक संस्कारों एवं दायित्वों से वे भागती नहीं हैं। मंजुल भगत के नारी पात्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये पात्र विसंगति में जीते हुए भी किसी प्रकार के अपराध-बोध और कुण्ठा से मुक्त है। उनकी 'निशा' कहानी की पात्र निशा आधुनिक युवती है। पाँच बहनों की तुलना में निशा साधारण-सी दिखने वाली लड़की है। निशा को अपने माता-पिता से स्नेह उतना नहीं मिला जितना उनकी बहनों को मिला। माता-पिता के स्नेह से वंचित रहने के कारण उसका व्यक्तित्व जिद्दी बन जाता है उसने किताबों को अपना दोस्त बनाया। पहली बार निशा लाइम लाइट में तब आई जब उसने हाईसेकेंड्री में प्रथम श्रेणी प्राप्त की और उसे सफलता पाने की सीढ़ी मिल गई। एम०ए० पास करने के पश्चात् पीएच०डी० के लिए स्कॉलरशीप लेकर अमेरिका चली गई पीएच०डी० करते समय उसे अपने पिताजी की मृत्यु का समाचार मिलता है। ''क्या सचमुच पिताजी इस संसार से चले गए? अब कौन पल-पल चौंकेगा उसके परिश्रम और सफ्लता पर ?''[2]

भारत वापिस लौटने पर वह अपनी अकेली माँ के लिए लड़का साबित होती है और अपनी माँ के बुढ़ापे का सहारा बनती है निशा आजीवन शादी न करके अपना जीवन मुक्त होकर जीती है। नारी की यही मुक्ति मंजुल भगत के लेखन की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

लेखिका की कहानियों के नारी पात्र विभिन्न प्रकार के है। उनके नारी पात्र कभी जीवन में परंपरावादी रूप में त्याग और समर्पण की मूर्ति दिखाई देते हैं। तो कभी आधुनिक रूप से स्वछंद शैली अपनाते हैं। कभी स्वतंत्र चेता बनकर परंपराओं और रूढ़ियों से टक्कर लेते हैं। कभी आत्मनिर्भर बनकर जीवंतपर्यंत परिस्थितियों से जूझते हैं। कुछ नारी पात्र जो अपने जीवन में संघर्ष नहीं कर पाते वे अनेक समस्याओं से ग्रस्त रहते हैं कुछ ऐसे भी नारी पात्र हैं जो परिवार तथा समाज में न केवल अवैध संबंधों का दंश झेलते हैं। बल्कि परिवार में उपेक्षा का शिकार भी होते हैं। मंजुल भगत की 'बुआजी' कहानी इसी प्रकार की है। बुआजी कहानी में बुआजी का प्रथम परिचय लेखिका ने इस प्रकार दिया है। ''जीर्ण-शीर्ण देह,म्लानमुख, मैली-कुचैली बेकिनार साड़ी में वह दासी बेहद मजलूम मालुम दे रही थी।[3] घर के सभी लोग उसे 'बुआजी' के नाम से पुकारते हैं। उस घर का सेठ उसके साथ अवैध संबंध रखता हैं। उसका नाजायज बेटा भी हैं। वह घर का सारा

कामकाज व सेवा करना अपना कर्तव्य समझती हैं। इस विवशता में उसकी मजबूरी स्पष्ट दिखाई देती है। उस घर के लोग उसे जैसा रखना चाहते हैं वैसा ही रहती हैं। उनकी उतरन पहनती है और जो कुछ रूखा-सूखा बचता है वही वह खाती है। घर के पुरुषों द्वारा उसकी मारपीट होती है। ''मँझले की आदत ही खराब है। जब देखों तब मारपीट लगाए रहता है।...मेरे भी हाड़-मांस है...नहीं सहा जाता।''[4] परंतु कभी विरोध का एक शब्द भी बुआजी के मुख से नहीं निकलता। इस प्रकार अपनों के बीच रहते हुए भी निरर्थक - सा जीवन जीती है।

नारी ही परिवार में धुरी होती है। नारी के बिना परिवार की कल्पना नहीं की जा सकती परंतु विसंगति यह है कि जिस नारी को परिवार के केन्द्र में होना चाहिए वह सदा से ही हाशिए पर रही है। इसका प्रमुख कारण यह है कि परिवार की आर्थिक व्यवस्था सदा से ही पुरुषों के हाथ में रही है अत: पुरुष ने स्वयं को घर के मुखिया का दर्जा दिया है। आर्थिक उपार्जन के कारण ही पुरुष स्वयं को शासक और नारी को दासी मानता आया है और यही कारण है कि नारी को आजीवन पुरुषों के अनेक अत्याचार सहन करने पड़ते हैं।

मंजुल भगत की 'गुलमोहर के गुच्छे' कहानी में फ्रेडरिक की माँ अपने पति के अत्याचारों की शिकार होती रहती है। वह हर वक्त डरी-सहमी रहती है। माईक उसे इतनी यातनाएँ देता है कि वह मानसिक रूप से भी कमजोर बन जाती है। ''किसी बीमार कुतिया की तरह किक पर किक खाए गई और उसी दहलीज पर पड़ी रही।''[5] पति के आतंक के कारण उसमें इतना साहस भी नहीं रहा कि वह घर के बाहर कदम रखे और अपने जीवन को नये सिरे से शुरू करे।

कालांतर में औद्योगिकीकरण व बाजारवाद के बाद आए बदलते सामाजिक मूल्यों का प्रभाव अनेक प्रकार से परिवार पर भी दृष्टिगोचर होने लगा। वस्तुत: उस समय पारिवारिक रिश्तों में आए अलगाव, कलह का सीधा प्रभाव नारी के जीवन में भी व्यापक रूप से दिखाई देने लगता है। कालांतर में नारी भी घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर आत्मनिर्भर बनने लगी। शिक्षा के परिणामस्वरूप नारी भी कामकाजी बनकर परिवार में पुरुषों के समान आर्थिक रूप से अपना योगदान देने लगी। अब उसका कार्यस्थल घर और बाहर दोनों में बंट गया है। घर और कार्यास्थल के बीच सामंजस्य स्थापित करने में नारी को अनेक विसंगतियों का सामना करना पड़ता है।

'नालायक बहू' कहानी में कामिनी अपने पति शेखर की बार-बार नौकरी छूटने के कारण सदा अपनी सास व ननद की निंदा की पात्र बनती है। शेखर की नौकरी छूटने के कारण घर की आर्थिक स्थिति कमजोर हो जाने के कारण कामिनी स्वयं नौकरी करने लगती है। दीवाली के दिन कामिनी के सज-धज कर तैयार होने पर ननद सुजाता उसे कहती है, ''अरे ! शेखर को क्या नौकरी मिल गई ? तुम तो लकदक हो एकदम।''[6]

अत: निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि मंजुल भगत ने अपनी कहानियों में हर प्रकार की पारिवारिक सामाजिक और आर्थिक विसंगतियों से घिरी नारियों के जीवन का यथार्थ चित्रण किया है।

संदर्भ सूची:-

1. मंजुल भगत: कथा साहित्य में नारी रूप-डॉ० शेख शहेनाज, पृ.149
2. कमल किशोर गोयनका, मंजुल भगत: समग्र कथा साहित्य (नई दिल्ली, किताबघर प्रकाशन: प्र.सं. 2004)पृ.63
3. वही, पृ. 100
4. वही, पृ. 64
5. वही, पृ. 88
6. वही पृ. 41